



ॐ नमः सिद्धेभ्यः

श्रीमद्भगवत्पुष्पदंतभूतबलिविरचितः

षट्खण्डागमः

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका

(गणिनी ज्ञानमती विरचिता-स्वकृतभाषानुवादसहिता च)

अथ जीवस्थान-चूलिका

षष्ठो ग्रन्थः

प्रथमो महाधिकारः

अथ प्रकृतिसमुत्कीर्तनचूलिका नाम

मंगलाचरणम्

सिद्धान् भूम्यष्टमीप्राप्तान्, अष्टगुणसमन्वितान्।

अष्टाङ्गेन नुमो नित्य-मष्टकर्मविमुक्तये॥१॥

श्री धरसेनाचार्यहिमवत्पर्वतान् निर्गता श्रुतज्ञानगंगा याभ्यामवगाह्य अंकलेश्वरग्रामे आगत्य वर्षायोगं कृत्वा षट्खण्डागमसरोवरो भव्येभ्योऽवतारितः, तस्मै श्रुतज्ञानगुरवे ताभ्यां पुष्पदन्तभूतबलिसूरिभ्यां चास्माकं

जीव स्थान चूलिका (छठा ग्रंथ)

प्रकृतिसमुत्कीर्तना नाम प्रथम चूलिका अधिकार

मंगलाचरण

जो आठ गुणों से सहित हैं, आठवीं — ईषत्प्राग्भारा नाम की पृथ्वी को प्राप्त हो चुके हैं ऐसे सिद्ध भगवन्तों को हम आठों कर्मों से छूटने के लिये नित्य ही अष्टांग नमस्कार करते हैं।

श्री धरसेनाचार्यरूपी हिमाचल से श्रुतज्ञानरूपी गंगा निकली है। उसमें दोनों मुनियों ने अवगाहन करके “अंकलेश्वर” नाम के ग्राम में आकर वर्षायोग करके षट्खण्डागमरूपी सरोवर को भव्यों के लिये अवतारित किया। उन श्रीश्रुतज्ञानगुरु धरसेनाचार्य को एवं श्रीपुष्पदन्त-श्रीभूतबली आचार्यों को हमारा कोटि-कोटि

कोटिशः नमो नमः।

अथ षट्खण्डागमस्य षट्खण्डाः — जीवस्थान-क्षुद्रकबंध-बंधस्वामित्वविचय-वेदनाखण्ड-वर्गणाखण्ड-महाबंधाश्चेति वर्तन्ते।

अस्मिन् षट्खण्डागमे प्रथमखण्डे द्विसहस्रत्रिंशत्पञ्चसप्तति सूत्राणि, द्वितीय खण्डे चतुर्नवत्यधिक-पञ्चदशशतसूत्राणि, तृतीयखण्डे चतुर्विंशत्यधिकत्रिंशत्सूत्राणि, चतुर्थखण्डे पञ्चविंशत्यधिकपञ्चदशशतानि, पञ्चमखण्डे त्रयोविंशत्यधिकैकसहस्राणि सूत्राणि वर्तन्ते।

एवं पञ्चखण्डसूत्राणां गणनाः — षट्सहस्राष्ट्रशतैकचत्वारिंशत्सूत्राणि सन्ति।

एतेष्वपि प्रथमखण्डे सत्प्ररूपणा, द्रव्यप्रमाणानुगमः, क्षेत्रानुगमः, स्पर्शनानुगमः, कालानुगमः अन्तरानुगमो भावानुगमोऽल्प-बहुत्वानुगमश्चेति अष्टौ अनुयोगद्वाराणि पञ्चग्रन्थेषु पूर्णानि बभूवुः।

अधुना नवचूलिकाः वर्ण्यन्ते, अस्मिन् षष्ठग्रन्थे — अत्र ग्रन्थे सूत्राणि पञ्चदशाधिकपञ्चशतानि सन्ति। नवचूलिकासु तेषां विभाजनं क्रियते। प्रथमतस्तावत् नवचूलिकानां नामानि —

प्रकृतिसमुत्कीर्तना-स्थानसमुत्कीर्तना-प्रथममहादण्डक-द्वितीयमहादण्डक-तृतीयमहादण्डक-उत्कृष्टस्थिति-जघन्यस्थिति-सम्यक्त्वोत्पत्ति-गत्यागती नामधेयाः।

तत्र १. प्रकृतिसमुत्कीर्तनाचूलिकायां षट्चत्वारिंशत्सूत्राणि, २. स्थानसमुत्कीर्तनाचूलिकायां सप्तदशोत्तरशतानि, ३. प्रथममहादण्डकचूलिकायां द्वे सूत्रे, ४. द्वितीयमहादण्डकचूलिकायां द्वे सूत्रे, ५. तृतीयमहादण्डकचूलिकायां द्वे सूत्रे, ६. उत्कृष्टस्थितिनामषष्ठचूलिकायां चतुश्चत्वारिंशत्सूत्राणि, ७. जघन्यस्थितिनामचूलिकायां त्रिचत्वारिंशत्, ८. सम्यक्त्वोत्पत्तिचूलिकायां षेडशसूत्राणि, ९. गत्यागतिचूलिकायां

नमस्कार होवे, नमस्कार होवे।

इस षट्खण्डागम ग्रन्थराज में छह खण्ड हैं — जीवस्थान, क्षुद्रकबंध, बंधस्वामित्वविचय, वेदनाखण्ड, वर्गणाखण्ड और महाबंध। इस षट्खण्डागम ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में दो हजार तीन सौ पचहत्तर सूत्र हैं। द्वितीय खण्ड में पन्द्रह सौ चौरानवे सूत्र हैं। तृतीय खण्ड में तीन सौ चौबीस सूत्र हैं। चौथे खण्ड में पन्द्रह सौ पच्चीस सूत्र हैं एवं पाँचवें खण्ड में एक हजार तेईस सूत्र हैं, इस प्रकार पाँच खण्डों में सूत्रों की गणना — छह हजार आठ सौ इकतालीस है।

इनमें से प्रथम खण्ड में सत्प्ररूपणा, द्रव्यप्रमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, कालानुगम, अन्तरानुगम, भावानुगम और अल्पबहुत्वानुगम ये आठ अनुयोग द्वार हैं जो कि पाँच ग्रन्थों में — पुस्तकों में पूर्ण हो चुके हैं।

अब इस छठे ग्रन्थ में नव चूलिकाओं का वर्णन किया जा रहा है। इसमें पाँच सौ पन्द्रह सूत्र हैं। नव चूलिकाओं में इनका विभाजन किया जा रहा है। पहले तो उन नव चूलिकाओं के नाम बताते हैं — १. प्रकृतिसमुत्कीर्तना, २. स्थानसमुत्कीर्तना, ३. प्रथम महादण्डक, ४. द्वितीय महादण्डक, ५. तृतीय महादण्डक, ६. उत्कृष्टस्थितिबंध, ७. जघन्यस्थितिबंध, ८. सम्यक्त्वोत्पत्ति और ९. गत्यागती ये नव चूलिकायें हैं।

उसमें से प्रकृतिसमुत्कीर्तना चूलिका में छ्यालीस सूत्र हैं। स्थानसमुत्कीर्तना चूलिका में एक सौ सत्रह सूत्र हैं। प्रथम महादण्डक नाम की तीसरी चूलिका में दो सूत्र हैं। द्वितीय महादण्डक नामक चौथी चूलिका में दो सूत्र हैं। तृतीय महादण्डक नामक पाँचवीं चूलिका में दो सूत्र हैं। उत्कृष्टस्थितिबंध नाम की छठी चूलिका में चवालीस सूत्र हैं। जघन्य स्थितिबंध नाम की सातवीं चूलिका में तेतालीस सूत्र हैं। सम्यक्त्वोत्पत्ति नाम की आठवीं चूलिका में सोलह सूत्र हैं और गत्यागती नाम की नवमीं चूलिका में दो सौ तेतालीस सूत्र हैं। इस प्रकार

त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशतसूत्राणि इति समुदितानि पंचदशाधिकपञ्चशतसूत्राणि सन्ति।

अस्मिन् षष्ठग्रन्थे द्वौ महाधिकारौ विभक्तीकृतौ स्तः। तत्र प्रथममहाधिकारे अष्टौ चूलिका एव अष्टौ अधिकाराः सन्ति। पुनश्च द्वितीयमहाधिकारे गत्यागतिचूलिकानामतोऽस्ति।

अथ तावत् प्रथममहाधिकारान्तर्गते दशाभिःस्थलैः षट्चत्वारिंशत्सूत्रैः श्रीभूतबलिसूरिवर्येण जीवस्थानचूलिकायां 'प्रकृतिसमुत्कीर्तन-चूलिका' नाम्ना प्रथमोऽधिकारः प्रारम्भ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले 'कतयः प्रकृतयो बध्नन्ति' इत्यादिना चतुर्विधप्रश्नान् अवतार्य तस्योत्तररूपेण 'प्रकृतिसमुत्कीर्तन' प्रतिपादनस्य प्रतिज्ञारूपेण वा "कदि काओ" इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु द्वितीयस्थले अष्टविधमूलप्रकृतिनामनिरूपणपरत्वेन "तं जहा" इत्यादिनवसूत्राणि। ततः परं तृतीयस्थले ज्ञानावरणस्य भेदकथनत्वेन "णाणावरणीयस्स" इत्यादिसूत्रद्वयं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले दर्शनावरणस्य भेदनिरूपणत्वेन "दंसणावरणीयस्स" इत्यादिसूत्रद्वयं। पुनश्च पंचमस्थले वेदनीयकर्मणः भेदप्रतिपादनत्वेन "वेदणीयस्स" इत्यादिसूत्रद्वयं। ततश्च षष्ठस्थले मोहनीयस्य भेद-प्रभेदनिरूपणत्वेन "मोहणीयस्स" इत्यादिसूत्रषट्कं। तत्पश्चात् सप्तमस्थले आयुषः भेदकथनत्वेन "आउगस्स" इत्यादिना द्वे सूत्रे। ततश्च अष्टमस्थले नामकर्मणः भेद-प्रभेदनिरूपणत्वेन "णामस्स" इत्यादिना अष्टादश सूत्राणि। ततः परं नवमस्थले गोत्रकर्मभेदकथनेन "गोदस्स" इत्यादिसूत्रमेकं। तदनन्तरं दशमस्थले अन्तरायस्य भेदनिरूपणत्वेन "अंतराइयस्स" इत्यादिसूत्रमेकं इति समुदायपातनिका सूचिता भवति।

अधुना चतुर्विधप्रश्नकरणार्थं श्रीभूतबलिस्वामिना प्रथमं सूत्रमवतार्यते —

सर्व सूत्र मिलकर पाँच सौ पन्द्रह सूत्र हैं।

इस छोटे ग्रन्थ में दो महाधिकार विभक्त किये हैं। उसमें से प्रथम महाधिकार में आठ चूलिकायें हैं, अतः इस महाधिकार में आठ अधिकार हैं। पुनः द्वितीय महाधिकार में गत्यागती नाम की चूलिका है।

अब प्रथम महाधिकार के अन्तर्गत दश स्थलों द्वारा छ्यालीस सूत्रों से श्रीभूतबलि सूरिवर्य जीवस्थानचूलिका में प्रकृतिसमुत्कीर्तन चूलिका नाम का प्रथम अधिकार प्रारम्भ करते हैं। उसमें प्रथम स्थल में 'कितनी प्रकृतियाँ बंधती हैं ?' इत्यादि रूप से चार प्रकार के प्रश्नों को अवतारित करके उनके उत्तररूप से प्रकृतिसमुत्कीर्तन का प्रतिपादन करते हुये अथवा प्रतिज्ञारूप से "कदि काओ" इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। इसके बाद दूसरे स्थल में आठ प्रकार की मूल प्रकृतियों के नाम का निरूपण करते हुये "तं जहा" इत्यादि नव सूत्र कहेंगे। इसके बाद तीसरे स्थल में ज्ञानावरण के भेद कहने रूप से "णाणावरणीयस्स" इत्यादि दो सूत्र हैं। इसके अनन्तर चौथे स्थल में दर्शनावरण के भेदों का निरूपण करते हुये "दंसणावरणीयस्स" इत्यादि दो सूत्र हैं। पुनः पाँचवें स्थल में वेदनीय के भेदों का निरूपण करने रूप से "वेदणीयस्स" इत्यादि दो सूत्र कहेंगे। अनन्तर छठे स्थल में मोहनीय कर्म के भेद-प्रभेदों का निरूपण करने रूप से "मोहणीयस्स" इत्यादि छह सूत्र कहेंगे। इसके पश्चात् सातवें स्थल में आयु के भेदों को कहने रूप से "आउगस्स" इत्यादि दो सूत्र कहेंगे। अनन्तर आठवें स्थल में नामकर्म के भेद-प्रभेदों को कहते हुये "णामस्स" इत्यादि अठारह सूत्र कहेंगे। इसके बाद नवमें स्थल में गोत्रकर्म के भेदों को बतलाते हुये "गोदस्स" इत्यादि एक सूत्र कहेंगे। इसके अनन्तर दशमें स्थल में अन्तराय के भेदों का निरूपण करते हुये "अंतराइयस्स" इत्यादि एक सूत्र कहेंगे, इस प्रकार यहाँ "समुदायपातनिका" सूचित की गई है।

अब चार प्रकार के प्रश्न को करने के लिये श्री भूतबलि स्वामी प्रथम सूत्र अवतारित करते हैं —

कदि काओ पयडीओ बंधदि,
 केवडि कालट्टिदिएहि कम्मेहि सम्मत्तं लब्भदि वा ण लब्भदि वा,
 केवचिरिण कालेण वा कदि भाए वा करेदि मिच्छत्तं,
 उवसामणा वा खवणा वा केसु व खेत्तेसु कस्स व मूले केवडियं वा
 दंसणमोहणीयं कम्मं खवेत्तस्स चारित्तं वा संपुण्णं पडिवज्जत्तस्स।।१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सम्यक्त्वस्योत्पादकः मिथ्यादृष्टिर्जीवः कियतीः काः काश्च प्रकृतीः बध्नाति ? कियत्कालस्थितिकैः कर्मभिः सम्यक्त्वं लभ्यते वा न लभ्यते वा ? कियच्चिरेण कालेन वा कतिभागान् वा मिथ्यात्वं करोति ? केषु वा क्षेत्रेषु कस्य वा पादमूले कियद्दर्शनमोहनीयं कर्म क्षपयतः जीवस्य वा चारित्रं संपूर्णं प्रतिपद्यमानस्य जीवस्य मोहनीयकर्मणः उपशामना वा क्षपणा वा भवति ? इति प्रश्नानि अवतारितानि भवन्ति।

अत्र कश्चिदाह—

सत्प्ररूपणाद्यष्टसु अनियोगद्वारेषु समाप्तेषु अत्र चूलिकाधिकारः किमर्थमागतः ? आचार्यदेवः परिहरति—

सूत्रार्थ—

सम्यक्त्व को उत्पन्न करने वाला मिथ्यादृष्टि जीव कितनी और किन-किन प्रकृतियों को बांधता है ?

कितने काल स्थिति वाले कर्मों के साथ सम्यक्त्व को प्राप्त करता है, अथवा नहीं प्राप्त करता है ?

कितने काल के द्वारा मिथ्यात्व कर्म को कितने भागरूप करता है ?

और किन-किन क्षेत्र में किसके पास में कितने दर्शनमोहनीय कर्म को क्षपण करने वाले जीव के तथा सम्पूर्ण चारित्र को प्राप्त होने वाले जीव के मोहनीय कर्म की उपशामना तथा क्षपणा होती है ?।।१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सम्यक्त्व को उत्पन्न करने वाला मिथ्यादृष्टि जीव कितनी और कौन-कौन सी प्रकृतियों को बांधता है ? कितने काल की स्थिति वाले कर्मों के होने पर सम्यक्त्व को प्राप्त करता है, अथवा नहीं भी प्राप्त करता है ? कितने काल से अथवा कितने भागरूप मिथ्यात्व को करता है ?

किन-किन क्षेत्रों में किनके सान्निध्य में — पादमूल में कितनी दर्शनमोहनीय कर्म का क्षपण करते हुए जीव के अथवा सम्पूर्ण चारित्र को प्राप्त करते हुए जीव के मोहनीय कर्म की उपशामना अथवा क्षपणा होती है ? इस प्रकार ये चार प्रश्न अवतारित किये गये हैं।

यहाँ कोई प्रश्न करता है—

सत्प्ररूपणा आदि आठ अनुयोग द्वारों के समाप्त हो जाने पर पुनः यहाँ यह 'चूलिका' नाम से अधिकार क्यों कहा गया है ?

पूर्वोक्ताष्टानामनियोगद्वाराणां विषमप्रदेशविवृत्तिकरणार्थमयं चूलिकाधिकारः आगतः।

कश्चिदाशङ्कते — अष्टभिरनियोगद्वारैः प्ररूपितमेवार्थं किं चूलिका प्ररूपयति अन्यं वा ? यदि तमेवार्थं प्ररूपयति, तर्हि पुनरुक्तदोषः आगच्छति, यदि अन्यमर्थं प्ररूपयति, तर्हि चतुर्दश जीवसमास प्रतिबद्धमर्थं प्ररूपयति, अप्रतिबद्धं वा ?

प्रथमविकल्पे “चोदसणहं जीवसमासाणं परूवणट्टदाए तत्थ इमाणि अट्ट चेव अणियोगद्वाराणि णादव्वादि भवन्ति” इति एतस्य सूत्रस्य अवधारणपदस्य एवकारस्य विफलत्वं प्रसज्यते ? किंच, चूलिका-संज्ञितस्य चतुर्दशजीवसमासप्रतिबद्धार्थप्ररूपयतः नवमस्य अनियोगद्वारस्योपलंभात्। द्वितीयविकल्पे जीवस्थानस्य पृथग्भूतोऽयं चूलिकानामाधिकारो भवेत्, चतुर्दशजीवसमासप्रतिबद्धार्थे अकथयतः जीवस्थानव्यपदेशविरोधात् ?

अत्र परिहरति — न तावत् पुनरुक्तदोषः, प्रथमपक्षे त्वया कथितः, यत् अष्टानियोगद्वारैः अप्ररूपितस्य तत्र उक्तार्थनिश्चयजननस्यार्थस्य ततः कथंचित् पृथग्भूतस्य तैश्चैव सूचितस्य प्ररूपणात्।

न च एवकारपदस्य विफलत्वं, चूलिकायाः अष्टानियोगद्वारेषु अंतर्भावात्।

अस्याः चूलिकायाः अष्टानियोगद्वारेषु कथमन्तर्भावोऽस्ति ?

आचार्यदेव परिहार करते हैं —

पूर्वोक्त आठों अनुयोग द्वारों के विषम स्थलों के विवरण के लिये यह चूलिका नाम का अधिकार कहा जा रहा है।

पुनः कोई शंका करता है —

यह चूलिका अधिकार आठों अनुयोग द्वारों से प्ररूपित अर्थ को ही प्ररूपित करता है अथवा अन्य अर्थ को कहता है ? यदि उसी अर्थ को प्ररूपित करता है तब तो पुनरुक्त दोष आता है। यदि अन्य अर्थ को कहता है, तो उसमें चौदह जीवसमास से प्रतिबद्ध अर्थ का निरूपण करता है या अप्रतिबद्ध अर्थ को कहता है ?

यदि प्रथम विकल्प लेते हैं तो — ‘चौदह जीव समासों के प्ररूपण करने के लिये उस विषय में ये आठ ही अनुयोग द्वार जानने योग्य हैं’। इस प्रकार के इस अवधारणरूप एवकार पद को विफलता प्राप्त होती है, क्योंकि चतुर्दश जीवसमास में प्रतिबद्ध अर्थ का प्ररूपण करने वाला ‘चूलिका’ नाम से यह नवमां अनुयोगद्वार पाया जा रहा है। द्वितीय विकल्प के माने जाने पर ‘चूलिका’ नाम का यह अधिकार जीवस्थान से पृथग्भूत हो जावेगा, क्योंकि चतुर्दश जीवसमास से प्रतिबद्ध अर्थों को नहीं कहने वाले अधिकार के ‘जीवस्थान’ इस संज्ञा का विरोध है ?

यहाँ तक शंकाकार ने अपना पक्ष रखा है।

तब आचार्यदेव उनका समाधान करते हैं —

प्रथम पक्ष में आपके द्वारा कथित पुनरुक्त दोष नहीं आता है, क्योंकि, आठों अनुयोग द्वारों से नहीं प्ररूपित किये गये तथा वहाँ पर कहे गये अर्थ के निश्चय उत्पन्न करने वाले और जीवस्थान से ‘कथंचित्’ पृथग्भूत तथा उन आठों अनुयोग द्वारों से ही सूचित अर्थ का इस ‘चूलिका’ नामक अधिकार में प्ररूपण किया गया है।

द्वितीय पक्ष के अन्तर्गत प्रथम पक्ष में बतलायी गई ‘एवकार’ पद की विफलता भी नहीं आती है, क्योंकि चूलिका का आठों अनुयोग द्वारों में अंतर्भाव हो जाता है।

शंका — चूलिका का आठों अनुयोग द्वारों में कैसे अन्तर्भाव होता है ?

तदेव कथ्यते, क्षेत्र-काल-अन्तरप्ररूपणाभिः गत्यागतीनामा चूलिका सूचिता भवति। सापि गत्यागतीचूलिका प्रकृतिसमुत्कीर्तनं स्थानसमुत्कीर्तनं च सूचयति, बंधेन बिना सप्तविधपरिवर्तेशु परिवर्तनानुपपत्तेः। प्रकृतिस्थानसमुत्कीर्तनाभ्यां जघन्योत्कृष्टस्थिती सूचिते स्तः, सकषायजीवस्य स्थितिबंधेन बिना प्रकृतिबन्धानुपपत्तेः। कालप्ररूपणान्तर्गतकथितेन “अर्द्धपोगलपरियट्टं देसूणमिदि” वचनेन प्रथमसम्यक्त्वग्रहणं सूचितं, अन्यथा देशोनार्द्धपुद्गलपरिवर्तनमात्रमिथ्यात्वस्थितेः संभवाभावात्।

तेनापि प्रथमसम्यक्त्वग्रहणेन त्रयो महादण्डकाः प्रथमसम्यक्त्वग्रहणयोग्यक्षेत्रेन्द्रिय-त्रिविधकरणप्राप्ति-पर्याप्त-स्थितिखण्ड-अनुभागखण्डादयः सूचिताः भवन्ति। एतेनैव मोक्षोऽपि सूचितः।

कुतः?

अर्द्धपुद्गलपरिवर्तानुपपत्तिरि आलीढसम्यक्त्वानां संसाराभावात्। तेनापि मोक्षेण दर्शनमोहनीय-चारित्रमोहनीयक्षपणविधानं तद्योग्य क्षेत्र-गति-करण-स्थितयश्च सूचिता भवन्ति।

न च तेषामष्टानियोगद्वारेषु निर्णयः कृतः, तत्र निर्णये क्रियमाणे शिष्याणां मतिव्याकुलत्वप्रसंगात्।

यत् त्वया द्वितीयविकल्पः कथितः, चूलिका जीवस्थानाम् पृथग्भूतमर्थं कथयति किं। तद्विकल्पोऽस्माकं अनभ्युपगमात्। अतः एतज्ज्ञातव्यं अयं चूलिकानामा नवमोऽधिकारः कथंचित् अष्टानियोगद्वारेभ्यः पृथग्भूतः अस्ति तत्राकथितार्थस्य प्ररूपणात्, कथंचिदपृथग्भूतोऽस्ति तेषु अनियोगद्वारेषु सूचितार्थेषु निश्चयोत्पादकत्वात्।

समाधान — क्योंकि यह अधिकार आठों अनुयोग द्वारों से सूचित अर्थ का प्ररूपण करता है। इसे ही कहते हैं — क्षेत्रप्ररूपणा, कालप्ररूपणा और अन्तरप्ररूपणा, इन तीन अनुयोग द्वारों से गति-आगति नाम की चूलिका सूचित की गई है। वह गति-आगति चूलिका भी प्रकृतिसमुत्कीर्तन और स्थानसमुत्कीर्तन इन दो अधिकारों को सूचित करती है, क्योंकि, कर्मबन्ध के बिना सात प्रकार के परिवर्तनों में परिभ्रमण हो नहीं सकता। प्रकृतिसमुत्कीर्तन और स्थानसमुत्कीर्तन के द्वारा कर्मों की जघन्य स्थिति और उत्कृष्टस्थिति इन दो चूलिकाओं को कहा गया है, क्योंकि कषायसहित जीव के स्थितिबंध के बिना प्रकृतिबंध नहीं हो सकता। कालप्ररूपणा में कहे गये ‘देशोन अर्द्धपुद्गल परिवर्तन’ इस वचन से प्रथम सम्यक्त्व का ग्रहण सूचित किया गया है। यदि ऐसा न माना जावे तो देशोन — कुछ कर्म अर्द्धपुद्गल परिवर्तन मात्र मिथ्यात्व की स्थिति का होना संभव नहीं है।

उस प्रथम सम्यक्त्व ग्रहण के द्वारा भी तीन महादण्डक, प्रथम सम्यक्त्व ग्रहण करने के योग्य क्षेत्र, इन्द्रिय, त्रिविधकरण की प्राप्ति, पर्याप्तकपना, स्थितिखण्ड और अनुभागखण्ड आदिक सूचित किये गये हैं। इसी से मोक्ष भी सूचित किया गया है। क्योंकि सम्यक्त्व ग्रहण करने वालों के अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल से ऊपर संसार का अभाव हो जाता है। उस मोक्ष के द्वारा भी दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय कर्म के क्षपण का विधान, उसके योग्य क्षेत्र, गति, करण और स्थितियाँ सूचित की गई हैं।

इन सभी विषयों का उन आठ अनुयोग द्वारों में निर्णय नहीं किया गया है, क्योंकि वहाँ उन सबका निर्णय करने पर शिष्यों के बुद्धिव्याकुलता का प्रसंग प्राप्त होता।

जो आपने दूसरा विकल्प कहा है कि क्या यह चूलिका जीवस्थान से पृथग्भूत अर्थ को कहती है ?

सो यह दूसरा विकल्प भी हमने स्वीकार नहीं किया है, क्योंकि यह चूलिका जीवस्थान से पृथग्भूत नहीं है।

इसलिये यह चूलिका नाम का नवमां अधिकार कथंचित् — किसी अपेक्षा से आठ अनुयोग द्वारों से पृथग्भूत — भिन्न है, क्योंकि उसमें नहीं कहे गये अर्थ का प्ररूपण करता है। कथंचित् — किसी अपेक्षा से

अधुना चूलिकायाः भेदो निगद्यते — सापि चूलिका सामान्यापेक्षया एकविधा भवति। पर्यायार्थिक-नयापेक्षया नवविधा भवति।

सूत्रे यानि पदानि आगतानि तेषां विवरणं क्रियते तेषु वा नवविधा चूलिकाः कथं गर्भिताः सन्ति, इति सूचयन्ति श्रीवीरसेनाचार्यदेवाः —

तं जहा — ‘कदि पगडीओ बंधदि’ अस्मिन् पदे प्रकृति-स्थानसमुत्कीर्तनसंज्ञिते द्वे चूलिके भवतः। ‘काओ पयडीओ बंधदि’ अस्मिन् पदे प्रथम-द्वितीय-तृतीयदण्डकसंज्ञिताः तिस्रः चूलिकाः स्थिताः। ‘केवडिकालट्टिदिहहि कम्मेहि सम्मत्तं लभदि वा ण लभदि वा’ अस्मिन् पदे जघन्योत्कृष्टस्थितिसंज्ञिते द्वे चूलिके अवस्थिते। ‘केवचिरेण कालेण कदि भाए वा करेदि मिच्छत्तं, उवसामणा वा खवणा वा केसु व खेत्तेसु कस्स व मूले, केवडियं वा दंसणमोहणीयं कम्मं खवेत्तस्स चारित्तं वा संपुण्णं पडिवज्जंतस्स’ एतेषु पदेषु अष्टमी चूलिका गर्भिता। ‘वा संपुण्णं’ इति ‘वा’ शब्दे गत्यागती नाम नवमी चूलिका सूचिता। एवं नवचूलिकाः भवन्ति।

आसु नवचूलिकासु तावत् प्रथमचूलिकायां षट्चत्वारिंशत्सूत्राणि। द्वितीयायां स्थानसमुत्कीर्तनचूलिकायां सप्तदशोत्तरशतसूत्राणि। प्रथममहादण्डकनामतृतीयचूलिकायां द्वे सूत्रे। द्वितीयमहादण्डकनामचतुर्थचूलिकायां द्वे सूत्रे। तृतीयमहादण्डकनामपंचमचूलिकायां द्वे सूत्रे। उत्कृष्टस्थितिबंधचूलिकायां षष्ठ्यां चतुश्चत्वारिंशत्सूत्राणि। जघन्यस्थितिबंधनामसप्तमचूलिकायां त्रिचत्वारिंशत्सूत्राणि। सम्यक्त्वोत्पत्तिनामाष्टमीचूलिकायां षोडशसूत्राणि।

अपृथग्भूत — अभिन्न है, क्योंकि उन अनियोग द्वारों में सूचित अर्थों में निश्चय को उत्पन्न करता है।

अब चूलिका के भेदों का वर्णन करते हैं —

वह चूलिका सामान्य की अपेक्षा से एक प्रकार की होती है और पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से नव प्रकार की है।

यहाँ सूत्र में जो पद आये हैं, उनका विवरण करते हैं, अथवा उनमें नव प्रकार की चूलिका कैसे गर्भित होती हैं ?

श्री वीरसेनाचार्य देव इसे ही सूचित करते हैं —

वह इस प्रकार है — ‘कितनी प्रकृतियाँ बांधता है ?’ इस पद में प्रकृतिसमुत्कीर्तन और स्थानसमुत्कीर्तन नाम की दो चूलिकायें आई हैं। ‘किन प्रकृतियों को बांधता है ?’ इस पद में प्रथम, द्वितीय और तृतीय दण्डक वाली तीन चूलिकायें अवस्थित हैं। ‘कितने काल वाले कर्मों के द्वारा सम्यक्त्व को प्राप्त करता है, अथवा नहीं प्राप्त करता है।’ इस पद में जघन्य स्थिति और उत्कृष्ट स्थिति नाम की दो चूलिकायें अवस्थित हैं। ‘कितने काल के द्वारा मिथ्यात्व कर्म को कितने भागरूप करता है ? और किन क्षेत्रों में तथा किनके पास में कितने दर्शनमोहनीय कर्म को क्षपण करने वाले और सम्पूर्ण चारित्र को प्राप्त करने वाले जीव के मोहनीय कर्म की उपशामना तथा क्षपणा होती है ? इन पदों में आठवीं चूलिका आई है तथा ‘वा संपुण्णं’ इस वाक्य में आये हुये ‘वा’ शब्द में गति-आगति नाम की नवमी चूलिका विवक्षित है। इस प्रकार पूर्वोक्त चूलिकायें नव होती हैं।

इन नव चूलिकाओं में सर्वप्रथम पहली चूलिका में छयालीस सूत्र हैं। दूसरी स्थानसमुत्कीर्तन चूलिका में एक सौ सत्रह सूत्र हैं। प्रथम महादण्डक नाम की तीसरी चूलिका में दो सूत्र हैं। द्वितीय महादण्डक नाम की चौथी चूलिका में दो सूत्र हैं। तृतीय महादण्डक नाम की पांचवीं चूलिका में दो सूत्र हैं। उत्कृष्ट स्थितिबन्ध नाम की छठी चूलिका में चवालीस सूत्र हैं। जघन्य स्थितिबंध नाम की सातवीं चूलिका में तेतालीस सूत्र हैं।

गत्यागतीनामनवमीचूलिकायां त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशतसूत्राणि वक्ष्यन्ते इति।

इयं नवविधा चूलिका। अवान्तरभेदेन अनेकविधा वा ज्ञातव्या।

अधुना नवानां चूलिकानामर्थप्ररूपणार्थं सूत्रमवतरति—

कदि काओ पगडीओ बंधदि त्ति जं पदं तस्स विहासा॥२॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—‘जहा उद्देशो तथा णिद्देशो’ इत्यस्मात् न्यायात् प्रथमं उद्दिष्टस्य प्रथमं चैव निर्देशो भवति इति ज्ञायते। ततो न प्रारभनीयमिदं सूत्रम् ?

नैष दोषः, एतस्मिन् पदे इमाः चूलिकाः अवस्थिताः, इमाश्च न स्थिताः इति ज्ञापनार्थं, ‘यथा उद्देशः तथा निर्देशः’ इति न्यायस्यास्तित्वप्ररूपणार्थं च अस्य सूत्रस्यारंभोऽभवत्। विविधा भाषा विभाषा, प्ररूपणा निरूपणा व्याख्यानमिति एकार्थः।

संप्रति अस्याधिकारस्य प्रतिज्ञापनार्थं सूत्रमवतरति—

इदाणिं पगडिसमुक्कित्तणं कस्सामो॥३॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—प्रकृतीनां समुत्कीर्तनं प्रकृतिसमुत्कीर्तनं, प्रकृतिस्वरूपनिरूपणमित्यर्थः। इदानीं—संप्रति, ‘कस्सामो’ भणिष्यामः इति एकार्थः।

सम्यक्त्वोत्पत्ति नाम की आठवीं चूलिका में सोलह सूत्र हैं। गति-आगति नाम की नवमी चूलिका में दो सौ तेतालीस सूत्र हैं। ये नव प्रकार की चूलिका इस ग्रन्थ में कही जायेंगी अथवा अवान्तर भेद से अनेक भेद भी जानना चाहिये।

अब नवों चूलिकाओं के अर्थ का प्ररूपण करने के लिये सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

‘कितनी और किन प्रकृतियों को बांधते हैं’ यह जो पूर्व सूत्र में कथित पद है उसका व्याख्यान किया जाता है॥२॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जिस प्रकार का उद्देश्य होता है उसी प्रकार से निर्देश किया जाता है, इस न्याय से पहले उद्दिष्ट का पहले निर्देश होता है यह बात जानी जाती है। अतएव यह सूत्र आरम्भ नहीं करना चाहिये ?

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि इस पद में ये चूलिकायें अवस्थित हैं और ये चूलिकायें अवस्थित नहीं हैं, इस विषय का ज्ञान कराने के लिये तथा ‘जिस प्रकार से उद्देश्य होता है, उसी प्रकार से निर्देश होता है’ इस न्याय का अस्तित्व प्ररूपण करने के लिये इस सूत्र को प्रारम्भ किया गया है।

विभाषा—विविध प्रकार के भाषण—कथन करने को विभाषा कहते हैं। विभाषा, प्ररूपणा, निरूपणा और व्याख्यान, ये सब एकार्थवाची नाम हैं।

अब इस अधिकार का प्रतिज्ञासूत्र अवतार लेता है—

सूत्रार्थ—

अब प्रकृतियों के स्वरूप का निरूपण करेंगे॥३॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—प्रकृतियों का समुत्कीर्तन प्रकृतिसमुत्कीर्तन है अर्थात् प्रकृतियों के स्वरूप का निरूपण करना, ऐसा अर्थ होता है। अब—इस समय सत्प्ररूपणा आदि आठों प्ररूपणाओं के

प्रथमं प्रकृतिसमुत्कीर्तनं चैव किमर्थं उच्यते ?

नैतद् वक्तव्यं, प्रकृतेः अनवगतेः स्थानसमुत्कीर्तनादीनामवगमोपायाभावात्, न चावयविनि अनवगते अवयवाः अवगंतुं शक्यन्ते, अन्यत्र तथानुपलंभात्। तस्मात् प्रकृतिसमुत्कीर्तनमेव पूर्वं प्ररूपयिष्यते। तदपि प्रकृतिसमुत्कीर्तनं मूलोत्तरप्रकृतिसमुत्कीर्तनभेदेनद्विविधं भवति।

संगृहीताशेषविकल्पा द्रव्यार्थिकनयनिबंधना मूलप्रकृतिः नाम। पृथक्-पृथक् अवयवा पर्यायार्थिक-नयनिबंधना उत्तरप्रकृतिर्नाम। अत्र मूलप्रकृतिसमुत्कीर्तनं प्रथमं क्रियते, संगृहीताशेषोत्तरप्रकृतेः मूलप्रकृतेः प्ररूपितायाः उत्तरप्रकृतिप्ररूपणानुपपत्तेः।

एवं प्रथमस्थले प्रकृतिसमुत्कीर्तनप्रतिज्ञाकथनरूपेण त्रीणि सूत्राणि गतानि।

संप्रति प्रकृतेः अष्टभेदप्ररूपणाय नवसूत्राण्यवतार्यन्ते —

तं जहा॥४॥

णाणावरणीयं॥५॥

दंसणावरणीयं॥६॥

वेदणीयं॥७॥

अनन्तर 'प्रकृतिसमुत्कीर्तन' नाम की चूलिका को कहेंगे। यहाँ 'कस्सामो — भणिष्यामः' ये दोनों पर्यायवाची हैं — एकार्थवाची हैं।

शंका — प्रथम ही प्रकृतिसमुत्कीर्तन को किसलिये कहते हैं ?

समाधान — ऐसा नहीं कहना, क्योंकि, प्रकृतियों को जाने बिना स्थानसमुत्कीर्तन आदि को जानने का कोई उपाय नहीं है। दूसरी बात यह है कि अवयवी को जाने बिना अवयव नहीं जाने जा सकते हैं, क्योंकि अन्यत्र वैसा पाया नहीं जाता। इसलिये प्रकृतिसमुत्कीर्तन को ही पहले कहेंगे। वह प्रकृति समुत्कीर्तन भी मूलप्रकृतिसमुत्कीर्तन और उत्तरप्रकृतिसमुत्कीर्तन के भेद से दो प्रकार का है।

अपने अन्तर्गत समस्त भेदों का संग्रह करने वाली, द्रव्यार्थिक नय निमित्तक प्रकृति का नाम मूल प्रकृति है। पृथक्-पृथक् अवयव वाली तथा पर्यायार्थिक नय निमित्तक प्रकृति को उत्तर प्रकृति कहते हैं।

यहाँ मूलप्रकृति समुत्कीर्तन को पहले कहते हैं, क्योंकि समस्त उत्तरप्रकृतियों का संग्रह करने वाली, मूलप्रकृति के प्ररूपण किये जाने पर ही उत्तरप्रकृतियों की प्ररूपणा बन सकती है, अन्यथा नहीं।

इस प्रकार प्रथम स्थल में प्रकृतिसमुत्कीर्तन के कथन की प्रतिज्ञा रूप से तीन सूत्र पूर्ण हुए हैं।

अब प्रकृति के आठ भेदों को प्ररूपित करने के लिये नव सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

वह प्रकृति समुत्कीर्तन किस प्रकार है ?॥४॥

ज्ञानावरणीय कर्म है॥५॥

दर्शनावरणीय कर्म है॥६॥

वेदनीय कर्म है॥७॥

मोहणीयं॥८॥

आउअं॥९॥

णामं॥१०॥

गोदं॥११॥

अंतरायं चेदि॥१२॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — ‘तं जहा’ इदं पृच्छासूत्रं अस्ति। सूत्रकर्तुं प्रमाणत्वप्ररूपणात् सूत्रस्य प्रमाणत्वप्ररूपणार्थं इदं सूत्रं उक्तं भवति।

ज्ञानमवबोधः अवगमः परिच्छेदः इति एकार्थः। तज्ज्ञानमावारयति इति ज्ञानावरणीयं कर्म भवति। अस्य ज्ञानविनाशकं नाम किं न क्रियते ?

न, जीवलक्षणयोः ज्ञानदर्शनयोः विनाशाभावात्। विनाशे वा जीवस्यापि विनाशो भवेत्, लक्षणरहित-लक्ष्यानुपलंभात्।

ज्ञानस्य विनाशाभावे सर्वजीवानां ज्ञानास्तित्वं प्रसज्यते इति चेत् ?

भवतु नाम, विरोधाभावात्। ‘अक्खरस्स अणंतभाओ णिच्चुग्घाडियओ’ इति सूत्रानुकूलत्वाद्वा।

तर्हि सर्वावयवैः ज्ञानस्योपलंभो भवतु ?

मोहनीय कर्म है॥८॥

आयु कर्म है॥९॥

नाम कर्म है॥१०॥

गोत्र कर्म है॥११॥

अन्तराय कर्म है॥१२॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — ‘तं जहा’ यह पृच्छासूत्र है। सूत्रकर्ता की प्रमाणता के प्ररूपण द्वारा सूत्र की प्रमाणता का निरूपण करने के लिये यह ‘पृच्छासूत्र’ कहा गया है।

ज्ञान, अवबोध, अवगम और परिच्छेद ये सब एकार्थवाची नाम हैं। उस ज्ञान का जो आवरण करता है — ढकता है, वह ज्ञानावरण कर्म है।

शंका — इसका ‘ज्ञानावरण’ कर्म का ज्ञानविनाशक ऐसा नाम क्यों नहीं कहते ?

समाधान — नहीं, क्योंकि जीव के लक्षणस्वरूप ज्ञान और दर्शन का विनाश नहीं होता है। यदि ज्ञान और दर्शन का विनाश हो जाए, तो जीव का भी विनाश हो जायेगा, क्योंकि लक्षण से रहित लक्ष्य पाया नहीं जाता है।

शंका — ज्ञान का विनाश नहीं होने पर तो सभी जीवों के ज्ञान का अस्तित्व प्राप्त होता है ?

समाधान — यदि सभी जीवों के ज्ञान का अस्तित्व प्राप्त होता है तो होने दो, उसमें कोई विरोध नहीं है अथवा ‘अक्षर का अनन्तवां भाग ज्ञान नित्य ही उद्घाटित — आवरणरहित रहता है’ इस सूत्र के अनुकूल होने से सभी जीवों के ज्ञान का अस्तित्व सिद्ध है।

शंका — यदि सर्व जीवों के ज्ञान का अस्तित्व सिद्ध है, तब तो सर्व अवयवों के साथ ज्ञान की

इति वक्तुं न युक्तं, आवरित ज्ञानभागानामुपलंभविरोधात्।

पुनरपि कश्चिदाह — सावरणे जीवे आवरितज्ञानभागाः किं सन्ति, आहोस्विद् न सन्ति। यदि सन्ति न ते आवरिताः, सर्वात्मना विद्यमानानामावरितत्वविरोधात्। अथ न संति, तर्ह्यपि नावरणं, आत्रियमाणाणामभावे आवरणस्यास्तित्वविरोधात् इति ?

अस्य परिहारः उच्यते — द्रव्यार्थिकनये अवलम्ब्यमाने आवरितज्ञानभागाः सावरणेऽपि जीवे सन्ति, जीवद्रव्यात् पृथग्भूतज्ञानाभावात्, विद्यमानज्ञानभागात् आवरितज्ञानभागानामभेदाद्वा।

आवरितानावरितयोः कथमेकत्वमिति चेत् ?

नैतद् वक्तव्यं, राहुकेतुभ्यां मेघैश्च आवरितानावरितानां सूर्यचन्द्रमण्डलभागानामेकत्वोपलंभात्। एवं सति आत्रियमाणावारकभावौ युज्येते, अन्यथा तयोरनुपलंभप्रसंगात्।

पर्यायार्थिकनये अवलम्ब्यमाने आत्रियमाणज्ञानभागाः सावरणे जीवे न सन्ति, तेषां तदुपलंभाभावात्।

न चेदं सूत्रं पर्यायार्थिकनयमवलम्ब्य स्थितं, तदात्रियमाणावारकव्यवहाराभावात्, किन्तु द्रव्यार्थिकनयमाश्रित्य सूत्रमिदं अवस्थितं, तेनात्र आत्रियमाणावारकभावो न विरुध्यते।

किमर्थं ज्ञानमात्रियमाणं ?

उपलब्धि होनी चाहिये ?

समाधान — यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि आवरण किये गये ज्ञान के भागों की उपलब्धि होने में विरोध है।

शंका — आवरणयुक्त जीव में आवरण किये गये — ढके हुये ज्ञान के भाग क्या हैं ? अथवा नहीं हैं ? यदि हैं, तो वे आवृत — ढके हुये नहीं कहे जा सकते, क्योंकि सम्पूर्ण रूप से विद्यमान भागों के आवरण मानने में विरोध आता है। यदि नहीं है, तो उनका आवरण नहीं माना जा सकता है, क्योंकि आत्रियमाण — आवरण किये जाने योग्य ज्ञान के अभाव में आवरण के अस्तित्व का विरोध है ?

समाधान — आचार्यदेव इसका परिहार करते हैं — द्रव्यार्थिक नय का अवलम्बन लेने पर आवरण किये गये ज्ञान के अंश सावरण जीव में भी होते हैं, क्योंकि जीव से पृथग्भूत ज्ञान का अभाव है, अथवा विद्यमान ज्ञान के अंश से आवरण किये गये ज्ञान के अंशों का कोई भेद नहीं है।

शंका — ज्ञान के आवरण किये गये और आवरण नहीं किये गये अंशों की एकता कैसे हो सकती है ?

समाधान — ऐसा नहीं कहना, क्योंकि, राहु और केतु से तथा मेघों से सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डल के आवरित और अनावरित भावों के एकता पायी जाती है।

इस प्रकार उक्त व्यवस्था के होने पर आत्रियमाण और आवारकभाव बन जाता है अर्थात् ज्ञान तो आवरण करने योग्य और कर्मपुद्गल आवरण करने वाले सिद्ध हो जाते हैं। यदि उक्त व्यवस्था न मानी जाए तो उसके अनुपलंभ का प्रसंग प्राप्त होगा किन्तु पर्यायार्थिक नय का अवलम्बन लेने पर आत्रियमाण ज्ञान भाग सावरण जीव में नहीं होते, क्योंकि वे ज्ञानभाग उक्त जीव में नहीं पाये जाते।

दूसरी बात यह है कि यह सूत्र पर्यायार्थिक नय का अवलम्बन लेकर स्थित नहीं है, क्योंकि उसमें आत्रियमाण और आवारक, इन दोनों के व्यवहार का अभाव है किन्तु यह सूत्र द्रव्यार्थिक नय का आश्रय लेकर अवस्थित है इसलिये यहाँ आत्रियमाण और आवारक भाव विरुद्ध नहीं है।

शंका — ज्ञान को आत्रियमाण — ढक जाने योग्य क्यों कहा ?

उच्यते — आत्मनो विरोधिद्रव्यसन्निधाने सत्यपि यन्निर्मूलतो न विनश्यति, तदात्रियमाणं, इतरच्चावारकं। न च ज्ञानस्य विरोधिकर्मद्रव्यसन्निधाने सत्यपि निर्मूलविनाशोऽस्ति, जीवविनाशप्रसंगात्। ततो ज्ञानमात्रियमाणं कर्मद्रव्यं चावारकमिति उक्तं।

कथं पुद्गलेन जीवात् पृथग्भूतेन जीवलक्षणं ज्ञानं विनाश्यते ?

नैषदोषः, जीवात् पृथग्भूतानां घट-पट-स्तम्भ-अंधकारादीनां जीवलक्षणज्ञानविनाशकानामुपलंभात्। ज्ञानावारकः पुद्गलस्कंधः प्रवाहस्वरूपेण अनादिबंधनबद्धो ज्ञानावरणीयं कर्म इति भण्यते।

यत्कर्म आत्मनः दर्शनगुणमावृणोति तद्दर्शनावरणीयं।

आत्मविषयः उपयोगो दर्शनं। न ज्ञानभेदं, तस्य बाह्यार्थविषयत्वात्। न च बाह्यान्तरंगविषययोरेकत्वं, विरोधात्। न च ज्ञानमेव द्विशक्तिसहितं, पर्यायस्य पर्यायाभावात्। ततो 'ज्ञानदर्शनलक्षणो जीवः स्वीकर्तव्यः'। इदं च दर्शनमावर्त्य, विरोधिद्रव्यसन्निधाने सत्यपि एतस्य निर्मूलतः विनाशाभावात्। भावे वा जीवस्यापि विनाशः प्रसज्यते, लक्षणविनाशे लक्ष्यस्यावस्थानविरोधात्। न च ज्ञानदर्शनयोः जीवलक्षणत्वमसिद्धं, द्वयोरभावे जीवद्रव्यस्यैवाभावप्रसंगात्।

भवतु चेत् ?

न, प्रमाणाभावे प्रमेयानां शेषद्रव्याणामपि अभावापत्तेः।

समाधान — इसका स्पष्टीकरण करते हैं — अपने विरोधी द्रव्य के निकट होने पर भी जो जड़मूल से नष्ट नहीं होता, वह 'आत्रियमाण' कहलाता है और आवरण करने वाले विरोधी द्रव्य को 'आवारक' कहते हैं। ज्ञान के विरोधी कर्म द्रव्य के सन्निकट होने पर भी ज्ञान का निर्मूल विनाश नहीं होता है क्योंकि वैसा मानने पर तो जीव के ही विनाश का प्रसंग आ जावेगा, इसलिये ज्ञान तो आत्रियमाण है और कर्मद्रव्य आवारक है, ऐसा कहा गया है।

शंका — जीव से भिन्न ऐसे पुद्गल के द्वारा जीव का जो लक्षण है ऐसा ज्ञान कैसे नष्ट हो सकता है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि जीव द्रव्य से भिन्न ऐसे घट, पट, स्तम्भ और अंधकार आदि पदार्थ जीव के लक्षणस्वरूप ज्ञान के विनाशक देखे जाते हैं। अतः ज्ञान पर आवरण करने वाला, प्रवाहरूप से चला आया, अनादिकाल से बंधनबद्ध ऐसा जो पुद्गलस्कंध है, वही 'ज्ञानावरणीयकर्म' इस नाम से कहा जाता है।

जो कर्म आत्मा के दर्शनगुण को ढकता है वह 'दर्शनावरणीय कर्म' है।

आत्मा को विषय करने वाला उपयोग 'दर्शन' कहलाता है। यह दर्शन ज्ञान का भेद नहीं है, क्योंकि ज्ञान बाह्य पदार्थों को विषय करता है। बाह्य और अन्तरंग को विषय करने वाले ज्ञान और दर्शन में एकता भी नहीं है, क्योंकि वैसा मानने में विरोध है। ज्ञान को ही दो शक्तियों से सहित नहीं माना जा सकता, क्योंकि पर्याय में पर्याय का अभाव है। इसलिये ज्ञान-दर्शन लक्षणस्वरूप जीव को मानना चाहिये।

यह दर्शन ढक जाने योग्य है, क्योंकि विरोधी द्रव्य के सन्निकट होने पर भी इस दर्शन का निर्मूल विनाश नहीं होता है। यदि ऐसा — निर्मूल विनाश मान लें, तो जीव के भी विनाश का प्रसंग आ जावेगा, क्योंकि लक्षण के विनाश होने पर लक्ष्य के अवस्थान का विरोध है। ज्ञान और दर्शन के जीव का लक्षणपना असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि इन ज्ञान और दर्शन के अभाव में जीवद्रव्य के ही अभाव का प्रसंग आ जाता है।

जीव द्रव्य का अभाव हो जाता है तो हो जाने दो ?

उक्तं चाप्यन्यत्र — ‘एकको मे सासदो अप्पा, णाणदंसणलक्खणो।

सेसा हु बाहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा।।

एतद् दर्शनमावारयति इति दर्शनावरणीयं। यः पुद्गलस्कंधः मिथ्यात्वासंयमकषाययोगैः कर्मस्वरूपेण परिणतो जीवसमवेतो दर्शनगुणप्रतिबंधकः स दर्शनावरणीयं इति गृहीतव्यः।

वेद्यते इति वेदनीयम्।

एतद्व्युत्पत्तेः सर्वकर्मणां वेदनीयत्वं प्रसज्यते ?

नैष दोषः, रूढिवशेन कुशलशब्द इव अर्पितपुद्गलपुंजे चैव वेदनीय शब्दप्रवृत्तेः अथवा वेदयतीति वेदनीयं। जीवस्य सुखदुःखानुभवननिबंधनः पुद्गलस्कंधः मिथ्यात्वादिनिमित्तवशेन कर्मपर्यायपरिणतः जीवसमवेतः वेदनीयमिति कथ्यते।

सुखदुःखकार्यान्यथानुपपत्तेः तस्यास्तित्वं ज्ञायते। न कार्यं कारणनिरपेक्षमुत्पद्यते, अन्यत्र तथानुपलंभात्। न जीवो दुःखस्वभावो, जीवलक्षणज्ञानदर्शनविरोधिदुःखस्य जीवस्वभावत्वविरोधात्।

ऐसा नहीं कहना, क्योंकि प्रमाण के अभाव में प्रमेय — जानने योग्य शेष सभी द्रव्यों के भी अभाव का प्रसंग आ जावेगा, किन्तु ऐसा है नहीं। कहा भी है —

मेरा आत्मा एक है, शाश्वत है और वह ज्ञान-दर्शन लक्षण वाला है, शेष सभी भाव — पदार्थ संयोग लक्षण वाले हैं, अतः वे बाह्य हैं।

जो ऐसे दर्शन का आवरण करता है — ढकता है वह ‘दर्शनावरणीय कर्म’ है। जो पुद्गल स्कंध मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग के द्वारा कर्मस्वरूप से परिणत होकर जीव से समवेत — जीव के साथ एकमेक होकर दर्शनगुण का प्रतिबन्ध करने वाले हैं वे ‘दर्शनावरणीय’ हैं ऐसा ग्रहण करना चाहिये।

वेदनीय कर्म —

जो वेदन — अनुभवन किया जाता है वह ‘वेदनीय कर्म’ है।

शंका — इस व्युत्पत्ति से तो सभी कर्मों को ‘वेदनीयपने’ का प्रसंग आ जावेगा ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि रूढ़ि के वश से कुशलशब्द के समान विवक्षित पुद्गलपुंज — पुद्गल समूह में ही ‘वेदनीय’ शब्द की प्रवृत्ति पायी जाती है। अथवा जो वेदन कराता है वह वेदनीय कर्म है। जीव के सुख-दुःख के अनुभवन का कारण, मिथ्यात्व आदि के निमित्त से कर्म पर्याय से परिणत और जीव से समवेत — जीव के साथ एक क्षेत्रावगाहरूप सम्बन्ध को प्राप्त ऐसा जो पुद्गलस्कंध है वह ‘वेदनीय’ इस नाम से जाना जाता है।

सुख और दुःख कार्यों की अन्यथानुपपत्ति होने से — सुख-दुःख कार्य अन्य किसी प्रकार से हो नहीं सकते, अतः इस वेदनीय कर्म का अस्तित्व जाना जाता है, क्योंकि कोई भी कार्य कारण के बिना हो नहीं सकता क्योंकि अन्यत्र — कहीं पर भी वैसा देखा नहीं जाता — कोई भी कार्य कारण के बिना कहीं पर भी नहीं देखे जाते हैं।

जीव दुःखस्वभाव वाला नहीं है क्योंकि जीव के लक्षण जो ज्ञान और दर्शन हैं, उनका विरोधी जो दुःख है, उसके जीव के स्वभावत्व का विरोध है।

मुह्यते इति मोहनीयम्।

एवं सति जीवस्य मोहनीयत्वं प्रसज्यते ?

नैतद् आशङ्कनीयं, जीवाद् अभिन्ने पुद्गलद्रव्ये कर्मसंज्ञिते उपचारेण कर्तृत्वमारोप्य तथा उक्तेः।

अथवा मोहयति इति मोहनीयम्।

एवं सति मदिराकलत्रादीनामपि मोहनीयत्वं प्रसज्यते इति चेत् ?

न, कर्मद्रव्यमोहनीयस्यात्राधिकारात्। न कर्माधिकारे सुराकलत्रादीनां संभवोऽस्ति।

किं कर्म ?

पुद्गलद्रव्यं। यदि एवं, तर्हि सर्वपुद्गलानां कर्मत्वं प्रसज्यते ?

न, मिथ्यात्वादिप्रत्ययैः जीवे संबद्धानां जातिजरामरणकार्यकरणे समर्थानां पुद्गलानामेव कर्मत्वाभ्युपगमात्।

उक्तं—

जीवपरिणामहेदू, कम्मत्तं पोग्गला परिणमंति।

ण य णाणपरिणदो पुण, जीवो कम्मं समादियदि।।

अतो मिथ्यात्वादिप्रत्ययैः क्रोधमानमायालोभादिकार्यकारित्वेन परिणताः पुद्गलाः जीवेन सह संबद्धा मोहनीयसंज्ञिता भवन्तीति उक्तं भवति।

मोहनीय कर्म—

जो मोहित किया जाता है, वह मोहनीय कर्म है।

ऐसा मानने पर तो जीव को मोहनीय कर्मपना प्राप्त हो जाता है ?

ऐसी आशङ्का नहीं करना, क्योंकि जीव से अभिन्न और 'कर्म' संज्ञा वाले पुद्गलद्रव्य में उपचार से कर्तृत्व का आरोपण करके उस प्रकार की व्युत्पत्ति की गई है।

अथवा, जो मोहित करता है वह मोहनीय कर्म है।

ऐसा मानने पर तो धतूरा, मदिरा और स्त्री आदि के भी मोहनीयकर्मपना प्राप्त हो जावेगा ?

ऐसा नहीं कहना, क्योंकि यहाँ कर्मद्रव्यस्वरूप जो मोहनीय कर्म है उसका अधिकार है, अतएव कर्म के अधिकार में धतूरा, मदिरा, भार्या आदि को मोहनीय कर्म मानना संभव नहीं है।

'कर्म' क्या है ?

पुद्गल द्रव्य कर्म है। यदि ऐसा है तो सभी पुद्गलों के कर्मपना प्राप्त हो जावेगा ?

ऐसा नहीं कहना, क्योंकि, मिथ्यात्व आदि बंध कारणों के द्वारा जीव में सम्बन्ध को प्राप्त एवं जन्म, जरा और मरण आदि कार्यों के करने में समर्थ ऐसे पुद्गलों के माना ही गया है।

कहा भी है— 'जीव के रागादि परिणामों के निमित्त से पुद्गल कर्मरूप परिणत होते हैं, किन्तु ज्ञान से परिणत हुये जीव कर्मों को प्राप्त नहीं करते हैं अर्थात् शुद्धोपयोग से परिणत निर्विकल्प समाधि में स्थित जीवों के कर्मों का आस्रव नहीं होता है।'

इसलिये मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगरूप प्रत्ययों के द्वारा क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कार्य करने की शक्ति से परिणत हुये पुद्गल जीव के साथ सम्बन्ध को प्राप्त होकर 'मोहनीय' इस नाम वाले हो जाते हैं, ऐसा इस कथन का सार है।

एति भवधारणं प्रति इत्यायुः। ये पुद्गलाः मिथ्यात्वादिकारणैः नरकादिभवधारणशक्तिपरिणताः जीवनिविष्टास्ते आयुःसंज्ञिताः भवन्ति।

अस्यायुषः अस्तित्वं कथमवगम्यते ?

देहस्थिति-अन्यथानुपपत्तेः गम्यते।

नाना मिणोति निर्वर्त्तयतीति नाम। ये पुद्गलाः शरीरसंस्थान-संहनन-वर्णगंधादिकार्यकारकाः जीवनिविष्टास्ते नामसंज्ञिताः भवन्तीति। तस्य नामकर्मणोऽस्तित्वं शरीर-संस्थान-वर्णादिकार्यभेदान्यथानुपपत्तेः अवगम्यते।

गमयत्युच्च-नीचकुलमिति गोत्रम्। उच्चनीचकुलोत्पादकः पुद्गलस्कंधः मिथ्यात्वादिप्रत्ययैर्जीवसंबद्धो गोत्रमिति उच्यते।

अन्तरमेति गच्छति द्वयोरित्यन्तरायः। दान-लाभ-भोगोपभोगादिषु विघ्नकरणक्षमः पुद्गलस्कंधः सकारणैः जीवसमवेतः अन्तरायमिति कथ्यते।

इयन्त्यश्चैव मूलप्रकृतयो भवन्तीति ज्ञापनार्थं अत्र सूत्रे 'इति' शब्दः प्रयुक्तोऽस्ति। अस्मिन् विषये

आयुर्कर्म —

अवधारण के प्रति जो जाता है, वह आयु कर्म है अर्थात् भव को प्राप्त कराता है वह आयु कर्म है। जो पुद्गल स्कन्ध मिथ्यात्व आदि बंध कारणों के द्वारा नरक आदि भव धारण करने की शक्ति से परिणत होकर जीव में सम्बन्ध को प्राप्त करते हैं — जीव में बंध जाते हैं, वे 'आयु' इस नाम से कहलाते हैं।

शंका — इस आयुर्कर्म का अस्तित्व कैसे जाना जाता है ?

समाधान — मनुष्य आदि शरीर की स्थिति अन्यथा हो नहीं सकती, इस अन्यथानुपपत्ति से आयुर्कर्म का अस्तित्व जाना जाता है।

नामकर्म —

जो नाना प्रकार की रचना निष्पन्न करता है, वह नामकर्म है। जो पुद्गल वर्गणायें शरीर, संस्थान, संहनन, वर्ण, गंध आदि कार्यों के करने वाले हैं एवं जीव में निविष्ट — संबद्ध हैं, वे 'नामकर्म' इस संज्ञा वाले होते हैं, यह उक्त कथन का तात्पर्य है।

शरीर, संस्थान, वर्ण आदि कार्यों के भेद अन्यथा हो नहीं सकते, इस अन्यथानुपपत्ति से ही नामकर्म का अस्तित्व जाना जाता है।

गोत्रकर्म —

जो उच्च और नीच कुल को प्राप्त कराता है, वह गोत्रकर्म है। मिथ्यात्व आदि बन्ध के कारणों द्वारा जीव के साथ सम्बन्ध को प्राप्त एवं उच्च और नीच कुलों में उत्पन्न कराने वाले पुद्गलस्कंध 'गोत्र' इस नाम से कहे जाते हैं।

अन्तराय कर्म —

जो दो पदार्थों के अन्तर — मध्य में आता है, वह अन्तराय कर्म है। दान, लाभ, भोग और उपभोग आदि के साथ सम्बन्ध को प्राप्त हुए पुद्गलस्कंध 'अंतराय' इस नाम से कहे जाते हैं।

उपयुक्तः श्लोकः कथ्यते —

हेतावेवम्प्रकारादौ व्यवच्छेदे विपर्यये।

प्रादुर्भावे समाप्तौ च इति शब्दं विदुर्बुधाः^१॥

अष्टावेव मूलप्रकृतयः, एतत्कुतो ज्ञायते ?

अष्टकर्मजनितकार्येभ्यः पृथग्भूतकार्यस्य अनुपलंभात्। एताभिरष्टभिः प्रकृतिभिः अनन्तान्तपरमाणु-समुदयसमागमेन उत्पन्नाभिः एकैकजीवप्रदेशे संबद्धान्तपरमाणुभिः अनादिस्वरूपेण संबद्धोऽमूर्त्तोऽपि मूर्त्तत्वमुपगतः आविद्धकुलालचक्रमिव सप्तसु संसारेषु जीवः संसरतीति गृहीतव्यं।

अत्र मेधाविजीवानुग्रहार्थं संग्रहनयमवलम्ब्य प्रकृतिसमुत्कीर्तनं कथितं। पुनः मंदबुद्धिजनानुग्रहार्थं व्यवहार-नयपर्यायमाश्रित्य आसां अष्टानां भेदाः कथयिष्यन्ते।

एवं द्वितीयस्थले अष्टविधमूलप्रकृतीनां कथनपरत्वेन नव सूत्राणि गतानि।

अधुना ज्ञानावरणीयस्य पंचभेदतल्लक्षणप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

णाणावरणीयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ॥१३॥

ये मूल प्रकृतियाँ इतनी ही — आठ ही हैं, इस बात को बतलाने के लिये सूत्र में 'इति' शब्द का प्रयोग किया गया है। इस विषय में उपर्युक्त श्लोक कहते हैं —

“हेतु, एवं, प्रकार, आदि, व्यवच्छेद, विपर्यय, प्रादुर्भाव और समाप्ति इनके सभी के अर्थ में 'इति' शब्द का प्रयोग होता है ऐसा विद्वानों ने कहा है अर्थात् 'इति' शब्द से ये हेतु आदि अर्थ होते हैं॥

इसलिये यहाँ 'इति' शब्द से मूल प्रकृतियाँ आठ ही हैं, ऐसा जानना।

मूल प्रकृतियाँ आठ ही हैं, यह कैसे जाना जाता है ?

आठ कर्मों के द्वारा उत्पन्न होने वाले कार्यों से पृथग्भूत कार्य पाये नहीं जाते, इससे जाना जाता है कि मूलप्रकृतियाँ आठ ही हैं।

इन आठ प्रकृतियों के द्वारा जो कि अनन्तान्त परमाणुओं के समुदाय के समागम से उत्पन्न हुई हैं और एक-एक जीव प्रदेश पर संबद्ध अनन्त परमाणुओं के द्वारा अनादिस्वरूप से सम्बन्ध को प्राप्त अमूर्त्त भी यह जीव मूर्त्तत्व को प्राप्त होता हुआ आविद्ध कुलाल चक्र के समान — प्रयोग प्रेरित कुंभकार के चक्र के समान सात प्रकार के संसारों में संसरण — भ्रमण करता है ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिये।

यहाँ मेधावी — बुद्धिमान जीवों पर अनुग्रह करने के लिए संग्रहनय का अवलम्बन लेकर प्रकृतिसमुत्कीर्तन नाम का प्रकरण कहा गया है। पुनः मंदबुद्धि वाले जनों पर अनुग्रह करने के लिये व्यवहारनयरूप पर्याय का आश्रय लेकर आचार्यदेव इन आठों प्रकृतियों के भेदों को कहेंगे।

इस प्रकार द्वितीयस्थल में आठ प्रकार की मूल प्रकृतियों के कथन रूप से नव सूत्र पूर्ण हुये हैं।

अब ज्ञानावरणीय के पाँच भेद और उनके लक्षणों का प्रतिपादन करने के लिये दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

ज्ञानावरणीय कर्म की पाँच उत्तर प्रकृतियाँ हैं॥१३॥

आभिनिबोहियणाणावरणीयं सुदणाणावरणीयं ओहिणाणावरणीयं मणपज्जवणाणावरणीयं केवलणाणावरणीयं चेदि।।१४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अत्र पूर्व सूत्रं द्रव्यार्थिकशिष्यानुग्रहकारि, पश्चिमं सूत्रं पर्यायार्थिकनय-शिष्यानुग्रहकारि इति द्वयोरपि सूत्रयोः सार्थक्यं। अभिमुख-नियमितार्थावबोधः आभिनिबोधः। स्थूल-वर्तमान-अनन्तरितार्था अभिमुखाः। चक्षुरिन्द्रिये रूपं नियमितं, श्रोत्रेन्द्रिये शब्दः, घ्राणेन्द्रिये गंधः, जिह्वेन्द्रिये रसः, स्पर्शनेन्द्रिये स्पर्शः, नोइन्द्रिये दृष्ट-श्रुतानुभूतार्थाः नियमिताः। अभिमुखनियमितार्थेषु यः बोधः सः आभिनिबोधः, तदेव आभिनिबोधिकज्ञानं। अत्र ज्ञानं विशेष्यमाणं, तस्य सामान्यरूपत्वात्। आभिनिबोधिकं विशेषणं, अन्येभ्यो व्यवच्छेदकारित्वात्। तेन न पुनरुक्तदोष आगच्छति।

तच्च आभिनिबोधिकज्ञानं चतुर्विधं — अवग्रहः ईहा अवायः धारणा च। विषयविषयिसंपातानंतरमाद्यं ग्रहणमवग्रहः। विषयः बाह्योऽर्थः, विषयी-इन्द्रियाणि। तयोः द्वयोरपि संपातो नाम ज्ञानजननयोग्यावस्था, तदनन्तरमुत्पन्नं ज्ञानमवग्रहः। सोऽपि अवग्रहो द्विविधः — अर्थावग्रहो व्यञ्जनावग्रहश्चेति। तत्र अप्राप्तार्थ-ग्रहणमर्थावग्रहः, यथा चक्षुरिन्द्रियेण। प्राप्तार्थग्रहणं व्यञ्जनावग्रहः यथा स्पर्शनेन्द्रियेण।

अवगृहीतार्थस्य विशेषाकांक्षणमीहा। यथा कमपि दृष्ट्वा किमयं भव्योऽभव्यो वा इति विशेषपरीक्षा सा ईहा। नेयं संदेहरूपा, विचारबुद्धेः संदेहविनाशोपलभात्। संदेहात् उपरितना, अवायात् अधस्तना

आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मनःपर्यय ज्ञानावरणीय और केवल ज्ञानावरणीय ये पाँच प्रकृतियाँ ज्ञानावरणीय कर्म की हैं।।१४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ पूर्व का सूत्र द्रव्यार्थिकनयानुसारी शिष्यों के अनुग्रह करने के लिये है और पिछला — द्वितीयसूत्र पर्यायार्थिकनय का अनुसरण करने वाले शिष्यों का अनुग्रहकारी है। इसलिये इन दोनों सूत्रों की सार्थकता है।

अभिमुख और नियमित अर्थ के अवबोध — ज्ञान को आभिनिबोध कहते हैं। स्थूल, वर्तमान और अनन्तरित — व्यवधान रहित अर्थों को अभिमुख कहते हैं। चक्षु इन्द्रिय में रूप नियमित है, श्रोत्र इन्द्रिय में शब्द, घ्राण इन्द्रिय में गंध, जिह्वा इन्द्रिय में रस, स्पर्शन इन्द्रिय में स्पर्श और नो इन्द्रिय — मन के विषय में देखे गये, सुने गये और अनुभूत — अनुभव में आये हुए पदार्थ नियमित हैं। इन अभिमुख और नियमित पदार्थों में जो बोध होता है वह आभिनिबोध कहलाता है और वही ज्ञान आभिनिबोधिक ज्ञान है। यहाँ पर 'ज्ञान' यह विशेष्य पद है, क्योंकि वह सामान्यरूप है। 'आभिनिबोधिक' यह विशेषण है, क्योंकि वह अन्य ज्ञानों से व्यवच्छेद — भिन्न करता है, इसलिये यहाँ दोनों पदों के देने पर भी पुनरुक्त दोष नहीं आता है।

इस आभिनिबोधिकज्ञान के चार भेद हैं — अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। विषय और विषयी के योग्य देश में प्राप्त होने के अनन्तर जो आद्य — प्रथम ग्रहण होता है वह 'अवग्रह' है। बाह्य पदार्थ को विषय कहते हैं और इन्द्रियाँ विषयी कहलाती हैं। इन दोनों का भी संपात — सम्बन्ध होना — ज्ञान को उत्पन्न करने के योग्य अवस्था का होना, इसी का नाम संपात है। विषय और विषयी के संपात के अनन्तर उत्पन्न होने वाला ज्ञान 'अवग्रह' कहलाता है।

इस अवग्रह के दो भेद हैं — अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह।

अन्तराले प्रवृत्ता विचारबुद्धिः ईहा नाम।

‘वितर्कः श्रुतम्’ इति वचनादीहा वितर्करूपत्वात् श्रुतज्ञानं इति चेत् ?

नैष दोषः, अवग्रहेण प्रतिगृहीतार्थावलम्बनो वितर्कः ईहा, भिन्नार्थावलम्बनो वितर्कः श्रुतज्ञानमिति अभ्युपगमात्।

ईहितस्यार्थस्य संदेहापोहनमवायः। पूर्वं किं भव्यः किमयं अभव्यः इति यः संदेहबुद्ध्या विषयीकृतो जीवः स एषः अभव्यो न भवति, भव्यश्चैव, भव्यत्वाविनाभाविसम्यग्ज्ञान-सम्यग्दर्शन-सम्यक्चारित्रा-णामुपलंभात्, इति उत्पन्नप्रत्ययोऽवायः नाम।

अवग्रहावाययोः निर्णयत्वं प्रति भेदाभावात् एकत्वं किन्न भवति ?

भवतु तेन एकत्वं, किन्तु अवग्रहो नाम विषयविषयिसन्निपातानंतरभावी प्रथमः बोधविशेषः, अवायः पुनः ईहानंतरकालभावी उत्पन्नसंदेहाभावरूपः, तेन न द्वयोरेकत्वं।

निर्णीतस्यार्थस्य कालान्तरे अविस्मृतिधारणा। यस्मात् ज्ञानात् कालान्तरेऽपि अविस्मरणहेतुभूतो जीवे संस्कारः उत्पद्यते, तज्ज्ञानं धारणा नाम। न चावग्रहादिचतुर्णामपि ज्ञानानां सर्वत्र क्रमेण उत्पत्तिः, तथानुपलंभात्।

ततः कुत्रचित् अवग्रह एव, क्वचित् अवग्रहः ईहा च द्वे एव, क्वचिदपि अवग्रहः, ईहा अवायश्चैव

उनमें अप्राप्त — अस्पृष्ट अर्थ के ग्रहण को अर्थावग्रह कहते हैं, जैसे — चक्षुइन्द्रिय के द्वारा बिना स्पर्श किये ही रूप को ग्रहण किया जाता है। प्राप्त — स्पृष्ट पदार्थ को ग्रहण करना व्यंजनावग्रह है, जैसे — स्पर्शन इन्द्रिय के द्वारा स्पर्श को ग्रहण करना।

अवग्रह से ग्रहण किये गये अर्थ को विशेष जानने की आकांक्षा ‘ईहा’ है। जैसे — किसी पुरुष को देखकर यह भव्य है या अभव्य है, इस प्रकार की विशेष परीक्षा करने को ईहा ज्ञान कहते हैं। यह ईहाज्ञान संदेहरूप नहीं है, क्योंकि ईहात्मक विचार बुद्धि से संदेह का विनाश देखा जाता है। संदेह से उपरितन और अवायज्ञान से अधस्तन — अंतराल में प्रवृत्त होने वाली विचार बुद्धि का नाम ईहा है।

शंका — ‘विशेष रूप से तर्क करना श्रुतज्ञान है’ इस सूत्र वचन के अनुसार ईहा वितर्करूप होने से श्रुतज्ञान है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि अवग्रह से प्रतिगृहीत अर्थ के अवलम्बन करने वाले वितर्क को ईहा कहते हैं और भिन्न अर्थ का अवलम्बन करने वाला वितर्क श्रुतज्ञान है, ऐसा अर्थ स्वीकार किया गया है।

ईहाज्ञान से जाने गये पदार्थविषयक संदेह का दूर हो जाना ‘अवाय’ है। पहले ईहाज्ञान से ‘क्या यह भव्य है अथवा अभव्य’ इस प्रकार जो संदेहरूप बुद्धि के द्वारा विषय किया गया जीव है, सो यह अभव्य नहीं है, भव्य ही है, क्योंकि उसमें भव्यत्व के अविनाभावी सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र पाये जाते हैं, इस प्रकार से उत्पन्न हुये प्रत्यय — विश्वस्त ज्ञान का नाम ‘अवाय’ है।

शंका — अवग्रह और अवाय में निर्णयपने की अपेक्षा भेद नहीं है, तब इन दोनों में एकता क्यों नहीं है ?

समाधान — निर्णय के निमित्त से एकता भले ही हो जावे, फिर भी दोनों भिन्न हैं। विषय और विषयी के सन्निपात के अनन्तर उत्पन्न होने वाला प्रथम ज्ञानविशेष अवग्रह है, और ईहा के अनन्तर काल में उत्पन्न होने वाले संदेह के अभावरूप अवायज्ञान होता है, इसलिये अवग्रह और अवाय, इन दोनों ज्ञानों में एकता नहीं है।

अवायज्ञान से निर्णय किये गये पदार्थ का कालान्तर में विस्मरण न होना ‘धारणा’ है। जिस ज्ञान से

त्रयो भवन्ति, क्वापि अवग्रहः ईहा अवायः धारणा चेति चत्वारि ज्ञानानि अपि भवन्ति। तत्र बहु-बहुविध-क्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवसेतरभेदेनैकैको द्वादशविधः। तत्र बहूनामेकवारेण ग्रहणं बहु-अवग्रहः एवं बहु-बहुविधादि भेदैः अवग्रहः द्वादशविधः। इत्थं ईहादीनामपि द्वादश भेदाः प्ररूपयितव्याः। चक्षुरिन्द्रिय-नोइन्द्रिययोः अष्टचत्वारिंशत् आभिनिबोधिकज्ञानविकल्पाः भवन्ति, एतेषां व्यञ्जनावग्रहाभावात्। शेषेन्द्रियाणां षष्टिः मतिज्ञानविकल्पाः, तत्र अर्थव्यञ्जनावग्रहयोः द्वयोरपि संभवात्। सर्वे मिलित्वा अस्य आभिनिबोधिकज्ञानस्य षट्त्रिंशदुत्तरत्रिंशतानि भेदाः भवन्ति। एवंविधस्य ज्ञानस्य यदावरणं तदाभिनिबोधिकज्ञानावरणीयं।

श्रुतज्ञानस्य आवरणीयं श्रुतज्ञानावरणीयं। तत्र श्रुतज्ञानं नाम इन्द्रियैः गृहीतार्थात् ततः पृथग्भूतार्थग्रहणं, यथा शब्दात् घटादीनामुपलंभः, धूमात् अग्नेरुपलंभो वा। तत्श्रुतज्ञानं विंशतिविधं — पर्यायः पर्यायसमासः अक्षरं अक्षरसमासः पदं पदसमासः संघातः संघातसमासः प्रतिपत्तिः प्रतिपत्तिसमासः अनियोगः अनियोगसमासः प्राभृतप्राभृतः प्राभृतप्राभृतसमासः प्राभृतः प्राभृतसमासः वस्तु वस्तुसमासः पूर्व पूर्वसमासश्चेति।

कालान्तर में भी अविस्मरण का कारणभूत संस्कार जीव में उत्पन्न होता है, उस ज्ञान का नाम धारणा है। इन चारों ही अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ज्ञानों की सर्वत्र क्रम से ही उत्पत्ति हो ऐसा नहीं है, क्योंकि वैसा नहीं पाया जाता।

इसलिये कहीं तो केवल अवग्रह ज्ञान ही होता है, कहीं पर अवग्रह और ईहा दो होते हैं, कहीं पर अवग्रह, ईहा और अवाय ये तीन ही होते हैं और कहीं भी — किन्हीं जीव को अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चारों ज्ञान भी होते हैं।

उनमें बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त और ध्रुव और इनके प्रतिपक्षी — एक, एकविध, अक्षिप्र, निःसृत, उक्त तथा अध्रुव ये बारह भेद हैं। इनमें अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये बहु, बहुविध आदि से प्रत्येक चारों ही बारह-बारह भेदरूप हो जाते हैं। उनमें बहुत वस्तुओं का एक साथ ग्रहण करना 'बहु अवग्रह' है। इसी प्रकार बहुविध आदि प्रकार से अवग्रह बारह भेदरूप हो जाता है। इसी तरह 'ईहा' आदि में भी बारह भेद प्ररूपित करना चाहिये।

ये चक्षु इन्द्रिय और नोइन्द्रिय के अड़तालिस आभिनिबोधिक ज्ञान सम्बन्धी विकल्प होते हैं, क्योंकि चक्षु और मन, इन दोनों के व्यञ्जनावग्रह का अभाव है। शेष चारों इन्द्रियों के साठ मतिज्ञान सम्बन्धी भेद होते हैं, क्योंकि इनमें अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह दोनों ही संभव हैं। सभी मिलकर ये आभिनिबोधिक ज्ञान के तीन सौ छत्तीस भेद होते हैं। इस प्रकार के ज्ञान का जो आवरण है वह आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय कर्म है।

भावार्थ — बहु आदि १२ पदार्थों का अवग्रह आदि ४ प्रकार के ज्ञान, पाँच इन्द्रियाँ और मन इन छह की सहायता से होते हैं, इसलिए $१२ \times ४ = ४८ \times ६ = २८८$ भेद हुए। इनमें व्यञ्जनावग्रह के $१२ \times ४ = ४८$ भेद जोड़ने से कुल $२८८ \times ४८ = ३३६$ मतिज्ञान के भेद हो जाते हैं।

श्रुतज्ञान के आवरण करने वाले कर्म को श्रुत ज्ञानावरणीय कहते हैं। उनमें इन्द्रियों से ग्रहण किये गये पदार्थ से उससे पृथग्भूत पदार्थ का ग्रहण करना श्रुतज्ञान है, जैसे — शब्द से घट आदि पदार्थों का जानना अथवा धूम से अग्नि का ग्रहण करना। वह श्रुतज्ञान बीस प्रकार का है —

पर्याय, पर्याय समास, अक्षर, अक्षरसमास, पद, पदसमास, संघात, संघातसमास, प्रतिपत्ति, प्रतिपत्तिसमास, अनुयोग, अनुयोगसमास, प्राभृत-प्राभृत, प्राभृत-प्राभृतसमास, प्राभृत, प्राभृतसमास, वस्तु, वस्तुसमास, पूर्व और पूर्वसमास ये बीस भेद हैं।

क्षरणाभावात् अक्षरं केवलज्ञानं^१। तस्यानन्तिम भागः पर्यायः नाम मतिज्ञानं। तच्च केवलज्ञानमिव निरावरणमक्षरं च। एतस्मात् सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यक्षरात् यदुत्पद्यते तदपि ज्ञानं पर्यायः उच्यते। अनन्तभागवृद्धिः असंख्यातभागवृद्धिः संख्यातभागवृद्धिः संख्यातगुणवृद्धिः असंख्यातगुणवृद्धिः अनन्तगुणवृद्धिः इति एषा एका षड्वृद्धिः।

एतादृश्यः असंख्यातलोकमात्राः षड्वृद्धयः तासामुपरि गत्वा पर्यायसमासश्रुतज्ञानस्य अन्तिमो विकल्पो भवति। तदन्तिमविकल्पज्ञानं अनन्तैः रूपैः गुणिते अक्षरं नाम श्रुतज्ञानं भवति।

कथमेतस्य अक्षरव्यपदेशः?

नैतद् वक्तव्यं, द्रव्यश्रुतप्रतिबद्धैकाक्षरोत्पन्नस्य उपचारेण अक्षरव्यपदेशात्। अस्याक्षरश्रुतज्ञानस्योपरि एकैकाक्षरवृद्धिश्चैव भवति, अपराः वृद्धयो न भवन्तीति आचार्यपरंपरागतोपदेशात्।

पुनः केचित् आचार्या 'अक्षरश्रुतज्ञानमपि षड्विधया वृद्ध्या वर्धते' इति भणन्ति, नेदं घटते, सकलश्रुतज्ञानस्य संख्यातभागात् अक्षरज्ञानादुपरि षड्वृद्धीनां संभवाभावात्।

अक्षरश्रुतज्ञानादुपरितनानां पदश्रुतज्ञानादधस्तनानां संख्यातानां श्रुतज्ञानविकल्पानामक्षरसमासः इति संज्ञा।

ततः एकाक्षरज्ञाने वर्धिते पदं नाम श्रुतज्ञानं भवति।

कुत एतस्य पदसंज्ञा ?

क्षरण — विनाश का अभाव होने से केवलज्ञान 'अक्षर' कहलाता है। उसका अनन्तवां भाग 'पर्याय' नाम का मतिज्ञान है। वह पर्याय नाम का मतिज्ञान केवलज्ञान के समान निवारण और अक्षर — अविनाशी है। इस सूक्ष्म-निगोद लब्धि — अक्षर से जो श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है वह भी ज्ञान कार्य में कारण के उपचार से 'पर्याय' कहलाता है।

अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धि, इन छहों वृद्धियों के समुदायात्मक यह एक षड्वृद्धि मानी गई है। इस प्रकार की संख्यात लोकप्रमाण षट्वृद्धियों के ऊपर जाकर 'पर्यायसमास' नाम के श्रुतज्ञान का अंतिम विकल्प — भेद होता है। उस अंतिम विकल्प को — भेदरूप ज्ञान को अनन्त रूपों से गुणित करने पर 'अक्षर' नाम का श्रुतज्ञान होता है।

शंका — इस श्रुतज्ञान की 'अक्षर' यह संज्ञा कैसे हुई ?

समाधान — ऐसा नहीं कहना, क्योंकि द्रव्यश्रुत से प्रतिबद्ध एक अक्षर से उत्पन्न हुये ज्ञान की उत्पत्ति की अपेक्षा उपचार से 'अक्षर' यह संज्ञा है। इस अक्षर श्रुतज्ञान के ऊपर एक-एक अक्षर की ही वृद्धि होती है, अन्य वृद्धियाँ नहीं होती हैं। इस प्रकार आचार्य परम्परागत उपदेश पाया जाता है।

पुनः कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि अक्षर श्रुतज्ञान भी छह प्रकार की वृद्धियों से बढ़ता है किन्तु उनका यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि समस्त श्रुतज्ञान के संख्यातवें भागरूप अक्षरज्ञान से ऊपर छह प्रकार की वृद्धियों का होना सम्भव नहीं है।

अक्षर श्रुतज्ञान के ऊपर और पदश्रुतज्ञान से अधस्तन श्रुतज्ञान संख्यात विकल्पों की 'अक्षरसमास' यह संख्या है। इस अक्षरसमास श्रुतज्ञान से ऊपर एक अक्षर के बढ़ने पर 'पद' नाम का श्रुतज्ञान होता है।

शंका — उक्त प्रकार के इस श्रुतज्ञान की 'पद' यह संज्ञा कैसे है ?

‘षोडशशतचतुस्त्रिंशत्कोटयः त्र्यशीतिलक्षाः अष्टसप्ततिशतानि अष्टाशीतिः अक्षराणि,’ एतानि अक्षराणि गृहीत्वा एकं द्रव्यश्रुतपदं भवति। एतेभ्यः उत्पन्न भावश्रुतमपि उपचारेण पदमिति उच्यते। एतस्य पदस्य श्रुतज्ञानस्योपरि एकाक्षरश्रुतज्ञाने वद्धिते पदसमासः नाम श्रुतज्ञानं भवति। एवमेकाक्षरादिक्रमेण पदसमासश्रुतज्ञानं वर्द्धमानं गच्छति यावत्संघातः इति।

संख्यातैः पदैः संघातो नाम श्रुतज्ञानं भवति। चतसृभिः गतिभिः मार्गणा भवति। तत्र यावद्भिः पदैः नरकगत्याः एकपृथिवी प्ररूप्यते, तावतां पदानां तेभ्यः उत्पन्नश्रुतज्ञानस्य च संघातसंज्ञा इति उक्तं भवति। एवं सर्वगतीः सर्वमार्गणाश्चाश्रित्य वक्तव्यं।

अस्य संघातश्रुतज्ञानस्योपरि अक्षरश्रुतज्ञाने वद्धिते संघातसमासो नाम श्रुतज्ञानं भवति। एवं संघातसमासो वर्द्धमानो गच्छति यावत् एकाक्षरश्रुतज्ञानेनो न प्रतिपत्तिश्रुतज्ञानमिति।

यावद्भिः पदैः एकगति-इन्द्रिय-काय-योगादयः प्ररूपयिष्यन्ते तावत्पदानां प्रतिपत्ति-संज्ञा। प्रतिपत्त्याः उपरि एकाक्षरश्रुतज्ञाने वद्धिते प्रतिपत्तिसमासो नाम श्रुतज्ञानं भवति।

एवं प्रतिपत्ति समासश्चैव भूत्वा गच्छति यावत् एकाक्षरेणोननियोगद्वारश्रुतज्ञानमिति। यावत्पदैः चतुर्दशमार्गणानां प्रतिबद्धैः योऽर्थः ज्ञायते तेषां पदानां तत्रोत्पन्नज्ञानस्य चानियोगः इति संज्ञा।

समाधान — सोलह सौ चौंतीस करोड़, तेरासी लाख, अठत्तर सौ अठासी (१६३४,८३,०७८८८) अक्षरों को लेकर द्रव्यश्रुत का एक ‘पद’ होता है। इन अक्षरों से उत्पन्न हुआ भावश्रुत भी उपचार से ‘पद’ ऐसा कहा जाता है।

इस ‘पद’ नाम के श्रुतज्ञान के ऊपर एक अक्षर प्रमित श्रुतज्ञान के बढ़ने पर ‘पदसमास’ नामक श्रुतज्ञान होता है। इस प्रकार एक-एक अक्षर आदि के क्रम से ‘पदसमास’ श्रुतज्ञान बढ़ता हुआ तब तक जाता है जब तक कि ‘संघात’ नाम का श्रुतज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार संख्यात पदों के द्वारा ‘संघात’ नाम का श्रुतज्ञान होता है। चारों गतियों के द्वारा मार्गणा होती है। उनमें जितने पदों के द्वारा नरकगति की एक पृथिवी निरूपित की जाती है, उतने पदों की और उनसे उत्पन्न श्रुतज्ञान की ‘संघात’ ऐसी संज्ञा होती है। इसी प्रकार सर्वगतियों और सर्वमार्गणाओं का आश्रय करके कहना चाहिये।

इस संघात श्रुतज्ञान के ऊपर एक अक्षर प्रमाण, श्रुतज्ञान के बढ़ाने पर ‘संघातसमास’ नाम का श्रुतज्ञान होता है। इस प्रकार संघातसमास नामक श्रुतज्ञान तब तक बढ़ता हुआ जाता है जब तक कि एक अक्षर श्रुतज्ञान से कम प्रतिपत्ति नाम का श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है। जितने पदों के द्वारा एक गति, इन्द्रिय, काय और योग आदि मार्गणा प्ररूपित की जाती है, उतने पदों की ‘प्रतिपत्ति’ यह संज्ञा है। प्रतिपत्ति नाम के श्रुतज्ञान के ऊपर एक अक्षरप्रमाण श्रुतज्ञान के बढ़ने पर ‘प्रतिपत्तिसमास’ नाम का श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है। इस प्रकार प्रतिपत्ति समास श्रुतज्ञान ही बढ़ता हुआ तब तक चला जाता है जब तक कि एक अक्षर से कम अनुयोगद्वार नामक श्रुतज्ञान प्राप्त होता है।

चौदह मार्गणाओं से प्रतिबद्ध जितने पदों के द्वारा जो अर्थ जाना जाता है, उतने पदों की और उनसे उत्पन्न हुए श्रुतज्ञान की ‘अनुयोग’ यह संज्ञा है।

उस अनुयोग श्रुतज्ञान से ऊपर एक अक्षर प्रमाण श्रुतज्ञान के बढ़ने पर ‘अनुयोगसमास’ नामक श्रुतज्ञान प्राप्त होता है। उसके ऊपर एक अक्षर प्रमाण श्रुतज्ञान के बढ़ने पर ‘प्राभृत-प्राभृत’ नाम का श्रुतज्ञान प्राप्त होता है। संख्यात अनुयोगश्रुतज्ञानों के द्वारा एक ‘प्राभृत-प्राभृत’ नाम का श्रुतज्ञान होता है। इसके ऊपर

तस्योपरि एकाक्षरश्रुतज्ञाने वर्द्धिते अनियोगसमासो भवति। एवमनियोगसमासश्रुतज्ञानं एकैकाक्षरोत्तर-वृद्ध्या वर्द्धमानं गच्छति यावत् एकाक्षरेणोनप्राभृतप्राभृतमिति। तस्योपरि एकाक्षरश्रुतज्ञाने वर्द्धिते प्राभृतप्राभृतं भवति। संख्यातैः अनियोगश्रुतज्ञानैः एकं प्राभृत-प्राभृतं नाम श्रुतज्ञानं भवति। तस्योपरि एकाक्षरवर्द्धिते प्राभृतप्राभृतसमासो भवति।

तस्योपरि एकाक्षरादिवृद्धिक्रमेण प्राभृतप्राभृतसमासो गच्छति यावदेकाक्षरेणोन प्राभृतमिति। तस्योपरि एकाक्षरे वर्द्धिते प्राभृतश्रुतज्ञानं भवति। एतस्योपरि एकाक्षरे वर्द्धिते प्राभृतसमासो भवति। एवमैकैकाक्षर-वृद्धिक्रमेण प्राभृतसमासो गच्छति यावदेकाक्षरेणोनविंशतितमप्राभृतमिति। एतस्योपरि एकाक्षरे वर्द्धिते वस्तुश्रुतज्ञानं भवति। तस्योपरि एकाक्षरे वर्द्धिते वस्तुसमासो भवति। एवं वस्तुसमासो गच्छति यावदेकाक्षरेणोनान्तिमवस्तु इति। एतस्योपरि एकाक्षरे वर्द्धिते पूर्वं नाम श्रुतज्ञानं भवति। तस्योपरि एकाक्षरे वर्द्धिते पूर्वसमासो भवति। एवं पूर्वसमासो गच्छति यावत् लोकबिन्दुसारचरमाक्षरं इति।

एतस्य श्रुतज्ञानस्य आवरणं श्रुतज्ञानावरणीयं नाम ज्ञानावरणस्य द्वितीयो भेदः कथ्यते।

पूर्वं सत्प्ररूपणायां^१ पर्यायादिश्रुतज्ञानानां वर्णनं कृतं पुनः अत्र कथं क्रियते ?

नैष दोषः, पूर्व श्रुतज्ञानस्य प्रकरणे गोम्मटसारग्रन्थाधारेण किञ्चित् विस्तरेण प्रोक्तमस्ति अत्र तु

एक अक्षर प्रमाण श्रुतज्ञान के बढ़ने पर 'प्राभृत-प्राभृतसमास' नामक श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है।

इसके ऊपर एक अक्षर आदि की वृद्धि के क्रम से 'प्राभृत-प्राभृतसमास' तब तक बढ़ता हुआ जाता है जब तक कि एक अक्षर से कम 'प्राभृत' नाम का श्रुतज्ञान प्राप्त होता है।

उसके ऊपर एक अक्षर के बढ़ने पर 'प्राभृत' नामक श्रुतज्ञान होता है। इसके ऊपर एक अक्षर के बढ़ने पर 'प्राभृतसमास' श्रुतज्ञान होता है। इस प्रकार एक-एक अक्षर की वृद्धि के क्रम से प्राभृतसमास श्रुतज्ञान तब तक बढ़ता जाता है कि जब तक एक अक्षर से कम बीसवां 'वस्तु' श्रुतज्ञान प्राप्त होता है।

इसके ऊपर एक अक्षर के बढ़ने पर 'वस्तु' नाम का श्रुतज्ञान प्राप्त होता है। उस वस्तु श्रुतज्ञान के ऊपर एक अक्षर की वृद्धि होने पर 'वस्तुसमास' श्रुतज्ञान होता है। इस प्रकार वस्तुसमास ज्ञान तब तक बढ़ता जाता है जब तक कि एक अक्षर से कम अंतिम वस्तु नामक श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है। इस अंतिम 'वस्तुसमास' श्रुतज्ञान के ऊपर एक अक्षर की वृद्धि होने पर 'पूर्व' नाम का श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है। इसके ऊपर एक अक्षर की वृद्धि होने पर 'पूर्व समास' श्रुतज्ञान होता है। इस प्रकार 'पूर्व समास' श्रुतज्ञान बढ़ता तब तक चला जाता है जब तक कि 'लोकबिन्दुसार' नामक चौदहवें पूर्व का अंतिम अक्षर उत्पन्न होता है।

इस प्रकार के श्रुतज्ञान का आवरण करने वाला कर्म 'श्रुतज्ञानावरणीय' कर्म कहलाता है। यह ज्ञानावरण कर्म का दूसरा भेद कहलाता है।

शंका — पहले सत्प्ररूपणा में (प्रथम पुस्तक में) पर्याय आदि श्रुतज्ञानों का वर्णन किया है पुनः यहाँ क्यों करते हैं ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि पहले श्रुतज्ञान के प्रकरण में गोम्मटसार ग्रन्थ के आधार

श्रुतज्ञानावरणस्य प्रकरणे श्रीवीरसेनाचार्यस्य वचनानुसारेण संक्षिप्तरूपेण कथितं मया स्वात्मनि श्रुतज्ञानक्षयोपशमवृद्धये इति।

“श्रुतं मतिपूर्वं द्वयनेकद्वादशभेदं।।” इति सूत्रकथित द्वादशांगंगबाह्यादिनानाभेद-प्रभेदरूपश्रुतज्ञानस्य यावन्तो भेदाः तावन्त एव तस्य श्रुतज्ञानावरणस्य भेदाः अपि ज्ञातव्याः भवन्ति।

अवाग्धानादवधिः, अवधिश्च स ज्ञानं तत् अवधिज्ञानं। अथवा अवधिर्मर्यादा, अवधेर्ज्ञानमवधिज्ञानं। तत्त्रिविधं—देशावधिः परमावधिः सर्वावधिश्चेति।

मर्यादासहितमवधिज्ञानं अतोऽस्य सावधित्वेन मतिश्रुतज्ञानाभ्यां भेदाभावात् पृथक्प्ररूपणं निरर्थकं इति चेत् ?

नैषदोषः, मतिश्रुतज्ञाने परोक्षे, अवधिज्ञानं पुनः प्रत्यक्षं, तेन ताभ्यां तस्य भेदोपलंभात्।

मतिज्ञानमपि प्रत्यक्षं दृश्यते ?

न, मतिज्ञानेन प्रत्यक्षं वस्तुनोऽनुपलंभात्। यत् प्रत्यक्षं उपलभ्यते, तत् वस्तुनः एकदेशः, अतः तत् वस्तु न भवति। यदपि वस्तु, तदपि न प्रत्यक्षेण उपलभ्यते, तस्य प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष-परोक्षमतिज्ञानविषयत्वात्^१। ततः मतिज्ञानं प्रत्यक्षेण न वस्तुपरिच्छेदकं। अस्यायमर्थः—मतिज्ञानं सिद्धान्तभाषया परोक्षं इन्द्रियानिर्द्रिय-

से किंचित् विस्तार से कहा है, किन्तु यहाँ श्रुत ज्ञानावरण के प्रकरण में ‘श्री वीरसेनाचार्य’ के वचनानुसार संक्षिप्त रूप से मैंने अपनी आत्मा में श्रुतज्ञान के क्षयोपशम की वृद्धि के लिये कहा है।

‘श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है और वह अंगबाह्य तथा अंग के दो भेदरूप है पुनः अंगबाह्य के अनेक भेद एवं अंग के बारह भेद हैं।’ इस प्रकार के तत्त्वार्थ सूत्र में कथित द्वादशांग और अंगबाह्य आदि नाना भेद-प्रभेदरूप श्रुतज्ञान के जितने भेद हैं, उतने ही उस श्रुतज्ञानावरण के भेद भी जानना योग्य हैं।

जो अवाग्धान—नीचे की ओर प्रवृत्त हो, उसे अवधि कहते हैं। जो अवधिरूप ज्ञान होता है वह अवधिज्ञान कहलाता है अथवा अवधि का नाम मर्यादा है, उस अवधि—मर्यादा को लिये जो ज्ञान होता है वह अवधिज्ञान है। उसके तीन भेद हैं—देशावधि, परमावधि और सर्वावधि।

शंका—मर्यादा सहित ज्ञान अवधिज्ञान है इसलिये इसके मर्यादा सहित होने से मतिज्ञान और श्रुतज्ञान से इसमें कोई भेद नहीं है अतः पृथक् प्ररूपण करना निरर्थक है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्षज्ञान हैं और अवधिज्ञान प्रत्यक्ष है, इसलिये इन दोनों से उसमें भेद की उपलब्धि पायी जाती है।

शंका—मतिज्ञान भी तो प्रत्यक्ष देखा जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि मतिज्ञान से वस्तु की प्रत्यक्ष उपलब्धि नहीं होती। जो मतिज्ञान से प्रत्यक्ष माना जाता है वह वस्तु का एकदेश है और वस्तु का एकदेश संपूर्ण वस्तुरूप नहीं हो सकता है। जो भी वस्तु है वह भी मतिज्ञान के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से नहीं जानी जाती है, क्योंकि वह प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप परोक्ष मतिज्ञान का विषय है। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि मतिज्ञान प्रत्यक्ष रूप से वस्तु का जानने वाला नहीं है।

इसका अर्थ यह है कि—मतिज्ञान सिद्धान्त की भाषा से परोक्ष है, क्योंकि वह इन्द्रिय और मन के

निमित्तत्वात्, न्यायग्रन्थानुसारेण सांव्यवहारिकप्रत्यक्षं इन्द्रियद्वारैः चक्षुषा वा वस्तुप्रत्यक्षीकरणात् अतः अत्र प्रत्यक्षाप्रत्यक्षपरोक्षं कथितं श्रीवीरसेनाचार्येणेति।

अन्यत्रापि उक्तं — “प्रत्यक्षं विशदं ज्ञानं त्रिधा — इन्द्रियप्रत्यक्षं, अनिन्द्रियप्रत्यक्षं, अतीन्द्रियप्रत्यक्षं^१।

प्रत्यक्षलक्षणं प्राहुः स्पष्टं साकारमञ्जसा।

द्रव्यपर्यायसामान्य-विशेषार्थात्मवेदनम्॥३॥

हिताहिताप्तिनिर्मुक्ति-क्षममिन्द्रियानिर्मितम्।

यद्देशतोऽर्थज्ञानं तदिन्द्रियाध्यक्षमुच्यते॥४॥

सदसज्ज्ञानसंवादविसंवादविवेकतः।

सविकल्पाविनाभावी समक्षेतरसम्प्लवः^२॥५॥

अतो न मतिश्रुतज्ञानाभ्यां अवधिज्ञानस्य एकत्वं। अपूर्णस्य एकदेशात्मप्रत्यक्षस्य अवधिज्ञानस्य यदावारकं तदवधिज्ञानावरणीयं नाम ज्ञानावरणकर्मणः तृतीयो भेदः कथ्यते।

परकीयमनोगतोऽर्थः मनः, तस्य पर्यायाः विशेषाः मनःपर्यायाः, तान् जानातीति मनःपर्ययज्ञानं। तच्च द्विविधं — ऋजुमति-विपुलमतिभेदेन। तत्र ऋजुमतिः चिंतितमेव जानाति, नाचिंतितं, चिंतितमपि ज्ञायमानं ऋजुकेण चिंतितमेव जानाति न वक्रं चिंतितं। विपुलमतिः पुनः चिंतितमचिंतितं वक्रचिंतितम-वक्रचिंतितमपि जानाति।

निमित्त से होता है। न्यायग्रन्थों के अनुसार सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है, क्योंकि इन्द्रियों के द्वारा अथवा चक्षु से वस्तु को प्रत्यक्ष करता है इसलिये यहाँ श्री वीरसेनाचार्य देव ने ‘प्रत्यक्षाप्रत्यक्षपरोक्ष’ कहा है, ऐसा समझना।

अन्यत्र — प्रमाणसंग्रह ग्रन्थ में भी कहा है —

प्रत्यक्ष विशद ज्ञान तीन प्रकार का है — इन्द्रिय प्रत्यक्ष, अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष और अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष।

जो स्पष्ट और साकार है वह प्रत्यक्ष ज्ञान है। वह द्रव्य और पर्याय के सामान्य और विशेष को ग्रहण करने वाला है॥३॥

जो हित की प्राप्ति और अहित का परिहार कराने में समर्थ, इन्द्रियों से उत्पन्न और एकदेश रूप से पदार्थों का ज्ञान है, वह इन्द्रिय — प्रत्यक्ष है॥४॥

जो सदज्ञान-असदज्ञान के संवाद व विसंवाद से भेदरूप है, सविकल्प के साथ अविनाभावी है, वह प्रत्यक्षाप्रत्यक्षरूप ज्ञान है॥५॥

इसलिये मतिज्ञान और श्रुतज्ञान से अवधिज्ञान में एकता नहीं है। अपूर्ण एकदेशात्मक प्रत्यक्ष ऐसे अवधिज्ञान का जो आवारक — आवरण करने वाला है वह अवधिज्ञानावरणीय नाम के ज्ञानावरण कर्म का तीसरा भेद है।

दूसरे व्यक्ति के मन में स्थित पदार्थ मन कहलाता है। उसकी पर्यायों को — विशेषों को मनःपर्यय कहते हैं। जो ज्ञान उनको जानता है वह मनःपर्यय ज्ञान है। उसके दो भेद हैं — ऋजुमति और विपुलमति। उसमें से ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान मन में चिंतवन किये गये पदार्थ को ही जानता है, अचिंतित पदार्थ को नहीं, चिंतित को जानता हुआ भी सरलरूप से चिंतित पदार्थ को ही जानता है, वक्ररूप से चिंतित को नहीं। पुनः विपुलमति मनःपर्ययज्ञान चिंतित, अचिंतित पदार्थ को भी, तथा वक्र चिंतित और अवक्रचिंतित पदार्थ को भी जानता है।

अवधिजनः पर्यययोज्ञानयोः किमन्तरम् ?

मनःपर्ययज्ञानं विशिष्टसंयमनिमित्तं, अवधिज्ञानं पुनः भवप्रत्ययं गुणप्रत्ययं च। मनःपर्ययज्ञानं मतिपूर्वकमेव, अवधिज्ञानं पुनः अवधिदर्शनपूर्वकं। एतद्वयोरन्तरम्। मनःपर्ययज्ञानस्यावरणं मनःपर्ययज्ञानावरणीयम्।

केवलमसहायमिन्द्रियालोकनिरपेक्षं त्रिकालगोचरानन्तपर्यायसमवेतानन्तवस्तुपरिच्छेदकं सर्वव्यापकमसपत्नं केवलज्ञानं।

नष्टानुत्पन्नार्थानां कथं ततः केवलज्ञानात् परिच्छेदः?

न, केवलत्वात् सहायनिरपेक्षत्वात् बाह्यार्थापेक्षया विना नष्टानुत्पन्नपदार्थानां ज्ञानोत्पत्तेः विरोधाभावात्।

अस्य व्युत्पत्त्यर्थः—श्रीपूज्यपादस्वामिना कृतः—“बाह्येनाभ्यन्तरेण च तपसा यदर्थमर्थिनो केवन्ते सेवन्ते तत्केवलं। असहायमिति वा०।”

अस्य केवलज्ञानस्य आवरणं केवलज्ञानावरणीयं।

तात्पर्यमेतत्—द्रव्यश्रुतज्ञानबलेन भावश्रुतज्ञानं संप्राप्य तपश्चरणं कृत्वा केवलज्ञानं आविर्भावयितव्यम् भवद्भिः।

एवं तृतीयस्थले ज्ञानानां आवरणभेदकथनत्वेन द्वे सूत्रे गते।

शंका—अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान में क्या अन्तर है ?

समाधान—मनःपर्यय ज्ञान विशिष्ट संयम के निमित्त से उत्पन्न होता है, किन्तु अवधिज्ञान भव के निमित्त से और गुणप्रत्यय क्षयोपशम के निमित्त से उत्पन्न होता है। मनःपर्ययज्ञान मतिज्ञानपूर्वक ही होता है, किन्तु अवधिज्ञान अवधिदर्शनपूर्वक होता है। यही इन दोनों में अन्तर है। ऐसे मनःपर्यय ज्ञान पर आवरण करने वाला कर्म मनःपर्यय ज्ञानावरणीय कहलाता है।

असहाय ज्ञान केवलज्ञान है। यह ज्ञान इंद्रिय और आलोक की अपेक्षा से रहित है, त्रिकालगोचर है, अनंत पर्यायों से समन्वित अनंत पदार्थों को जानने वाला है, सर्व व्यापक है और असपत्न—प्रतिपक्ष से रहित है।

शंका—जो पदार्थ नष्ट हो चुके हैं और जो अभी उत्पन्न ही नहीं हुये हैं, उनको केवलज्ञान से कैसे जाना जा सकता है ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना, क्योंकि जो ज्ञान सहाय—पर की अपेक्षा से रहित है, बाह्य पदार्थों की अपेक्षा के बिना नष्ट और अनुत्पन्न पदार्थों के ज्ञान की उत्पत्ति में कोई विरोध नहीं है।

इसका व्युत्पत्ति अर्थ श्री पूज्यपादस्वामी ने किया है—

बाह्य और आभ्यन्तर तप के द्वारा अर्थीजन जिसके लिये सेवन करते हैं—तपश्चरण करते हैं उसका नाम केवलज्ञान है और असहाय—इंद्रियादि के सहयोग की अपेक्षा से रहित ज्ञान केवलज्ञान है। इस केवलज्ञान पर आवरण करने वाला कर्म केवलज्ञानावरणीय है।

यहाँ तात्पर्य यह है कि द्रव्य श्रुतज्ञान के बल से भावश्रुतज्ञान को प्राप्त करके पुनः तपश्चरण करके हमें और आपको अपने में केवलज्ञान को प्रगट करना चाहिये।

इस प्रकार तीसरे स्थल में ज्ञानों पर आवरण करने वालों के भेद को कहने वाले दो सूत्र पूर्ण हुये।

संप्रति दर्शनावरणस्य भेदलक्षणप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

दंसणावरणीयस्स कम्मस्स णव पयडीओ।।१५।।

**णिद्वाणिद्वा पयलापयला थीणगिद्धी णिद्वा पयला य, चक्खुदंसणा-
वरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं
चेदि।।१६।।**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूत्रयोरर्थः सुगमोऽस्ति। प्रथमं सूत्रं द्रव्यार्थिकनयमाश्रित्य स्थितं संगृहीताशेषविशेषत्वात्। संग्रहनयात् कथं विशेषो ज्ञायते ?

नैतत् वक्तव्यं, बीजबुद्धीनां शिष्याणां संग्रहनयात् विशेषावगमे विरोधाभावात्। पर्यायार्थिकनयानुग्रहार्थं उत्तरसूत्रमस्ति अनेन दर्शनावरणायानां भेदाः सूचिताः सन्ति।

तत्र निद्रानिद्रायाः तीव्रोदयेन वृक्षाग्रे विषमभूमौ यत्र तत्र वा देशे घुर्घुरायमानो वा निर्भरं स्वपिति। प्रचलाप्रचलायाः तीव्रोदयेन उपविष्टो वा उद्भूतो वा मुखेन गलन् लारः पुनः पुनः कंपमानशरीरशिरः निर्भरं स्वपिति। स्त्यानगृद्ध्या तीव्रोदयेन उत्थापितोऽपि पुनः शेते, सुप्तोऽपि किमपि कार्यं करोति, सुप्तोऽपि जल्पति, दन्तान् कटकटापयति।

अब दर्शनावरण के भेद और लक्षण का प्रतिपादन करने के लिये दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

दर्शनावरण कर्म की नव प्रकृतियां हैं।।१५।।

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, निद्रा और प्रचला तथा चक्षुदर्शनावरणाय, अचक्षुदर्शनावरणाय, अवधिदर्शनावरणाय और केवलदर्शनावरणाय ये नव दर्शनावरणाय कर्म की उत्तरप्रकृतियां हैं।।१६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। इनमें प्रथम सूत्र द्रव्यार्थिकनय का आश्रय करके स्थित है, क्योंकि यह समस्त विषयों का संग्रह करने वाला है।

शंका — संग्रहनय से विशेष कैसे जाना जाता है ?

समाधान — ऐसा नहीं कहना, क्योंकि बीजबुद्धि वाले शिष्यों के संग्रहनय से विशेष का ज्ञान होने में कोई विरोध नहीं है।

पुनः पर्यायार्थिक नय वाले शिष्यों के अनुग्रह के लिये उत्तर — द्वितीय सूत्र है। इस सूत्र से दर्शनावरणाय कर्म के भेद सूचित किये गये हैं।

उनमें निद्रानिद्रा प्रकृति के तीव्र उदय से जीव वृक्ष के अग्रभाग पर या विषम भूमि पर अथवा जिस किसी स्थान पर घुरघुराता हुआ या नहीं भी घुरघुराता हुआ गाढ़ निद्रा में सोता है। प्रचलाप्रचला प्रकृति के तीव्र उदय से बैठा हुआ या खड़ा हुआ ही सोता रहता है, उसके मुख से लार बहने लगती है, बार-बार शरीर और सिर को कंपाता हुआ गाढ़ निद्रा में सोता रहता है। स्त्यानगृद्धि नाम की निद्रा के तीव्र उदय से उठाय जाने पर भी जीव पुनः सो जाता है, सोता हुआ भी कुछ कार्य कर आता है तथा सोते हुए भी बड़बड़ करता रहता है, दाँतों को कड़कड़ाता रहता है।

निद्रायास्तीव्रोदयेन अल्पकालं स्वपिति, उत्थाप्यमानः शीघ्रं उत्तिष्ठति, अल्पशब्देनैव चेतति। प्रचलायास्तीव्रोदयेन बालुकाभरिते इव लोचने भवतः, गुरुभारोद्धृतमिव शिरः भवति, पुनः पुनः लोचने उन्मीलननिमीलने करोति, निद्राभरेण पतत्रपि लघु आत्मानं संधारयति, मनाक् मनाक् कम्पते, सावधानश्च स्वपिति।

एतेषां पञ्चानां कथं दर्शनावरणव्यपदेशः?

न, चेतनमपहरतः सर्वदर्शनविरोधिनः दर्शनावरणत्वं प्रति विरोधाभावात्।

किं दर्शनम् ?

ज्ञानोत्पादकप्रयत्नानुविद्धस्वसंवेद्यो दर्शनं आत्मविषयोपयोगः इत्यर्थः। नात्र ज्ञानोत्पादकयत्नस्य तंत्रता, अन्यथा प्रयत्नरहितक्षीणावरणान्तरंगोपयोगस्य केवलिनो भगवतः अदर्शनत्वप्रसंगात्। तत्र चक्षुर्ज्ञानोत्पादक-प्रयत्नानुविद्धस्वसंवेदने रूपदर्शनक्षमोऽहमिति संभावनाहेतुश्चक्षुर्दर्शनम्। एतदावृणोतीति चक्षुर्दर्शनावरणीयम्। शेषेन्द्रियमनसां दर्शनमचक्षुर्दर्शनम्। तदावृणोतीति अचक्षुर्दर्शनावरणीयम्। अवधेर्दर्शनं अवधिदर्शनम्। तदावृणोतीत्यवधिदर्शनावरणीयम्। केवलं असपत्नं केवलं च तद्दर्शनं च केवलदर्शनम्। तस्य आवरणं केवलदर्शनावरणीयम्।

बाह्यार्थसामान्यग्रहणं दर्शनमिति केचिदाचक्षते, तदत्र कथं न मन्यते ?

तत्रात्र सिद्धान्तग्रन्थे सिद्ध्यति, सामान्यग्रहणास्तित्वं प्रत्यविशेषतः श्रुतमनःपर्ययोरपि दर्शनस्यास्तित्व-

निद्रा के तीव्र उदय से अल्पकाल सोता है, उठाने जाने पर जल्दी से उठ जाता है, अल्प शब्द के द्वारा भी सचेत हो जाता है — जग जाता है। प्रचला प्रकृति के तीव्रोदय से नेत्र बालू से भरे हुए के समान हो जाते हैं। सिर भारी भार के उठाने हुए के समान भारी हो जाता है और नेत्र पुनः उन्मीलन एवं निमीलन करने लगते हैं, निद्रा के भार से गिरते हुए भी संभल जाता है, थोड़ा-थोड़ा कांपता रहता है और सावधान होकर सोता है।

शंका — इन पांचों निद्राओं के दर्शनावरण संज्ञा कैसे है ?

समाधान — ऐसा नहीं कहना, क्योंकि आत्मा के चेतन गुण को अपहरण करने वाले और सर्वदर्शन के विरोधी कर्म के दर्शनावरणत्व के प्रति कोई विरोध नहीं है।

शंका — दर्शन किसे कहते हैं ?

समाधान — ज्ञान के उत्पादक प्रयत्न से सम्बद्ध स्वसंवेदनरूप आत्मविषयक उपयोग को दर्शन कहते हैं। इस दर्शन में ज्ञान के उत्पादक प्रयत्न की पराधीनता नहीं है, अन्यथा प्रयत्नरहित, क्षीणावरण और अंतरंग उपयोग वाले केवली भगवान के अदर्शनत्व का प्रसंग आ जावेगा।

उनमें चक्षु इंद्रिय सम्बन्धी ज्ञान के उत्पन्न करने वाले प्रयत्न से संयुक्त स्वसंवेदन के होने पर 'मैं' रूप देखने में समर्थ हूँ इस प्रकार की सम्भावना के हेतु को चक्षुदर्शन कहते हैं। जो इस पर आवरण करे वह चक्षुदर्शनावरण है। चक्षु इंद्रिय से अतिरिक्त शेष — चार इंद्रियों के और मन के दर्शन को अचक्षुदर्शन कहते हैं, उसको जो आवृत करे वह अचक्षुदर्शनावरण है। अवधि के दर्शन को अवधिदर्शन कहते हैं, उस पर आवरण करने वाला अवधिदर्शनावरण है। केवल — असपत्न — प्रतिपक्ष रहित जो दर्शन है वह केवलदर्शन है, उस पर आवरण करने वाला केवलदर्शनावरण है।

शंका — बाह्य पदार्थ को सामान्य रूप से ग्रहण करना दर्शन है ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं, यहाँ ऐसा अर्थ ही क्यों नहीं मानते ?

समाधान — यह कथन यहाँ सिद्धान्त ग्रन्थ में सिद्ध नहीं होता है, क्योंकि सामान्य ग्रहण के अस्तित्व

प्रसंगात्, सामान्यग्रहणमन्तरेण विशेषग्रहणाभावतः संसारावस्थायां ज्ञानदर्शनयोरक्रमेण प्रवृत्तिप्रसंगात्। न क्रमप्रवृत्तिरपि, सामान्य-निर्लुठितविशेषाभावतः तत्रावस्तुनि ज्ञानस्य प्रवृत्तिविरोधात्। न च ज्ञानस्य प्रामाण्यं वस्त्वपरिच्छेदकत्वात्। न च विशेषमात्रं वस्तु, तस्यार्थक्रियाकर्तृत्वाभावात्। ततः सामान्यमात्मा, सकलार्थसाधारणत्वात्तद्विषय उपयोगो दर्शनमिति प्रत्येतव्यं।

केचिदाचक्षते — केवलज्ञानमेव आत्मार्थावभासकमिति केवलदर्शनस्याभावोऽस्ति ?

आचार्याः प्राहुः — एतन्न वक्तव्यं, पर्यायस्य केवलज्ञानस्य पर्यायाभावतः सामर्थ्यद्वयाभावात्। भावे वा अनवस्था न कैश्चित् निवार्यते। तस्मादात्मा स्वपरावभासकः इति निश्चेतव्यम्। तत्र स्वावभासः केवलदर्शनम्, परावभासः केवलज्ञानम्।

तथा सति कथं केवलज्ञान-दर्शनयोः साम्यमिति चेत् ?

न, ज्ञेयप्रमाणज्ञानात्मकात्मानुभवस्य ज्ञानप्रमाणत्वाविरोधात्।

अत्र सूत्रे 'इति' शब्दः एतावदर्थे, दर्शनावरणीयस्य कर्मणः एतावत्य एव प्रकृतयो नाधिकाः इत्यर्थः।

एवं चतुर्थस्थले दर्शनावरणकर्मणः भेदस्वरूपप्रतिपादनत्वेन द्वे सूत्रे गते।

के प्रति कोई विशेषता न होने से श्रुतज्ञान और मनःपर्ययज्ञान, इन दोनों को भी दर्शन के अस्तित्व का प्रसंग आता है। अतएव सामान्य ग्रहण के बिना विशेष के ग्रहण का अभाव होने से संसार अवस्था में ज्ञान और दर्शन की युगपत् प्रवृत्ति का प्रसंग आता है तथा क्रम से प्रवृत्ति भी नहीं बन सकती, क्योंकि सामान्य से रहित विशेष कोई वस्तु नहीं है और अवस्तु में ज्ञान की प्रवृत्ति होने का विरोध है। यदि अवस्तु में ज्ञान की प्रवृत्ति मानी जायेगी तो ज्ञान के प्रमाणता नहीं हो सकती, क्योंकि वह वस्तु का परिच्छेदक — जानने वाला नहीं रहा।

केवल विशेष नाम से कोई वस्तु नहीं है, क्योंकि उसके अर्थक्रिया के करने का अभाव है। इसलिये 'सामान्य' नाम आत्मा का है, क्योंकि वह सकल पदार्थों में साधारणरूप से व्याप्त है, इस प्रकार सामान्यरूप आत्मा को विषय करने वाला उपयोग दर्शन है, ऐसा निश्चय करना चाहिये।

शंका — कोई कहते हैं कि — केवलज्ञान ही अपने आपका और अन्य पदार्थों का जानने वाला है, अतः केवलदर्शन का 'अभाव' है ?

समाधान — आचार्यदेव कहते हैं — आपका यह कथन संगत नहीं है, क्योंकि केवलज्ञान पर्याय है। उस पर्याय में दूसरी पर्याय का अभाव होने से उसमें दो प्रकार की सामर्थ्य नहीं है। यदि एक पर्याय में दूसरी पर्याय का सद्भाव मानेंगे तो अनवस्था दोष को किन्हीं के द्वारा रोका नहीं जा सकता। इसलिये आत्मा ही स्व और पर का जानने वाला है ऐसा निश्चय करना चाहिये। उसमें स्व — प्रतिभास का नाम केवलदर्शन है और पर पदार्थों का प्रतिभास — ज्ञान केवलज्ञान है।

शंका — ऐसी व्यवस्था मानने पर तो केवलज्ञान और केवलदर्शन में समानता कैसे रह सकेगी ?

समाधान — नहीं, क्योंकि ज्ञेयप्रमाण ज्ञानात्मक आत्मानुभव के ज्ञान के प्रमाण होने में कोई विरोध नहीं है।

इस सूत्र में 'इति' इस शब्द का प्रयोग 'एतावत्' अर्थ का वाचक है। इससे यह अर्थ होता है कि दर्शनावरणीय कर्म की इतनी ही — नव ही प्रकृतियाँ हैं अधिक नहीं हैं।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में दर्शनावरण कर्म के भेद और लक्षण का निरूपण करते हुए दो सूत्र पूर्ण हुये।

अधुना वेदनीयकर्मणः भेदलक्षणनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

वेदणीयस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ।।१७।।

सादावेदणीयं चेव असादावेदणीयं चेव।।१८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—द्वयोः सूत्रयोरर्थः सुगमोऽस्ति। प्रथमं सूत्रं संग्रहनयापेक्षं, संगृहीताशेषविशेषत्वात्, एतन्मेधाधिजनानुग्रहार्थं।

भेदसूचकं सूत्रं पर्यायार्थिकनयापेक्षां मंदबुद्धिजनानुग्रहार्थमिति ज्ञातव्यं।

‘सादं सुहं, तं वेदावेदि भुंजावेदि ति सादावेदणीयं। असादं दुक्खं, तं वेदावेदि भुंजावेदि ति असादावेदणीयं’।

अत्र कश्चिदाह—यदि सुखदुःखे कर्मभ्यः भवतः, तर्हि कर्मसु विनष्टेषु सुखदुःखवर्जितेन जीवेन भवितव्यं, सुखदुःखनिबन्धनकर्माभावात्। सुखदुःखविवर्जितश्चैव भवतीति चेत् ? न, जीवद्रव्यनिःस्वभावत्वात् अभावप्रसंगात्। अथ यदि दुःखमेव कर्मजनितं, तर्हि सातावेदनीयकर्माभावो भवेत् तस्य फलाभावात् इति ?

अस्य परिहारः उच्यते—तद्यथा—यत् किमपि दुःखं नाम तदसातावेदनीयाद् भवति, तस्य जीवस्वरूपत्वाभावात्। भावे वा क्षीणकर्मणां अपि दुःखेण भवितव्यं, ज्ञानदर्शनयोरिव कर्मविनाशे दुःखस्य

अब वेदनीय कर्म के भेद और लक्षण का निरूपण करने के लिये दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

वेदनीय कर्म की दो प्रकृतियाँ हैं।।१७।।

सातावेदनीय और असातावेदनीय ये दो ही प्रकृतियाँ हैं।।१८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन दोनों सूत्रों का अर्थ यहाँ सुगम है। इनमें से प्रथम सूत्र तो संग्रहनय के आश्रित है, क्योंकि यह समस्त भेदों को अपने में संग्रहीत करने वाला है और यह बुद्धिमान शिष्यों के अनुग्रह के लिये है और दूसरा सूत्र भेद को सूचित करने वाला है, यह पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा रखता है और यह मंदबुद्धि शिष्यों के लिये अनुग्रह करने वाला है, ऐसा जानना।

साता—सुख को कहते हैं। उस सुख का जो वेदन—अनुभवन कराता है वह ‘सातावेदनीय’ कर्म है। असाता नाम दुःख का है जो उसका वेदन—अनुभवन कराता है वह ‘असातावेदनीय’ कर्म है।

यहाँ कोई कहता है—यदि सुख और दुःख कर्मों से होते हैं, तब तो कर्मों के नष्ट हो जाने पर जीव को सुख-दुःख से रहित हो जाना चाहिये, क्योंकि उसके सुख-दुःख के कारणभूत ऐसे कर्मों का अभाव हो गया है। यदि कहा जाए कि कर्मों के नष्ट हो जाने से जीव सुख और दुःख से रहित ही हो जाता है, ऐसा भी नहीं कह सकते, क्योंकि जीवद्रव्य के निःस्वभाव हो जाने से उस जीव का ही अभाव हो जावेगा। अथवा, यदि दुःख ही कर्मजनित है, तब तो सातावेदनीय कर्म का अभाव हो जावेगा, क्योंकि फिर उसका कोई फल ही नहीं रहता है ?

अब आचार्यदेव इसका परिहार करते हैं—दुःख नाम की जो कोई भी वस्तु है वह असातावेदनीय कर्म के उदय से होती है, क्योंकि यह जीव का स्वरूप—स्वभाव नहीं है। यदि जीव का स्वरूप माना जाये

विनाशाभावात्। सुखं पुनः न कर्मणः उत्पद्यते, तस्य जीवस्वभावत्वात् फलाभावात्। न सातावेदनीयाभावोऽपि, दुःखोपशमहेतुसुद्रव्यसंपादने तस्य सातावेदनीयस्य व्यापारात्।

एवं सति सातावेदनीयस्य पुद्गलविपाकित्वं भवति इति चेत् ?

नैतदाशङ्कनीयं, दुःखोपशमेनोत्पन्न-स्वास्थ्यकणस्य दुःखाविनाभाविनः उपचारेणैव लब्धसुखसंज्ञस्य जीवादपृथग्भूतस्य हेतुत्वेन सूत्रे तस्य जीवविपाकित्वसुखहेतुत्वानामुपदेशात्।

तर्ह्यपि सातावेदनीयस्य जीवविपाकित्वपुद्गलविपाकित्वे प्राप्नुतः इति चेत् ?

न, इष्टत्वात्।

तथोपदेशो नास्तीति चेत् ?

न, जीवस्यास्तित्वान्यथानुपपत्तेः तथोपदेशास्तित्वसिद्धेः। न च सुखदुःखहेतुद्रव्यसंपादकमन्यत् कर्मास्ति इति अनुपलंभात्।

उक्तं च —

जस्सोदएण जीवो सुहं व दुक्खं व दुविहमणुभवइ।

तस्सोदयक्खएण दु सुहदुक्खविवज्जिओ होई।

न च एतया गाथया सह विरोधः, सातावेदनीयात् उत्पन्नसुखाभावं दृष्ट्वा तत्र सुखदुःखाभावोपदेशात्।

तो कर्मों से रहित जीवों के भी दुःख होना चाहिये, क्योंकि ज्ञान और दर्शन के समान कर्म के विनाश होने पर भी दुःख का विनाश नहीं हो सकेगा, किन्तु दुःख का विनाश होता है अतः दुःख जीव का स्वरूप नहीं है।

किन्तु सुख कर्म से उत्पन्न नहीं होता है, क्योंकि वह जीव का स्वभाव है और इसीलिये वह कर्म का फल नहीं है। इस प्रकार सुख को जीव का स्वभाव मानने पर सातावेदनीय का अभाव भी प्राप्त नहीं होता, क्योंकि, दुःख-उपशमन के कारणभूत सुद्रव्यों के सम्पादन में सातावेदनीय कर्म का व्यापार होता है।

शङ्का — ऐसा मानने पर तो सातावेदनीय को पुद्गलविपाकी होने का प्रसंग आ जावेगा ?

समाधान — ऐसी आशङ्का नहीं करना, क्योंकि, दुःख के उपशम से उत्पन्न हुए, दुःख के अविनाभावी उपचार से ही सुख संज्ञा को प्राप्त और जीव से अपृथग्भूत ऐसे स्वास्थ्य के कण का हेतु होने से सूत्र में सातावेदनीय कर्म के जीवविपाकीपना और सुख हेतुत्व का उपदेश दिया गया है।

शङ्का — यदि ऐसा है तो सातावेदनीय के जीवविपाकीपना और पुद्गलविपाकीपना दोनों ही प्राप्त हो जावेंगे ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, यह तो हमें इष्ट ही है।

शङ्का — ऐसा उपदेश तो नहीं है ?

समाधान — ऐसा नहीं कहना, क्योंकि, जीव का अस्तित्व अन्यथा बन नहीं सकता, इसलिये उस प्रकार के उपदेश की सिद्धि हो जाती है। सुख और दुःख के कारणभूत द्रव्यों का संपादन करने वाला दूसरा कोई कर्म नहीं है, क्योंकि वैसा कर्म कोई भी पाया नहीं जाता।

कहा भी है — जिसके उदय से जीव सुख और दुःख, इन दोनों का अनुभव करता है, उसके उदय का क्षय हो जाने से वह सुख और दुःख से रहित हो जाता है।

पूर्वोक्त व्यवस्था मानने पर इस गाथा के साथ विरोध भी नहीं आता क्योंकि सातावेदनीय कर्म के उदय से उत्पन्न होने वाले सुख के अभाव को देखकर वहाँ सांसारिक सुख नहीं है अतः उस सुख के अभाव की अपेक्षा उपर्युक्त गाथा में सुख और दुःख के अभाव का उपदेश दिया है।

सूत्रे द्वयोः पदयोः एवकारः किमर्थं क्रियते ?

उत्तरोत्तरोत्तरप्रकृतीनामभावप्रतिपादनार्थं द्विवारं एवकारः कृतः इति नैष दोषः।

एवं पंचमस्थले वेदनीयस्य स्वरूपप्रतिपादनत्वेन द्वे सूत्रे गते।

मोहनीयकर्मणः भेदप्रतिपादनार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

मोहणीयस्स कम्मस्स अट्ठावीसं पयडीओ॥१९॥

जं तं मोहणीयं कम्मं तं दुविहं, दंसणमोहणीयं चेव चारित्तमोहणीयं चेव॥२०॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—प्रथमं सूत्रं संग्रहणयापेक्षं संगृहीताशेषविशेषत्वात् मेधाविजनानुग्रहकारि। द्वितीयसूत्रं मध्यमबुद्धिजनानुग्रहार्थं वर्तते।

एतस्मात् द्वितीयसूत्रात् कथं मोहनीयस्य कर्मणः सर्वभेदाः अवगम्यन्ते ?

आचार्योपदेशात्। एतस्य सूत्रस्य एतावान् अर्थः, तं सर्वमाचार्याः प्ररूपयन्ति। तं प्ररूप्यमाणमर्थं मेधाविनोऽवधारयन्ति।

अधुना मंदबुद्धिजनानुग्रहार्थं दर्शनमोहनीयस्य भेदप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

**जं तं दंसणमोहणीयं कम्मं तं बंधादो एयविहं तस्स संतकम्मं पुण
तिविहं सम्मत्तं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं चेदि॥२१॥**

शंका—सूत्र में दोनों पदों पर 'एवकार' किसलिये किया है ?

समाधान—वेदनीय कर्म की उत्तरोत्तर उत्तर प्रकृतियों का अभाव बतलाने के लिये दो बार एवकार पद दिया है। इसलिये यहाँ कोई दोष नहीं है।

इस प्रकार पाँचवें स्थल में वेदनीय के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुये दो सूत्र पूर्ण हुये।

अब मोहनीय कर्म के भेदों का प्रतिपादन करने के लिये दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ—

मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियां हैं॥१९॥

यह मोहनीय कर्म दो प्रकार का है — दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय ये दो ही हैं॥२०॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—प्रथम सूत्र संग्रहणय की अपेक्षा से है, क्योंकि यह समस्त विशेषों का संग्रह कसे वाला है और बुद्धिमानजनों का अनुग्रहकारी है। और दूसरा सूत्र मध्यम बुद्धि वाले शिष्यों के अनुग्रह के लिये है।

शंका—इस द्वितीय सूत्र से मोहनीय कर्म के सभी भेद कैसे जाने जाते हैं ?

समाधान—आचार्यों के उपदेश से जाने जाते हैं। इस सूत्र का इतना अर्थ है, वह सभी आचार्य प्ररूपित करते हैं। उस प्ररूपित किये जाने वाले अर्थ को बुद्धिमान शिष्य अवधारण कर लेते हैं।

अब मंदबुद्धि वाले शिष्यों के अनुग्रह के लिये दर्शनमोहनीय के भेदों का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ—

जो वह दर्शनमोहनीय कर्म है वह बंध की अपेक्षा एक प्रकार का है, किन्तु वही सत्ता की अपेक्षा तीन प्रकार का है — सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व॥२१॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — दर्शन-आप्तागमपदार्थेषु रुचिः प्रत्ययः श्रद्धा स्पर्शनमिति एकार्थः। तद् दर्शनं मोहयति विपरीतं करोति इति दर्शनमोहनीयं। यस्य कर्मणः उदयेन अनाप्ते आप्तबुद्धिः, अनागमे आगमबुद्धिः, अपदार्थे पदार्थबुद्धिः, आप्तागमपदार्थेषु श्रद्धायाः अस्थिरत्वं, द्वयोरपि श्रद्धा भवति वा तद्दर्शनमोहनीयमिति। तद् बंधापेक्षया एकविधं, मिथ्यात्वादिप्रत्ययैः आगतानां दर्शनमोहनीयकर्मस्कंधानामेकस्वभावानामुपलंभात्।

बंधेन एकविधमपि दर्शनमोहनीयं सत्त्वापेक्षया त्रिविधत्वं प्रतिपद्यते, यंत्रेण दल्यमानकोद्रवेषु कोद्रव-तंदुल-अर्धतंदुलानामिव दर्शनमोहनीयस्य अपूर्वादिकरणैः दलितस्य त्रिविधत्वोपलंभात्। तत्र आप्तागमपदार्थश्रद्धायां यस्योदयेन शिथिलत्वं भवति तत् सम्यक्त्वं नाम दर्शनमोहनीयभेदं भवति।

कथं तस्य सम्यक्त्वव्यपदेशः ?

सम्यक्त्वसहचरितोदयत्वात् उपचारेण सम्यक्त्वमिति उच्यते। यस्योदयेन आप्तागमपदार्थेषु अश्रद्धा भवति तद्मिथ्यात्वं नाम दर्शनमोहनीयभेदं। यस्योदयेन आप्तागमपदार्थेषु तत्प्रतिपक्षेषु चाक्रमेण श्रद्धा उत्पद्यते तत् सम्यग्मिथ्यात्वं नाम दर्शनमोहनीयं।

संदेहः कुतो जायते ?

सम्यक्त्वनाम दर्शनमोहनीयस्य उदयात् संदेहो भवति किंतु अयं सम्यग्दर्शनं न घातयति। सर्वसंदेहो मूढत्वं च मिथ्यात्वोदयात्।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — ‘दर्शन’ का अर्थ है — आप्त या आत्मा में आगम और पदार्थों में रुचि का होना। यहाँ रुचि, प्रत्यय, श्रद्धा और स्पर्शन ये सब एकार्थवाची हैं। ऐसे दर्शन को जो मोहित करता है — विपरीत करता है वह दर्शनमोहनीय कर्म है। जिस कर्म के उदय से अनाप्त — जो आप्त — सच्चे देव नहीं हैं उनमें आप्तबुद्धि, अनागम में आगमबुद्धि और अपदार्थों में पदार्थ बुद्धि होती है, अथवा आप्त, आगम और पदार्थों में श्रद्धा की अस्थिरता रहती है, अथवा दोनों में भी श्रद्धा होती है अर्थात् आप्त-अनाप्त में, आगम-अनागम में और पदार्थ-अपदार्थ में श्रद्धा होती है वह दर्शनमोहनीय कर्म है, यहाँ ऐसा कहा गया है। वह दर्शनमोहनीय बंध की अपेक्षा एक प्रकार का है, क्योंकि मिथ्यात्व आदि बंध कारणों के द्वारा आने वाले दर्शनमोहनीय कर्मस्कन्धों का एक स्वभाव पाया जाता है।

यह दर्शनमोहनीय कर्म बंध की अपेक्षा एक प्रकार का होते हुए भी सत्ता की अपेक्षा तीन प्रकार का है, क्योंकि जैसे यंत्र से — चक्की से दले गये कोदो में कोदो, तन्दुल और अर्द्धतन्दुल ऐसे तीन रूप हो जाते हैं, वैसे ही अपूर्वकरण आदि परिणामों के द्वारा दले गये दर्शनमोहनीय की तीन अवस्थाएँ हो जाती हैं इनमें से जिनमें आप्त, आगम और पदार्थों की श्रद्धा में जिसके उदय से शिथिलता होती है वह ‘सम्यक्त्वप्रकृति’ नाम का दर्शनमोहनीय कर्म होता है।

शंका — उस प्रकृति का ‘सम्यक्त्व’ यह नाम कैसे हुआ ?

समाधान — सम्यग्दर्शन से सहचरित उदय के होने से उपचार से ‘सम्यक्त्व’ ऐसा नाम दिया है।

जिस कर्म के उदय से आप्त, आगम और पदार्थ में अश्रद्धा होती है — विश्वास नहीं होता है, वह मिथ्यात्व प्रकृति है। जिस कर्म के उदय से आप्त, आगम और पदार्थों में तथा उनके प्रतिपक्षी — कुदेव, कुशास्त्र और कुतत्त्वों में युगपत् श्रद्धा होती है वह सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति है।

शंका — आप्त, आगम और पदार्थों में संदेह किस कर्म के उदय से होता है ?

समाधान — सम्यक्त्व प्रकृति नाम की दर्शनमोहनीय के उदय से संदेह उत्पन्न होता है, किन्तु यह सम्यग्दर्शन का घात नहीं करता है और जो सर्वसंदेह तथा मूढता होती है वह मिथ्यात्व के उदय से होती है।

दर्शनमोहनीयं सत्त्वात् त्रिविधं इति कुतो ज्ञायते ?

आगमात् अनुमानाच्च। विपरीतोऽभिनिवेशो मूढत्वं संदेहोऽपि मिथ्यात्वस्य चिह्नानि। आगमानागमयोः समभावो सम्यग्मिथ्यात्वचिह्नं। आप्तागमपदार्थश्रद्धायां शिथिलत्वं श्रद्धाहानिरपि सम्यक्त्वलिङ्गम्।

उक्तं चान्यत्रापि^१ — तदेव सम्यक्त्वं शुभपरिणामनिरुद्धस्वरसं यदौदासीन्येनावस्थितमात्मनः श्रद्धानं न निरुणद्धि, तद्वेदयमानः पुरुषः सम्यग्दृष्टिरित्यभिधीयते।

यस्योदयात्सर्वज्ञप्रणीतमार्गपराङ्मुखस्तत्त्वार्थश्रद्धाननिरुत्सुको हिताहितविचारासमर्थो मिथ्यादृष्टिर्भवति तन्मिथ्यात्वम्।

तदेव मिथ्यात्वं प्रक्षालनविशेषात् क्षीणाक्षीणमदशक्तिकोद्रववत्सामिद्धस्वरसं तदुभयमित्याख्यायते सम्यग्मिथ्यात्वमिति यावत्।

तात्पर्यमेतत् — अद्यत्वे क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनां सम्यक्त्वप्रकृत्युदयेन चलमलिनागाढदोषाः संभवन्ति इति ज्ञात्वा दोषहानये पुरुषार्थो विधेयः पुनश्च क्षायिकसम्यक्त्वप्राप्त्यर्थं भावना भावयितव्या।

संप्रति चारित्रमोहनीयस्य भेदसूचनाय सूत्रमवतरति —

जं तं चारित्तमोहणीयं कम्मं तं दुविहं, कसायवेदणीयं चेव णोकसाय-वेदणीयं चेव।।२२।।

शंका — दर्शनमोहनीय कर्म सत्ता की अपेक्षा तीन प्रकार का है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान — आगम से और अनुमान से जाना जाता है। विपरीत अभिनिवेश अभिप्राय, मूढता और संदेह भी मिथ्यात्व के चिह्न हैं। आगम और अनागम में समभाव होना सम्यग्मिथ्यात्व का चिह्न है। आप्त, आगम और पदार्थों में शिथिलता का होना, श्रद्धा की हानि का होना भी सम्यक्त्व का चिह्न है।

सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ में भी कहा है —

वही मिथ्यात्व तब सम्यक्त्व प्रकृतिरूप बन जाता है जब कि वह शुभ परिणामों के कारण अपने स्वरस — विपाक को रोक देता है और उदासीनरूप से अवस्थित रहकर आत्मा के श्रद्धान को नहीं रोकता है तब वह सम्यक्त्व कहलाता है। इसका वेदन करने वाला पुरुष सम्यग्दृष्टि कहा जाता है।

जिसके उदय से यह जीव सर्वज्ञ प्रणीत मार्ग से विमुख, तत्त्वार्थों के श्रद्धान करने में निरुत्सुक, हित-अहित के विचार करने में असमर्थ ऐसा मिथ्यादृष्टि होता है वह मिथ्यात्व दर्शनमोहनीय है। वही मिथ्यात्व जब प्रक्षालन विशेष के कारण क्षीणाक्षीण मदशक्ति वाले कोदो के समान अर्धशुद्ध रस वाला होने पर तदुभय कहा जाता है, इसी का दूसरा नाम सम्यग्मिथ्यात्व है। इसके उदय से अर्द्धशुद्ध मदशक्ति वाले कोदो और ओदन के उपयोग से प्राप्त हुये मिश्र परिणाम के समान उभयात्मक परिणाम होता है।

यहाँ तात्पर्य यह है कि — आजकल इस पंचमकाल में क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टियों के सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से चल, मलिन और अगाढ़ ये तीन दोष संभव हैं, ऐसा जानकर दोषों को दूर करने के लिये पुरुषार्थ करना चाहिये और पुनः क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति की भावना भाते रहना चाहिये।

अब चारित्रमोहनीय के भेद को सूचित करने के लिये सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

जो चारित्रमोहनीय कर्म है वह दो प्रकार का है — कषायवेदनीय और नोकषाय-वेदनीय।।२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — पापक्रियानिवृत्तिश्चारित्रं। घातिकर्माणि पापं। तेषां क्रिया मिथ्यात्वासंयमकषायाः, तेषामभावश्चारित्रं।

उक्तं च द्रव्यसंग्रहे —

असुहादो विणिविक्ती, सुहे पविक्ती य जाण चारित्तं।
वदसमिदिगुत्तिरूवं ववहारणया दु जिणभणियं^१।।

तथा च —

बहिंभर किरियारोहो भवकारण पणासट्ठं।
णाणिस्सणं जिणुत्तं, तं परमं सम्मचारित्तं।।

तच्चारित्रं मोहयति आवारयति इति चारित्रमोहनीयं। तच्च द्विविधं — कषाय-नोकषायभेदेन, कषायनोकषायाभ्यां पृथग्भूततृतीयकार्यानुपलंभात् द्विविधत्वसिद्धेः। इदं संग्रहनयसूत्रं वर्तते।

संप्रति कषायवेदनीयस्य भेदप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

जं तं कसायवेदणीयं कम्मं तं सोलसविहं, अणंताणुबन्धिकोहमाणमाया-
लोहं, अपच्चक्खाणावरणीयकोहमाणमायालोहं, पच्चक्खाणावरणीय-
कोहमाणमायालोहं, कोहसंजलणं, माणसंजलणं, मायासंजलणं लोहसंजलणं
चेदि।।२३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — पापरूप क्रियाओं से निवृत्ति होना चारित्र है। घातिया कर्मों को पाप कहते हैं। मिथ्यात्व, असंयम और कषाय, ये पाप की क्रियायें हैं। इनके अभाव का नाम ही चारित्र है।

द्रव्य संग्रह ग्रन्थ में कहा भी है —

अशुभ से निवृत्त होना — अशुभ क्रियाओं को छोड़ना और शुभ क्रियाओं में प्रवृत्ति करना यह चारित्र है। वह चारित्र व्यवहारनय से व्रत, समिति और गुप्तिरूप है ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है तथा निश्चयनय से जो चारित्र है वह बाह्य और आभ्यंतर दोनों प्रकार की क्रियाओं की निवृत्तिरूप है यह ज्ञानियों — महामुनियों का चारित्र परम चारित्र कहलाता है। यही चारित्र संसार के कारणों का नाश करने वाला है।।

इस चारित्र को जो मोहित करता है, ढकता है वह चारित्रमोहनीय कर्म है। उसके दो भेद हैं — कषायवेदनीय और नोकषायवेदनीय, क्योंकि कषाय और नोकषाय से पृथग्भूत तीसरे कार्य की उपलब्धि नहीं पायी जाती अतः इसके ये दो भेद सिद्ध हैं। यह सूत्र संग्रह- नय के आश्रित है, क्योंकि समस्त विशेषों का संग्रह करने वाला है।

अब कषायवेदनीय के भेदों का प्रतिपादन करने के लिये आचार्यदेव सूत्र का अवतार करते हैं —

सूत्रार्थ —

जो कषायवेदनीय कर्म है वह सोलह प्रकार का है — अनंतानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ, क्रोध संज्वलन, मान संज्वलन, माया संज्वलन और लोभ संज्वलन ये भेद हैं।।२३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — दुःखशस्यं कर्मक्षेत्रं कृषन्ति फलवत्कुर्वन्तीति कषायाः क्रोध-मान-माया-लोभाः, क्रोधो रोषः संरम्भ इत्यनर्थान्तरम्। मानो गर्वः स्तब्धत्वमित्येकोऽर्थः। माया निकृतिर्वञ्चना अनृजुत्वमिति पर्यायशब्दाः। लोभो गृद्धिरित्येकोऽर्थः। अनन्तान् भवाननुबद्धशीलं येषां ते अनन्तानुबन्धिनः। यैः क्रोधमानमायालोभैः अविनष्टस्वरूपैः सह जीवोऽनन्ते भवे हिंङति, तेषां क्रोधमानमायालोभानां अनन्तानुबन्धी संज्ञा इति उक्तं भवति।

एतेषामुदयकालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रश्चैव, स्थितिः चत्वारिंशत्सागरोपमकोटाकोटिमात्रा चैव। अतएव एतेषां अनन्तभवानुबन्धित्वं न युज्यते ?

नैष दोषः, एतैरेव कषायैः जीवे जनितसंस्कारस्य अनन्तेषु भवेषु अवस्थानाभ्युपगमात्। अथवा अनन्तोऽनुबन्धो येषां क्रोधमानमायालोभानां ते अनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभाः। एतेभ्यो वर्द्धितसंसारोऽनन्तेषु भवेषु अनुबन्धं न त्यजति इति अनन्तानुबन्धः संसारः। स येषां ते अनन्तानुबन्धिनो क्रोधमानमायालोभाः। एते चत्वारोऽपि सम्यक्त्वचारित्रयोर्विरोधिनः, द्विविधशक्तिसंयुक्तत्वात्।

तत्कुतो ज्ञायते ?

गुरुपदेशात् युक्तेश्च।

कात्र युक्तिः ?

उच्यते — न तावद् इमे अनन्तानुबन्धिनः कषायाः दर्शनमोहनीयरूपाः, सम्यक्त्वमिथ्यात्व-

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जो दुःखरूपी धान्य को उत्पन्न करने वाली कर्मरूपी खेत को कर्षण करती हैं अर्थात् फल देने वाले करती हैं, वे कषाय कहलाती हैं, वे क्रोध, मान, माया और लोभ हैं। क्रोध, रोष और संरम्भ, इनके अर्थ में कोई अन्तर नहीं है। मान, गर्व और स्तब्धता ये एकार्थवाची हैं। माया, निकृति, वञ्चना और अनृजुता — कुटिलता ये पर्यायवाची शब्द हैं। लोभ और गृद्धि ये एकार्थवाची शब्द हैं। अनन्त भवों को बांधना ही जिनका स्वभाव है वे अनन्तानुबन्धी कहलाती हैं। जो क्रोध, मान, माया और लोभ कषायें अविनष्ट स्वभाव वाली हैं, जिन कषायों के साथ जीव अनन्त भवों में भ्रमण करता है उन क्रोध, मान, माया, लोभ को अनन्तानुबन्धी यह संज्ञा कही है।

शंका — इन अनन्तानुबन्धी कषायों का काल अन्तर्मुहूर्त मात्र ही है और स्थिति चालीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। अतएव इन कषायों के अनन्तानुबन्धिपना घटित नहीं होता है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि इन कषायों के द्वारा जीव में उत्पन्न हुए संस्कार का अनन्त भवों में संस्कार माना गया है अथवा जिन क्रोध, मान, माया, लोभों का अनुबन्ध (विपाक या सम्बन्ध) अनन्त होता है वे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ कहलाती हैं। इनके द्वारा वर्द्धिगत संसार अनन्तों भवों में अनुबन्ध — सम्बन्ध — परम्परा को नहीं छोड़ता है, इसलिये 'अनन्तानुबन्ध' यह नाम संसार का है। वह संसार स्वरूप अनन्तानुबन्ध जिनके होता है वे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ हैं। ये चारों ही कषायें सम्यक्त्व और चारित्र की विरोधी हैं, क्योंकि ये सम्यक्त्व और चारित्र इन दोनों की घातने वाली दो प्रकार की शक्तियों से संयुक्त हैं।

शंका — यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान — गुरु के उपदेश से और युक्ति से जाना जाता है।

शंका — ये अनन्तानुबन्धी कषायें दो प्रकार की शक्ति वाली हैं, इस विषय में क्या युक्ति है ?

समाधान — इसका उत्तर देते हैं — ये अनन्तानुबन्धी कषायें न तो दर्शनमोहनीयरूप हैं, क्योंकि

सम्यग्मिथ्यात्वैश्चैव आवृतस्य सम्यक्त्वस्य आवरणे फलाभावात्। न चारित्रमोहनीयस्वरूपा अपि अप्रत्याख्यानावरणादिभिः आवृतचारित्रस्य आवरणे फलाभावात्। तत एतेषामभाव एव सिद्ध्यति, किन्तु न चाभावो भवितुं अर्हति, सूत्रे एतेषामस्तित्वप्रतिपादनात्। तस्मात् एतेषामुदयेन सासादनगुण-स्थानोत्पत्तेरन्यथानुपपत्तेः सिद्धं सम्यक्त्वघातनशक्तिमद्दर्शनमोहनीयत्वं चारित्रघातनशक्तिमत्चारित्रमोहनीयत्वं च। न चानन्तानुबन्धि-चतुष्कव्यापारः चारित्रे निष्फलः, अप्रत्याख्यानादि-अनन्तोदयप्रवाहकारणस्य निष्फलत्वविरोधात्।

प्रत्याख्यानं संयमः, न प्रत्याख्यानमप्रत्याख्यानमिति देशसंयमः।

कश्चिदाह — प्रत्याख्यानस्य अभावोऽसंयमः संयमासंयमोऽपि, तत्र असंयमं मुक्त्वा अप्रत्याख्यानशब्दः संयमासंयमे एव वर्तते इति कथं ज्ञायते ?

परिहारः उच्यते — आवरणशब्दप्रयोगात् ज्ञायते यत् अप्रत्याख्यानशब्दः केवलं संयमासंयमस्यार्थे वर्तते। न च कर्माभिः असंयमः आत्रियते, चारित्रावरणस्य कर्मणः अचारित्रावरणत्वप्रसंगात्। पारिशेषन्यायात् अप्रत्याख्यानशब्दः संयमासंयमश्चैव। अथवा नञ् अयमीषदर्थे वर्तते। तथा च न प्रत्याख्यानमित्यप्रत्याख्यानं संयमासंयम इति सिद्धम्। न च नञः ईषदर्थे वृत्तिरसिद्धा, न रक्ता न श्वेता युवतिनखा ताम्राः कुरवका

सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व के द्वारा ही आवरण किये जाने वाले सम्यग्दर्शन के आवरण करने में फल का अभाव है और न उन्हें चारित्रमोहनीय स्वरूप भी माना जा सकता है, क्योंकि अप्रत्याख्यानावरण आदि कषायों के द्वारा आवरण किये गये चारित्र के आवरण करने में फल का अभाव है। इसलिये उपर्युक्त प्रकार से अनंतानुबन्धी कषायों का अभाव ही सिद्ध हो जावेगा, किन्तु ऐसा उनका अभाव होना उचित नहीं है क्योंकि सूत्र में इनका अस्तित्व माना गया है, इसलिये अनंतानुबन्धी क्रोधादि कषायों के उदय से 'सासादन' भावरूप-गुणस्थान की उत्पत्ति अन्यथा हो नहीं सकती है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि सम्यक्त्व को घात करने की शक्ति वाला दर्शनमोहनीय कर्म है और चारित्र को घात करने की शक्ति वाला चारित्रमोहनीय कर्म है तथा अनंतानुबन्धी चतुष्क का व्यापार चारित्र में निष्फल भी नहीं है क्योंकि अप्रत्याख्यानादि के अनंत उदयरूप प्रवाह के कारणभूत अनंतानुबन्धी कषाय के निष्फलत्व का विरोध है।

'प्रत्याख्यान' संयम को कहते हैं, जो प्रत्याख्यानरूप नहीं हैं वह अप्रत्याख्यान हैं। इस प्रकार यह 'अप्रत्याख्यान' देशसंयम का वाचक है।

कोई यहाँ कहता है — प्रत्याख्यान का अभाव असंयम है और संयमासंयम (देशसंयम) भी है। उनमें असंयम को छोड़कर अप्रत्याख्यान शब्द केवल संयमासंयम में ही रहता है यह कैसे जाना जाता है ?

आचार्यदेव इसका परिहार करते हैं —

आवरण शब्द के प्रयोग से जाना जाता है कि अप्रत्याख्यान शब्द केवल संयमासंयम के अर्थ में रहता है। कर्मों के द्वारा असंयम का आवरण तो किया नहीं जा सकता अन्यथा चारित्रावरण कर्म के अचारित्रावरणपने का प्रसंग आ जावेगा। अतः पारिशेषन्याय से अप्रत्याख्यान शब्द का अर्थ संयमासंयम ही है। अथवा 'नञ्' यह अव्यय पद ईषत् (अल्प) अर्थ में रहता है। इसलिये जो प्रत्याख्यान नहीं है वह अप्रत्याख्यान है यही 'संयमासंयम' है ऐसा सिद्ध हो गया। 'नञ्' पद की ईषत् अर्थ में वृत्ति असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि 'इस युवती के नख न लाल हैं, न सफेद हैं किन्तु ताम्र वर्ण वाले कुरवक के समान हैं' इस प्रयोग में अन्यथा — स्ववचन विरोध का प्रसंग प्राप्त होगा, तथा 'अनुदरी कुमारी' यहाँ पर उदर के अभाव से कुमारी के मरण का

इत्यत्रान्यथा स्ववचनविरोधप्रसंगात्। अनुदरी कुमारीत्यत्र उदराभावतः मरणप्रसंगात्।

अत्रोपयोगी श्लोकः —

प्रतिषेधयति समस्तं प्रसक्तमर्थं तु जगति नोशब्दः।

स पुनस्तदवयवे वा तस्मादर्थान्तरे वा स्यात्।।

अप्रत्याख्यानं संयमासंयमः। तमावृणोति इति अप्रत्याख्यानावरणीयम्। तच्चतुर्विधं क्रोधमानमाया-लोभभेदेन।

प्रत्याख्यानं संयमः महाव्रतानीति एकार्थः। प्रत्याख्यानमावृणोतीति प्रत्याख्यानावरणीयाः

क्रोधमानमायालोभाः। सम्यक् ज्वलतीति संज्वलनम्।

अस्मिन् संज्वलनकषाये किं सम्यक्त्वं ?

चारित्र्येण सह ज्वलनं एव अत्र सम्यक्त्वं। चारित्र्यमविनाशयन्तः उदयं कुर्वन्तीति उक्तं भवति।

चारित्र्यमविनाशयतां संज्वलनानां कथं चारित्र्यावरणत्वं युज्यते ?

न, संयमे मलोत्पादकं यथाख्यातचारित्र्योत्पत्तिप्रतिबंधकानां चारित्र्यावरणत्वाविरोधात्। तेऽपि चत्वारः क्रोधमानमायालोभभेदेन।

शंका — क्रोधादिषु पादैकं संज्वलनशब्दोच्चारणं किमर्थं ?

समाधानं क्रियते —

प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानावरणानां इव संज्वलनानां बंधोदयाभावं प्रति प्रत्यासत्तिर्नास्तीति ज्ञापनार्थं।

प्रसंग प्राप्त होगा अतः यहाँ ईषत् अर्थ ग्रहीत है।

यहाँ उपयोगी श्लोक यह है — जगत में 'न' शब्द प्रसक्त समस्त अर्थ का तो प्रतिषेध करता है, किन्तु वह प्रसक्त अर्थ के अवयव — एकदेश में अथवा उससे भिन्न अर्थ में रहता है — उसका बोध कराता है।।

इससे सिद्ध हुआ कि अप्रत्याख्यान संयमासंयम का नाम है। उस अप्रत्याख्यान का जो आवरण करता है उसे अप्रत्याख्यानावरणीय कहते हैं। उसके क्रोध, मान, माया और लोभ से चार भेद हैं।

प्रत्याख्यान, संयम और महाव्रत, ये तीनों एक अर्थ वाले नाम हैं। प्रत्याख्यान पर जो आवरण करे वह प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ कषायें कहलाती हैं। जो सम्यक् प्रकार से प्रकाश देता रहे वह संज्वलन कषाय है।

शंका — इस संज्वलन कषाय में सम्यक्पना क्या है ?

समाधान — चारित्र के साथ जलना — देदीप्यमान रहना ही इसका सम्यक्पना है। चारित्र का विनाश नहीं करते हुए ये कषायें उदय को प्राप्त होती हैं, यहाँ ऐसा अर्थ कहा गया है।

शंका — चारित्र का विनाश नहीं करती हुई इन संज्वलन कषायों के चारित्र्यावरणपना कैसे घटित होता है ?

समाधान — ऐसा नहीं है, क्योंकि, ये संज्वलन कषायें संयम में मल — दोष को उत्पन्न करने वाली हैं तथा यथाख्यात चारित्र — पूर्णचारित्र की उत्पत्ति की प्रतिबंधक हैं, इसीलिये इनमें चारित्र्यावरणपना मानने में कोई विरोध नहीं है। ये संज्वलन कषायें भी क्रोध, मान, माया और लोभ के भेद से चार प्रकार की हैं।

शंका — क्रोध आदि में प्रत्येक के साथ संज्वलन शब्द का उच्चारण किसलिये किया है ?

समाधान — प्रत्याख्यानावरण और अप्रत्याख्यानावरण कषायों के समान संज्वलन कषायों के बन्ध और उदय के अभाव के प्रति प्रत्यासत्ति नहीं है, इस बात को बतलाने के लिये सूत्र में क्रोधादि प्रत्येक पद के

उक्तं चान्यत्रापि^१ — यदुदयात् देशविरतिं संयमासंयमाख्यामल्पां अपि कर्तुं न शक्नोति, ते देशप्रत्याख्यानमावृण्वन्तोऽप्रत्याख्यानावरणाः क्रोधमानमायालोभाः। यदुदयात् विरतिं कृत्स्नां संयमाख्यां न शक्नोति कर्तुं ते कृत्स्नं प्रत्याख्यानमावृण्वन्तः प्रत्याख्यानावरणाः क्रोधमानमायालोभाः।

समेकीभावे वर्तते, संयमेन सहावस्थानादेकीभूय ज्वलन्ति संयमो वा ज्वलत्येषु सत्स्वपि संज्वलनाः क्रोधमानमायालोभाः इति।

संप्रति नोकषायवेदनीयकर्मणः भेदलक्षणप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

जं तं णोकसायवेदणीयं कम्मं तं णवविहं, इत्थिवेदं पुरिसवेदं णवुंसयवेदं हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगंछा चेदि।।२४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अत्र नोशब्दः देशप्रतिषेधकः गृहीतव्यः, अन्यथा एतेषामकषायत्वप्रसंगात्। भवतु चेत् ?

न, अकषायाणां चारित्रावरणत्वविरोधात्। ईषत्कषायो नोकषाय इति सिद्धं।

साथ संज्वलन शब्द का प्रयोग किया है।

विशेषार्थ—जिस प्रकार चतुर्थ गुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरण क्रोधादि चारों की एक साथ हीबंधव्युच्छित्ति और एक साथ ही उदयव्युच्छित्ति होती है तथा जिस प्रकार पंचमगुणस्थान में प्रत्याख्यानावरण क्रोधादि चारों की एक साथ ही बंधव्युच्छित्ति एवं एक साथ ही उदयव्युच्छित्ति होती है। उस प्रकार से नवमें गुणस्थान में क्रोधादि चारों संज्वलन कषायों की न तो एक साथ बंधव्युच्छित्ति ही होती है और न एक साथ उदयव्युच्छित्ति ही होती है। यही कारण है कि अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण के समान बंध और उदयव्युच्छित्ति की अपेक्षा चारों संज्वलन कषायों में प्रत्यासत्ति या समानता नहीं है, इसी विभिन्नता के स्पष्टीकरण के लिये सूत्रकार ने सूत्र में क्रोधादि प्रत्येक अलग-अलग पद के साथ संज्वलन शब्द का प्रयोग किया है।

जिनके उदय से जिसका दूसरा नाम संयमासंयम है, ऐसी देशविरति को यह जीव स्वल्प भी करने में समर्थ नहीं होता है वे देश प्रत्याख्यान को आवृत करने वाले अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया और लोभ हैं। जिनके उदय से संयम नाम वाली परिपूर्ण विरति को यह जीव करने में समर्थ नहीं होता है वे सकल प्रत्याख्यान को आवृत करने वाले प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया और लोभ हैं। 'सं' एकीभाव अर्थ में रहता है। संयम के साथ अवस्थान होने में एक होकर जो ज्वलित होते हैं अर्थात् चमकते हैं या जिनके सद्भाव में संयम चमकता रहता है, वे संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ हैं।

अब नोकषायवेदनीय कर्म के भेद और उनके लक्षण का प्रतिपादन करने के लिये सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

जो नोकषायवेदनीय कर्म है वह नव प्रकार का है — स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा।।२४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ 'नो' शब्द एकदेश का प्रतिषेध करने वाला है ऐसा ग्रहण करना, अन्यथा इन स्त्रीवेद आदि नवों कषायों के अकषायपने का प्रसंग प्राप्त हो जावेगा।

शंका — होने दो, क्या हानि है ?

अत्रोपयोगी श्लोकः —

भावस्तत्परिणामो द्विप्रतिषेधस्तदैक्यगमनार्थः।

नो तद्देशविशेष-प्रतिषेधोऽन्यः स्वपरयोगात् ।।

कषायेभ्यो नोकषायाणां कथं स्तोक्तत्वं ?

स्थितिभ्यः अनुभागात् उदयाच्च एषां अल्पत्वं।

उदयकालः नोकषायाणां कषायेभ्यो बहुकः उपलभ्यते इति नोकषायेभ्यः कषायाणां स्तोक्तत्वं किन्न इष्यते ?

न, उदयकालमहत्त्वेन चारित्रविनाशिकषायेभ्यः तन्मलफलकर्मणां महत्वानुपपत्तेः।

स्तृणाति छादयति दोषैरात्मानं परं चेति स्त्री। पुरुषकर्मणि शेते प्रमादयति इति पुरुषः। न पुमान् स्त्री नपुंसकः। अयं व्युत्पत्त्यर्थः। एतस्याभिप्रायः येषां कर्मस्कंधानामुदयेन पुरुषे आकांक्षा उत्पद्यते तेषां स्त्रीवेद इति संज्ञा। येषां कर्मस्कंधानामुदयेन महिलानामुपरि आकांक्षा उत्पद्यते तेषां पुरुषवेदः इति संज्ञा। येषां कर्मस्कंधानामुदयेन इष्टिकापाकाग्निसदृशेन द्वयोरपि आकांक्षा उत्पद्यते, तेषां नपुंसकवेद इति संज्ञा।

हसनं हासः, यस्य कर्मस्कंधस्य उदयेन हास्यनिमित्तो जीवस्य रागः उत्पद्यते, तस्य कर्मस्कंधस्य हास्यमिति संज्ञा, कारणे कार्योपचारात्। रमणं रतिः, रम्यते अनया इति वा रतिः। येषां कर्मस्कंधानामुदयेन द्रव्यक्षेत्रकालभावेषु रतिः समुत्पद्यते, तेषां रतिरिति संज्ञा। द्रव्यक्षेत्रकालभावेषु येषामुदयेन जीवस्यारतिः

समाधान — नहीं, क्योंकि अकषायों के चारित्रावरण — चारित्र पर आवरण करने का विरोध है, इसलिये ईषत् अर्थ में नो शब्द का प्रयोग होने से ईषत्कषाय को नोकषाय कहते हैं यह सिद्ध हो गया।

यहाँ उपयोगी श्लोक देते हैं —

“भाव वस्तु के परिणाम को कहते हैं और दो बार प्रतिषेध उसी वस्तु की एकता का ज्ञान कराता है। ‘नो’ यह शब्द स्व और पर के योग से विवक्षित वस्तु के एकदेश का प्रतिषेधक और विधायक होता है।।”

शंका — कषायों से नोकषायों में अल्पपना कैसे है ?

समाधान — स्थितियों की अपेक्षा, अनुभाग की अपेक्षा और उदय की अपेक्षा कषायों से नोकषायों में अल्पता पायी जाती है।

शंका — नोकषायों का उदयकाल कषायों की अपेक्षा बहुत पाया जाता है, इसलिये नोकषायों की अपेक्षा कषायों के अल्पपना क्यों नहीं मान लेते ?

समाधान — ऐसा नहीं है, क्योंकि, उदयकाल की अधिकता होने से चारित्रविनाशक कषायों की अपेक्षा चारित्र में मल को उत्पन्न करनेरूप फलवाले कर्मों के महत्ता नहीं बन सकती।

अब इन नोकषायों की व्याख्या करते हैं —

जो दोषों के द्वारा अपने को और पर को आच्छादित करती है वह ‘स्त्री’ कहलाती है। जो पुरु — श्रेष्ठ कर्मों में ‘शेते’ — सोता है, प्रमाद करता है वह ‘पुरुष’ कहलाता है। जो न पुरुष हो, न स्त्री हो वह नपुंसक कहा जाता है। इस उपर्युक्त कथन का अभिप्राय यह है कि — जिन कर्मस्कन्धों के उदय से पुरुष में आकांक्षा उत्पन्न होती है उन कर्मस्कंधों की ‘स्त्रीवेद’ यह संज्ञा है। जिन कर्मस्कंधों के उदय से स्त्री के प्रति आकांक्षा उत्पन्न होती है उसकी ‘पुरुषवेद’ यह संज्ञा है। जिन कर्मस्कंधों के उदय से स्त्री-पुरुष दोनों पर भी आकांक्षा उत्पन्न होती है उनकी ‘नपुंसकवेद’ यह संज्ञा है।

हंसने को हास्य कहते हैं। जिस कर्मस्कंध के उदय से जीव के हास्यनिमित्तक राग उत्पन्न होता है उस

समुत्पद्यते तेषामरतिरिति संज्ञा। शोचनं शोकः, शोचयतीति वा शोकः, येषां कर्मस्कंधानामुदयेन जीवस्य शोकः इति संज्ञा। भीतिर्भयं। यैः उदयागतैः कर्मस्कंधैः जीवस्य भयमुत्पद्यते तेषां भयमिति संज्ञा, कारणे कार्योपचारात्। जुगुप्सनं जुगुप्सा। येषां कर्मणां उदयेन जुगुप्सा — ग्लानिरुत्पद्यते तेषां जुगुप्सा इति संज्ञा।

एतेषां कर्मणामस्तित्वं कुतो ज्ञायते ?

प्रत्यक्षेण उपलभ्यमानानां अज्ञानादर्शनादिकार्याणां अन्यथानुपपत्तेः एव एषामस्तित्वं प्रतीयते।

तात्पर्यमेतत् — कषायवेदनीयैः सह अविनाभाविनः इमे नोकषायाः सन्ति। संयमज्ञानवैराग्यबलेन इमे

क्रमशः हासनीयाः कृशीकर्तव्याः इति प्रत्यहं चिंतयितव्यम्।

एवं षष्ठस्थले मोहनीयकर्मणः भेदप्रभेदलक्षणादिकथनत्वेन सूत्रषट्कं गतम्।

अधुना आयुर्कर्मणः भेदलक्षणप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

आउगस्स कम्मस्स चत्तारि पयडीओ॥२५॥

णिरयाऊ तिरिक्खाऊ मणुस्साऊ देवाऊ चेदि॥२६॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — पूर्व द्रव्यार्थिकनयसूत्रं, पर्यायार्थिकनयसूत्रं पश्चिमं। येषां कर्मस्कंधानामुदयेन

कर्मस्कंध की कारण में कार्य के उपचार से 'हास्य' यह संज्ञा है। रमने का नाम 'रति' है अथवा जिसके द्वारा जीव रमता है उसे रति कहते हैं। जिन कर्मस्कन्धों के उदय से द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावों में रागभाव उत्पन्न होता है, उसकी 'रति' यह संज्ञा है। जिन कर्मस्कन्धों के उदय से द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावों में जीव के अरुचि उत्पन्न होती है उनकी 'अरति' संज्ञा है। सोच करने को शोक कहते हैं अथवा जो विषाद उत्पन्न करता है, उनकी 'शोक' संज्ञा है। भीति को भय कहते हैं, उदय में आये हुए जिन कर्मस्कन्धों के द्वारा जीव को 'भय' उत्पन्न होता है उनकी कारण में कार्य के उपचार से 'भय' संज्ञा है। ग्लानि करने को जुगुप्सा कहते हैं, जिन कर्मों के उदय से जुगुप्सा — ग्लानि उत्पन्न होती है उन्हें 'जुगुप्सा' यह संज्ञा है।

शंका — इन कर्मों का अस्तित्व कैसे पाया जाता है ?

समाधान — प्रत्यक्ष के द्वारा पाये जाने वाले अज्ञान, अदर्शन आदि कार्यों की उत्पत्ति अन्यथा हो नहीं सकती, इस 'अन्यथानुपपत्ति' से उक्त कर्मों का अस्तित्व जाना जाता है।

यहाँ तात्पर्य यह है कि — कषायवेदनीय — क्रोधादि कषायों के साथ अविनाभावी ये नव नोकषाय हैं। संयम, ज्ञान और वैराग्य के बल से इनको क्रम से घटाना चाहिये — कृश करना चाहिये, ऐसा हमें और आपको प्रतिदिन चिन्तन करते रहना चाहिये।

इस प्रकार छठे स्थल में मोहनीय कर्म के भेद-प्रभेद और लक्षणादि के कहने रूप से छह सूत्र पूर्ण हुये हैं।

अब आयु कर्म के भेद और लक्षण का प्रतिपादन करने के लिये दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

आयु कर्म की चार प्रकृतियां हैं॥२५॥

नरकायु, तिर्यचायु, मनुष्यायु और देवायु, ये आयु कर्म की चार प्रकृतियां हैं॥२६॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — प्रथम सूत्र तो द्रव्यार्थिकनय का आश्रय लेने वाला है और दूसरा सूत्र

ऊर्ध्वगमनस्वभावस्य जीवस्य नारकभवे अवस्थानं भवति तेषां 'नरकायुः' इति संज्ञा। एवमेव तिर्यग्मनुष्यदेवायुषामपि वक्तव्यं।

यथा घटपटस्तंभादीनां पर्यायाणां वैस्त्रसिकमेवावस्थानं तथैव नरकभवादिपर्यायाणां अपि वैस्त्रसिकेऽवस्थाने जाते को दोषः ?

न, अकारणेऽवस्थाने सति नियमविरोधात्। देवनारकयोर्जघन्यमवस्थानं दशवर्षसहस्राणि, उत्कृष्टभवावस्थानं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमानि। तिर्यग्मनुष्ययोः जघन्यमन्तर्मुहूर्तं, उत्कृष्टं त्रीणि पल्योपमानि। वैस्त्रसिकेऽवस्थाने एष नियमो न युज्यते, प्रत्युत पुद्गलानामिव अनियमेनवास्थानं भवेत्।

कथं पुद्गलानामनियमेनावस्थानं ?

एकद्वित्रिसमयमादिं कृत्वा उत्कृष्टेन मेरुपर्वतादिषु अनादि-अपर्यवसितस्वरूपेण संस्थानावस्थानोपलंभात्। तस्मात् भवावस्थानेन सहेतुकेन भवितव्यं, अन्यथा शरीरान्तरं गतानामपि नरकगतेः उदयप्रसंगात्।

एवं सप्तमस्थले आयुषां लक्षणप्रतिपादनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

अधुना नामकर्मणः पिण्डप्रकृतिसंख्यासंज्ञाप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

णामस्स कम्मस्स वादालीसं पिंडपयडीणामाइं।।२७।।

भेद का प्रतिपादक होने से पर्यायार्थिकनय के आश्रित है। जिन कर्मस्कन्धों के उदय से ऊर्ध्वगमन स्वभाव वाले भी जीव का नारक भव में अवस्थान होता है, उस कर्मस्कन्धों की 'नरकायु' यह संज्ञा है। इसी प्रकार से तिर्यच, मनुष्य और देव इन आयुकर्मों की व्याख्या करना चाहिये।

शंका — जैसे घट, पट और स्तम्भ आदि पर्यायों का अवस्थान वैस्त्रसिक — स्वाभाविक होता है, वैसे ही नरक भव आदि पर्यायों के भी वैस्त्रसिक अवस्थान होने पर क्या दोष है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि अकारण अवस्थान मानने पर नियम में विरोध आता है। देव और नारकियों का जघन्य भव अवस्थान दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट अवस्थान तेतीस सागरोपम है। तिर्यच और मनुष्यों का जघन्य अवस्थान अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट भव अवस्थान तीन पल्योपम है। वैस्त्रसिक अवस्थान में यह नियम नहीं बनेगा, प्रत्युत् इस नियम के अभाव में पुद्गलों के समान ही अनियम से अवस्थान कैसे प्राप्त होगा।

शंका — पुद्गलों का अनियम से अवस्थान कैसे है ?

समाधान — पुद्गलों का एक, दो, तीन समय से लेकर उत्कृष्ट से मेरु पर्वत आदि में अनादि-अनंत स्वरूप से एक ही आकार का अवस्थान पाया जाता है।

इसलिये भवसम्बन्धी अवस्थान — स्थिति को सहेतुक होना चाहिये, अन्यथा अन्य शरीर को प्राप्त करने वाले जीवों के भी नरकगति के उदय का प्रसंग प्राप्त होगा। परन्तु ऐसा होता नहीं है।

इस प्रकार सातवें स्थल में आयु के लक्षण का प्रतिपादन करते हुए दो सूत्र पूर्ण हुये।

अब नाम कर्म की पिंड प्रकृतियों की संख्या और संज्ञा का प्रतिपादन करने के लिये दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

नामकर्म की पिंड प्रकृतियां बयालीस हैं।।२७।।

गदिणामं जादिणामं सरीरणामं सरीरबंधणणामं सरीरसंघादणामं
 सरीरसंठाणणामं सरीरअंगोवंगणामं सरीरसंघडणणामं वण्णणामं गंधणामं
 रसणामं फासणामं आणुपुव्वीणामं अगुरुअ-लहुवणामं उवघादणामं
 परघादणामं उस्सासणामं आदावणामं उज्जोवणामं विहायगदिणामं तसणामं
 थावरणामं बादरणामं सुहुमणामं पज्जत्तणामं अपज्जत्तणामं पत्तेयसरीरणामं
 साधारणसरीरणामं थिरणामं अथिरणामं सुहणामं असुहणामं सुभगणामं
 दुभगणामं सुस्सरणामं दुस्सरणामं आदेज्जणामं अणादेज्जणामं जसकित्तिणामं
 अजसकित्तिणामं णिमिणणामं तित्थयरणामं चेदि।।२८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — द्वयोः सूत्रयोरर्थः सुगमः। गतिर्भवः संसारः इत्यर्थः। यदि गतिनामकर्म न स्यात् अगतिर्जीवः स्यात्। यस्मिन् जीवभावे आयुःकर्मणः लब्धावस्थाने सति शरीरादीनि कर्माणि उदयं गच्छन्ति सः भावः यस्य पुद्गलस्कंधस्य मिथ्यात्वादिकारणैः प्राप्तस्य कर्मभावस्य उदयात् भवति तस्य कर्मस्कंधस्य गतिरिति संज्ञा। जातिर्जीवानां सदृशपरिणामः। यदि जातिनामकर्म न स्यात् मत्कुणा मत्कुणैः, वृश्चिका वृश्चिकैः, पिपीलिकाः पिपीलिकाभिः, ब्रीहयो ब्रीहिभिः, शालयः शालिभिः समाना न जायेरन्।

गति नामकर्म, जाति नामकर्म, शरीर नामकर्म, शरीरबंधन नामकर्म, शरीरसंघात नामकर्म, शरीरसंस्थान नामकर्म, शरीर अंगोपांग नामकर्म, शरीरसंहनन नामकर्म, वर्ण नामकर्म, गंध नामकर्म, रस नामकर्म, स्पर्श नामकर्म, आनुपूर्वी नामकर्म, अगुरुलघु नामकर्म, उपघात नामकर्म, परघात नामकर्म, उच्छ्वास नामकर्म, आतप नामकर्म, उद्योत नामकर्म, विहायोगति नामकर्म, त्रस नामकर्म, स्थावर नामकर्म, बादर नामकर्म, सूक्ष्म नामकर्म, पर्याप्त नामकर्म, अपर्याप्त नामकर्म, प्रत्येक शरीर नामकर्म, साधारण शरीर नामकर्म, स्थिर नामकर्म, अस्थिर नामकर्म, शुभ नामकर्म, अशुभ नामकर्म, सुभग नामकर्म, दुर्भग नामकर्म, सुस्वर नामकर्म, दुःस्वर नामकर्म, आदेय नामकर्म, अनादेय नामकर्म, यशःकीर्ति नामकर्म, अयशःकीर्ति नामकर्म, निर्माण नामकर्म और तीर्थकर नामकर्म, ये नाम कर्म की बयालीस पिंड प्रकृतियां हैं।।२८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इन दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। गति, भव और संसार ये एकार्थवाची हैं। यदि गति नामकर्म न हो तो जीव गतिरहित हो जाए। जिस जीवभाव में आयुर्कर्म से अवस्थान के प्राप्त करने पर शरीर आदि कर्म उदय को प्राप्त होते हैं वह भाव मिथ्यात्व आदि कारणों के द्वारा कर्मभाव को प्राप्त जिस पुद्गल स्कंध के उदय से होता है, उस कर्मस्कंध की 'गति' यह संज्ञा है।

जीवों के सदृश परिणाम को 'जाति' कहते हैं। यदि जाति नामकर्म न हो तो खटमल-खटमलों के साथ, बिच्छू-बिच्छुओं के साथ, चीटियां चीटियों के साथ, धान्य धान्य के साथ और शालि-शालि के साथ समान नहीं हो सकेंगे किन्तु इन सबमें परस्पर में सदृशता दिखायी देती है अतः जिस कर्मस्कंध से जीवों के

दृश्यते च सादृश्यं ततः यस्मात् कर्मस्कंधात् जीवानां भूयः सदृशत्वमुत्पद्यते, सः कर्मस्कंधः कारणो कार्योपचारात् जातिरिति भण्यते। यथा गंगावालुकानां पृथिवीकायिकनामकर्मोदयेन सदृशपरिणाम-त्वोभ्युपगमात्।

यदि जीवानां सदृशपरिणामः कर्मायत्तो न भवेत्, तर्हि चतुरिन्द्रियाः जीवाः अश्वहस्तिव्याघ्रादिसंस्थानाः भवेयुः, पंचेन्द्रियाः अपि भ्रमर-मत्कुण-शलभ-इन्द्रगोप क्षुल्लकाक्षवृक्षसंस्थाना भवेयुः। न चैवं अनुपलंभात्, प्रतिनियतसदृशपरिणामेषु अवस्थितवृक्षादीनां उपलंभाच्च। ततः न पारिणामिको जीवानां सदृशपरिणामः इति सिद्धं।

यस्य कर्मणः उदयेन आहारवर्गणायाः पुद्गलस्कंधाः तैजस-कार्मणवर्गणापुद्गलस्कंधाः च शरीरयोग्यपरिणामैः परिणताः सन्तः जीवेन संबध्यन्ते तस्य कर्मस्कंधस्य शरीरमिति संज्ञा। यदि शरीरनामकर्म जीवस्य न भवेत् तर्हि तस्य अशरीरत्वं प्रसज्यते। अशरीरत्वात् अमूर्तस्य जीवस्य न कर्माणि, विमुक्तमूर्तानां-आत्मनां पुद्गलानां संबन्धाभावात्।

भवतु चेत् ?

न, सर्वजीवानां सिद्धसमानत्वापत्तेः संसाराभावप्रसंगात्।

शरीरार्थमागतानां पुद्गलस्कंधानां जीवसंबद्धानां यैः पुद्गलैः जीवसंबद्धैः प्राप्तोदयैः परस्परं बंधः क्रियते तेषां पुद्गलस्कंधानां शरीरबंधनसंज्ञा, कारणे कार्योपचारात्। कर्तृनिर्देशाद् वा। यैः कर्मस्कंधैः

अत्यन्त सदृशता उत्पन्न होती है, वह कर्मस्कंध कारण में कार्य के उपचार से 'जाति' इस नाम को प्राप्त करता है। जैसे कि गंगा नदी की बालुका आदि के पृथ्वीकायिक नामकर्म के उदय से सदृश परिणाम स्वीकार किया गया है।

यदि जीवों का सदृश परिणाम कर्म के आधीन न होवे तो चतुरिन्द्रिय जीव घोड़ा, हाथी, भेड़िया, बाघ आदि आकार के हो जावेंगे तथा पंचेन्द्रिय जीव भी भ्रमर, खटमल, पतंगे — शलभ, इन्द्रगोप, क्षुद्र कौड़ी, वृक्ष आदि आकार के हो जावेंगे, किन्तु ऐसा तो है नहीं, क्योंकि इस प्रकार से वे पाये नहीं जाते, प्रत्युत् प्रतिनियत — अपने-अपने निश्चित सदृश परिणामों में अवस्थित ही वृक्ष आदि पाये जाते हैं, इसलिये जीवों का सदृश परिणाम पारिणामिक नहीं है, यह सिद्ध हो गया।

जिस कर्म के उदय से आहारवर्गणा के पुद्गलस्कंध तथा तैजस और कार्मणवर्गणा के पुद्गलस्कंध शरीर योग्य परिणामों के द्वारा परिणत होते हुए जीव के साथ संबद्ध होते हैं, उस कर्मस्कंध की 'शरीर' यह संज्ञा है। यदि जीव के शरीर नामकर्म न होवे, तो जीव के अशरीरता का प्रसंग प्राप्त हो जावेगा। पुनः शरीर रहित होने से जीव अमूर्तिक हो जावेगा और अमूर्तिक जीव के कर्मों का होना भी संभव नहीं है, क्योंकि मूर्तिकतारहित आत्मा के पुद्गलों के सम्बन्ध का भी अभाव है।

शंका — अमूर्त आत्मा का पुद्गल के साथ सम्बन्ध न हो, तो न सही, क्या हानि है ?

समाधान — ऐसा नहीं है, क्योंकि सभी जीवों के सिद्धों के साथ समानता हो जाने से संसार का ही अभाव हो जावेगा, किन्तु ऐसा सम्भव नहीं है।

शरीर के लिये आये हुये, शरीर सम्बद्ध पुद्गलस्कंधों का जिन जीव संबद्ध और उदय प्राप्त पुद्गलों के साथ परस्पर बंध किया जाता है उन पुद्गल स्कंधों की 'शरीर बंधन' यह संज्ञा कारण में कार्य के उपचार से अथवा कर्ता के निर्देश से होती है।

उदयप्राप्तैः बंधननामकर्मोदयेन बंधमागतानां शरीरपुद्गलस्कंधानां मृष्टत्वं — छिद्ररहितसंश्लेषः क्रियते तेषां शरीरसंघातसंज्ञा। येषां कर्मस्कंधानां उदयेन जातिकर्मोदयपरतंत्रेण शरीरस्य संस्थानं तत् शरीरसंस्थानं नाम।

यस्य कर्मस्कंधस्योदयेन शरीरस्यांगोपांगनिष्पत्तिर्भवेत् तस्य कर्मस्कंधस्य शरीरांगोपांगं नाम। एतस्य कर्मणोऽभावे अष्टांगानामुपांगानां च अभावो भवेत्। न चैवं, तथानुपलंभात्।

उक्तं च —

णलया बाहू य तहा णियंब पुट्टी उरो य सीसं च।

अट्टेव तु अंगाई देहण्णाई उवंगाई।।

शिरसि तावदुपांगानि मूर्द्ध-करोटि-मस्तक-ललाट-शंख-भू-कर्ण-नासिका-नयनाक्षि-कूट-हनु-कपोल-उत्तराधरोष्ठ-सूक्वणी-तालु-जिह्वादीनि।

यस्य कर्मणः उदयेन शरीरे अस्थि-संधीनां निष्पत्तिर्भवेत्, तस्य कर्मणः संहननमिति संज्ञा। एतस्य कर्मणोऽभावे शरीरमसंहननं भवेत् देवशरीरमिव।

भवतु चेत् ?

न, तिर्यग्मनुष्यशरीरेषु अस्थिकलापोपलंभात्।

यस्य कर्मणः उदयेन जीवशरीरे वर्णनिष्पत्तिर्भवति तस्य कर्मस्कंधस्य वर्णसंज्ञा। यस्य कर्मस्कंधस्योदयेन जीवशरीरे जातिं प्रतिनियतो गंधः उत्पद्यते, तस्य कर्मस्कंधस्य गंधसंज्ञा, कारणे कार्योपचारात्। यस्य कर्मस्कंधस्योदयेन जीवशरीरे जातिप्रतिनियतः तिक्तादिरसो भवेत् तस्य कर्मस्कंधस्य रससंज्ञा, निंबाम्रजंबीरादिषु

उदय को प्राप्त जिन कर्मस्कंधों के द्वारा बंधन नामकर्म के उदय से बंध के लिये आये हुए शरीर सम्बन्धी पुद्गलस्कंधों का मृष्टत्व — छिद्ररहित संश्लेष किया जाता है, उन पुद्गल स्कंधों की 'शरीर संघात' यह संज्ञा है। जाति नामकर्म के उदय से परतन्त्र जिन कर्मस्कंधों के उदय से शरीर का संस्थान — आकार बनता है वह 'शरीर संस्थान' नामकर्म है।

जिस कर्मस्कंध के उदय से शरीर के अंग-उपांगों की निष्पत्ति — रचना बनती है, उस कर्मस्कंध की 'शरीर अंगोपांग' यह संज्ञा है। इस कर्म के अभाव में आठ अंग और उपांगों का अभाव हो जावेगा किन्तु ऐसा है नहीं, इन अंगों और उपांगों का अभाव माना नहीं जा सकता।

कहा भी है — शरीर में दो पैर, दो हाथ, नितम्ब, पीठ, हृदय और मस्तक ये आठ अंग होते हैं, शेष आंख, नाक, कान आदि उपांग हैं।।

सिर में मूर्धा, कपाल, मस्तक, ललाट, शंख, भौंह, कान, नाक, आँख, अक्षिकूट, हनु (टुड्डी), कपोल, ऊपर और नीचे के ओष्ठ, सूक्वणी (चाप), तालु और जीभ आदि उपांग होते हैं।

जिस कर्म के उदय से शरीर में हड्डी और उसकी संधियों — संयोग स्थानों की निष्पत्ति — रचना होती है उस कर्म को 'संहनन' कहते हैं। इस कर्म के अभाव में शरीर देवों के शरीर के समान संहननरहित हो जावेगा।

शंका — हो जावे, क्या हानि है ?

समाधान — ऐसा नहीं है, क्योंकि तिर्यच और मनुष्य के शरीरों में हड्डियों का समूह देखा जाता है।

जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर में वर्ण की उत्पत्ति होती है उस कर्मस्कंध की 'वर्ण' यह संज्ञा है। जिस कर्मस्कंध के उदय से जीव के शरीर में जाति के प्रतिनियत गंध उत्पन्न होता है उस कर्मस्कंध की 'गंध' यह संज्ञा है, क्योंकि यहाँ कारण में कार्य का उपचार है। जिस कर्मस्कंध के उदय से जीव के शरीर में जाति के प्रतिनियत तिक्त आदि रस होते हैं उस कर्मस्कंध की 'रस' यह संज्ञा है, क्योंकि नीम, आम और नींबू

नियतरसस्योपलंभात्। यस्य कर्मस्कंधस्योदयेन जीवशरीरे जातिप्रतिनियतः स्पर्शः उत्पद्यते तस्य कर्मस्कंधस्य स्पर्शसंज्ञा, कारणे कार्योपचारात्। स्वपुष्पफलकमलनालादिषु नियतस्पर्शोपलंभात्।

पूर्वोत्तरशरीराणामन्तरे एकद्वित्रिसमये वर्तमानजीवस्य यस्य कर्मोदयेन जीवप्रदेशानां विशिष्टः संस्थानविशेषो भवति तस्य आनुपूर्वी इति संज्ञा।

संस्थाननामकर्मणः संस्थानं भवति अतः आनुपूर्वि-परिकल्पना निरर्थिका इति चेत् ?

तस्य शरीरगृहीतप्रथमसमयादुपरि उदयं आगच्छतः विग्रहकाले उदयाभावात्। यदि आनुपूर्विकर्म न भवेत् तर्हि विग्रहकाले अनियतसंस्थानो जीवो भवेत्। न च एवं, जातिप्रतिनियतसंस्थानस्य तत्रोपलंभात्।

पूर्वशरीरं त्यक्त्वा शरीरान्तरं अनादाय स्थितजीवस्य इच्छितगतिगमनं कुतः भवति ?

आनुपूर्व्याः भवति।

विहायोगतेः किन्न भवति ?

न, तस्य त्रयाणां शरीराणामुदयेन विना उदयाभावात्।

विग्रहगतौ संस्थानविशेषः इच्छितगतिगमनहेतुश्च आनुपूर्व्या फलद्वयं वर्तते।

अनंतानंतैः पुद्गलैः आपूरितस्य जीवस्य यैः कर्मस्कंधैः अगुरुकलधुकत्वं भवति, तेषां अगुरुकलधुकं इति संज्ञा। कारणे कार्योपचारात्। यदि इदं नामकर्म न भवेत् तर्हि जीवः लोहगोलक इव गुरुकः, अर्कतूलवत्

आदि में नियत रस पाया जाता है। जिस कर्मस्कंध के उदय से जीव के शरीर में जाति प्रतिनियत स्पर्श उत्पन्न होता है, उस कर्मस्कंध की 'स्पर्श' यह संज्ञा है, यहाँ भी कारण में कार्य का उपचार है क्योंकि अपने-अपने पुष्प, फल, कमलनाल आदि में नियत स्पर्श पाया जाता है।

पूर्व और उत्तर शरीरों अंतरालवर्ती एक, दो और तीन समय में वर्तमान जीव के जिस कर्म के उदय से जीव प्रदेशों का विशिष्ट आकार विशेष होता है, उस कर्म की 'आनुपूर्वी' यह संज्ञा है।

शंका—संस्थान नाम कर्म से संस्थान—आकार विशेष होता है, इसलिये आनुपूर्वी कर्म की कल्पना निरर्थक है ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना, क्योंकि शरीर ग्रहण के प्रथम समय से ऊपर उदय में आने वाले उस संस्थान नामकर्म का विग्रह गति के काल में उदय का अभाव पाया जाता है। यदि आनुपूर्वी कर्म न हो, तो विग्रहगति के काल में जीव अनियत संस्थान वाला हो जावेगा, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि जाति प्रतिनियत संस्थान—आकार विग्रहगति के काल में पाया जाता है।

शंका—पूर्व शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को नहीं ग्रहण करके स्थित जीव का इच्छित गति में गमन किस कर्म से होता है ?

समाधान—आनुपूर्वी नामकर्म से इच्छित गति में गमन होता है।

शंका—विहायोगति से क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि विहायोगति नामकर्म का औदारिक आदि तीनों शरीरों के उदय के बिना उदय नहीं होता। विग्रहगति में आकार विशेष को बनाये रखना और इच्छित गति में गमन कराना ये दोनों ही कार्य आनुपूर्वी नामकर्म के हैं।

अनंतानंत पुद्गलों से आपूर्ण—भरपूर जीव के जिन कर्मस्कंधों के द्वारा 'अगुरुलघुपना' होता है, उन पुद्गलस्कंधों की 'अगुरुलघुक' यह संज्ञा है, क्योंकि कारण में कार्य का उपचार है। यदि यह नामकर्म न होवे,

लघुको वा भवेत् किंतु न चैवं, अनुपलंभात्।

अगुरुकलघुकत्वं नाम जीवस्य स्वाभाविकमस्ति इति चेत् ?

न, संसारावस्थायां कर्मपरतन्त्रे तस्याभावात्। अत्र जीवस्य अगुरुलघुत्वं न कर्मणा क्रियते, किन्तु जीवे भरितो यः पुद्गलस्कंधः, सः यस्य कर्मणः उदयेन जीवस्य गुरुकः लघुको वा इति न क्रियते तदगुरुकलघुकं विवक्षितं। अतोऽत्र जीवविषयक-अगुरुलघुगुणस्य ग्रहणं नास्ति।

उपेत्य घातः उपघातः आत्मघात इत्यर्थः। यत्कर्म जीवपीडाहेतु-अवयवान् करोति, जीवपीडाहेतुद्रव्याणि वा विषासिपाशादीनि जीवस्य प्रापयति तदुपघातं। ते महाशृंगलंबस्तनतुंदोदरादयः जीवपीडाकार्यावयवाः सन्ति। यदि उपघातकर्म न भवेत्, जीवस्य न भवेत्, तर्हि शरीरात् वातपित्त-सिंघाणकदूषितात् जीवस्य पीडा न भवेत् किन्तु एतत् दृश्यते एव।

जीवस्य दुःखोत्पादने असातावेदनीयस्य व्यापारश्चेत् ?

भवतु तस्य तत्र व्यापारः, किन्तु उपघातकर्मापि तस्य सहकारिकारणं भवति, तदुदयनिमित्तपुद्गल-द्रव्यसंपादनात्।

परेषां घातः परघातः। यस्य कर्मणः उदयेन शरीरे परघातहेतुपुद्गलाः निष्पद्यन्ते, तत्कर्म परघात नाम। यथा सर्पदंष्ट्रासु विषं, वृश्चिकपुंछे परदुःखहेतुपुद्गलोपचयः सिंहव्याघ्रादिषु नखदन्ताः शृंगिवत्स्यनाभिधत्तूरकादयः च परघातोत्पादकाः।

तो जीव लोहे के गोले के समान भारी हो जावेगा या आक की तूल — रुई के समान हल्का हो जावेगा, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि ऐसा पाया नहीं जाता।

शंका — अगुरुलघुक तो जीव का स्वाभाविक गुण है पुनः उसे यहाँ कर्म प्रकृतियों में क्यों लिया ?

समाधान — ऐसा नहीं है, क्योंकि संसार अवस्था में कर्मपरतंत्र जीव में उस अगुरुलघुत्व — स्वाभाविक गुण का अभाव है। यहाँ जीव का वह अगुरुलघुत्व कर्म के द्वारा नहीं किया जाता है किन्तु जीव में भरा हुआ जो पुद्गलस्कंध है, वह जिस कर्म के उदय से जीव के हल्का या भारीपना प्राप्त नहीं होता है वह अगुरुलघुक कर्म यहाँ विवक्षित है, अतएव यहाँ पर जीवविषयक अगुरुलघु गुण का ग्रहण नहीं है।

स्वयं प्राप्त होने वाले घात को उपघात कहते हैं — आत्मघात कहते हैं। जो कर्म जीव के लिये पीड़ा को करने वाले ऐसे अवयवों को बनाता है अथवा जीव के पीड़ा के लिये कारण ऐसे विष, खड्ग, पाश आदि द्रव्यों को प्राप्त कराता है वह 'उपघात' नामकर्म है। ये अवयव महाशृंग — बड़े-बड़े सींग, लम्बे स्तन, विशाल तोंदवाला पेट आदि होते हैं। यदि उपघात नामकर्म न होवे तो वात, पित्त, कफ से दूषित शरीर से जीव को पीड़ा नहीं हो सकेगी, किन्तु ऐसा देखा जाता है।

शंका — जीव को दुःख उत्पन्न करने में असातावेदनीय कर्म का व्यापार होता है पुनः उपघातकर्म को यहाँ कैसे कहा ?

समाधान — जीव के दुःख में असातावेदनीय कर्म का व्यापार होवे, वह तो है ही, किन्तु उपघातकर्म भी उसमें सहकारी कारण होता है, क्योंकि उसके उदय के निमित्त से दुःखकर पुद्गल द्रव्य का संपादन — समागम होता है।

पर जीवों के घात को परघात कहते हैं। जिस कर्म के उदय से शरीर में पर के घात करने में कारणभूत पुद्गल निष्पन्न होते हैं, वह 'परघात' नामकर्म है। जैसे साँप के दाढ़ों में विष, बिच्छू के पूँछ में विष, पर दुःख

उच्छ्वासनमुच्छ्वासः। यस्य कर्मणः उदयेन जीवः उच्छ्वासनिश्वासकार्योत्पादनक्षमो भवति तस्य उच्छ्वास इति संज्ञा, कारणे कार्योपचारात्।

आतपनं आतपः, यदि आतपनामकर्म न भवेत् तर्हि सूर्यमण्डले पृथिवीकायिकशरीरे आतपाभावो भवेत्, सोष्णः प्रकाशः आतपः इत्येकार्थः।

उद्योतनं उद्योतः। यदि इदं नामकर्म जीवस्य न भवेत्, तर्हि चन्द्रनक्षत्रताराखद्योतादिषु शरीराणां उद्योतो न भवेत्, न चैवं अनुपलंभात्।

विहाय आकाशमित्यर्थः। विहायसि गतिः विहायोगतिः। येषां कर्मस्कंधानामुदयेन जीवस्य आकाशे गमनं भवति तेषां विहायोगतिरिति संज्ञा।

तिर्यग्मनुष्ययोः भूमौ गमनं कस्य कर्मण उदयेन ?

विहायोगतिनामकर्मणः। ^१विहस्तिमात्रपादजीवप्रदेशैः भूमिं व्याप्य सकलजीवप्रदेशानामाकाशे गमनोपलंभात्।

येषां त्रसादि-अयशःकीर्तिनामकर्मणां उदयेन जीवाः त्रसादिपर्यायत्वं प्राप्नुवन्ति तेषां त्रसादिसंज्ञा भवति। इमे त्रस-स्थावर-बादर-सूक्ष्म-पर्याप्त-अपर्याप्त-प्रत्येकशरीर-साधारणशरीर-स्थिर-अस्थिर-शुभ-अशुभ-सुभग-दुर्भग-सुस्वर-दुःस्वर-आदेय-अनादेय-यशःकीर्ति-अयशःकीर्तिनामा इमाः विंशतिनाम-कर्मप्रकृतयः सन्ति।

के कारणभूत पुद्गलों का संचय, सिंह, व्याघ्र आदि में तीक्ष्ण नख, दाँत तथा सिंगी, वत्स्यनाभि, धतूरा आदि विषैले वृक्ष पर का घात करने वाले हैं।

श्वास लेने को उच्छ्वास कहते हैं। जिस कर्म के उदय से जीव उच्छ्वास और निःश्वास को करने में समर्थ होता है, उस कर्म की 'उच्छ्वास' यह संज्ञा है, यहाँ कारण में कार्य का उपचार है।

तपने को 'आतप' कहते हैं। यदि आतप नामकर्म न हो तो सूर्य के मण्डल में पृथ्वीकायिक जीव के शरीर में आतप — तपन का अभाव हो जावेगा। उष्णता, प्रकाश और आतप ये एकार्थवाची हैं।

उद्योतन — चमकने का नाम उद्योत है। यदि यह नामकर्म न होवे तो चन्द्रमा, नक्षत्र, तारा और जुगनू आदि के शरीरों में उद्योत — प्रकाश नहीं हो सकेगा, किन्तु ऐसा नहीं है, इनमें प्रकाश पाया जाता है।

'विहायस्' नाम आकाश का है। आकाश में गमन को विहायोगति कहते हैं। जिन कर्मस्कंधों के उदय से जीव का आकाश में गमन होता है उनकी 'विहायोगति' यह संज्ञा है।

शंका — तिर्यच और मनुष्यों का भूमि में गमन किस कर्म के उदय से होता है ?

समाधान — विहायोगति नामकर्म के उदय से, क्योंकि 'वितस्तिमात्र' पांव वाले जीव प्रदेशों के द्वारा भूमि को व्याप्त करके जीव के समस्त प्रदेशों का आकाश में गमन पाया जाता है।

जिन त्रस आदि से लेकर अयशकीर्ति पर्यंत नामकर्मों के उदय से जीव त्रस आदि पर्यायों को प्राप्त करते हैं, उनकी 'त्रस' आदि संज्ञायें हैं। त्रस-स्थावर, बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त, प्रत्येकशरीर-साधारण शरीर, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुभग-दुर्भग, सुस्वर-दुःस्वर, आदेय-अनादेय, यशकीर्ति-अयशकीर्ति ये बीस प्रकृतियां नामकर्म की हैं। इनमें से किन्हीं-किन्हीं प्रकृतियों का विशेष अर्थ यहाँ कहते हैं —

अत्र कासाञ्चित् प्रकृतीनां विशेषः कथ्यते — स्थिरनामकर्मणः उदयेन जीवस्य रसरुधिरमेदमज्जा-स्थिमांसशुक्राणां स्थिरत्वमविनाशः अगलनं भवति, हानिवृद्धिभ्यां बिना अवस्थानदर्शनात्। अस्थिरनामकर्मणः उदयेन जीवस्य एषां रसरुधिरादिसप्तधातूनां परिणमनं भवति।

“अत्रोपयोगी श्लोकः —

रसाद् रक्तं ततो मांसं, मांसान्मेदः प्रवर्तते।

मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्झः शुक्रं ततः प्रजा।।

पंचदशाक्षिनिमेषा काष्ठा। त्रिंशत्काष्ठा कला, विंशतिकलो मुहूर्तः, कलाया दशमभागश्च त्रिंशन्मुहूर्तं च भवत्यहोरात्रम्। पंचदश अहोरात्राणि पक्षः। पंचवीसकलासयाइं चउरसीदिकलाओ च तिहि-सत्तभागेहि पदिहीणणवकट्ठाओ च रसो रससरूवेण अच्छिय रुहिरं होदि। तं हि तत्तियं चेव कालं तत्थच्छिय मांससरूवेण परिणमइ। एवं सेसधादूणं पि वत्तव्वं। एवं मासेण रसो सुक्करूवेण परिणमइ। एवं जस्स कम्मस्स उदरेण धादूणं कमेण परिणामो होदि तमथिरमिदि उत्तं होदि^१।”

अस्यास्थिरनामकर्मणोऽभावे क्रमनियमो न भवेत्, न च एवं अनवस्थानात्। सप्तधातुहेतुकर्माणि वक्तव्यानि ? न, तेषां शरीरनामकर्मणः उत्पत्तेः।

सप्तधातुविरहितविग्रहगतौ अपि स्थिरास्थिरयोः उदयदर्शनात् न अनयोः तत्र व्यापारः इति ?

स्थिर नामकर्म के उदय से जीव के रस, रुधिर, मेदा, मज्जा, अस्थि, मांस और शुक्र इन सात धातुओं की स्थिरता — अविनाश व अगलन होता है अर्थात् गलन नहीं होता है वह स्थिर नामकर्म है, क्योंकि हानि और वृद्धि के बिना इन धातुओं का अवस्थान देखा जाता है। अस्थिर नामकर्म के उदय से जीव के इन रस, रुधिर आदि सातों धातुओं का परिणमन होता है। यहाँ उपयोगी श्लोक दिखाते हैं —

रस से रक्त बनता है, रक्त से मांस, मांस से मेदा, मेदा से हड्डी, हड्डी से मज्जा और मज्जा से शुक्र उत्पन्न होता है तथा शुक्र से प्रजा — संतान उत्पन्न होती है।।

पन्द्रह नयन — निमेषों की एक काष्ठा होती है, तीस काष्ठा की एक कला होती है, बीस कला का एक मुहूर्त होता है, तीस मुहूर्त और कला के दसवें भाग कलाप्रमाण एक अहोरात्र — दिन-रात होता है। पन्द्रह अहोरात्रों का एक पक्ष होता है।

पच्चीस सौ चौरासी कला प्रमाण तथा तीन बटे सात भागों से परिहीन नौ काष्ठा प्रमाण (२५८४ कला, ८-४/७ का) काल तक रस रसस्वरूप से रहकर रुधिररूप परिणत होता है। वह रुधिर भी उतने ही काल तक रुधिररूप से रहकर मांसरूप से परिणत होता है। इसी प्रकार शेष धातुओं का भी परिणमन काल कहना चाहिये। इस प्रकार एक महीने के द्वारा रस शुक्र रूप से परिणत होता है। इस तरह जिस कर्म के उदय से धातुओं का क्रम से परिणमन होता है, वह अस्थिर नामकर्म कहा जाता है। इस अस्थिर नामकर्म के अभाव में धातुओं के क्रमशः परिवर्तन का नियम न रहेगा, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि वैसा मानने पर अनवस्था प्राप्त होगी।

शंका — इन सातों धातुओं के कारणभूत पृथक्-पृथक् कर्म कहना चाहिये ?

समाधान — नहीं, क्योंकि इन सातों धातुओं की शरीर नामकर्म से उत्पत्ति होती है।

शंका — सात धातुओं से रहित विग्रहगति में भी स्थिर-अस्थिर दोनों प्रकृतियों का उदय देखा जाता है, इसलिये इनका वहाँ पर व्यापार नहीं मानना चाहिये ?

नैतद् आशंकनीयं, सयोगिकेवलिभगवतां परघातस्य इव तत्र स्थिरास्थिरयोः अव्यक्तोदयेन अवस्थानात्।
 स्त्रीपुरुषयोः सौभाग्यनिर्वर्तकं सुभगं, तद्विपरीतं दुर्भगं।
 एकेन्द्रियादिषु अव्यक्तचेष्टेसु कथं सुभगदुर्भगभावौ ज्ञायेते ?
 न, तत्रापि तेषां अव्यक्तानां आगमेन अस्तित्वसिद्धेः।

यशः गुणः, तस्य उद्भावनं कीर्तिः। यस्य कर्मणः उदयेन सतामसतां वा गुणानां उद्भावनं कीर्तनं लोकैः क्रियते, तस्य कर्मणः यशःकीर्तिसंज्ञा। तद्विपरीतस्य अयशःकीर्तिसंज्ञा।

नियतं मानं निमानं, तद्विविधं — प्रमाणनिमानं संस्थाननिमानं इति। यस्य कर्मणः उदयेन जीवानां द्वे अपि निमाने भवतः, तस्य कर्मणः निमानमिति संज्ञा। यदि प्रमाणनिमानं न भवेत्, तर्हि जंघा-बाहु-शिरः-नासिकादीनां विस्तारायामाः लोकांतविसर्पिणो भवेयुः। न चैवं, अनुपलंभात्। ततः कालं जातिं चाश्रित्य जीवानां प्रमाणनिर्वर्तकं कर्म प्रमाणनिमानं नाम। यदि संस्थाननिमाननामकर्म न भवेत्, तर्हि अंगोपांगप्रत्यंगानि संकरव्यतिकरस्वरूपेण भवेत्। न चैवं, अनुपलंभात्। ततः कर्णनयननासिकादीनां स्वजाति-अनुरूपेण स्वस्वात्मनः स्थाने यन्नियामकं कर्म, तत्संस्थाननिमानमिति।

यस्य कर्मणः उदयेन जीवस्य त्रिलोकपूजा भवति तत् तीर्थकरनामकर्म भवतीति।

समाधान — ऐसी आशंका नहीं करना चाहिये, क्योंकि विग्रहगति में उन प्रकृतियों का अव्यक्त उदयरूप से अवस्थान है, जैसे कि सयोगकेवली भगवान के परघात प्रकृति का अव्यक्तोदय स्वरूप से अवस्थान है।

स्त्री और पुरुषों के सौभाग्य को उत्पन्न करने वाला सुभग नामकर्म है। उन स्त्री-पुरुषों के ही दौर्भाग्य को उत्पन्न करने वाला दुर्भग नामकर्म है।

शंका — पुनः अव्यक्त चेष्टा वाले एकेन्द्रिय आदि जीवों में ये सुभग भाव और दुर्भग भाव कैसे जाने जायेंगे ?

समाधान — ऐसा नहीं कहना, क्योंकि उनमें भी अव्यक्तरूप से विद्यमान उन भावों का आगम से अस्तित्व सिद्ध है।

यश नाम गुण का है, उसके उद्भावन — प्रकटीकरण को कीर्ति कहते हैं। जिस कर्म के उदय से विद्यमान या अविद्यमान गुणों का उद्भावन लोगों द्वारा किया जाता है, उस कर्म को 'यशःकीर्ति' यह नाम है। जिस कर्म के उदय से विद्यमान या अविद्यमान अवगुणों का उद्भावन — कथन लोगों द्वारा किया जाता है वह 'अयशःकीर्ति' नामकर्म है।

नियत मान को निमान — निर्माण कहते हैं, इसके दो भेद हैं — प्रमाण निर्माण और संस्थान निर्माण। जिस कर्म के उदय से जीवों के दोनों ही प्रकार के निर्माण होते हैं, उस कर्म की 'निमान' — निर्माण यह संज्ञा है। यदि प्रमाणनिर्माण कर्म न होवे तो जंघा, बाहु, शिर और नासिका आदि का विस्तार और आयाम लोक के अन्त तक फैलने वाले हो जावेंगे, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता। इसलिये काल का और जाति का आश्रय करके जीवों के प्रमाण को निर्माण करने वाला — बनाने वाला 'प्रमाण निर्माण' नामकर्म है। यदि संस्थाननिर्माण नामकर्म नहीं होगा, तो अंग, उपांग और प्रत्यंग संकर और व्यतिकररूप से हो जावेंगे, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता। इसलिये कान, नेत्र, नाक आदि अंगों का अपनी जाति के अनुरूप अपने-अपने स्थान पर जो नियामक कर्म है, वह 'संस्थान निर्माण' नामकर्म कहलाता है।

जिस कर्म के उदय से जीव को तीन लोकों में पूजा प्राप्त होती है वह 'तीर्थकर' नामकर्म कहलाता है।

तात्पर्यमेतत्—एताः नामकर्मप्रकृतिः ज्ञात्वा अशुभनामकर्माणि तेषां कारणाणि च त्यक्त्वा शुभकर्मसु तेषां कारणेषु च प्रयत्नो विधेयः। तीर्थकरप्रकृतिबंधकर्तृणां पंचकल्याणकप्राप्तानां भगवतां अर्हतां भक्तिः विधातव्या भवद्भिः इति। एवं नामकर्मणां द्विचत्वारिंशत् पिंडप्रकृतीनां नामकथनं संक्षिप्तलक्षणं च प्रतिपादितं भवति।

अधुना गतिजातिकर्मणोः भेदप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

जं तं गदिणामकम्मं तं चउव्विहं, णिरयगदिणामं तिरिक्खगदिणामं
मणुसगदिणामं देवगदिणामं चेदि।।२९।।

जं तं जादिणामकम्मं तं पंचविहं, एइंदियजादिणामकम्मं वीइंदिय-
जादिणामकम्मं तीइंदियजादिणामकम्मं चउरिंदियजादिणामकम्मं
पंचिंदियजादिणामकम्मं चेदि।।३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यस्य कर्मणः उदयेन नारकभावो जीवानां भवति, तत्कर्म नरकगतिरिति उच्यते, कारणे कार्योपचारात्। एवं शेषगतीनामपि ज्ञातव्यं।

एकेन्द्रियाणां एकेन्द्रियैः सह एकेन्द्रियभावेन यस्य कर्मणः उदयेन सदृशत्वं भवति, तत्कर्म एकेन्द्रियजातिनाम। तदपि अनेकप्रकारं, अन्यथा जंबू-निंब-आम्र-जंभीर-कदम्ब-आमलक-शालि-व्रीहि-यवगोधूमादिजातीनां भेदानुपपत्तेः। एवं द्वीन्द्रियादीनां अपि ज्ञातव्यं भवति, किंच प्रत्येकं जातीनां जीवानां अनेक प्रकाराणि सन्ति।

यहाँ तात्पर्य यह समझना कि इन सभी नामकर्म की प्रकृतियों को जानकर अशुभ नाम कर्मों को और उनके कारणों को छोड़कर शुभ कर्मों में और उनके कारणों में प्रयत्न करना चाहिये। तथा च—तीर्थकर प्रकृति के बंध के कर्ता, पंचकल्याणक पूजा को प्राप्त ऐसे अर्हत भगवन्तों की हमें और आपको भक्ति करना चाहिये।

इस प्रकार नामकर्मों की बयालीस पिंडप्रकृतियों के नाम का कथन और संक्षिप्त लक्षण का यहाँ प्रतिपादन किया गया है।

अब गति और जाति कर्मों के भेदों का प्रतिपादन करने के लिये दो सूत्र अवतार लेते हैं—

सूत्रार्थ—

जो गति नामकर्म है वह चार भेदरूप है—नरकगति नामकर्म, तिर्य्यचगति नामकर्म,
मनुष्यगति नामकर्म और देवगति नामकर्म।।२९।।

जो जातिनामकर्म है वह पाँच भेदरूप है—एकेन्द्रिय जाति नामकर्म, द्वीन्द्रियजाति
नामकर्म, त्रीन्द्रियजाति नामकर्म, चतुरिन्द्रियजाति नामकर्म और पंचेन्द्रियजति नामकर्म।।३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जिस कर्म के उदय से जीवों के नारक भाव होता है, वह कर्म 'नरकगति' कहलाता है क्योंकि कारण में कार्य का उपचार है। इसी प्रकार शेष गतियों की व्याख्या भी जानना चाहिये।

जिस कर्म के उदय से एकेन्द्रिय जीवों की एकेन्द्रिय जीवों के साथ एकेन्द्रिय भाव से सदृशता होती है वह कर्म एकेन्द्रिय जाति नाम से कहा जाता है। वह भी अनेक प्रकार का है, अन्यथा जामुन, नीम, आम, नींबू, कदम्ब, इमली, शालि, ब्रीहि, जौ, गेहूँ आदि जातियों का भेद नहीं हो सकेगा। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय आदि जीवों का भी जानना चाहिये, क्योंकि प्रत्येक जाति के जीवों में अनेक प्रकार होते हैं।

अधुना औदारिकादिशरीर-बंधन-संघातानां भेदप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते-

जं तं सरीरणामकम्मं तं पंचविहं, ओरालियसरीरणामं वेउव्वियसरीरणामं
आहार सरीरणामं तेयासरीरणामं कम्मइयसरीरणामं चेदि।।३१।।

जं तं सरीरबंधणणामकम्मं तं पंचविहं, ओरालियसरीरबंधणणामं
वेउव्वियसरीर-बंधणणामं आहारसरीरबंधणणामं तेयासरीरबंधणणामं
कम्मइयसरीरबंधणणामं चेदि।।३२।।

जं तं सरीरसंघादणामकम्मं तं पंचविहं, ओरालियसरीरसंघादणामं
वेउव्वियसरीर-संघादणामं आहारसरीरसंघादणामं तेयासरीरसंघादणामं
कम्मइयसरीरसंघादणामं चेदि।।३३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यस्य कर्मणः उदयेन आहारवर्गणायाः पुद्गलस्कंधाः जीवेनावगाढदेशस्थिताः
रसरुधिरमांसमेदास्थिमज्जाशुक्रस्वभावौदारिकशरीरस्वरूपेण परिणमन्ति तस्यौदारिकशरीरसंज्ञा। यस्य यस्य
कर्मणः उदयेन आहारवर्गणायाः स्कंधाः अणिमाद्यष्टगुणोपलक्षित शुभाशुभात्मकवैक्रियिकशरीरस्वरूपेण
परिणमन्ति तस्य वैक्रियिकशरीरमिति संज्ञा। यस्य कर्मणः उदयेन आहारवर्गणास्कंधाः आहारशरीरस्वरूपेण

अब औदारिक शरीर आदि एवं औदारिक बंधन-संघातादि के भेदों के प्रतिपादन करने के लिये तीन
सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

जो शरीर नामकर्म है वह पाँच प्रकार का है—औदारिक शरीर नामकर्म,
वैक्रियकशरीर नामकर्म, आहारकशरीर नामकर्म, तैजसशरीर नामकर्म और कर्मणशरीर
नामकर्म।।३१।।

जो शरीरबंधन नामकर्म है वह पाँच प्रकार का है—औदारिकशरीरबंधन नामकर्म,
वैक्रियकशरीरबंधन नामकर्म, आहारकशरीरबंधन नामकर्म, तैजसशरीरबंधन नामकर्म
और कर्मणशरीरबंधन नामकर्म।।३२।।

जो शरीरसंघात नामकर्म है वह पाँच प्रकार का है—औदारिकशरीरसंघात नामकर्म,
वैक्रियकशरीरसंघात नामकर्म, आहारकशरीरसंघात नामकर्म, तैजसशरीरसंघात नामकर्म
और कर्मणशरीरसंघात नामकर्म।।३३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — जिस कर्म के उदय से जीव के द्वारा अवगाहित — अधिष्ठित देश में
स्थित आहारवर्गणा के पुद्गलस्कंध रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा और शुक्रस्वभाव वाले औदारिक
शरीर स्वरूप से परिणत होते हैं, उस कर्म की 'औदारिक शरीर' यह संज्ञा है। जिस कर्म के उदय से आहार
वर्गणा के स्कंध अणिमा, महिमा आदि आठ गुणों से उपलक्षित शुभ और अशुभरूप वैक्रियकशरीरस्वरूप से
परिणत होते हैं उस कर्म की 'वैक्रियकशरीर' यह संज्ञा है। जिस कर्म के उदय से आहारवर्गणा के स्कंध

परिणमन्ति तस्य आहारशरीरमिति संज्ञा। यस्य कर्मणः उदयेन तैजसवर्गणास्कंधाः निःसरणानिःसरण-
प्रशस्ताप्रशस्त-तैजसशरीरस्वरूपेण परिणमन्ति तत् तैजसशरीरं नाम, कारणे कार्योपचारात्। यस्य कर्मण
उदयः कूष्माण्डफलस्य वृत्तमिव सर्वकर्माश्रयभूतः तस्य कर्मणशरीरमिति संज्ञा।

यस्य कर्मणः उदयेन औदारिकशरीरपरमाणवः अन्योऽन्येन बंधमागच्छन्ति तदौदारिकशरीरबंधनं
नाम। एवं शेषशरीरबंधनानां लक्षणं ज्ञातव्यं।

यस्य कर्मणः उदयेन औदारिकशरीरस्कंधानां शरीरभावमुपगतानां बंधननामकर्मोदयेन एकबंधनबद्धानां
छिद्राहित्यं-मृष्टत्वं भवति तदौदारिकसंघातं नाम। एवं शेषशरीरसंघातानामपि अर्थो वक्तव्यः।

संप्रति संस्थानस्य सभेदलक्षणप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

**जं तं सरीरसंठाणणामकम्मं तं छव्विहं, समचउरसरीरसंठाणणामं
णग्गोहपरिमंडल सरीरसंठाणणामं सादियसरीरसंठाणणामं खुज्जसरीर-
संठाणणामं वामणसरीरसंठाणणामं हुंडसरीरसंठाणणामं चेदि।।३४।।**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — समं चतुरस्त्रं समचतुरस्त्रं समविभक्तमित्यर्थः न्यग्रोधो वटवृक्षः तस्य परिमंडलमिव
न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थानं, आयतवृत्तमित्यर्थः। स्वातिर्वल्मीकः शाल्मलिर्वा तस्य संस्थानमिव, अधो विशालं

आहारकशरीरस्वरूप से परिणत होते हैं उस कर्म की 'आहारकशरीर' यह संज्ञा है। जिस कर्म के उदय से
तैजसवर्गणा के स्कंध निःसरण-अनिःसरण रूप अर्थात् बाहर निकलने और नहीं निकलने रूप तथा प्रशस्त
या अप्रशस्त स्वरूप तैजस शरीर स्वरूप से परिणत होते हैं, वह 'तैजसशरीर' नामकर्म कहलाता है क्योंकि
यहाँ कारण में कार्य का उपचार किया जाता है।

जिस कर्म का उदय कूष्माण्ड फल के वेंट (डंठल) के समान सर्व कर्मों के आश्रयभूत हो उस कर्म
की 'कर्मण शरीर' यह संज्ञा है।

जिस कर्म के उदय से औदारिकशरीर के परमाणु परस्पर में बंध को प्राप्त होते हैं, उसे औदारिक
शरीरबंधन नामकर्म कहते हैं। इसी प्रकार शेष शरीर सम्बन्धी बन्धनों का भी अर्थ कहना चाहिये।

जिस कर्म के उदय से औदारिक शरीर के स्कंध, जो शरीर भाव को प्राप्त हुये हैं तथा जो बंधन
नामकर्म के उदय से एकबंधन से बद्ध हैं उनका छिद्ररहितपने से मिलना हो जाता है, उनको 'औदारिकशरीरसंघात'
नामकर्म कहते हैं। इसी प्रकार से शेष सभी शरीरसंघातों के भी अर्थ को जानना चाहिये।

अब संस्थान के भेद और लक्षण को प्रतिपादित करने के लिये सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

**जो शरीर संस्थान नामकर्म है वह छह प्रकार का है — समचतुरस्त्रशरीरसंस्थान
नामकर्म, न्यग्रोध परिमंडलशरीरसंस्थान नामकर्म, स्वातिशरीरसंस्थान नामकर्म,
कुब्जकशरीरसंस्थान नामकर्म, वामनशरीरसंस्थान नामकर्म और हुण्डकशरीरसंस्थान
नामकर्म।।३४।।**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — समान चतुरस्त्र — समविभक्त को 'समचतुरस्त्र' कहते हैं। न्यग्रोध वटवृक्ष
को कहते हैं, उसके परिमंडल के समान परिमण्डल जिस शरीर का होता है उसे न्यग्रोधपरिमण्डल कहते हैं

उपरि हीनमिति स्वातिसंस्थानं। कुब्जस्य शरीरं कुब्जशरीरं तस्य संस्थानमिव। यस्य कर्मणः उदयेन शाखाणां दीर्घत्वं मध्यभागस्य ह्रस्वत्वं च भवति तत् कुब्जशरीरसंस्थानं। वामनस्य शरीरं, वामनशरीरस्य संस्थानमिव संस्थानं यस्य तद् वामनशरीरसंस्थानं। विषमपाषाणभरितमशक इव विषमः। विषमं हुंडं, तस्य संस्थानमिव यस्य शरीरस्य तद् हुंडसंस्थानं शरीरं। यस्य कर्मणः उदयेन पूर्वोक्तपंचसंस्थानेभ्यः व्यतिरिक्तमन्यसंस्थानं उत्पद्यते एकत्रिंशद्भेदभिन्नं तद् हुंडसंस्थानसंज्ञितं भवति।

इमानि षडपि संस्थानानि स्वस्वकर्मणां उदयेन भवन्ति। उत्तमं संस्थानं तु प्रथममेव। उक्तं चान्यत्रापि — “तत्रोर्ध्वाधोमध्येषु समप्रविभागेन शरीरावयवसंनिवेशव्यवस्थापनं कुशलशिल्पिनिर्वर्तितसमस्थितिचक्रवत् अवस्थानकरं समचतुरस्रसंस्थाननाम^१।” हुंडशरीरसंस्थानस्य एकत्रिंशद्भेदाः कथ्यन्ते —

अग्रे स्थानसमुत्कीर्तनचूलिकायां धवलाटीकाकारेण कथितं — “सव्वावयवेषु णियदसरूपपंचसंठाणेषु वे-तिण्णि-चदु-पंचसंठाणाणं संजोगेणं हुंडसंठाणमणेयभेदभिण्णमुप्पज्जदि।” अस्यायमर्थः — द्विसंयोगिभंगाः

ऐसा जो शरीर का संस्थान वह ‘न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान’ है, अर्थात् आयतवृत्त शरीर संस्थान होता है।

स्वाति नाम ‘बल्मीक’ या शाल्मलि वृक्ष का है, उसके समान आकार जिनका हो, यह शरीर नाभि से नीचे विशाल और ऊपर सूक्ष्म या हीन होता है, वह ‘स्वातिसंस्थान’ नामकर्म है।

कुबड़े शरीर को कुब्ज शरीर कहते हैं उस आकार के समान आकार वाला ‘कुब्जशरीरसंस्थान’ है। जिस कर्म के उदय से शाखाओं के दीर्घता और मध्यभाग के ह्रस्वता होती है उसकी ‘कुब्जशरीरसंस्थान’ यह संज्ञा है।

बौने के शरीर को ‘वामन’ कहते हैं। वामन शरीर के आकार के समान जिनका संस्थान हो वह ‘वामनशरीरसंस्थान’ कहलाता है।

जिसमें विषम — अनेक आकार वाले पाषाणों से भरी हुई मशक के समान सब ओर से विषम आकार हो वह ‘हुण्ड’ है। हुण्ड के शरीर को हुण्ड शरीर कहते हैं, उसके आकार के समान आकार वाले को ‘हुण्डशरीरसंस्थान’ कहते हैं।

जिस कर्म के उदय से पूर्वोक्त पाँचों संस्थानों से अतिरिक्त, इकतीस भेदयुक्त अन्य संस्थान — आकार उत्पन्न होता है वह ‘हुण्डसंस्थान’ इस संज्ञा को प्राप्त है।

ये छहों ही संस्थान अपने-अपने कर्मों के उदय से होते हैं। इनमें से उत्तमसंस्थान पहला ही है।

तत्त्वार्थराजवार्तिक ग्रन्थ में कहा भी है —

ऊर्ध्व, अधो और मध्य में समान विभक्तरूप से शरीर के अवयवों की रचना की व्यवस्था जिसमें कुशल शिल्पी से बनाये गये समान स्थिति वाले चक्र के समान अवस्थानरूप होती है वह समचतुरस्रसंस्थान नामकर्म कहलाता है।

यहाँ पर अंतिम हुण्डकसंस्थान के इकतीस भेद कहते हैं —

आगे धवलाटीकाकार श्रीवीरसेनाचार्य ने स्थान समुत्कीर्तन चूलिका में कहा है —

सर्व अवयवों में नियत स्वरूप वाले पाँच संस्थानों में से दो, तीन, चार व पाँच संस्थानों के संयोग से हुण्डक संस्थान के अनेक भेद उत्पन्न होते हैं। इस निर्देश के अनुसार हुण्डक संस्थान के द्विसंयोगी आदि इकतीस भंग होते हैं। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है —

पंच, त्रिसंयोगिभंगाः दश, चतुःसंयोगि दश, पंचसंयोगि पंच, षट्संयोगिभंगः एकः, सर्वे मिलित्वा हुंडकसंस्थानस्य एकत्रिंशद्भंगाः भवन्ति।

अधुना अंगोपांगनामकर्मणः भेदप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

जं तं सरीरअंगोवंगणामकम्मं तं तिविहं ओरालियसरीरअंगोवंगणामं वेउव्वियसरीर-अंगोवंगणामं आहारसरीरअंगोवंगणामं चेदि।।३५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रस्यार्थः सुगमः। तैजस-कर्मणशरीरयोः अंगोपांगानि न सन्ति, तयोः करचरणग्रीवाद्यवयवाभावात्।

संप्रति शरीरसंहनन भेदप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

जं तं सरीरसंघडणणामकम्मं तं छव्विहं, वज्जरिसहवडरणारायण-सरीरसंघडणणामं वज्जणारायणसरीरसंघडणणामं णारायण-सरीरसंघडणणामं अब्बणारायण-सरीरसंघडणणामं खीलियसरीर-संघडणणामं असंपत्तसेवट्ट-सरीरसंघडणणामं।।३६।।

द्विसंयोगी भंग ५, त्रिसंयोगी भंग १०, चतुःसंयोगी भंग १०, पंचसंयोगी भंग ५, षट्संयोगीभंग १, ऐसे सब मिलकर हुंडकसंस्थान के ३१ भंग होते हैं।

विशेषार्थ — द्विसंयोगी भंग $\frac{4}{1} = 4$ हैं। त्रिसंयोगी भंग $\frac{4 \times 4}{1 \times 2} = 8$ हैं। चतुःसंयोगी भंग $\frac{4 \times 4 \times 2}{1 \times 2 \times 2} = 4$ हैं।

पंचसंयोगी भंग $\frac{4 \times 4 \times 2 \times 2}{1 \times 2 \times 2 \times 2} = 4$ और छहसंयोगी भंग $\frac{4 \times 4 \times 2 \times 2 \times 2}{1 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2} = 1$ हैं।

इस प्रकार हुण्डकसंस्थान के समस्त संयोगी भंग — $4 + 10 + 10 + 4 + 1 = 31$ होते हैं।

अब अंगोपांग नामकर्म के भेद का प्रतिपादन करने के लिये सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

जो शरीर अंगोपांग नामकर्म है वह तीन प्रकार का है — औदारिक शरीरअंगोपांग नामकर्म, वैक्रियकशरीरअंगोपांग नामकर्म और आहारकशरीरअंगोपांग नामकर्म।।३५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्र का अर्थ सुगम है। तैजस और कर्मण शरीर में अंगोपांग नहीं हैं, क्योंकि इनमें हाथ, पैर, ग्रीवा आदि अवयवों का अभाव है।

अब शरीर के संहनन के भेद का प्रतिपादन करने के लिये सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

जो शरीरसंहनन नामकर्म है वह छह प्रकार का है — वज्रऋषभवज्रनाराचशरीरसंहनन नामकर्म, वज्रनाराचशरीरसंहनन नामकर्म, नाराचशरीरसंहनन नामकर्म, अर्धनाराचशरीर-संहनन नामकर्म, कीलकशरीरसंहनन नामकर्म और असंप्राप्तसृपाटिकाशरीरसंहनन नामकर्म।।३६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — संहननमस्थिसंचयः, ऋषभो वेष्टनम् वज्रवदभेद्यत्वाद्वज्रऋषभः। वज्रवन्नाराचः वज्रनाराचः, तौ द्वावपि यस्मिन् वज्रशरीरसंहनने तद्वज्रऋषभवज्रनाराचशरीरसंहननं। अस्य उदयेन वज्रास्थीनि वज्रवेष्टनेन वेष्टितानि वज्रनाराचेन कीलितानि च भवन्ति तदिदं संहननं प्रथमं। एषश्चैवास्थिबंधः वज्रऋषभवर्जितः यस्य कर्मणः उदयेन भवति तत्कर्म वज्रनाराचशरीरसंहननमिति। यस्य कर्मणः उदयेन वज्रविशेषणरहितनाराचेन कीलिताः अस्थिसंधयः भवन्ति तत् नाराचशरीरसंहननं नाम। यस्य कर्मणः उदयेन अस्थिसंधयः नाराचेन अर्द्धविद्धाः भवन्ति तदर्धनाराचशरीरसंहननं नाम। यस्य कर्मणः उदयेन वज्ररहितास्थीनि कीलितानि भवन्ति तत् कीलितशरीरसंहननं नाम। यस्य कर्मणः उदयेन अन्योऽन्यमसंप्राप्तानि सरीसृप-अस्थीनि इव शिराबद्धानि अस्थीनि भवन्ति तदसंप्राप्तसृपाटिकाशरीरसंहननं नाम। इमानि षट्संहननानि भवन्ति।

संप्रति वर्णगंधरसस्पर्शनामकर्मणां भेदसूचनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

जं तं वण्णणामकम्मं तं पंचविहं, किण्हवण्णणामं णीलवण्णणामं
रुहिरवण्णणामं हालिहवण्णणामं सुक्किलवण्णणामं चेदि।।३७।।

जं तं गंधणामकम्मं तं दुविहं, सुरहिगंधं दुरहिगंधं चेदि।।३८।।

जं तं रसणामकम्मं तं पंचविहं, तित्तणामं कडुवणामं कसायणामं
अंबणामं महरणामं चेदि।।३९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — ‘संहनन’ नाम हड्डियों के संचय का है। वेष्टन को ‘ऋषभ’ कहते हैं। वज्र के समान अभेद्य होने से ‘वज्रऋषभ’ कहलाता है। वज्र के समान जो ‘नाराच’ है वह ‘वज्रनाराच’ है। ये दोनों ही — वज्रऋषभ और वज्रनाराच जिस वज्रशरीर संहनन में होते हैं वह ‘वज्रऋषभवज्रनाराचशरीरसंहनन’ है। जिस कर्म के उदय से वज्रमय हड्डियाँ वज्रमय वेष्टन से वेष्टित और वज्रमय नाराच से कीलित होती हैं, वह ‘वज्रऋषभवज्रनाराचशरीरसंहनन’ है, यह प्रथम संहनन है। यह पूर्वोक्त ही हड्डियों का बंध जिस कर्म के उदय से वज्रऋषभ से रहित होता है, वह कर्म ‘वज्रनाराचशरीरसंहनन’ है। जिस कर्म के उदय से हड्डियों की संधियाँ वज्र विशेषण से रहित नाराच से कीलित हों, वह नाराचशरीरसंहनन नामकर्म है। जिस कर्म के उदय से हड्डियों की संधियाँ नाराच से आधी बिंधी हुई होती हैं वह अर्धनाराचशरीरसंहनन नामकर्म है। जिस कर्म के उदय से वज्ररहित हड्डियाँ और कीलें होती हैं वह कीलकशरीरसंहनन नामकर्म है। जिस कर्म के उदय से सरीसृप — सर्प की हड्डियों के समान परस्पर में असंप्राप्त और शिराबद्ध हड्डियाँ होती हैं वह असंप्राप्तसृपाटिका शरीरसंहनन नामकर्म है। ये छह संहनन होते हैं।

अब वर्ण, गंध, रस, स्पर्श नामकर्मों के भेदों को सूचित करने के लिये चार सूत्र अवतार लेते हैं —
सूत्रार्थ —

जो वर्ण नामकर्म है वह पाँच प्रकार का है — कृष्णवर्ण नामकर्म, नीलवर्ण नामकर्म, रुधिरवर्ण नामकर्म, हारिद्रवर्ण नामकर्म और शुक्लवर्ण नामकर्म।।३७।।

जो गंध नामकर्म है वह दो प्रकार का है — सुरभिगंध और दुरभिगंध।।३८।।

जो रस नामकर्म है वह पाँच प्रकार का है — तित्त नामकर्म, कटुक नामकर्म, कषाय नामकर्म, आम्ल नामकर्म और मधुर नामकर्म।।३९।।

जं तं पासणामकम्मं तं अट्ठविहं, कक्खडणामं मउवणामं गुरुअणामं लहुअणामं णिद्धणामं लुक्खणामं सीदणामं उसुणणामं चेदि।।४०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यस्य कर्मणः उदयेन शरीरपुद्गलानां कृष्णवर्ण उत्पद्यते तत्कृष्णवर्ण नाम। एवं शेषवर्णानां अपि वक्तव्यं। सुगंधदुर्गन्धयोर्ज्ञातव्यं, रसस्पर्शानामपि च मन्तव्यमिति।

संप्रति आनुपूर्वीणां भेदप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

जं तं आणुपुब्बीणामकम्मं तं चउव्विहं, णिरयगदिपाओग्गाणुपुब्बीणामं तिरिक्ख-गदिपाओग्गाणुपुब्बीणामं मणुसगदिपाओग्गाणुपुब्बीणामं देवगदिपाओग्गाणुपुब्बीणामं चेदि।।४१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यस्य कर्मणः उदयेन निरयगतिं गतस्य जीवस्य विग्रहगतौ वर्तमानस्य नरकगतिप्रायोग्यसंस्थानं भवति तन्नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीनाम। एवं शेषानुपूर्वीणाम् अपि अर्थो ज्ञातव्यः।

आसां लक्षणं अन्यत्रापि कथितं — “यदा छिन्नायुर्मनुष्यस्तिर्यग्वा पूर्वेण शरीरेण वियुज्यते तदैव नरकभवं प्रत्यभिमुखस्य तस्य पूर्वशरीरसंस्थानानिवृत्तिकारणं विग्रहगताबुदेति तन्नरकगतिप्रायोग्यानुर्व्यनाम^१।”

जो स्पर्श नामकर्म है वह आठ प्रकार का है — कर्कश नामकर्म, मृदु नामकर्म, गुरुक नामकर्म, लघुक नामकर्म, स्निग्ध नामकर्म, रूक्ष नामकर्म, शीत नामकर्म और उष्ण नामकर्म।।४०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — जिस कर्म के उदय से शरीर के पुद्गलों का वर्ण काला उत्पन्न होता है वह कृष्णवर्ण नामकर्म है। इसी प्रकार शेष वर्णों के भी जानना चाहिये। सुगंध और दुर्गन्ध कर्म के भेद भी ऐसे ही जानना और रस तथा स्पर्श के भेद भी ऐसे ही मानना चाहिये।

अब आनुपूर्वी के भेदों का प्रतिपादन करने के लिये सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

जो आनुपूर्वी नामकर्म है वह चार प्रकार का है — नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म, तिर्यचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म और देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म।।४१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — जिस कर्म के उदय से नरकगति को प्राप्त हुये जीव के विग्रहगति में वर्तमान अवस्था में नरकगति के योग्य संस्थान होता है वह नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म है। इसी प्रकार शेष आनुपूर्वी कर्मों का भी अर्थ कहना चाहिये।

इनका लक्षण अन्यत्र — तत्त्वार्थवार्तिक ग्रन्थ में भी कहा है — जिस समय मनुष्य या तिर्यच अपनी आयु को समाप्त करके पूर्व शरीर को छोड़कर नरकगति के अभिमुख होता है उस समय विग्रहगति में उसके उदय तो नरकगत्यानुपूर्वी का होता है, परन्तु नये शरीर के ग्रहण करने के पूर्व तक उस समय विग्रहगति में आत्मा के प्रदेशों का आकार पूर्व शरीर के अनुसार मनुष्य या तिर्यच का बना रहता है, यह नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म है।

संप्रति अगुरुलघु आदिप्रकृतीनां नामकथनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

अगुरुअ-लहुअणामं उवघादणामं परघादणामं उस्सासणामं आदावणामं उज्जोवणामं॥४२॥

जं तं विहायगदिणामकम्मं तं दुविहं, पसत्थविहायगदी अप्पसत्थ-विहायगदी चेदि॥४३॥

तसणामं थावरणामं बादरणामं सुहुमणामं पज्जत्तणामं, एवं जावणिमिण-तित्थयरणामं चेदि॥४४॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते। उपर्युक्तकथिताः प्रकृतयः द्वाचत्वारिंशत्पिंडप्रकृतयः आसन्। इमाः अगुरुलघ्वादिभेदरहिताः एतासां पिंडप्रकृतित्वाभावात्। यस्य कर्मणः उदयेन जीवानां सिंहकुंजरवृषभाणां इव प्रशस्ता गतिर्भवेत् सा प्रशस्तविहायोगतिः। तद्विपरीताः खरोष्ट्रशृगालानां इव अप्रशस्ता गतिर्भवेत् सा अप्रशस्तविहायोगतिः। शेषाणामर्थः ज्ञात एव।

अब अगुरुलघु आदि प्रकृतियों के नाम को कहने के लिये तीन सूत्र अवतार लेते हैं—

सूत्रार्थ—

अगुरुलघु नामकर्म, उपघात नामकर्म, परघात नामकर्म, उच्छ्वास नामकर्म, आतप नामकर्म और उद्योत नामकर्म॥४२॥

जो विहायोगति नामकर्म है वह दो प्रकार का है—प्रशस्तविहायोगति नामकर्म और अप्रशस्तविहायोगति नामकर्म॥४३॥

त्रस नामकर्म, स्थावर नामकर्म, बादर नामकर्म, सूक्ष्म नामकर्म, पर्याप्त नामकर्म इनको आदि लेकर निर्माण और तीर्थकर नामकर्म तक नामकर्म की प्रकृतियाँ हैं॥४४॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन सूत्रों का अर्थ सुगम है। उपर्युक्त 'कथित प्रकृतियाँ बयालीस पिंड प्रकृतियाँ हैं'। ये अगुरुलघु आदि प्रकृतियाँ भेद रहित हैं क्योंकि इनमें पिंड प्रकृतिपने का अभाव है।

जिस कर्म के उदय से जीवों की सिंह, हाथी, बैल आदि के समान प्रशस्त गति होती है वह प्रशस्तविहायोगति नामकर्म है। इससे विपरीत जिनकी गर्दभ, ऊँट और सियार के समान अप्रशस्तगति होती है वह अप्रशस्त विहायोगति नामकर्म है। शेष प्रकृतियों का अर्थ ज्ञात ही है।

विशेषार्थ—जो ४४वें सूत्र में 'पर्याप्त' नामकर्म तक कहकर आदि शब्द लिखा है उससे अपर्याप्त, प्रत्येकशरीर, साधारण शरीर, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुभग-दुर्भग, सुस्वर-दुःस्वर, आदेय-अनादेय, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति प्रकृतियों को लेना है। पूर्व में २८वें सूत्र में इन सभी प्रकृतियों के नाम आ चुके हैं फिर भी यहां कहने से पुनरुक्त दोष नहीं आता है क्योंकि ये सूत्रकथित प्रकृतियाँ पिंड प्रकृतियाँ भी हैं, ऐसा समझना चाहिये।

सूत्र २८ में पिंड प्रकृतियाँ बयालीस मानी हैं। पुनः सूत्र २९ से लेकर सूत्र ४४ तक गति आदि प्रकृतियों के भेद को कहते हुए नामकर्म के तिरानवे (९३) भेद कहे हैं अतः भेद न करने से—पिंडरूप से कहने से बयालीस प्रकृतियाँ हैं तथा भेद करने से तिरानवे प्रकृतियाँ हैं।

एवं अष्टमस्थले नामकर्मणां पिंडापिंडप्रकृतीनां नामकथनमुख्यत्वेन अष्टादश सूत्राणि गतानि।

अधुना गोत्रकर्मभेदप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

गोदस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ, उच्चागोदं चेव णीचागोदं चेव।।४५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — गोत्रं कुलं वंशः संतानमित्येकोऽर्थः। 'यस्योदयाल्लोकपूजितेषु कुलेषु जन्म तदुच्चैर्गोत्रम्। यदुदयाद् गर्हितेषु कुलेषु जन्मतन्नीचैर्गोत्रम्'।

एवं नवमस्थले गोत्रकर्मभेदप्रतिपादनत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

अन्तरायकर्मणः भेदप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

अंतराइयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ, दाणंतराइयं लाहंतराइयं भोगंतराइयं परिभोगंतराइयं वीरियंतराइयं चेदि।।४६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यस्य कर्मणः उदयेन दानं दानस्य विघ्नं भवति तद् दानान्तरायं। यस्योदयेन लाभं विघ्नं भवति तल्लाभान्तरायं। यस्योदयेन भोगस्य विघ्नं भवति तद् भोगान्तरायं। सकृद् भुज्यते इति भोगः तांबूल-अशनपानादिः। यस्योदयेन परिभोगस्य विघ्नं भवति तत्परिभोगान्तरायं। पुनः पुनः परिभुज्यते इति परिभोगः, स्त्रीवस्त्राभरणादिः। यस्य कर्मणः उदयेन वीर्यस्य विघ्नं भवति तद्वीर्यान्तरायं नाम। वीर्यं बलं शक्तिरित्येकोऽर्थः।

इस प्रकार आठवें स्थल में नामकर्म की पिंड-अपिंड प्रकृतियों के नाम कथन की मुख्यता से अठारह सूत्र पूर्ण हुये हैं।

अब गोत्रकर्म के भेदों का कथन करने के लिये सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

गोत्रकर्म की दो प्रकृतियां हैं — उच्चगोत्र और नीचगोत्र।।४५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — गोत्र, कुल, वंश और संतान ये पर्यायवाची शब्द हैं। जिस कर्म के उदय से लोक पूजित कुलों में जन्म होता है वह उच्चगोत्र है। जिस कर्म के उदय से लोकगर्हित कुलों में जन्म होता है वह नीचगोत्र है। ऐसा सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ में पूज्यपाद स्वामी ने कहा है।

इस प्रकार नवमें स्थल में गोत्रकर्म के भेद का प्रतिपादन करते हुये एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब अंतराय कर्म के भेद का प्रतिपादन करने के लिये सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

अन्तरायकर्म की पांच प्रकृतियां हैं — दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, परिभोगान्तराय और वीर्यान्तराय कर्म।।४६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — जिस कर्म के उदय से दान को देते हुये जीव के विघ्न होता है वह दानान्तराय कर्म है। जिस कर्म के उदय से लाभ में विघ्न आ जाता है वह लाभान्तराय कर्म है। जिस कर्म के उदय से भोग में विघ्न आ जाता है वह भोगान्तराय कर्म है। जो वस्तु एक बार भोग में आती है वह भोग है जैसे तांबूल, भोजन, पान आदि। जिस कर्म के उदय से परिभोग में विघ्न आ जाता है वह 'परिभोगान्तराय कर्म' है। जो वस्तु पुनः-पुनः भोग में काम आती है वह परिभोग है जैसे — स्त्री, वस्त्र, आभूषण आदि। जिस कर्म के उदय से वीर्य में विघ्न आता है वह वीर्यान्तराय कर्म है। यहाँ वीर्य, बल और शक्ति ये एकार्थवाची हैं।

अन्यत्र च — “यदुदयात् दातुकामोऽपि न प्रयच्छति, लब्धुकामोऽपि न लभते, भोक्तुमिच्छन्नपि न भुङ्क्ते, उपभोक्तुमभिवाञ्छन्नपि नोपभुङ्क्ते, उत्सहितुकामोऽपि नोत्सहते, त एते अन्तरायस्य पञ्च भेदाः^१ भवन्ति।”

इत्थं अष्टविधकर्मणां अष्टचत्वारिंशत् अधिक-शतानि भेदाः भवन्ति। उक्तं च — “तं पुन अट्टविहं वा अडदालसयंसंखलोगं वा।”^२

अत्र प्रकृतिसमुत्कीर्तनचूलिकायां अष्टचत्वारिंशत् अधिकशतभेदाः वर्णिताः सन्ति। एतेषां प्रत्येककर्मणां असंख्यातलोकप्रमाणा भेदाः भवितुं शक्नुवन्ति इति ज्ञातव्यं।

एवं दशमस्थले अन्तरायकर्मभेदकथनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

एतानि सर्वाणि कर्माणि यैः निर्मूलितानि शुक्लध्यानकुठारेण अस्मिन् पावागिरिसिद्धक्षेत्रे पावनपर्वतमस्तके, ताभ्यां अष्टमबलभद्ररामचन्द्रमहापुरुषस्य पट्टमहिषी महासतीसीतायाः पुत्राभ्यां अनंगलवण-मदनाकुशाभ्यां लाडनरेन्द्रादिपञ्चकोटिप्रमितमहासाधुभ्यश्च अस्माकं कोटिशः नमोनमोऽस्तु।

रामसुआ वेणिजणा लाडणरिंदाण पञ्चकोडीओ।

पावागिरिवरसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं^३।।

अत्र पावागढनिर्वाणक्षेत्रे मार्गशीर्षशुक्लाष्टम्यां^४ घोषितनवनिर्माणरचनायां निर्माधीनाः चतुर्विंशति-

अन्यत्र — सर्वार्थसिद्धि में श्री पूज्यपादस्वामी ने भी कहा है —

जिसके उदय से यह जीव देने की इच्छा रखते हुये भी नहीं दे पाता है, लाभ लेने की इच्छा होते हुये भी नहीं लाभ मिलता है, भोगने की इच्छा — खाने आदि की इच्छा होते हुये नहीं भोग कर पाता है, उपभोग की इच्छा होते हुये भी उपभोग नहीं कर पाता है, उत्साह रखते हुये भी उत्साहित नहीं हो पाता है, ये सब अन्तराय के पाँच भेद होते हैं।

इस तरह आठ प्रकार के कर्मों के एक सौ अड़तालीस भेद होते हैं।

कहा भी है — वह कर्म आठ भेदरूप है अथवा एक सौ अड़तालीस भेदरूप है, अथवा असंख्यात लोकप्रमाण भेदरूप होते हैं।

यहाँ प्रकृतिसमुत्कीर्तन चूलिका में एक सौ अड़तालीस भेद वर्णित किये गये हैं। इन प्रत्येक कर्मों में असंख्यात लोकप्रमाण भेद हो सकते हैं, ऐसा जानना चाहिये।

इस प्रकार दसवें स्थल में अन्तराय कर्म के भेद को कहते हुये एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस अधिकार का अन्त्यमंगल —

इस पावागिरि सिद्धक्षेत्र के पावन पर्वत के मस्तक पर — अग्र भाग पर जिन्होंने शुक्लध्यानरूपी कुठार के द्वारा इन सभी कर्मों को निर्मूल किया है, उन आठवें बलभद्र श्री रामचन्द्र महापुरुष की पट्टरानी महासती सीता के पुत्र — अनंगलवण और मदनाकुश को तथा लाडनरेन्द्र आदि पांच करोड़ प्रमाण महामुनियों को हमारा कोटि-कोटि नमस्कार हो, नमस्कार हो।

प्राकृत निर्वाण भक्ति में कहा है — श्री रामचन्द्र के दो पुत्र और लाडनरेन्द्र आदि पांच करोड़ महामुनियों ने पावागिरिवर शिखर से निर्वाण को प्राप्त किया है। उन सबको हमारा नमस्कार होवे।।

वर्तमान में ‘पावागढ’ नाम से प्रसिद्ध इस निर्वाण क्षेत्र पर आकर दर्शन करके मैंने मगसिर शुक्ला

१. सर्वार्थसिद्धि ८, १३। २. गोम्मटसारकर्मकांड। ३. निर्वाणकांड गा. ६। ४. मार्गशीर्ष शु. ८, वीर सं. २५२३, दि. १६-१२-१९९६ को मेरे सानिध्य में जिनकी घोषणाएं की गई हैं।

तीर्थकरसमन्वितहीं प्रतिमा श्रीऋषभदेव-महावीरस्वामिप्रतिमे द्वे सिद्धार्थक्षुल्लकेन अध्ययनरतौ लवकुशबालकौ महासती सीता चान्या अपि प्रदर्शिन्यादयः सर्वजगति मंगलं कुर्वन्तु आकर्षणकेन्द्रं च भवन्तु इदं पावनक्षेत्रं सर्वेषां क्षेमाय भवतु इति।

इति श्रीमद्भगवत् पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे षष्ठ ग्रन्थे श्रीमद्भूतबलिसूरि-
विरचितायां जीवस्थाने चूलिकायां श्रीमद्वीरसेनाचार्यकृतधवलाटीकाप्रमुखनानाग्रन्था-
धारेण विरचितायां विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यचारित्रचक्रवर्तीश्रीशांतिसागरस्य
प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागराचार्यः तस्य शिष्या जंबूद्वीपरचनाप्रेरिका
गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिंतामणिटीकायां प्रकृति-
समुत्कीर्तननाम प्रथमोऽधिकारः समाप्तः।

अष्टमी के दिन घोषित किया था कि यहाँ पर चौबीसों तीर्थकर से समन्वित 'हीं' प्रतिमा विराजमान होंगी (जोकि वहाँ विराजमान की जा चुकी हैं) तथा भगवान ऋषभदेव एवं भगवान महावीर स्वामी की दो प्रतिमायें विराजमान हों और महासती सीता के पुत्र लवण, अंकुश इनको अध्ययन कराते हुये सिद्धार्थ क्षुल्लक आदि अन्य भी प्रदर्शनी बनायी जावें। यह तीर्थ और ये प्रतिमायें सर्वजगत् में मंगल करें, आकर्षण का केन्द्र बनें। पुनरपि यह पावन तीर्थक्षेत्र सभी के क्षेम-कल्याण के लिये होवे, यही मेरी भावना है।

इस प्रकार श्रीमद् भगवान पुष्पदन्त-भूतबलि प्रणीत षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड
में श्रीमान भूतबलि आचार्य द्वारा विरचित जीवस्थान चूलिका में श्रीमान्
वीरसेनाचार्य कृत धवलाटीकाप्रमुख अनेक ग्रन्थों के आधार से,
बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर
गुरुदेव के प्रथम पट्टाधीश श्री वीरसागराचार्य, उनकी
शिष्या जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका मुझ गणिनी
ज्ञानमतीकृत सिद्धान्तचिंतामणि टीका में
प्रकृतिसमुत्कीर्तन नाम का
यह प्रथम अधिकार
पूर्ण हुआ।



अथ स्थानसमुत्कीर्तन चूलिका

द्वितीयोऽधिकारः

मंगलाचरणम्

त्रैलोक्यशीर्षगान् सिद्धान्, भववारिधिपारगान्।

प्रणुमः शिरसा भक्त्या, स्वात्मसौख्यस्य सिद्धये॥१॥

अथ षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे षष्ठग्रन्थे जीवस्थानचूलिकायां द्वादशस्थलैः सप्तदशाधिकशतसूत्रैः स्थानसमुत्कीर्तननामा द्वितीयोऽधिकारः प्ररूप्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले स्थानसमुत्कीर्तनसूचनप्रतिज्ञापनार्थं स्थानसूचनार्थं च “एत्तो” इत्यादि त्रीणि सूत्राणि वक्ष्यन्ते। तदनु द्वितीयस्थले ज्ञानावरणीयस्य स्थानकथनाय “णाणावरणीयस्स” इत्यादिसूत्रत्रयं। ततः परं तृतीयस्थले दर्शनावरण स्थानकथनप्रमुखेन “दंसणावरणीयस्स” इत्यादि दशसूत्राणि। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले वेदनीयस्य स्थाननिरूपणत्वेन “वेदणीयस्स” इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनंतरं पंचमस्थले मोहनीयस्य स्थानकथनत्वेन “मोहणीयस्स” इत्यादि त्रिंशतसूत्राणि। ततः परं षष्ठस्थले आयुर्कर्मणः स्थानप्ररूपणत्वेन “आउअस्स” इत्यादिदशसूत्राणि। तत्पश्चात् सप्तमस्थले नामकर्मणः स्थानसमुत्कीर्तने नरकगत्यपेक्षया स्थानकथनमुख्यत्वेन “णामस्स” इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु अष्टमस्थले तिर्यग्गत्यपेक्षया स्थानकथनमुख्यत्वेन “तिरिक्खगदि” इत्यादि एकविंशतिसूत्राणि। ततः परं नवमस्थले नामकर्मस्थाननिरूपणत्वेन “मनुष्यगत्यपेक्षया” मणुसगदिणामाए” इत्यादि एकादशसूत्राणि। अनंतरं दशमस्थले

स्थानसमुत्कीर्तन चूलिका नाम द्वितीय अधिकार

मंगलाचरण

जो त्रैलोक्य के मस्तक पर विराजमान हैं एवं संसार समुद्र से पार हो चुके हैं, अपने आत्मा के सौख्य को सिद्ध करने के लिये ऐसे उन सिद्धों को हम नमस्कार करते हैं।

अब यहाँ जीवस्थान चूलिका में बारह स्थलों में एक सौ सत्रह सूत्रों द्वारा यह स्थान समुत्कीर्तन नाम का दूसरा अधिकार प्ररूपित किया जा रहा है। इसमें सबसे पहले प्रथम स्थल में स्थानसमुत्कीर्तन की सूचना की प्रतिज्ञा करने के लिये और स्थान की सूचना के लिये “एत्तो” इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। पुनः द्वितीयस्थल में ज्ञानावरणीय के स्थान को कहने के लिये “णाणावरणीयस्स” इत्यादिरूप से तीन सूत्र कहेंगे। अनन्तर तीसरे स्थल में दर्शनावरणीय के स्थान कहने की प्रमुखता से “दंसणावरणीयस्स” इत्यादि दश सूत्र कहेंगे। इसके बाद चौथे स्थल में वेदनीय के स्थान का निरूपण करने के लिये “वेदणीयस्स” इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। इसके बाद पांचवें स्थल में मोहनीय कर्म के स्थान का कथन करने के लिये “मोहणीयस्स” इत्यादि तीस सूत्र कहेंगे। इसके बाद छठे स्थल में आयुर्कर्म के स्थान की प्ररूपणा करने के लिये “आउअस्स” इत्यादि दश सूत्र कहेंगे। इसके बाद सातवें स्थल में नामकर्म की स्थानसमुत्कीर्तना में नरकगति की अपेक्षा से स्थान कथन की मुख्यता करके “णामस्स” इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। इसके अनन्तर आठवें स्थल में तिर्यग्गति की अपेक्षा स्थान कथन की मुख्यता से “तिरिक्खगदि” इत्यादि इक्कीस सूत्र कहेंगे। इसके अनन्तर नवमें स्थल में नामकर्म के स्थान का निरूपण करने रूप से मनुष्यगति की अपेक्षा “मणुसगदिणामाए” इत्यादि ग्यारह सूत्र कहेंगे। अनन्तर दशवें स्थल में देवगति की अपेक्षा नामकर्म के स्थान प्रतिपादन रूप से

देवगत्यपेक्षया नामकर्मणः स्थानप्रतिपादनत्वेन “देवगदिणामाए” इत्यादिपंचदशसूत्राणि। ततश्च एकादशस्थले गोत्रकर्मणः स्थानकथनपरत्वेन “गोदस्स” इत्यादिसूत्रपंचकं। पुनश्च द्वादशस्थले अन्तरायकर्मणः स्थानप्ररूपणत्वेन “अंतराइयस्स” इत्यादिसूत्रत्रयं कथ्यन्ते इति समुदायपातनिका सूचिता भवति।

संप्रति स्थानसमुत्कीर्तनप्रतिज्ञापनार्थं सूत्रमवतरति—

एत्तो ट्ठाणसमुक्कित्तणं वण्णइस्सामो।।१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूत्रं सुगमं वर्तते। स्थानसमुत्कीर्तनस्य अर्थः क्रियते—तिष्ठन्त्यस्यां संख्यायामस्मिन् वा अवस्थाविशेषे प्रकृतयः इति स्थानम्। स्थानं स्थितिः अवस्थानमिति एकार्थः। समुत्कीर्तनं वर्णनं प्ररूपणमिति कथितं भवति। स्थानस्य समुत्कीर्तनं स्थानसमुत्कीर्तनं तद् वर्णयिष्यामः।

स्थानसमुत्कीर्तना किमर्थमागता ?

पूर्वं प्रकृतिसमुत्कीर्तनायां याः प्रकृतयः प्ररूपिताः, तासां बंधः किमक्रमेण भवति, किं क्रमेण इति पृष्टे एवं भवति इति ज्ञापनार्थं स्थानसमुत्कीर्तना आगता।

स्थानस्य लक्षणं अन्यत्रापि ग्रन्थे—“एकस्य जीवस्यैकस्मिन् समये संभवन्तीना समूहः^१ स्थानमिति। अस्य कथनं अस्यां चूलिकायामिति।

अधुना तत् स्थानं कथं कस्य कस्य वा इति प्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

“देवगदिणामाए” इत्यादि पन्द्रह सूत्र कहेंगे। इसके पश्चात् ग्यारहवें स्थल में गोत्रकर्म के स्थान को कहने वाले ‘गोदस्स’ इत्यादि पाँच सूत्र कहेंगे। इसके पश्चात् बारहवें स्थल में अन्तराय कर्म के स्थान की प्ररूपणा रूप से “अंतराइयस्स” इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। इस प्रकार समुदायपातनिका सूचित की जाती है।

अब स्थानसमुत्कीर्तन की प्रतिज्ञा के लिये सूत्र अवतार लेता है—

सूत्रार्थ—

अब इसके आगे स्थान समुत्कीर्तन का वर्णन करेंगे।।१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूत्र का अर्थ सरल है। अब यहाँ स्थानसमुत्कीर्तन का अर्थ करते हैं—जिस संख्या में या जिस अवस्था विशेष में प्रकृतियाँ रहती हैं उसे ‘स्थान’ कहते हैं। स्थान, स्थिति और अवस्थान ये एकार्थवाची हैं। समुत्कीर्तन, वर्णन और प्ररूपण इनका अर्थ एक कहा गया है। स्थान की समुत्कीर्तना को ‘स्थानसमुत्कीर्तन’ कहते हैं, हम उसका वर्णन—व्याख्या करेंगे।

शंका—यह स्थानसमुत्कीर्तन नाम की चूलिका किसलिये आई है ?

समाधान—पहले प्रकृतिसमुत्कीर्तन नाम की चूलिका में जिन प्रकृतियों का प्ररूपण कर चुके हैं, उन प्रकृतियों का बंध क्या एक साथ होता है, अथवा क्रम से होता है ? ऐसा पूछने पर ‘इस प्रकार होता है’ इस बात को बतलाने के लिये यह ‘स्थानसमुत्कीर्तना’ आई है।

स्थान का लक्षण अन्यत्र—गोम्मटसार कर्मकाण्ड ग्रन्थ में कहा है—एक जीव के एक समय में संभवित—होने वाली प्रकृतियों के समूह का नाम ‘स्थान’ है। इस स्थान का कथन इस चूलिका में कहा गया है, ऐसा समझना।

अब वह स्थान कैसे और किस-किस के होता है ? इसका प्रतिपादन करने के लिये दो सूत्र अवतार लेते हैं—

तं जहा।।२।।

तं मिच्छादिद्विस्स वा सासणसम्मादिद्विस्स वा सम्मामिच्छादिद्विस्स वा असंजद-सम्मादिद्विस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा।।३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सा स्थानसमुत्कीर्तना कथं उच्यते इति पृष्ठे 'एवं उच्यते' इति ज्ञापयन् स्थानानां चैव स्वरूपसंख्यानां प्ररूपणार्थं उत्तरसूत्रं अकथयत् श्रीभूतबलिसूरिवर्यः इति ज्ञातव्यः। "तं जहा" सूत्रस्य अर्थः।

तत्प्रकृतिस्थानं मिथ्यादृष्टेः वा सासादनसम्यग्दृष्टेर्वा सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्वा असंयतसम्यग्दृष्टेर्वा संयतासंयतस्य वा संयतस्य वा भवति, एतेभ्यः व्यतिरिक्तबंधकानामभावात्। अत्र सूत्रे प्रथमायाः अर्थे षष्ठीविभक्तिर्ज्ञातव्या, तेन मिथ्यादृष्टिस्थानमिति संबंधनीयं।

कथं तस्य स्थानव्यपदेशः ?

तिष्ठन्त्यस्मिन् बंधहेतुप्रकृतयः इति स्थानशब्दस्य व्युत्पत्तेः। अत्र 'संयतस्य' इत्युक्ते अष्टावपि संयतगुणस्थानानि गृहीतव्यानि, संयतभावं प्रति भेदाभावात्। नवमं अयोगिकेवलिगुणस्थानं न गृह्यते, तस्य बंधकत्वाभावात्।

एवं प्रथमस्थले प्रतिज्ञासूचन-स्थानस्वामिप्रतिपादनपरत्वेन सूत्रत्रयं गतं।

सूत्रार्थ —

वह स्थानसमुत्कीर्तन यह है।।२।।

वह प्रकृतिस्थान मिथ्यादृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयत के होता है।।३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — वह स्थानसमुत्कीर्तना किस प्रकार कही जाती है ? ऐसे पूछने पर 'वह इस प्रकार कही जाती है' ऐसा बतलाते हुये स्थानों के ही स्वरूपसंख्यान का निरूपण करने के लिये श्री भूतबलि आचार्यदेव आगे का सूत्र कहते हैं, ऐसा इस "तं जहा" सूत्र का अर्थ जानना चाहिये।

यह प्रकृतिस्थान मिथ्यादृष्टि जीव के या सासादन सम्यग्दृष्टि के या सम्यग्मिथ्यादृष्टि के या असंयतसम्यग्दृष्टि के या संयतासंयत के अथवा संयत के होता है, क्योंकि इनसे अतिरिक्त बंध करने वाले जीवों का अभाव है। यहाँ इस सूत्र में प्रथमा के अर्थ में षष्ठी विभक्ति का अर्थ जानना चाहिये, इससे मिथ्यादृष्टिस्थान, सासादनसम्यग्दृष्टिस्थान आदि का सम्बन्ध करना चाहिये।

शंका — मिथ्यादृष्टि आदि बंधकर्ताओं के 'स्थान' यह नाम कैसे हुआ ?

समाधान — 'बंध की कारणभूत प्रकृतियाँ जिस बंधकर्ता जीव में रहती हैं' इस प्रकार स्थान शब्द की व्युत्पत्ति करने से मिथ्यादृष्टि आदि बंधकर्ता जीवों के स्थान यह नाम सार्थक हो जाता है।

यहाँ 'संयत' इस पद के कहने से आठों ही संयतगुणस्थान ग्रहण करने चाहिये, क्योंकि संयत भाव के प्रति उनमें भेद का अभाव है। यहाँ नवमां अर्थात् अयोगकेवली गुणस्थान नहीं ग्रहण किया गया है, क्योंकि उनमें बंधक — प्रकृतिबंध के कर्तृत्व का अभाव है — वहां बंध नहीं है।

इस प्रकार प्रथमस्थल में प्रतिज्ञा की सूचना और स्थान के स्वामी के निरूपण रूप से तीन सूत्र पूर्ण हुये।

अधुना ज्ञानावरणस्य प्रकृतिनाम-स्थान-स्वामिप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

णाणावरणीयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ, आभिणिबोधियणाणा-
वरणीयं सुदणाणावरणीयं ओधिणाणावरणीयं मणपज्जवणाणावरणीयं
केवलणाणावरणीयं चेदि।।४।।

एदासिं पंचण्हं पयडीणं एक्कम्हि चेव द्वाणं बंधमाणस्स।।५।।

तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा
असंजद-सम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा।।६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — प्रकृतिसमुत्कीर्तनचूलिकायां ज्ञानावरणीयस्य पंचभेदनामानि कथितानि सन्ति।
पुनरुक्त्वात् अत्र न वक्तव्यानि सन्ति ?

नैतत्, सर्वेषां जीवानां सदृशधारणावरणीयकर्मक्षयोपशमाभावात्। यदि सर्वैर्जीवैः गृहीतार्थः
टंकोत्कीर्णाक्षरमिव न विनश्यति तर्हि पुनरुक्तदोषो भवेत्। न चैवं, जलालिखिताक्षरस्येव गृहीतार्थस्य
केषुचित् विनाशोपलंभात्। ततः भ्रष्टसंस्कारशिष्यस्मरणार्थं वक्तव्यानि इमानि सूत्रे इति।

एतासां पूर्वोक्तपञ्चानां प्रकृतीनां बंधमानस्य जीवस्य एकस्मिन्नवस्थाविशेषे पंचसंख्योपलक्षिते
स्थानमवस्थानं भवति।

अब ज्ञानावरण की प्रकृतियों के नाम, स्थान और उनके स्वामी का प्रतिपादन करने के लिये तीन सूत्र
अवतार लेते हैं —

ज्ञानावरणीय कर्म की पांच प्रकृतियां हैं — आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय,
श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मनःपर्ययज्ञानावरणीय और केवलज्ञानावरणीय
हैं।।४।।

इन पांचों प्रकृतियों के बंध करने वाले जीव का एक ही भाव में अवस्थान है।।५।।

वह बंधस्थान मिथ्यादृष्टि के, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयत-
सम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयतमुनियों के होता है।।६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — शंका — प्रकृतिसमुत्कीर्तन चूलिका में ज्ञानावरणीय के पांच भेदों के
नाम कहे जाते हैं। अतः ये पुनरुक्त होने से यहाँ इन्हें नहीं कहना चाहिये ?

समाधान — ऐसा यहाँ नहीं कहना चाहिये, क्योंकि सभी जीवों के एक सदृश धारणावरणीय कर्म के
क्षयोपशम का अभाव है। यदि सभी जीवों के द्वारा ग्रहण किया गया — जाना गया अर्थ टांकी से उकेरे गये
अक्षर के समान विनष्ट नहीं होता, तब तो पुनरुक्त दोष माना जाता, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि जल में लिखे
गये अक्षर के समान ग्रहण किये गये अर्थ का कितने ही जीवों में विनाश पाया जाता है। अतः भ्रष्ट — विनष्ट
संस्कार वाले शिष्यों के स्मरण कराने के लिये भेद और नामवाचक सूत्र कहना चाहिये।

इन पूर्व में कही गई पांचों प्रकृतियों को बांधने वाले जीव का 'पांच' इस संख्या से उपलक्षित एक ही
अवस्था विशेष में स्थान — अवस्थान होता है।

अत्र एवकारः किमर्थः ?

एकद्वित्रिचतुःसंख्योपलक्षितावस्थायां अवस्थानप्रतिषेधार्थः। सर्वेषां जीवानां दशमगुणस्थानपर्यंतं पञ्चानामेव प्रकृतीनां बंधो भवन्नास्ते।

तत्पंचसंख्योपलक्षितभावाधारबंधस्थानं प्रथमादारभ्य दशमगुणस्थानवर्तिनां यावत् भवति, नान्येषां, एतेभ्यः पृथग्भूतगुणस्थानाभावात्। सूत्रे 'संजदस्स' इति उक्ते सूक्ष्मसांपरायशुद्धिसंयतपर्यंतमेव संयतानां ग्रहणं, उपरिमानानां ज्ञानावरणबंधाभावात्।

एवं द्वितीयस्थले ज्ञानावरणबंधकानां स्थानादिकथनेन सूत्रत्रयं गतम्।

संप्रति दर्शनावरणीयस्य स्थान-प्रकृतिनाम-स्वामिप्रतिपादनाय सूत्रदशकमवतार्यते—

दंसणावरणीयस्स कम्मस्स तिण्णि, ट्ठाणाणि, णवण्हं छण्हं चदुण्हं ठाणमिदि।।७।।

तत्थ इमं णवण्हं ट्ठाणं, णिद्दाणिद्दा पयलापयला थीणगिद्दी णिद्दा य पयला य चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि।।८।।

शंका—यहाँ सूत्र में एवकार पद क्यों दिया है ?

समाधान—ज्ञानावरणीय कर्म की एक, दो, तीन और चार संख्या से उपलक्षित अवस्था में अवस्थान का निषेध करने के लिये 'एवकार' पद है। अतः अर्थापत्ति से यह सिद्ध हुआ कि सभी जीवों के दशवें गुणस्थानपर्यंत इन पांचों ही प्रकृतियों का बंध होता रहता है।

वह पांच संख्या से उपलक्षित भावों का आधारभूत बंधस्थान प्रथम गुणस्थान से प्रारम्भ कर दशवें गुणस्थानवर्ती जीवों तक होता है, अन्यो के—आगे के गुणस्थानवर्तियों—महामुनियों के नहीं, क्योंकि इनसे पृथग्भूत गुणस्थानों का अभाव है। यहाँ सूत्र में "संजदस्स"—'संयत के' ऐसा जो पद है, उससे सूक्ष्मसांपराय शुद्धिसंयत पर्यंत ही संयतों—मुनियों का ग्रहण है, क्योंकि इसके ऊपर के गुणस्थान वाले मुनियों के ज्ञानावरण प्रकृति के बंध का अभाव है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में ज्ञानावरण के बंधकर्त्ताओं के स्थानादि का कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुये।

अब दर्शनावरणीय कर्म के स्थान, प्रकृतियों के नाम और स्वामी का प्रतिपादन करने के लिये दश सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

दर्शनावरणीय कर्म के नवप्रकृतिसम्बन्धी, छहप्रकृतिसम्बन्धी और चारप्रकृतिसम्बन्धी ऐसे तीन स्थान हैं।।७।।

दर्शनावरणीय कर्म के नवप्रकृतिक बंधस्थान में निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, निद्रा, प्रचला, चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और केवलदर्शनावरणीय ये नवप्रकृतियां हैं।।८।।

एदासिं णवण्हं पयडीणं एकम्हि चेव द्वाणं बंधमाणस्स॥१॥

तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा॥१०॥

तत्थ इमं छण्हं द्वाणं, णिद्वाणिद्वा-पयलापयला-थीणगिद्धीओ वज्ज
णिद्वा य पयला य चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं
ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि॥११॥

एदासिं छण्हं पयडीणं एकम्हि चेव द्वाणं बंधमाणस्स॥१२॥

तं सम्माभिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स
वा संजदस्स वा॥१३॥

तत्थ इमं चदुण्हं द्वाणं, णिद्वा य पयला य वज्ज चक्खुदंसणावरणीयं
अचक्खुदंसणा-वरणीयं ओधिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं
चेदि॥१४॥

एदासिं चदुण्हं पयडीणं एकम्हि चेव द्वाणं बंधमाणस्स॥१५॥

इन नव प्रकृतियों के बंध करने वाले जीव का एक ही भाव में अवस्थान है॥१॥

वह नवप्रकृतिरूप प्रथम बंधस्थान मिथ्यादृष्टि के और सासादन सम्यग्दृष्टि के
होता है॥१०॥

दर्शनावरणीय कर्म का दूसरा छह प्रकृतिबंधस्थान है, उसमें निद्रानिद्रा, प्रचला
प्रचला और स्त्यानगृद्धि को छोड़कर निद्रा और प्रचला तथा चक्षुदर्शनावरणीय,
अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और केवलदर्शनावरणीय ये छह प्रकृतियां
हैं॥११॥

छह प्रकृतियों के बंध करने वाले जीव का एक ही भाव में अवस्थान होता
है॥१२॥

वह छहप्रकृतिरूप बंधस्थान सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत
और संयत के होता है॥१३॥

दर्शनावरणीय कर्म के तृतीय चार प्रकृतिक बंधस्थान में निद्रा और प्रचला को
छोड़कर चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और
केवलदर्शनावरणीय ये चार प्रकृतियां हैं॥१४॥

इन चार प्रकृतियों के बंध करने वाले जीव का एक ही भाव में अवस्थान है॥१५॥

तं संजदस्स।।१६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — भिन्नगुणस्थानाधारपेक्षया इमानि त्रीणि स्थानानि सन्ति। अत्र प्रकृतीनां पुनः नामनिर्देशः न पुनरुक्तदोषाय, किन्तु प्रकृतिबंधकारणस्थानस्य शक्तीनां संज्ञाः वर्तन्ते।

नवानां प्रकृतीनां बंधहेतु सम्यक्त्वाभावेन मिथ्यात्व-सासादनगुणस्थानवर्तिनौ एव अस्य प्रथमस्थानस्य स्वामिनौ स्तः।

षट्प्रकृतीनां बध्यमानाः संयताः अपूर्वकरणपर्यन्ताः सन्ति। तत्रापि अपूर्वकरणस्य सप्तभागेषु प्रथमभागस्थितसंयतानामेव ग्रहणं क्रियते।

चतसृणां प्रकृतीनां बंधस्थानस्य स्वामिनः संयताः, इत्युक्ते अपूर्वकरणस्य सप्तभागेषु द्वितीयभागादारभ्य सूक्ष्मसांपरायपर्यन्ताः महर्षयः भवन्ति इति।

एवं तृतीयस्थले दर्शनावरणीयस्य बंधस्थानस्वामिनिर्देशत्वेन सूत्राणि दश गतानि।

वेदनीयस्य स्थान-स्वामिप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

वेदणीयस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ, सादावेदणीयं चेव असादावेदणीयं चेव।।१७।।

एदासिं दोण्हं पयडीणं एक्कमिह चेव द्वाणं बंधमाणस्स।।१८।।

वह चार प्रकृतिरूप तृतीयबंधस्थान संयत के होता है।।१६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — भिन्न-भिन्न गुणस्थानों के आधार की अपेक्षा से ये तीन स्थान होते हैं। यहाँ प्रकृतियों का जो पुनः नाम कथन है वह पुनरुक्तदोष के लिये नहीं है, किन्तु प्रकृतिबंध के कारणभूत स्थान की शक्तियों की संज्ञायें हैं।

इन नव प्रकृतियों के बंध हेतु सम्यक्त्व के अभाव से मिथ्यात्व एवं सासादनगुणस्थानवर्ती ही इस प्रथम स्थान के स्वामी हैं।

छह प्रकृतियों को बांधने वाले संयत मुनि अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यंत हैं। उनमें भी अपूर्वकरण के सात भागों में से प्रथम भाग में स्थित संयतों का ही ग्रहण किया जाता है।

चार प्रकृतियों के बंध स्थान के स्वामी संयत हैं, ऐसा कहने पर अपूर्वकरण के सात भागों में से दूसरे भाग से प्रारम्भ करके सूक्ष्मसांपरायपर्यंत महर्षि — महामुनि होते हैं, ऐसा जानना।

इस प्रकार तृतीयस्थल में दर्शनावरणीय के बंधस्थान और उनके स्वामी को कहने रूप से दश सूत्र पूर्ण हुये हैं।

अब वेदनीय कर्म के स्थान और स्वामी का प्रतिपादन करने के लिये तीन सूत्र अवतरित होते हैं — सूत्रार्थ —

वेदनीय कर्म की सातावेदनीय और असातावेदनीय ये दो ही प्रकृतियां हैं।।१७।।

इन दोनों प्रकृतियों के बंध करने वाले जीव का एक ही भाव में अवस्थान होता है।।१८।।

तं मिच्छादिद्विस्स वा सासणसम्मादिद्विस्स वा सम्मामिच्छादिद्विस्स वा असंजद-सम्मादिद्विस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा॥१९॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अत्रापि प्रथमसूत्रे विस्मरणशीलशिष्यानुग्रहार्थ एव प्रकृतिनाम कथितं। सातासातावेदनीयप्रकृत्योः द्वयोरपि युगपत् बंधो नास्ति। तयोर्बन्धकारणविशुद्धि-संकलेशयोः अक्रमेण प्रवृत्तेरभावात्। अत्रापि “संजदस्स” इत्युक्ते यावत् सयोगिभगवन्तः तावत् गृहीतव्यं, न परतः, तत्रायोगि भगवतां अस्य स्थानस्य बंधाभावात्।

एषु संयतेष्वपि षष्ठगुणस्थानादुपरि केवलं साताप्रकृतिरेव बध्यते एतज्ज्ञातव्यं।

एवं चतुर्थस्थले वेदनीयस्थान-स्वामिप्रतिपादनत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

संप्रति मोहनीयस्य कर्मणः स्थानसंख्याप्ररूपणाय सूत्रमवतरति —

मोहणीयस्स कम्मस्स दस द्वाणाणि, वावीसाए एक्कवीसाए सत्तारसण्हं तेरसण्हं णवण्हं पंचण्हं चदुण्हं तिण्हं दोण्हं एक्किस्से द्वाणं चेदि॥२०॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इदं द्रव्यार्थिकनयसूत्रं वर्तते, स्वान्तर्निहितसमस्तार्थानां बीजीभूतत्वात्।

प्रथमस्थानस्य प्रकृतिसंख्या-स्वामिप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

वह वेदनीय कर्म सम्बन्धी बंधस्थान मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयत के होता है॥१९॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ प्रथम सूत्र में विस्मरणशील शिष्यों के अनुग्रह के लिये ही प्रकृतियों के नाम कहे हैं। सातावेदनीय और असातावेदनीय प्रकृतियों का इन दोनों का एक साथ बंध नहीं होता है, क्योंकि इन दोनों के बंध के कारण जो विशुद्धि और संक्लेश हैं, इन दोनों भावों की एक साथ — अक्रम से प्रवृत्ति का अभाव है। यहाँ भी ‘संजदस्स’ ऐसा कहने पर जहाँ तक सयोगिकेवली भगवान हैं तब तक — वहाँ तक के संयतों को लेना चाहिये उसके आगे के नहीं, क्योंकि वहाँ अयोगिकेवली भगवान के इस वेदनीयकर्म के स्थान के बंध का अभाव है।

इन संयतों में भी छठे गुणस्थान के ऊपर केवल साताप्रकृति ही बंधती है ऐसा जानना चाहिये।

इस प्रकार चौथे स्थल में वेदनीय स्थान और स्वामी का निरूपण करते हुये तीन सूत्र पूर्ण हुये।

अब मोहनीय कर्म के स्थान और संख्या का प्ररूपण करते हुये सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

मोहनीय कर्म के दश बंधस्थान हैं — बाईस प्रकृतिक, इक्कीस प्रकृतिक, सत्रह प्रकृतिक, तेरह प्रकृतिक, नव प्रकृतिक, पांच प्रकृतिक, चार प्रकृतिक, तीन प्रकृतिक, दो प्रकृतिक और एक प्रकृतिक ऐसे ये दश हैं॥२०॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यह द्रव्यार्थिकनय प्रधान सूत्र है, क्योंकि वह अपने अन्तर्निहित समस्त अर्थों के लिये बीजपदस्वरूप है।

अब प्रथमस्थान के प्रकृति, संख्या और स्वामी का प्रतिपादन करने के लिये दो सूत्र अवतार लेते हैं —

तत्थ इमं वावीसाए द्वाणं, मिच्छत्तं सोलसकसाया इत्थिवेद-पुरिसवेद-
णउंसयवेद तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्सरदि-अरदिसोग दोण्हं जुगलाणमेक्कदरं
भयदुगुंछा। एदासिं वावीसाए पयडीणं एकमिह चेव द्वाणं बंधमाणस्स।।२१।।
तं मिच्छादिट्ठिस्स।।२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — मिथ्यात्व-षोडशकषायाः ध्रुवबंधिनः, उदयेन इव बंधापेक्षया परस्परं
विरोधाभावात्। तेन तत्र एकतरशब्दः न प्रयुक्तः। त्रिवेदानां हास्यरति-अरतिशोकयुगलानां च उदयेनेव
बंधेनापि विरोधोऽस्ति इति ज्ञापनार्थं एकतरशब्दप्रयोगः कृतः। भयजुगुप्सयोः पुनः न कृतः, बंधं प्रति
विरोधाभावात्। एतासां प्रकृतीनां एकस्मिन्नेवावस्थानं भवति।

कस्य ?

मिथ्यादृष्टिजीवस्य। मिथ्यात्वस्यान्यत्र बंधाभावात्।

तदपि कुतः ?

अन्यत्र मिथ्यात्वोदयाभावात्। न च कारणेन विना कार्यस्योत्पत्तिरस्ति अतिप्रसंगात्। तस्मात्
मिथ्यादृष्टिश्चैव स्वामी। अत्र बंधभंगाः षट् भवन्ति।

सूत्रार्थ —

मोहनीय कर्म के उपर्युक्त दश बंधस्थानों में से मिथ्यात्व, अनन्तानुबंधी आदि
सोलह कषाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद इन तीनों में से कोई एक वेद, हास्य-
रति तथा अरति-शोक इन दो युगलों में से कोई एक युगल, भय और जुगुप्सा इन
बाईस प्रकृतियों का एक बंध स्थान होता है। इन बाईस प्रकृतियों के बंध करने वाले
जीव का एक ही भाव में अवस्थान है।।२१।।

यह बाईस प्रकृतिवाला बंधस्थान मिथ्यादृष्टि के होता है।।२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधी आदि सोलह कषायें ये सत्रह प्रकृतियां
ध्रुवबंधी हैं, क्योंकि उदय के समान ही बंध की अपेक्षा परस्पर में उनमें कोई विरोध नहीं है इसलिये इनके
साथ में 'एकतर' इस शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद, इन तीन वेदों का
तथा हास्य-रति और अरति-शोक इन दोनों युगलों का उदय के समान ही बंध के साथ भी विरोध है, इस बात
को बतलाने के लिये इनके साथ में 'एकतर' शब्द का प्रयोग किया है, किन्तु भय और जुगुप्सा इन दोनों
प्रकृतियों के साथ 'एकतर' शब्द का प्रयोग नहीं है, क्योंकि बंध के प्रति उनका परस्पर में कोई विरोध नहीं है।
इन बाईस प्रकृतियों का एक ही भाव में अवस्थान होता है।

शंका — किस एक भाव में अवस्थान होता है ?

समाधान — मिथ्यादृष्टि जीव के इनका अवस्थान होता है, क्योंकि मिथ्यात्व प्रकृति का मिथ्यादृष्टि
जीव के सिवाय अन्यत्र बंध नहीं होता है।

शंका — ऐसा क्यों है ?

समाधान — क्योंकि, अन्यत्र मिथ्यात्व के उदय का अभाव है, इसका भी हेतु यह है कि "कारण के

अस्यायमर्थः — द्वाविंशतिप्रकृतिषु आसु मिथ्यात्व-षोडशकषाय-भय-जुगुप्साप्रकृतयः ध्रुवबंधिन्यः, आसां मिथ्यात्वगुणस्थाने बंधो निरन्तरमेव। शेषास्त्रयोवेदाः हास्य रतियुगले अरतिशोकयुगले च अध्रुवबंधिनः सप्रतिपक्षाश्च। त्रिवेदेषु एक एव वेदः बध्यते, द्वयोर्युगलयोः एकमेव युगलं च। अतः त्रिवेदानां द्वाभ्यां युगलाभ्यां गुणिते षट् भंगाः भवन्ति।

अस्य कोष्ठकं दीयते —

स्थानं	१	+	षोडश कषायाः	+	१	+	२	+	२	= २२
१	मिथ्यात्वं		षोडश कषायाः		पुरुषवेदः		हास्य रति युगल		भयजुगुप्सायुगलं	२२
२.	"		"		स्त्रीवेदः		"		"	२२
३.	"		"		नपुंसकवेदः		"		"	२२
४.	"		"		पुरुषवेदः		अरतिशोकयुगलं		"	२२
५.	"		"		स्त्रीवेदः		"		"	२२
६.	"		"		नपुंसकवेदः		"		"	२२

विशेषः — षट्भंगानां उच्चारणक्रमोऽयं दर्शितः।

अधुना द्वितीयस्थानस्य प्रकृति-स्वामिकथनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

बिना कार्य की उत्पत्ति नहीं होती है, अन्यथा अतिप्रसंग दोष आ जावेगा। इसलिये इन बाईस प्रकृतिक बंधस्थान के मिथ्यादृष्टि जीव ही स्वामी हैं। यहाँ बंध के छह भंग होते हैं।

इसका अर्थ यह है कि इन बाईस प्रकृतियों में मिथ्यात्व, सोलह कषाय और भय-जुगुप्सा ये उन्नीस प्रकृतियां ध्रुवबंधी हैं। इनका मिथ्यात्व गुणस्थान में बंध निरन्तर ही होता है। शेष तीन वेद, हास्य-रति और अरति-शोक ये दोनों युगल अध्रुवबंधी और सप्रतिपक्षी हैं। एक साथ एक जीव में तीनों वेदों में से किसी एक वेद का और दोनों युगलों में से किसी एक युगल का ही बंध होता है। इसलिये तीनों वेदों को और दोनों युगलों को गुणित करने पर छह भंग — भेद होते हैं। इसका कोष्ठक दिया जा रहा है —

	१	+	१६	+	१	+	२	+	२	= २२
१	मिथ्यात्व		सोलह कषाय		पुरुषवेद		हास्य-रति		भय-जुगुप्सा	२२
२	"		"		स्त्रीवेद		"		"	२२
३	"		"		नपुंसकवेद		"		"	२२
४	"		"		पुरुषवेद		अरति-शोक		"	२२
५	"		"		स्त्रीवेद		"		"	२२
६	"		"		नपुंसकवेद		"		"	२२

यह छह भंगों का उच्चारण क्रम दिखाया गया है।

अब द्वितीयस्थान के प्रकृति और स्वामी के कथन हेतु तीन सूत्र अवतार लेते हैं —

तत्थ इमं एक्कवीसाए द्वाणं मिच्छत्तं णवुंसयवेदं वज्ज।।२३।।

सोलस कसाया इत्थिवेद पुरिसवेदो दोण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्सरदि-
अरदि-सोग दोण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय-दुगुंछा एदासिं एक्कवीसाए
पयडीणमेक्कमिह चेव द्वाणं बंधमाणस्स।।२४।।

तं सासणसम्मादिट्ठिस्स।।२५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — व्यतिरेकपर्यायार्थिकनयानुग्रहार्थमिदं सूत्रं प्रथमं भणित्वा विधिनयानुग्रहार्थं
द्वितीयसूत्रं भणितं। अत्र भंगाः चत्वारः। स्त्रीपुरुषवेदयोः हास्यरति-अरतिशोकयुगलाभ्यां गुणिते ($2 \times 2 = 4$)
भंगाः चत्वारो भवन्ति। अत्रापि उच्चारणक्रमः पूर्ववद् ज्ञातव्यः।

इदं स्थानं सासादनजीवस्य भवति, उपरि अनन्तानुबंधिचतुष्कस्य स्त्रीवेदस्य च बंधाभावात्।

तृतीयस्थान-प्रकृतिस्वामिप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

तत्थ इमं सत्तरसण्हं द्वाणं अणंताणुबंधिकोह-माण-माया-लोभं इत्थिवेदं
वज्ज।।२६।।

सूत्रार्थ —

मोहनीय कर्म के ऊपर कथित दश बंधस्थानों में प्रथम स्थान की बाईस प्रकृतियों में से
मिथ्यात्व और नपुंसकवेद को छोड़कर यह इक्कीस प्रकृतिक बंधस्थान होता है।।२३।।

अनन्तानुबंधी आदि सोलह कषाय, स्त्रीवेद और पुरुषवेद इन दोनों वेदों में से
कोई एक वेद, हास्य-रति और अरति-शोक इन दोनों युगलों में से कोई एक युगल,
भय और जुगुप्सा, इन इक्कीस प्रकृतियों के बंध करने वाले जीव का एक ही भाव
में अवस्थान है।।२४।।

वह इक्कीस प्रकृतिक बंधस्थान सासादन सम्यग्दृष्टि के होता है।।२५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — व्यतिरेक पर्यायार्थिक नय वाले जीवों के अनुग्रह के लिये यह प्रथम सूत्र
कहकर विधिरूप द्रव्यार्थिक नय वाले जीवों के अनुग्रह हेतु दूसरा सूत्र कहा है। यहाँ भंग चार हैं। स्त्रीवेद, पुरुषवेद
और हास्य-रति तथा अरति-शोक इन दोनों युगलों के परस्पर में गुणित करने से ($2 \times 2 = 4$) भंग होते हैं।

यहाँ भी उच्चारण क्रम पूर्व के समान जानना चाहिये।

यह द्वितीय स्थान सासादन गुणस्थानवर्ती जीव के होता है क्योंकि इसके ऊपर अनन्तानुबंधी चतुष्क
और स्त्रीवेद के बंध का अभाव है।

अब तृतीय स्थान के प्रकृति और स्वामी का प्रतिपादन करने के लिये तीन सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

द्वितीय बंधस्थान की इक्कीस प्रकृतियों में से अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया,
लोभ और स्त्रीवेद को छोड़कर यह सत्तरह प्रकृतिक तृतीय बंधस्थान होता है।।२६।।

वारस कसाय पुरिसवेदो हस्सरदि-अरदिसोग दोण्हं जुगलाणमेक्कदरं
भयदुगुंछा। एदासिं सत्तरसण्हं पयडीणमेक्कम्हि चेव द्वाणं बंधमाणस्स।।२७।।

तं सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा।।२८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — एकविंशतिप्रकृतिषु अनन्तानुबंधिचतुष्केऽपनीते सप्तदश प्रकृतयो भवन्ति। व्यतिरेकनयानुग्रहार्थं प्रथमं सूत्रं। पुनः ताः कतमाः इति पृच्छितमंदबुद्धिशिष्यानुग्रहार्थं द्वितीयसूत्रं प्रकृतिनामसूचकमस्ति।

‘एक्कम्हि’ पदेन सप्तदशसंख्यायां एतासां बंधयोग्यजीवपरिणामे वा इति गृहीतव्यं। अत्र द्वौ भंगौ भवतः। हास्यरति-अरतिशोकयुगलापेक्षया।

तृतीयगुणस्थानवर्तिनः चतुर्थगुणस्थानवर्तिनो वा अस्य स्थानस्य स्वामिनौ स्तः। उपरि अप्रत्याख्यान-चतुष्कस्य बंधाभावात्, उदयाभावाच्च।

संप्रति चतुर्थ-त्रयोदशप्रकृतिस्थान-स्वामिकथनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

तत्थ इमं तेरसण्हं द्वाणं अपच्चक्खाणावरणीयकोध-माण-माया-लोभं
वज्ज।।२९।।

अप्रत्याख्यानावरणीय आदि बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य-रति और अरति-शोक इन दोनों युगलों में कोई एक युगल, भय और जुगुप्सा, इन सत्रह प्रकृतियों के बंध करने वाले जीव का एक ही भाव में अवस्थान है।।२७।।

वह सत्रह प्रकृतिक तृतीय बंधस्थान सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि के होता है।।२८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इक्कीस प्रकृतियों में से अनन्तानुबंधी चतुष्क प्रकृतियों को निकाल देने पर सत्रह प्रकृतियां होती हैं। यहाँ प्रथम सूत्र व्यतिरेक नय वाले जीवों के अनुग्रह के लिये कहा गया है।

पुनः वे प्रकृतियां कौन-कौन हैं ? ऐसा पूछने वाले मंदबुद्धि शिष्यों के अनुग्रहार्थं प्रकृतियों के नाम को सूचित करने वाला दूसरा सूत्र है। सूत्र में जो ‘एक्कम्हि’ पद है उससे सत्रह संख्या वाले एक-एक स्थान में अथवा इनके बंधयोग्य जीव के परिणाम में उनका अवस्थान होता है ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिये। यहाँ दो भंग होते हैं — हास्य-रति और अरति-शोक युगलों की अपेक्षा से ऐसा समझना।

तृतीयगुणस्थानवर्ती अथवा चतुर्थगुणस्थानवर्ती इस स्थान के स्वामी हैं, क्योंकि ऊपर में अप्रत्याख्यानचतुष्क के बंध का अभाव है और उदय का भी अभाव है।

अब चौथे तेरह प्रकृतिक स्थान और स्वामी को कहने के लिये तीन सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

मोहनीय कर्म सम्बन्धी उपर्युक्त दश बंधस्थानों में तृतीय बंधस्थान की सत्रह प्रकृतियों में से अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभ को छोड़कर यह तेरह प्रकृतिक चतुर्थ बंधस्थान होता है।।२९।।

अट्ट कसाया पुरिसवेदो हस्सरदि-अरदिसोग दोण्हं जुगलाणमेक्कदरं
भयदुगुंछा। एदासिं तेरसण्हं पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स।।३०।।

तं संजदासंजदस्स।।३१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — 'वज्ज' इतिपदेन 'वज्जिय-वर्जयित्वा' इति गृहीतव्यं। पूर्वोक्तसप्तदशप्रकृतिषु
अप्रत्याख्यानचतुष्के अपनीते त्रयोदश प्रकृतयो भवन्ति। अत्र द्वौ भंगौ ज्ञातव्यौ। आसां स्वामी देशव्रती एव।
नवप्रकृतिस्थान-स्वामिनिरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

तत्थ इमं णवण्हं ट्ठाणं पच्चक्खाणावरणीयकोह-माण-माया-लोहं
वज्ज।।३२।।

चदुसंजलणा पुरिसवेदो हस्सरदि-अरदिसोग दोण्हं जुगलाणमेक्कदरं
भयदुगुंछा। एदासिं णवण्हं पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स।।३३।।

तं संजदस्स।।३४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमः। अत्रापि द्वौ भंगौ। 'संजदस्स' इत्युक्ते प्रमत्ताद्यपूर्वान्तानां

उनके नाम — प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ और संज्वलन क्रोध,
मान, माया, लोभ, पुरुषवेद, हास्य-रति तथा अरति-शोक इन दोनों युगलों में से कोई
एक युगल, भय और जुगुप्सा, इन तेरह प्रकृतियों के बंध करने वाले जीव का एक ही
भाव में अवस्थान होता है।।३०।।

यह तेरह प्रकृतिक चतुर्थ बंधस्थान संयतासंयत के होता है।।३१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्र में जो 'वज्ज' पद है उसे 'वज्जिय' अर्थात् छोड़ करके ऐसा अर्थ
ग्रहण करना चाहिये। पूर्वोक्त सत्रह प्रकृतियों में से अप्रत्याख्यान चतुष्क को निकाल देने पर तेरह प्रकृतियां
रहती हैं। यहाँ दो भंग जानना चाहिये। इनके स्वामी देशव्रती ही हैं।

अब नव प्रकृतियों के स्थान और स्वामी का निरूपण करने के लिये तीन सूत्र कहते हैं —

सूत्रार्थ —

मोहनीय कर्म के उक्त दश स्थानों में चतुर्थ स्थान तेरह प्रकृतिक है — उनमें से
प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभ कषाय को निकाल देने पर यह नौ
प्रकृतिक पांचवां बंध स्थान होता है।।३२।।

चारों संज्वलन कषाय, पुरुषवेद, हास्य-रति और अरति-शोक इन दोनों युगलों
में से कोई एक युगल, भय और जुगुप्सा इन नव प्रकृतियों के बंध करने वाले जीव
का एक ही भाव में अवस्थान होता है।।३३।।

वह नौ प्रकृतिक पंचम बंधस्थान संयत मुनियों के होता है।।३४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रों का अर्थ सुगम है। यहाँ भी दो भंग होते हैं। सूत्र में 'संजदस्स'

संयतानां ग्रहणं, उपरि षण्णोकषायाणां बंधाभावात् नवानां स्थानस्य संभवाभावात्।

अधुना पंचचतुः त्रि-द्वि-एकबंधस्थानानां स्वामिनां च कथनाय सूत्रपंचदशकमवतार्यते—

तत्थ इमं पंचण्हं द्वाणं हस्सरदि-अरदिसोग-भयदुगुंछं वज्ज।।३५।।

चदु संजलणं पुरिसवेदो। एदासिं पंचण्हं पयडीणमेक्कम्हि चेव द्वाणं बंधमाणस्स।।३६।।

तं संजदस्स।।३७।।

तत्थ इमं चदुण्हं द्वाणं पुरिसवेदं वज्ज।।३८।।

चदु संजलणं, एदासिं चदुण्हं पयडीणमेक्कम्हि चेव द्वाणं बंधमाणस्स।।३९।।

तं संजदस्स।।४०।।

तत्थ इमं तिण्हं द्वाणं कोधसंजलणं वज्ज।।४१।।

ऐसा कहने पर प्रमत्त मुनि से लेकर अपूर्वकरणपर्यंत के मुनियों का ग्रहण है क्योंकि ऊपर में छह नोकषायों का बंध नहीं होता है अतः आगे नव प्रकृतिरूप स्थान का होना संभव नहीं है।

अब पांच, चार, तीन, दो और एक बंध स्थानों के स्वामी का कथन करने के लिये पन्द्रह सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

मोहनीयकर्म सम्बन्धी उक्त दश बन्धस्थानों में पंचमस्थान की नौ प्रकृतियों में से हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा को छोड़कर यह पाँच प्रकृतिक छठा बन्धस्थान है।।३५।।

क्रोध आदि चारों संज्वलन कषाय और पुरुषवेद, इन पांचों प्रकृतियों के बंध करने वाले जीव का एक ही भाव में अवस्थान है।।३६।।

वह पांच प्रकृतिक छठा बन्धस्थान संयत के होता है।।३७।।

मोहनीय कर्म सम्बन्धी उक्त दश बन्धस्थानों में छठे बन्धस्थान की पांच प्रकृतियों में से पुरुषवेद को छोड़कर यह चार प्रकृतिक सातवां बन्धस्थान होता है।।३८।।

क्रोध संज्वलन, मान संज्वलन, माया संज्वलन और लोभ संज्वलन इन चारों प्रकृतियों के बंध करने वाले जीव का एक ही भाव में अवस्थान है।।३९।।

वह चार प्रकृतिक सातवां बन्धस्थान संयत के होता है।।४०।।

मोहनीय कर्म सम्बन्धी उक्त दश बन्धस्थानों में सप्तम बन्धस्थान की चार प्रकृतियों में से क्रोध संज्वलन को छोड़कर यह तीन प्रकृतिक आठवां बन्धस्थान होता है।।४१।।

माणसंजलणं मायासंजलणं लोभसंजलणं, एदासिं तिण्हं पयडीण-
मेक्कमिह चेव द्वाणं बंधमाणस्स॥४२॥

तं संजदस्स॥४३॥

तत्थ इमं दोण्हं द्वाणं माणसंजलणं वज्ज॥४४॥

मायासंजलणं लोभसंजलणं, एदासिं दोण्हं पयडीणमेक्कमिह चेव
द्वाणं बंधमाणस्स॥४५॥

तं संजदस्स॥४६॥

तत्थ इमं एक्किस्से द्वाणं मायासंजलणं वज्ज॥४७॥

लोभसंजलणं, एदिस्से एक्किस्से पयडीए एक्कमिह चेव द्वाणं
बंधमाणस्स॥४८॥

तं संजदस्स॥४९॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। यद्यपि प्रमाणानुसारिशिष्यैः एतासां नामानि अवगतानि सन्ति, तथापि शब्दानुसारिशिष्यानां अनुग्रहार्थं एव पुनः पुनः प्रकृतीनां नामानि कथितानि, अतः न पुनरुक्तदोषो मन्तव्यः।

मान संज्वलन, माया संज्वलन और लोभ संज्वलन इन तीनों प्रकृतियों के बंध करने वाले जीव का एक ही भाव में अवस्थान होता है॥४२॥

वह तीन प्रकृतिक अष्टम बंधस्थान संयत के होता है॥४३॥

मोहनीय कर्म सम्बन्धी उक्त दश बन्धस्थानों में अष्टम बंधस्थान की तीन प्रकृतियों में से मान संज्वलन को छोड़कर यह दो प्रकृतिक नौवां बंधस्थान होता है॥४४॥

माया संज्वलन और लोभ संज्वलन, इन दोनों प्रकृतियों के बन्ध करने वाले जीव का एक ही भाव में अवस्थान है॥४५॥

वह दो प्रकृतिरूप नवम बंधस्थान संयत के होता है॥४६॥

मोहनीय कर्म सम्बन्धी उक्त दश बन्धस्थानों में नवम बन्धस्थान की दो प्रकृतियों में से मायासंज्वलन को छोड़कर यह एक प्रकृतिक दसवाँ बंधस्थान होता है॥४७॥

लोभ संज्वलन, इस एक प्रकृति के बन्ध करने वाले जीव का एक ही भाव में अवस्थान है॥४८॥

वह एक प्रकृतिक दशवाँ बंधस्थान संयत के होता है॥४९॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ सूत्रों का अर्थ सुगम है। यद्यपि प्रमाणानुसारी शिष्यों के द्वारा इन

तात्पर्यमत्र — अनिवृत्तिकरणनामनवमगुणस्थाने पञ्चभागाः सन्ति, तत्र प्रथमभागे पंचप्रकृतिबंधस्थानं, द्वितीयस्थाने चतुःप्रकृतिबंधस्थानं, तृतीयभागे त्रिप्रकृतिबंधस्थानं, चतुर्थभागे द्विप्रकृतिबंधस्थानं, पंचमभागे एकप्रकृतिबंधस्थानं। एतद्बंधस्थानानि पठित्वा कदास्माकं त्रयोदशादि एकप्रकृतिपर्यंतबंधस्थानानि भविष्यन्तीति भावनां भावयद्भिः मोहनीयकर्मनिर्मूलनार्थं जिनेन्द्रदेवचरणकमलयोः प्रार्थना कर्तव्या इति।

एवं पंचमस्थले मोहनीयस्थान-प्रकृति-स्वामिकथनत्वेन त्रिंशत्सूत्राणि गतानि।

अधुना आयुर्कर्मणः स्थानसंख्या-प्रकृति-स्वामिप्रतिपादनाय सूत्रदशकमवतार्यते—

आउअस्स कम्मस्स चत्तारिपयडीओ॥५०॥

णिरआउअं तिरिक्खाउअं मणुसाउअं देवाउअं चेदि॥५१॥

जं तं णिरयाउअं कम्मं बंधमाणस्स॥५२॥

तं मिच्छादिट्ठिस्स॥५३॥

प्रकृतियों के नाम जान लिये गये हैं तथापि शब्दानुसारी शिष्यों के अनुग्रह हेतु ही पुनः-पुनः प्रकृतियों के नाम कहे गये हैं, इसलिये पुनरुक्त दोष नहीं मानना चाहिये।

यहाँ तात्पर्य यह है कि अनिवृत्तिकरण नाम के नवमें गुणस्थान में पाँच भाग हैं। उनमें से प्रथम भाग में पंचप्रकृतिक बंधस्थान हैं, द्वितीय भाग में चार प्रकृतिक बंधस्थान हैं, तृतीय भाग में तीन प्रकृतिक बंधस्थान हैं, चतुर्थ भाग में दो प्रकृतिक बंधस्थान हैं एवं पाँचवें भाग में एक प्रकृतिक बंधस्थान है। इन सभी बन्धस्थानों को पढ़कर कब हमारे ये तेरह प्रकृतिक बंधस्थान से लेकर एक प्रकृतिक बंधस्थान होवेंगे ऐसी भावना भाते हुये मोहनीय कर्म को निर्मूल नष्ट करने के लिये श्री जिनेन्द्रदेव के चरणकमलों में प्रार्थना करना चाहिये अर्थात् ये तेरह प्रकृतिक बंधस्थान देशव्रती — संयतासंयत के होता है, आगे के सभी नव प्रकृतिक आदि बंधस्थान मुनियों के ही होते हैं तथा मुनि हुये बिना श्रेण्यारोहण एवं मोहनीय कर्म का नाश संभव ही नहीं है ऐसा जानकर मोहनीय कर्म के नाश करने हेतु भावना भाते रहना चाहिये।

इस प्रकार पाँचवें स्थल में मोहनीय कर्म के स्थान, प्रकृतियाँ एवं उनके स्वामी का कथन करने रूप से तीस सूत्र पूर्ण हुये हैं।

अब आयु कर्म की स्थानसंख्या, प्रकृतियाँ और स्वामी को प्रतिपादित करने हेतु दश सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

आयु कर्म की चार प्रकृतियाँ हैं॥५०॥

नारकायु, तिर्यगायु, मनुष्यायु और देवायु, ये आयु कर्म की चार प्रकृतियाँ हैं॥५१॥

आयु कर्म की चार प्रकृतियों में जो नारकायु कर्म है उसके बंध करने वाले जीव का एक ही भाव में अवस्थान है॥५२॥

वह बन्धस्थान मिथ्यादृष्टि के होता है॥५३॥

जं तं तिरिक्खाउअं कम्मं बंधमाणस्स।।५४।।

तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा।।५५।

जं तं मणुसाउअं कम्मं बंधमाणस्स।।५६।।

तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा।।५७।।

जं तं देवाउअं कम्मं बंधमाणस्स।।५८।।

तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा।।५९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यत् सूत्रयोः आयुर्कर्मणः संख्या-नामानि कथितानि, तत् केवलं विस्मरणशीलशिष्यसंभालनार्थं एव। नरकायुः बंधस्थानं मिथ्यादृष्टेरेव, मिथ्यात्वोदयेन विना नरकायुषः बंधाभावात्। तथैव संयतासंयतादिउपरिमगुणस्थानेषु मनुष्यायुः बंधपरिणामाभावात् तस्य बंधः चतुर्थगुणस्थानपर्यन्तमेव। तृतीयगुणस्थाने चत्वार्यपि आयूषि बंधस्वरूपेण न सन्ति इति ज्ञातव्यं। तत्र

जो तिर्यगायु कर्म है, उसका बन्ध करने वाले जीव का एक ही भाव में अवस्थान है।।५४।।

वह तिर्यगायु का बन्धरूप एक प्रकृतिक स्थान मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि के होता है।।५५।।

जो मनुष्यायु कर्म है, उसका बन्ध करने वाले जीव का एक ही भाव में अवस्थान है।।५६।।

वह मनुष्यायु के बन्धरूप एक प्रकृतिक स्थान मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि के होता है।।५७।।

जो देवायु कर्म है, उसे बन्ध करने वाले जीव का एक ही भाव में अवस्थान होता है।।५८।।

वह देवायु का बन्ध रूप एक प्रकृतिक स्थान मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयत के होता है।।५९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — जो दो सूत्रों में प्रारम्भ में आयु कर्म के भेद और नाम कहे हैं वे केवल विस्मरणशील शिष्यों को समझाने के लिये ही कहे हैं।

इनमें से नरक आयु का बंधस्थान मिथ्यादृष्टि के ही होता है, क्योंकि मिथ्यात्व के उदय के बिना नरकायु का बंध नहीं हो सकता। उसी प्रकार से संयतासंयत आदि ऊपर के गुणस्थानों में मनुष्यायु के बंध के परिणामों का अभाव है, क्योंकि मनुष्यायु का बंध चौथे गुणस्थान पर्यन्त ही है। तीसरे गुणस्थान में चारों भी

एकस्यापि आयुषः स्वामित्वप्ररूपणाभावात्। देवायुषः बंधोऽपि संयतेषु संयतासंयतेषु च भवतीति ज्ञातव्यं। किंच — ‘अणुवदमहव्वदाइ ण लहइ देवाउगं मोत्तुं।’ इति ज्ञात्वा अणुव्रती महाव्रती वा भूत्वा मनुष्यजन्म सफलीकर्तव्यमिति।

एवं षष्ठस्थले आयुः कर्मणः स्थान-स्वामिकथनमुख्यत्वेन दश सूत्राणि गतानि।

अधुना नामकर्मणः स्थानसंख्या-नरकगतिस्थानप्ररूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

णामस्स कम्मस्स अट्ठ ट्ठाणाणि, एक्कत्तीसाए तीसाए एगूणतीसाए अट्ठवीसाए छब्बीसाए पणुवीसाए तेवीसाए एक्किस्से ट्ठाणं चेदि।।६०।।

तत्थ इमं अट्ठावीसाए ट्ठाणं, णिरयगदी पंचिंदियजादी वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं वेउव्वियसरीरअंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअ-लहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं अप्पसत्थविहायगई तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-अथिर-असुह-दुहव-दुस्सर-अणादेज्ज-अजसक्कित्ति-णिमिणणामं। एदासिं अट्ठावीसाए पयडीणमेक्कमिह चेव ट्ठाणं।।६१।।

आयु बंधस्वरूप से नहीं हैं ऐसा जानना चाहिये, वहाँ एक भी आयु के स्वामी की प्ररूपणा नहीं है। देवायु का बंध भी संयतों में — मुनियों के होता है क्योंकि मुनियों के तथा देशव्रती — संयतासंयतों के मनुष्यायु के सिवाय अन्य आयु का बंध होता ही नहीं है ऐसा नियम है।

गोम्मटसार में कहा भी है — देवायु को छोड़कर अणुव्रत और महाव्रत को नहीं प्राप्त करते हैं।

ऐसा जानकर अणुव्रती अथवा महाव्रती बनकर मनुष्य पर्याय को सफल करना चाहिये।

इस प्रकार छठे स्थल में आयु कर्म के स्थान और स्वामी के कथनरूप से दश सूत्र पूर्ण हुये।

अब नामकर्म के स्थान, संख्या तथा नरकगति के स्थान की प्ररूपणा करने के लिये तीन सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

नामकर्म के आठ बन्धस्थान हैं — इकतीस प्रकृतिक, तीस प्रकृतिक, उनतीस प्रकृतिक, अट्ठाईस प्रकृतिक, छब्बीस प्रकृतिक, पच्चीस प्रकृतिक, तेईस प्रकृतिक और एक प्रकृतिक बन्धस्थान।।६०।।

नामकर्म के उक्त आठ बन्धस्थानों में से यह अट्ठाईस प्रकृतिक बन्धस्थान है — नरकगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कर्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति और निर्माणनाम। इन अट्ठाईस प्रकृतियों का एक ही भाव में अवस्थान है।।६१।।

णिरयगइं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स।।६२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अत्र प्रथमसूत्रं संग्रहनयाश्रितमस्ति, बीजपदस्वरूपत्वात्, द्वितीयसूत्रे नरकगति संयुक्ताष्टाविंशति प्रकृतिस्थानं कथ्यते। नरकगत्या सह एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजातिप्रकृतयो न बध्यन्ते, विरोधात्।

एतासां सत्त्वानामक्रमेण एकजीवे वृत्तिदर्शनात् बंधोऽपि भवेत् ?

न, सत्त्वं प्रतिविरोधाभावात्। न बंधेन अविरोधः, तथोपदेशाभावात्। न च सत्तायां विरोधाभावं दृष्ट्वा बंधेऽपि तदभावो वक्तुं शक्यते, बंधसत्त्वयोरैकत्वाभावात्। एतत् अष्टाविंशानामकर्मप्रकृतिबंधस्थानं पंचेन्द्रियजाति-पर्याप्तनामकर्मसंयुक्तनरकगतिं बध्यमानस्य मिथ्यादृष्टेः भवति। उपरिमगुणस्थानेषु नरकगतेः बंधाभावात्।

एवं सप्तमस्थले नामकर्मणः स्थानानां नरकगतिबंधस्थानप्रकृतीनां कथनत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

संप्रति नामकर्मणः स्थानानां तिर्यग्गत्यपेक्षया त्रिंशत्प्रकृतिस्थानस्य च प्रतिपादनाय सूत्रसप्तकमवतार्यते —

तिरिक्खगदिणामाए पंच ट्ठाणाणि, तीसाए एगूणतीसाए छब्बीसाए पणुवीसाए तेवीसाए ट्ठाणं चेदि।।६३।।

वह अट्टाईस प्रकृतिक बन्धस्थान, पंचेन्द्रियजाति और पर्याप्त नामकर्म से संयुक्त नरकगति को बांधने वाले मिथ्यादृष्टि के होता है।।६२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ प्रथम सूत्र संग्रहनयाश्रित है, क्योंकि यह बीजपदस्वरूप है।

अगले सूत्र में नरकगति के साथ बंधने योग्य अट्टाईस प्रकृतियां बतायी हैं।

नरकगति के साथ एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जाति प्रकृतियां नहीं बंधती हैं, क्योंकि विरोध है।

शंका — इन प्रकृतियों के सत्त्व की एक साथ एक जीव में वृत्ति देखी जाती है, इसलिये बंध भी हो सकता है ?

समाधान — ऐसा नहीं है, क्योंकि सत्त्व के प्रति विरोध का अभाव है, किन्तु उन प्रकृतियों का बंध के साथ विरोध है, क्योंकि वैसा उपदेश नहीं पाया जाता है। सत्ता में विरोध के अभाव को देखकर बंध में भी उन प्रकृतियों का अभाव कहना शक्य नहीं है, क्योंकि बंध और सत्त्व में एकत्व का अभाव है।

यह अट्टाईस प्रकृति वाला बंधस्थान जो नामकर्म का है वह पंचेन्द्रिय जाति और पर्याप्त नामकर्म सहित नरकगति को बांधने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के होता है क्योंकि ऊपर के गुणस्थानों में नरकगति के बंध का अभाव है।

इस प्रकार सातवें स्थल में नामकर्म के स्थानों का एवं नरकगति के बंधस्थान और प्रकृतियों के कथनरूप से तीन सूत्र पूर्ण हुये।

अब नामकर्म के स्थानों का और तिर्यग्गति की अपेक्षा से कथन करते हुये तीस प्रकृतिक स्थान का प्रतिपादन करने हेतु सात सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

तिर्यग्गतिनामकर्म के पाँच बन्धस्थान हैं — तीस प्रकृतिक, उनतीस प्रकृतिक, छब्बीस प्रकृतिक, पच्चीस प्रकृतिक और तेवीस प्रकृतिक सम्बन्धी बन्धस्थान।।६३।।

तत्थ इमं पढमत्तीसाए द्वाणं, तिरिक्खगदी पंचिंदियजादी ओरालिय-
तेजा कम्मइय सरीरं छण्हं संट्ठाणाणमेक्कदरं ओरालियसरीरअंगोवंगं छण्हं
संघडणाणमेक्कदरं वण्णगंधरसफासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी
अगुरुवलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-उज्जोवं दोण्हं विहायगदीणमेक्कदरं
तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाण-मेक्कदरं
सुहव-दुहवाणमेक्कदरं सुस्सरदुस्सराणमेक्कदरं आदेज्ज-अणादेज्जाण-
मेक्कदरं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं च। एसासिं
पढमत्तीसाए पयडीणं एक्कमिह चेव द्वाणं॥६४॥

तिरिक्खगदिं पंचिंदियपज्जत्तउज्जोवसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छा-
दिट्ठिस्स॥६५॥

तत्थ इमं विदियत्तीसाए द्वाणं, तिरिक्खगदी पंचिंदियजादी ओरालिय-
तेजा कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं वज्ज पंचण्हं संठाणाणमेक्कदरं ओरालिय-
सरीरअंगोवंगं असंपत्तसेवट्टसंघडणं वज्ज पंचण्हं संघडणाणमेक्कदरं

नामकर्म के तिर्यगगतिसम्बन्धी उक्त पाँच बन्धस्थानों में यह प्रथम तीस प्रकृतिक बन्धस्थान है — तिर्यगगति^१, पंचेन्द्रिय जाति^२, औदारिक शरीर^३, तैजस शरीर^४, कर्मण शरीर^५, छहों संस्थानों में से कोई एक^६, औदारिक शरीरअंगोपांग^७, छहों संहननों में से कोई एक^८, वर्ण^९, गन्ध^{१०}, रस^{११}, स्पर्श^{१२}, तिर्यगगति प्रायोग्यानुपूर्वी^{१३}, अगुरुलघु^{१४}, उपघात^{१५}, परघात^{१६}, उच्छ्वास^{१७}, उद्योत^{१८}, दोनों विहायोगतियों में से कोई एक^{१९}, त्रस^{२०}, बादर^{२१}, पर्याप्त^{२२}, प्रत्येक शरीर^{२३}, स्थिर और अस्थिर इन दोनों में से कोई एक^{२४}, शुभ और अशुभ इन दोनों में से कोई एक^{२५}, सुभग और दुर्भग इन दोनों में से कोई एक^{२६}, सुस्वर और दुःस्वर इन दोनों में से कोई एक^{२७}, आदेय और अनादेय इन दोनों में से कोई एक^{२८}, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति इन दोनों में से कोई एक^{२९} और निर्माण नामकर्म^{३०}। इन प्रथम तीस प्रकृतियों का एक ही भाव में अवस्थान है॥६४॥

वह प्रथम तीस प्रकृतिक बन्धस्थान, पंचेन्द्रिय जाति, पर्याप्त और उद्योत नामकर्म से संयुक्त तिर्यगगति को बांधने वाले मिथ्यादृष्टि के होता है॥६५॥

नामकर्म के तिर्यगगतिसम्बन्धी उक्त पाँच बन्धस्थानों में यह द्वितीय तीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान है — तिर्यगगति^१, पंचेन्द्रिय जाति^२, औदारिक शरीर^३, तैजस शरीर^४, कर्मण शरीर^५, हुण्डकसंस्थान को छोड़कर शेष पाँचों संस्थानों में से कोई एक^६, औदारिक

वण्णगंधरसफासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुव-लहुअ-उवघाद-
परघाद-उस्सास-उज्जोवं दोण्हं विहायगदीणमेक्कदरं तस-बादर-पज्जत्त-
पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुहासुहाणमेक्कदरं सुहव-दुहवाणमेक्कदरं
सुस्सर-दुस्सराणमेक्कदरं आदेज्ज-अणादेज्जाणमेक्कदरं जसकित्ति-
अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं। एदासिं विदियत्तीसाए पयडीणं
एक्कम्हि चेव द्वाणं॥६६॥

तिरिक्खगदिं पंचिंदियपज्जत्तउज्जोवसंजुत्तं बंधमाणस्स तं सासणसम्मा-
दिट्ठिस्स॥६७॥

तत्थ इमं तदियत्तीसाए द्वाणं, तिरिक्खगदी वीइंदिय-तीइंदिय-चदुरिंदिय
तिण्हं जादीणमेक्कदरं ओरालिय-तेया-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं ओरालिय-
सरीरअंगोवंगं असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडणं वण्णगंधरसफासं तिरिक्खगदिपा-
ओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-उज्जोवं अप्पसत्थ-
विहायगदी तसबादरपज्जत्तपत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाण-

शरीर अंगोपांग^१, असंप्राप्तसृपाटिका संहनन को छोड़कर शेष पांचों संहननों में से कोई
एक^२, वर्ण^३, गन्ध^४, रस^५, स्पर्श^६, तिर्यग्गति प्रायोग्यानुपूर्वी^७, अगुरुलघु^८, उपघात^९,
परघात^{१०}, उच्छ्वास^{११}, उद्योत^{१२}, दोनों विहायोगतियों में से कोई एक^{१३}, त्रस^{१४}, बादर^{१५},
पर्याप्त^{१६}, प्रत्येक शरीर^{१७}, स्थिर और अस्थिर इन दोनों में से कोई एक^{१८}, शुभ और
अशुभ इन दोनों में से कोई एक^{१९}, सुभग और दुर्भग इन दोनों में से कोई एक^{२०}, सुस्वर
और दुःस्वर इन दोनों में से कोई एक^{२१}, आदेय और अनादेय इन दोनों में से कोई एक^{२२},
यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति इन दोनों में से कोई एक^{२३} तथा निर्माण नामकर्म^{२४}। इन
द्वितीय तीस प्रकृतियों का एक ही भाव में अवस्थान है॥६६॥

वह द्वितीय तीस प्रकृतिक बन्धस्थान पंचेन्द्रिय जाति, पर्याप्त और उद्योत नामकर्म
से संयुक्त तिर्यग्गति को बांधने वाले सासादनसम्यग्दृष्टि के होता है॥६७॥

नामकर्म के तिर्यग्गतिसम्बन्धी उक्त पाँच बन्धस्थानों में यह तृतीय तीस प्रकृतिक
बन्धस्थान है — तिर्यग्गति^१, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति और चतुरिन्द्रिय जाति इन
तीन जातियों में से कोई एक^२, औदारिक शरीर^३, तैजस शरीर^४, कार्मण शरीर^५,
हुण्डकसंस्थान^६, औदारिक शरीर अंगोपांग^७, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन^८, वर्ण^९, गन्ध^{१०},
रस^{११}, स्पर्श^{१२}, तिर्यग्गति प्रायोग्यानुपूर्वी^{१३}, अगुरुलघु^{१४}, उपघात^{१५}, परघात^{१६},

मेक्कदरं दुभग-दुस्सर-अणादेज्जं जसकित्ति-अजस-कित्तीणमेक्कदरं
णिमिणणामं। एदासिं तदियतीसाए पयडीणमेक्कमहि चेव द्वाणं॥६८॥

तिरिक्खगदिं विगलिंदिय-पज्जत्त-उज्जोवसंजुत्तं बंधमाणस्स तं
मिच्छादिट्ठिस्स॥६९॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अत्र प्रथमसूत्रं संग्रहनयाश्रितं, एतस्मिन् उपरि उच्यमानसर्वार्थं संभवात्।
प्रथमत्रिंशत्स्थाने एतासां अक्रमेण बंधयोग्यपरिणामे वा स्थानं भवति अत्र भंगप्रमाणं चतुःसहस्र-षट्शत-
अष्टसंख्या भवति।

तत्कथं ?

उच्यते — षट्संस्थानानां षट्संहननानां विहायोगति-स्थिर-शुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-यशःकीर्तियुगलानां
सप्तानां परस्परं गुणिते इयं संख्या भवति । ($६ \times ६ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ = ४६०८$)

उक्तं च —

संठाणे संघडणे विहायजुम्मे य चरिमछज्जुम्मे।

अविरुद्धेक्कदरादो बंधद्वाणेषु भंगा हुं॥

उच्छ्वास^{१७}, उद्योत^{१८}, अप्रशस्त विहायोगति^{१९}, त्रस^{२०}, बादर^{२१}, पर्याप्त^{२२}, प्रत्येक
शरीर^{२३}, स्थिर और अस्थिर इन दोनों में से कोई एक^{२४}, शुभ और अशुभ इन दोनों में
से कोई एक^{२५}, दुर्भग^{२६}, दुःस्वर^{२७}, अनादेय^{२८}, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति इन दोनों
में से कोई एक^{२९} तथा निर्माण नामकर्म^{३०}। इन तृतीय तीस प्रकृतियों का एक ही भाव
में अवस्थान है॥६८॥

वह तृतीय तीस प्रकृतिरूप बंधस्थान विकलेन्द्रिय, पर्याप्त और उद्योत नामकर्म
से संयुक्त तिर्यग्गति को बांधने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के होता है॥६९॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इनमें से प्रथम सूत्र संग्रहनयाश्रित है, क्योंकि, आगे कहे जाने वाले
सभी अर्थ इसमें संभव हैं।

इनमें से प्रथम तीस प्रकृतिक स्थान में अथवा इन प्रकृतियों के अक्रम से बंध योग्य परिणाम में स्थान
होता है। यहाँ भंग के प्रमाण की संख्या चार हजार छह सौ आठ है।

शंका — वह कैसे है ?

समाधान — उसे कहते हैं — छह संस्थानों को, छह संहननों को, विहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग,
सुस्वर, आदेय और यशस्कीर्ति इन सात युगलों को परस्पर में गुणित करने पर $६ \times ६ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ = ४६०८$ अर्थात् छयालीस सौ आठ भंग होते हैं।

गोम्मटसार कर्मकाण्ड में कहा भी है —

संस्थान, संहनन, विहायोगति युगल और अंतिम छह युगल, इन सभी में से एक-एक प्रकृति का बंध
पाया जाता है अतः इन सभी का ($६ \times ६ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ = ४६०८$) परस्पर में गुणा
करने पर ४६०८ भंग होते हैं।

अस्य स्थानस्य बंधकः पंचेन्द्रियपर्याप्तः उद्योतसंयुक्तः तिर्यग्गतिं बध्यमानः मिथ्यादृष्टिरेव भवति।

द्वितीय त्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थाने भंगाः द्वात्रिंशत्शतानि। अत्र पंचसंस्थान-पंचसंहनन-विहायोगत्यादि-सप्तयुगलानि, एतेषां परस्परे गुणिते त्रिसहस्राणि-द्विशतानि भवन्ति।

अंतिमसंस्थान-अन्तिमसंहनने सासादनस्य किं न बंधं आगच्छतः ?

न, तत्र तद्बन्धयोग्यतीव्रसंकलेशाभावात्। अत्रापि तिर्यग्गतिं बध्यमानस्य पंचेन्द्रिय-पर्याप्त-उद्योतसंयुक्तां सासादनसम्यग्दृष्टेः जीवस्य इदं स्थानं भवति।

तृतीयं त्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानं विकलेन्द्रियाणामेव।

कश्चिदाह — विकलेन्द्रियाणां बंधः उदयोऽपि हुंडसंस्थानमेवेति सूत्रे प्रोक्तं, नेदं घटते, तेषां षट्संस्थानोपलंभात् ?

नैष दोषः, सर्वावयवेषु नियतस्वरूपपंचसंस्थानेषु द्वि-त्रि-चतुः-पंचसंस्थानानां संयोगेन हुंडसंस्थानमनेक-भेदभिन्नमुत्पद्यते। तानि च पंचसंस्थानानि प्रत्येकमवयवं प्रति ईदृशानि इति न ज्ञायन्ते, संप्रति तथाविधोप-देशाभावात्। न च तेषु अविज्ञातेषु एतेषामेषः संयोगः इति ज्ञातुं शक्यते। ततः सर्वेऽपि विकलेन्द्रियाः हुंडसंस्थाना अपि भवन्तः न ज्ञायन्ते इति सिद्धम्।

विकलेन्द्रियाणां बंधः उदयोऽपि दुःस्वरं चैव भवति इति सूत्रे उक्तं, किन्तु भ्रमरादयः सुस्वरा अपि

इस स्थान के बंध करने वाले पंचेन्द्रिय, पर्याप्त, उद्योत प्रकृति से संयुक्त, तिर्यग्गति को बांधते हुए मिथ्यादृष्टि ही होते हैं।

द्वितीय — दूसरे प्रकार से तीस प्रकृतिक बंधस्थान में बत्तीस सौ भंग होते हैं। इसमें पांच संस्थान, पांच संहनन, विहायोगति आदि सात युगल, इनको परस्पर में गुणित करने पर तीन हजार दौ सौ भंग होते हैं। यह द्वितीय बंधस्थान सासादनगुणस्थान में होता है।

शंका — अंतिम हुण्डकसंस्थान और अंतिम असंप्राप्तसृपाटिका संहनन सासादन सम्यग्दृष्टि के क्यों नहीं बंध को प्राप्त होते हैं ?

समाधान — नहीं, क्योंकि सासादन में उन दोनों प्रकृतियों के बंध योग्य तीव्र संकलेश परिणामों का अभाव है। यहाँ पर भी पंचेन्द्रिय, पर्याप्त और उद्योत प्रकृति से संयुक्त तिर्यग्गति को बांधने वाले सासादन सम्यग्दृष्टि जीव के यह स्थान होता है।

तीसरा तीस प्रकृतिक बंधस्थान विकलेन्द्रिय जीवों के ही होता है।

यहाँ कोई शंका करता है —

विकलेन्द्रिय जीवों में बंध और उदय भी हुण्डकसंस्थान का ही है ऐसा सूत्र में कहा है, अतः यह कथन आपका घटित नहीं होता है, क्योंकि, उनके छहों ही संस्थानों की उपलब्धि होती है ?

आचार्यदेव कहते हैं — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, सर्व अवयवों में नियतस्वरूप वाले पांच संस्थानों के होने पर दो, तीन, चार और पांच संस्थानों के संयोग से हुण्डकसंस्थान अनेक भेद वाला उत्पन्न होता है और वे पांच संस्थान प्रत्येक अवयव के प्रति 'इस प्रकार के आकार वाले होते हैं' यह नहीं जाना जाता है, क्योंकि इस काल में उस प्रकार के उपदेश का अभाव है और उन संयोगी भेदों के नहीं ज्ञात होने पर इन जीवों के 'अमुक संस्थानों के संयोगात्मक यह भंग है' यह नहीं जाना जा सकता है। अतएव सभी विकलेन्द्रिय जीव हुण्डकसंस्थान वाले होते हुए भी नहीं जाने जाते हैं, यह बात सिद्ध हुई।

शंका — विकलेन्द्रियों के बंध और उदय दोनों में भी दुःस्वर ही है, ऐसा सूत्र में कहा है, किन्तु भ्रमर

दृश्यन्ते, ततः कथमेतत् घटते ?

न, भ्रमरादिषु कोकिलासु इव मधुरस्वरानुपलंभात्।

भिन्नरुच्याः केषामपि जीवानाममधुरोऽपि स्वरः मधुर इव रुच्यते, इति तस्य स्वरस्य मधुरत्वं किं न इष्यते ? नैष दोषः, पुरुषेच्छातः वस्तुपरिणामानुपलंभात्। न च निम्बः केषामपि रुच्यते इति मधुरत्वं प्रतिपद्यते, अव्यवस्थापत्तेः। अत्र भंगाः चतुर्विंशतिः। त्रिजाति-स्थिर-शुभ-यशःकीर्तियुगलानां परस्परे गुणिते इमे भंगाः भवन्ति। ($3 \times 2 \times 2 \times 2 = 24$)। ये केचित् विकलेन्द्रिय-पर्याप्त-उद्योतसंयुक्तां तिर्यग्गतिं बध्नन्तः मिथ्यादृष्टयः, तेषामेव इदं तृतीयस्थानं भवति।

अधुना एकोनत्रिंशत्प्रकृतिनामकर्मणः त्रिविधस्थान-स्वामिप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

तत्थ इमं पढमऊणतीसाए द्वाणं। जधा, पढमतीसाए भंगो। णवरि उज्जोवं वज्ज। एदासिं पढमऊणतीसाए पयडीणमेक्कमिहि चेव द्वाणं।।७०।।

तिरिक्खगदिं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादि-
ट्टिस्स।।७१।।

आदि कुछ विकलेन्द्रिय जीव सुस्वर भी देखे जाते हैं, अतः यह बात कैसे घटित होगी कि उनके सुस्वर प्रकृति का बंध या उदय नहीं है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि भ्रमर आदि में कोकिलाओं के समान मधुर स्वर नहीं पाया जाता है।

शंका — भिन्न रुचि होने से कितने ही जीवों को अमधुर स्वर भी मधुर स्वर के समान रुचता है, इसलिये उस — भ्रमर के स्वर की मधुरता क्यों नहीं मान ली जाती है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि पुरुषों की इच्छा से वस्तु का परिणमन नहीं पाया जाता है। नीम कितने ही जीवों को रुचता है तो भी वह मधुरता को प्राप्त नहीं हो जाता है अन्यथा अव्यवस्था हो जावेगी। यहाँ भंग चौबीस होते हैं। तीन जाति, स्थिर, शुभ और यशस्कीर्ति ये तीन युगल इनको परस्पर में गुणित करने पर ($3 \times 2 \times 2 \times 2 = 24$) चौबीस भंग हो जाते हैं। जो कोई विकलेन्द्रिय, पर्याप्त और उद्योत से संयुक्त तिर्यच गति को बांधते हुये मिथ्यादृष्टि जीव हैं, उनके ही यह तीसरा स्थान होता है।

अब उनतीस प्रकृतिक नामकर्म के तीन प्रकार के स्थान और उनके स्वामी का प्रतिपादन करने के लिये छह सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

नामकर्म के तिर्यग्गति सम्बन्धी उक्त पाँच बन्धस्थानों में से यह प्रथम उनतीस प्रकृतिरूप बंधस्थान है। वह किस प्रकार है ? वह प्रथम तीस प्रकृति सम्बन्धी बंधस्थान के समान प्रकृति भंग वाला है। विशेषता यह है कि यहाँ उद्योत प्रकृति को छोड़ देना चाहिये। इन प्रथम उनतीस प्रकृतियों का एक ही भाव में अवस्थान है।।७०।।

वह प्रथम उनतीस प्रकृतिरूप बंधस्थान पंचेन्द्रिय और पर्याप्त नामकर्म से संयुक्त तिर्यग्गति को बांधने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के होता है।।७१।।

तत्थ इमं विदियएगूणतीसाए द्वाणं। जधा, विदियत्तीसाए भंगो। णवरि उज्जोवं वज्ज। एदासिं विदीए ऊणतीसाए पयडीणमेक्कमिहे चेव द्वाणं।।७२।।

तिरिक्खगदिं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं सासणसम्मादि-
ट्ठिस्स।।७३।।

तत्थ इमं तदियऊणतीसाए द्वाणं। जधा, तदियतीसाए भंगो। णवरि उज्जोवं वज्ज। एदासिं तदियऊणतीसाए पयडीणमेक्कमिहे चेव द्वाणं।।७४।।

तिरिक्खगदिं विगलिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादि-
ट्ठिस्स।।७५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — एकोनत्रिंशन्नामकर्मप्रकृतिस्थानानि इमानि त्रीण्यपि पूर्ववद् ज्ञातव्यानि केवलं उद्योतप्रकृतिरहितानि इति। प्रथमस्थानं पंचेन्द्रियपर्याप्तसहिततिर्यग्गतिं बध्नन्तः मिथ्यादृष्टयः प्राप्नुवन्ति। द्वितीयस्थानं तथैव सासादनाः, तृतीयस्थानं विकलत्रय-पर्याप्तसंयुक्ततिर्यग्गतिं बध्नन्तः मिथ्यादृष्टिजीवाः एव बध्नन्ति।

नामकर्म के तिर्यग्गतिसम्बन्धी उक्त पाँच बन्धस्थानों में यह द्वितीय उनतीस प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थान है। वह किस प्रकार है ? वह द्वितीय तीस प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थान के समान प्रकृति भंग वाला है। विशेषता यह है कि यहाँ उद्योत प्रकृति को छोड़ देना चाहिये। इन द्वितीय उनतीस प्रकृतियों का एक ही भाव में अवस्थान है।।७२।।

वह द्वितीय उनतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रिय और पर्याप्त नामकर्म से संयुक्त तिर्यग्गति को बांधने वाले सासादन सम्यग्दृष्टि जीव के होता है।।७३।।

नामकर्म के तिर्यग्गति सम्बन्धी उक्त पाँच बन्धस्थानों में यह तृतीय उनतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान है। वह किस प्रकार है ? वह तृतीय तीस प्रकृति सम्बन्धी बन्धस्थान के समान प्रकृति भंग वाला है। विशेषता यह है कि यहाँ उद्योत प्रकृति को छोड़ देना चाहिये। इन तृतीय उनतीस प्रकृतियों का एक ही भाव में अवस्थान है।।७४।।

वह तृतीय उनतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान विकलेन्द्रिय और पर्याप्त नामकर्म से संयुक्त तिर्यग्गति को बांधने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के होता है।।७५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — उन्नीस प्रकृतिक नामकर्म प्रकृति के स्थान तीन भी पूर्व के समान जानने योग्य हैं, ये केवल उद्योत प्रकृति से रहित हैं। इनमें से प्रथम स्थान पंचेन्द्रिय, पर्याप्त सहित तिर्यग्गति को बांधने वाले मिथ्यादृष्टियों के होता है। द्वितीय स्थान उसी प्रकार के जीव सासादन गुणस्थान वाले प्राप्त करते हैं और तीसरा स्थान विकलत्रय और पर्याप्त से संयुक्त तिर्यग्गति को बांधते हुये मिथ्यादृष्टि जीव ही बांधते हैं।

अधुना षड्विंशतिप्रकृतिस्थान-स्वामिप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

तत्थ इमं छब्बीसाए द्वाणं, तिरिक्खगदी एइंदियजादी ओरालिय-तेजा कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुब्बी अगुरुअ-लहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं आदावुज्जोवाणमेक्कदरं थावर-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराण-मेक्कदरं सुहासुहाणमेक्कदरं दुहव-अणादेज्जं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं। एदासिं छब्बीसाए पयडीणमेक्कमिह चेव द्वाणं।।७६।।

तिरिक्खगदिं एइंदिय-बादर-पज्जत्त-आदाउज्जोवाणमेक्कदरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स।।७७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — एकेन्द्रियाणां अंगोपांगनामकर्मोदयः नास्ति, तेषां नलक-बाहु-नितंब-पृष्ठ-शीर्ष-उरसां अभावात्।

एकेन्द्रियाणां षट्संस्थानानि किन्न प्ररूपितानि ?

न, प्रत्येकमवयवेषु प्ररूपितलक्षणपंचसंस्थानां समूहस्वरूपेण धारकाणां षट्संस्थानास्तित्वविरोधात्।

अब छब्बीस प्रकृतिक बंधस्थान और उनके स्वामी का प्रतिपादन करने के लिये दो सूत्र अवतार लेते हैं — सूत्रार्थ —

नामकर्म के तिर्यग्गति सम्बन्धी उक्त पाँच बन्धस्थानों में यह छब्बीस प्रकृतिक बन्धस्थान है — तिर्यग्गति^१, एकेन्द्रिय जाति^२, औदारिक शरीर^३, तैजस शरीर^४, कार्मण शरीर^५, हुण्डकसंस्थान^६, वर्ण^७, गन्ध^८, रस^९, स्पर्श^{१०}, तिर्यग्गति प्रायोग्यानुपूर्वी^{११}, अगुरुलघु^{१२}, उपघात^{१३}, परघात^{१४}, उच्छ्वास^{१५}, आतप और उद्योत इन दोनों में से कोई एक^{१६}, स्थावर^{१७}, बादर^{१८}, पर्याप्त^{१९}, प्रत्येक शरीर^{२०}, स्थिर और अस्थिर इन दोनों में से कोई एक^{२१}, शुभ और अशुभ इन दोनों में से कोई एक^{२२}, दुर्भग^{२३}, अनादेय^{२४}, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति इन दोनों में से कोई एक^{२५} तथा निर्माण नामकर्म^{२६}, इन छब्बीस प्रकृतियों का एक ही भाव में अवस्थान है।।७६।।

वह छब्बीस प्रकृतिक बन्धस्थान एकेन्द्रिय जाति, बादर, पर्याप्त, आतप और उद्योत, इन दोनों में से किसी एक से संयुक्त तिर्यग्गति को बांधने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के होता है।।७७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — एकेन्द्रिय जीवों के अंगोपांग नामकर्म का उदय नहीं है, क्योंकि, उनके पैर-हाथ, नितम्ब, पीठ, शिर और उर — हृदय अभाव होने से अंगोपांग नहीं होते हैं।

शंका — एकेन्द्रिय जीवों के छहों संस्थान क्यों नहीं बतलाये ?

समाधान — नहीं, क्योंकि प्रत्येक अवयवों में प्ररूपित लक्षण वाले पांच संस्थानों को समूहरूप से

अत्र भंगाः षोडश। आतप-स्थिर-शुभ-यशःकीर्तियुगलानां परस्परे गुणिते ($२ \times २ \times २ \times २ = १६$) भंगाः षोडश भवन्ति। तिर्यग्गतिं बध्नन्तः एकेन्द्रिय-बादर-पर्याप्त-आतपसंयुक्तां उद्योतसंयुक्तां वा मिथ्यादृष्टयः बध्नन्ति, इति ज्ञातव्यं, अन्येषामेकेन्द्रियजातेर्बन्धाभावात्।

संप्रति पंचविंशतिप्रकृतिस्थान-स्वामिप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

तत्थ इमं पढमपणुवीसाए द्वाणं, तिरिक्खगदी एइंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइय-सरीरं हुंडसंठाणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदिपा-ओग्गाणुपुव्वी अगुरुअ-लहुअ-उवघाद-परघाद-उस्साद-थावरं-बादर-सुहुमाणमेक्कदरं पज्जत्तं पत्तेग-साधारणसरीराण-मेक्कदरं थिराथिराण-मेक्कदरं सुहासुहाणमेक्कदरं दुहव-अणादेज्जं जसकित्ति-अजसकित्तीण-मेक्कदरं णिमिणणामं। एदासिं पढमपणुवीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव द्वाणं॥७८॥

तिरिक्खगदिं एइंदिय-पज्जत्त-बादर-सुहुमाणमेक्कदरं संजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स॥७९॥

धारण करने वाले एकेन्द्रियों के पृथक्-पृथक् संस्थानों के अस्तित्व का विरोध है। यहाँ पर १६ भंग हैं। आतप, स्थिर, शुभ और यशस्कीर्ति इन चार युगलों को परस्पर में गुणित करने पर ($२ \times २ \times २ \times २ = १६$) सोलह भंग होते हैं।

एकेन्द्रिय, बादर, पर्याप्त और आतप से संयुक्त अथवा उद्योत से संयुक्त तिर्यग्गति को मिथ्यादृष्टि ही बांधते हैं, ऐसा जानना चाहिये, क्योंकि मिथ्यादृष्टि जीवों के सिवाय एकेन्द्रिय जाति के बंध का अभाव है।

अब पच्चीस प्रकृतियों के स्थान और स्वामी का निरूपण करने के लिये दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

नामकर्म के तिर्यग्गति सम्बन्धी उक्त पाँच बन्धस्थानों में यह प्रथम पच्चीस प्रकृतिक बन्धस्थान है — तिर्यग्गति^१, एकेन्द्रिय जाति^२, औदारिक शरीर^३, तैजस शरीर^४, कार्मण शरीर^५, हुण्डकसंस्थान^६, वर्ण^७, गन्ध^८, रस^९, स्पर्श^{१०}, तिर्यग्गति प्रायोग्यानुपूर्वी^{११}, अगुरुलघु^{१२}, उपघात^{१३}, परघात^{१४}, उच्छ्वास^{१५}, स्थावर^{१६}, बादर और सूक्ष्म इन दोनों में से कोई एक^{१७}, पर्याप्त^{१८}, प्रत्येक शरीर और साधारण शरीर इन दोनों में से कोई एक^{१९}, स्थिर और अस्थिर इन दोनों में से कोई एक^{२०}, शुभ और अशुभ इन दोनों में से कोई एक^{२१}, दुर्भग^{२२}, अनादेय^{२३}, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति इन दोनों में से कोई एक^{२४} तथा निर्माण नामकर्म^{२५}। इन प्रथम पच्चीस प्रकृतियों का एक ही भाव में अवस्थान है॥७८॥

वह प्रथम पच्चीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान एकेन्द्रिय जाति, पर्याप्त, बादर और सूक्ष्म इन दोनों में से किसी एक से संयुक्त तिर्यग्गति को बांधने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के होता है॥७९॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अत्र बादर-प्रत्येकशरीर-स्थिर-शुभ-यशःकीर्तियुगलानां विकल्पेन द्वात्रिंशद् भंगा भवन्ति। ($2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 = 32$)

अगुरुकलधुकत्वं नाम सर्वजीवानां पारिणामिकमस्ति, सिद्धेषु क्षीणाशेषकर्मषु अपि तस्योपलंभात्। ततः अगुरुलघुकर्मणः फलाभावात् तस्याभावः इति ? अत्र परिहारः — भवेत् एष दोषः, यदि अगुरुकलधुकं जीवविपाकी भवति।

किन्तु इदं कर्म पुद्गलविपाकी, अनन्तानन्तपुद्गलैः गुरुक्स्पर्शैः आरब्धस्य शरीरस्य अगुरुकलधुकत्वोत्पादनात्। अन्यथा गुरुकशरीरेण अवष्टब्धः जीवः उत्थातुमपि न शक्येत। न चैवं, शरीरस्य अगुरु-अलघुकत्वानामनुपलंभात्। एतत् स्थानं एकेन्द्रियजातिबंधकानां मिथ्यादृष्टीनामेव, उपरिमाणां एकेन्द्रियबादर-सूक्ष्म प्रकृतीनां बंधाभावात्।

द्वितीयपंचविंशतिप्रकृतिस्थान-स्वामिनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

तत्थ इमं विदियपणुवीसाए द्वाणं, तिरिक्खगदी वेइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिय चदुण्हं जादीणमेक्कदरं ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं असंपत्तसेवट्टसरीरसंगडणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदीपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअ-लहुअ-उवघाद-तस-बादर-

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रों का अर्थ सुगम है। यहाँ बादर, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ और यशस्वीर्ति इन पांच युगलों के भेद से ($2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 = 32$) बत्तीस भंग हो जाते हैं।

शंका — अगुरुलघु नाम का गुण सभी जीवों के पारिणामिक है, क्योंकि, सम्पूर्ण कर्मों से रहित सिद्धों में भी वह पाया जाता है, इसलिये अगुरुलघु नामकर्म का कोई फल न होने से उसका अभाव मानना चाहिये?

समाधान — आचार्यदेव इसका परिहार करते हुये कहते हैं — यह आपका दिया गया दोष तब प्राप्त होता, जबकि अगुरुलघु गुण जीवविपाकी होता, किन्तु यह कर्म पुद्गलविपाकी है, क्योंकि, गुरुस्पर्श वाले अनन्तानन्त पुद्गल वर्णणाओं के द्वारा आरब्ध शरीर के अगुरुलघुत्व की उत्पत्ति होती है। यदि ऐसा न माना जाये तो गुरुभार वाले शरीर से संयुक्त यह जीव उठने के लिये समर्थ नहीं होगा, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि शरीर के केवल हल्कापन और केवल भारीपन पाया नहीं जाता।

यह स्थान एकेन्द्रिय जाति नामकर्म को बांधने वाले मिथ्यादृष्टि जीवों के ही होता है, क्योंकि ऊपर के गुणस्थानवर्ती जीवों में एकेन्द्रिय जाति, बादर और सूक्ष्म इन प्रकृतियों का बंध नहीं होता है।

अब द्वितीय प्रकार से पच्चीस प्रकृतियों के स्थान और स्वामी का प्रतिपादन करने के लिये दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

नामकर्म के तिर्यग्गति सम्बन्धी उक्त पाँच बन्धस्थानों में यह द्वितीय पच्चीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान है — तिर्यग्गति^१, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति और पंचेन्द्रिय जाति इन चारों जातियों में से कोई एक^२, औदारिक शरीर^३, तैजस शरीर^४, कार्मण शरीर^५, हुण्डकसंस्थान^६, औदारिक शरीर-अंगोपांग^७, असंप्राप्तासृपाटिका

अपज्जत्त-पत्तेयसरीर-अथिर-असुभ-दुहव-अणादेज्ज-अजसकित्ति-णिमिणं। एदासिं विदियपणुवीसाए पयडीणमेक्कमिह चेव द्वाणं॥८०॥

तिरिक्खगदिं तस अपज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स॥८१॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — परघात-उच्छ्वास-विहायोगति-स्वरनामकर्मणामत्र बंधो नास्ति, अपर्याप्तबंधेन सह विरोधात्, अपर्याप्तकाले एतेषामुदयाभावाच्च।

येषामत्र उदयोऽस्ति तेषां चैव तत्र बंधः। अनेन कथनेन न च स्थिर-शुभाभ्यामनेकान्तः शुभाशुभप्रकृत्योः अधुवबन्धिनोरक्रमेण बंधाभावात्। अत्र भंगाः चत्वारः द्वीन्द्रियादिचतुःजातिविकल्पेन इति ज्ञातव्यं।

अधुना त्रयोविंशतिप्रकृतिस्थान-स्वामिप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

तत्थ इमं तेवीसाए द्वाणं, तिरिक्खगदी एइंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-थावरं बादरसुहुमाणमेक्कदरं अपज्जत्तं पत्तेय-

शरीर संहनन^८, वर्ण^९, गन्ध^{१०}, रस^{११}, स्पर्श^{१२}, तिर्यग्गति प्रायोग्यानुपूर्वी^{१३}, अगुरुलघु^{१४}, उपघात^{१५}, त्रस^{१६}, बादर^{१७}, अपर्याप्त^{१८}, प्रत्येक शरीर^{१९}, अस्थिर^{२०}, अशुभ^{२१}, दुर्भग^{२२}, अनादेय^{२३}, अयशःकीर्ति^{२४} और निर्माण नामकर्म^{२५}। इन द्वितीय पच्चीस प्रकृतियों का एक ही भाव में अवस्थान है॥८०॥

वह द्वितीय पच्चीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान त्रस और अपर्याप्त नामकर्म से संयुक्त तिर्यग्गति को बांधने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के होता है॥८१॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ पर परघात, उच्छ्वास, विहायोगति और स्वर नामकर्मों का बंध नहीं है, क्योंकि, इनका अपर्याप्त प्रकृति के साथ बंध का विरोध है और अपर्याप्त काल में इन परघात आदि प्रकृतियों के उदय का भी अभाव है। जिन प्रकृतियों का जहाँ पर उदय होता है, उन प्रकृतियों का ही वहाँ पर बंध होता है। उक्त कथन से स्थिर और शुभ प्रकृतियों से अनेकांत दोष नहीं आता है, क्योंकि अधुवबंधी शुभ और अशुभ प्रकृतियों का एक साथ बंध नहीं होता है। यहाँ द्वीन्द्रिय आदि चार जातिकर्म के भेद से (२ × २ = ४) चार भंग होते हैं।

अब तेईस प्रकृतिक बंधस्थान और स्वामी का प्रतिपादन करने के लिये दो सूत्र अवतार लेते हैं — सूत्रार्थ —

नामकर्म के तिर्यग्गतिसम्बन्धी उक्त पाँच बन्धस्थानों में यह तेवीस प्रकृति संबंधी बन्धस्थान है — तिर्यग्गति^१, एकेन्द्रिय जाति^२, औदारिक शरीर^३, तैजस शरीर^४, कार्मण शरीर^५, हुण्डकसंस्थान^६, वर्ण^७, गन्ध^८, रस^९, स्पर्श^{१०}, तिर्यग्गति प्रायोग्यानुपूर्वी^{११}, अगुरुलघु^{१२}, उपघात^{१३}, स्थावर^{१४}, बादर और सूक्ष्म इन दोनों में से कोई एक^{१५}, अपर्याप्त^{१६}, प्रत्येक शरीर और साधारण शरीर इन दोनों में से कोई एक^{१७}, अस्थिर^{१८},

साधारणसरीराणमेक्कदरं अथिर-असुह-दुहव-अणादेज्ज-अजसकित्ति-णिमिणं। एदासिं तेवीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव द्वाणं॥८२॥

तिरिक्खगदिं एइंदिय-अपज्जत्त-बादर-सुहुमाणमेक्कदरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स॥८३॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अत्र संहननस्य बंधो नोक्तः, एकेन्द्रियेषु संहननस्योदयाभावात्। बादर-प्रत्येकशरीरयुगलाभ्यां भंगाः चत्वारः। (२×२=४)। इदं स्थानं एकेन्द्रियापर्याप्तानामेवेति ज्ञातव्यं।

एवं अष्टमस्थले तिर्यगतिबंधकानां स्थानकथनमुख्यत्वेन एकविंशतिसूत्राणि गतानि।

संप्रति मनुष्यगतिस्थानसंख्याप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

मणुसगदिणामाए तिण्णि द्वाणाणि, तीसाए एगूणतीसाए पणुवीसाए द्वाणं चेदि॥८४॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इदं संग्रहनयसूत्रं, उपरि उच्यमानसर्वार्थस्य आधारभावेनावस्थानात्। अत्र त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमेकं, एकोनत्रिंशत्प्रकृतिस्थानानि त्रीणि, पंचविंशतिप्रकृतिस्थानमेकमेवेति।

अशुभ^{१९}, दुर्भग^{२०}, अनादेय^{२१}, अयशःकीर्ति^{२२} तथा निर्माण नामकर्म^{२३}। इन तेवीस प्रकृतियों का एक ही भाव में अवस्थान है॥८२॥

वह तेवीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान एकेन्द्रिय जाति, अपर्याप्त तथा बादर और सूक्ष्म इन दोनों में से किसी एक से संयुक्त तिर्यगति को बांधने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के होता है॥८३॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ पर — तेईस प्रकृतिरूप बंधस्थान में संहननकर्म का बंध नहीं कहा है, क्योंकि एकेन्द्रिय जीवों में संहनन कर्म का उदय नहीं होता है। यहाँ बादर और प्रत्येक शरीर इन दो युगलों के विकल्प से चार (२ × २ = ४) भंग होते हैं। यह स्थान एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों के ही होता है, ऐसा जानना चाहिये।

इस प्रकार आठवें स्थल में तिर्यगति के बंधकर्त्ताओं के स्थान के कथन की मुख्यता से इक्कीस सूत्र पूर्ण हुये हैं।

अब मनुष्यगति के स्थान और संख्या का प्रतिपादन करने के लिये सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

मनुष्यगति नामकर्म के तीन बन्धस्थान हैं — तीस प्रकृतिसम्बन्धी, उनतीस प्रकृतिसम्बन्धी और पच्चीस प्रकृति सम्बन्धी बन्धस्थान॥८४॥

सिद्धान्तचिंतामणि टीका — यह सूत्र संग्रहनयाश्रित है, क्योंकि ऊपर कहे जाने वाले सर्व अर्थ के आधाररूप से इसका अवस्थान है।

यहाँ तीसप्रकृतिक बंधस्थान एक है, उनतीसप्रकृतिक बंधस्थान तीन हैं और पच्चीसप्रकृतिक बंधस्थान एक ही है।

अधुना त्रिंशत्प्रकृतिस्थानप्रकृतिनाम-स्वामिप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

तत्थ इमं तीसाए द्वाणं, मणुसगदी पंचिंदियजादी ओरालिय-तेजा-
कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं ओरालियसरीर अंगोवंगं वज्जरिसहसंधउणं
वण्ण-गंध-रस-फासं मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-
परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराण-
मेक्कदरं सुहासुहाणमेक्कदरं सुभग-सुस्सर-आदेज्जं जसकित्ति-अजसकि-
त्तीणमेक्कदरं णिमिणं तित्थयरं। एदासिं तीसाए पयडीण-मेक्कमिह चेव
द्वाणं॥८५॥

मणुसगदिं पंचिंदियपज्जत्तित्थयरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं असंजद
सम्मादिट्ठिस्स॥८६॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अप्रशस्तायशःकीर्तिप्रकृतिः तीर्थकरेण सह बंधं प्राप्नोति न उदयं आगच्छति।
तथैव दुर्भग-दुःस्वर-अनादेयानां ध्रुवबंधिनां संक्लेशकालेऽपि बध्यमानेन तीर्थकरेण सह बंधो न भवति,
तेषां बंधानां तीर्थकरबंधेन सम्यक्त्वेन च सह विरोधात्। संक्लेशकालेऽपि सुभग-सुस्वर-आदेयानां चैव

अब तीसप्रकृतिक बंध स्थान के प्रकृतियों के नाम और स्वामी का कथन करने के लिये दो सूत्र
अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

नामकर्म के मनुष्यगति सम्बन्धी उक्त तीन बन्धस्थानों में यह तीस प्रकृतिरूप
बन्धस्थान है — मनुष्यगति^१, पंचेन्द्रिय जाति^२, औदारिक शरीर^३, तैजस शरीर^४, कार्मण
शरीर^५, समचतुरस्र संस्थान^६, औदारिक शरीर-अंगोपांग^७, वज्रवृषभनाराच संहनन^८,
वर्ण^९, गन्ध^{१०}, रस^{११}, स्पर्श^{१२}, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी^{१३}, अगुरुलघु^{१४}, उपघात^{१५},
परघात^{१६}, उच्छ्वास^{१७}, प्रशस्तविहायोगति^{१८}, त्रस^{१९}, बादर^{२०}, पर्याप्त^{२१}, प्रत्येक शरीर^{२२},
स्थिर और अस्थिर इन दोनों में से कोई एक^{२३}, शुभ और अशुभ इन दोनों में से कोई
एक^{२४}, सुभग^{२५}, सुस्वर^{२६}, आदेय^{२७}, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति इन दोनों में से कोई
एक^{२८} तथा निर्माण^{२९} और तीर्थकर नामकर्म^{३०}। इन तीस प्रकृतियों के बन्धस्थान का
एक ही भाव में अवस्थान है॥८५॥

वह तीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रिय जाति पर्याप्त और तीर्थकर प्रकृति से
संयुक्त मनुष्यगति को बांधने वाले असंयत सम्यग्दृष्टि जीव के होता है॥८६॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अप्रशस्त अयशःकीर्ति प्रकृति भी तीर्थकर प्रकृति के साथ बंध को
प्राप्त होती है, किन्तु उदय में नहीं आती है, उसी प्रकार से दुर्भग-दुःस्वर और अनादेय ये ध्रुवबंधी प्रकृतियां,
संक्लेश काल में भी बंधने वाली तीर्थकर प्रकृति के साथ नहीं बंधती हैं, क्योंकि इनका बंध तीर्थकर प्रकृति

बंधोपलंभात्। अत्र स्थिर-शुभ-यशःकीर्तियुगलैः त्रिभिः विकल्पैः अष्टौ भंगाः भवन्ति ($२ \times २ \times २ = ८$)।
मनुष्यगतिं पंचेन्द्रियपर्याप्त-तीर्थकरसंयुक्तं बध्यमानस्य तत् त्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानं असंयत-
सम्यग्दृष्टेर्भवति।

संप्रति एकोनत्रिंशत्प्रकृतिस्थानत्रिविधत्वप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

तत्थ इमं पढमएगूणतीसाए द्वाणं। जधा, तीसाए भंगो। णवरि विसेसो
तिथयरं वज्ज। एदासिं पढमएगूणतीसाए पयडीणमेक्कमिहे चेव द्वाणं।।८७।।

मणुसगदिं पंचिंदियपज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं सम्मामिच्छादिट्ठिस्स
वा असंजद-सम्मादिट्ठिस्स वा।।८८।।

तत्थ इमं विदियाए एगूणतीसाए द्वाणं, मणुसगदी पंचिंदियजादी
ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं वज्ज पंचण्हं संठाणाणमेक्कदरं
ओरालियसरीरअंगोवंगं असंपत्तसेवदृसंघडणं वज्ज पंचण्हं संघडणाण-
मेक्कदरं वण्णगंधरसफासं मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-

और सम्यक्त्व के साथ विरुद्ध है। संक्लेश काल में भी सुभग, सुस्वर और आदेय प्रकृतियों का ही बंध होता है। यहाँ पर स्थिर, शुभ और यशःकीर्ति इन तीन युगलों के विकल्प से ($२ \times २ \times २ = ८$) आठ भंग होते हैं।

यह तीस प्रकृतिक बंधस्थान पंचेन्द्रिय पर्याप्त और तीर्थकर प्रकृति से संयुक्त मनुष्यगति को बांधने वाले असंयतसम्यग्दृष्टि के होता है।

अब उनतीस प्रकृतिक स्थान के तीन भेद का प्रतिपादन करने के लिये छह सूत्र अवतार लेते हैं —
सूत्रार्थ —

नामकर्म के मनुष्यगति सम्बन्धी उक्त तीन बन्धस्थानों में यह प्रथम उनतीस प्रकृति सम्बन्धी बन्धस्थान है। यह किस प्रकार है ? वह तीस प्रकृति सम्बन्धी बंधस्थान के समान प्रकृति भंग वाला है। विशेषता यह है कि यहाँ तीर्थकर प्रकृति को छोड़ देना चाहिये। इन प्रथम उनतीस प्रकृतियों का एक ही भाव में अवस्थान है।।८७।।

वह प्रथम उनतीस प्रकृतिक बन्धस्थान पंचेन्द्रिय जाति और पर्याप्त नामकर्म से संयुक्त मनुष्यगति को बांधने वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि के होता है।।८८।।

नामकर्म के मनुष्यगति सम्बन्धी उक्त तीन बन्धस्थानों में यह द्वितीय उनतीस प्रकृतिक बन्धस्थान है — मनुष्यगति^१, पंचेन्द्रिय जाति^२, औदारिक शरीर^३, तैजस शरीर^४, कार्मण शरीर^५, हुण्डकसंस्थान को छोड़कर शेष पाँच संस्थानों में से कोई एक^६, औदारिक शरीर-अंगोपांग^७, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन को छोड़कर पाँच संहननों में से

उवघाद-परघाद-उस्सासं दोण्हं विहायगदीणमेक्कदरं तस-बादर-पज्जत्त-
पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं सुहवदुहवाणमेक्कदरं
सुस्सरदुस्सराणमेक्कदरं आदेज्ज-अणादेज्जाणमेक्कदरं जसकित्ति-
अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणं। एदासिं विदियएगूणतीसाए पयडीण-
मेक्कम्हि चेव द्वाणं॥८९॥

मणुसगदिं पंचिंदियपज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं सासणसम्मा-
दिट्ठिस्स॥९०॥

तत्थ इमं तदियएगूणतीसाए द्वाणं, मणुसगदी पंचिंदियजादी ओरालिय-
तेजा-कम्मइयसरीरं छण्हं संठाणाणमेक्कदरं ओरालियसरीरअंगोवंगं छण्हं
संघडणाणमेक्कदरं वण्ण-गंध-रस-फासं मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी
अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं दोण्हं विहायगदीणमेक्कदरं तस-
बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुहासुहाणमेक्कदरं

कोई एक^८, वर्ण^९, गन्ध^{१०}, रस^{११}, स्पर्श^{१२}, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी^{१३}, अगुरुलघु^{१४},
उपघात^{१५}, परघात^{१६}, उच्छ्वास^{१७}, दोनों विहायोगतियों में से कोई एक^८, त्रस^{१९},
बादर^{२०}, पर्याप्त^{२१}, प्रत्येक शरीर^{२२}, स्थिर और अस्थिर इन दोनों में से कोई एक^{२३}, शुभ
और अशुभ इन दोनों में से कोई एक^{२४}, सुभग और दुर्भग इन दोनों में से कोई एक^{२५},
सुस्वर और दुःस्वर इन दोनों में से कोई एक^{२६}, आदेय और अनादेय इन दोनों में से कोई
एक^{२७}, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति इन दोनों में से कोई एक^{२८} और निर्माणनामकर्म^{२९}।
इन द्वितीय उनतीस प्रकृतियों का एक ही भाव में अवस्थान है॥८९॥

वह द्वितीय उनतीस प्रकृतिक बन्धस्थान पंचेन्द्रिय जाति और पर्याप्त नामकर्म से
संयुक्त मनुष्यगति को बांधने वाले सासादन सम्यग्दृष्टि जीव के होता है॥९०॥

नामकर्म के मनुष्यगति सम्बन्धी उक्त तीन बन्धस्थानों में यह तृतीय उनतीस
प्रकृतिक बन्धस्थान हैं—मनुष्यगति^१, पंचेन्द्रिय जाति^२, औदारिक शरीर^३, तैजस शरीर^४,
कार्मण शरीर^५, छहों संस्थानों में से कोई एक^६, औदारिक शरीर-अंगोपांग^७, छहों
संहननों में से कोई एक^८, वर्ण^९, गन्ध^{१०}, रस^{११}, स्पर्श^{१२}, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी^{१३},
अगुरुलघु^{१४}, उपघात^{१५}, परघात^{१६}, उच्छ्वास^{१७}, दोनों विहायोगतियों में से कोई एक^८,
त्रस^{१९}, बादर^{२०}, पर्याप्त^{२१}, प्रत्येक शरीर^{२२}, स्थिर और अस्थिर इन दोनों में से कोई

सुभगदुभगाणमेक्कदरं सुस्सरदुस्सराणमेक्कदरं आदेज्ज-अणादेज्जाण-
मेक्कदरं जसक्किन्ति-अजसक्किन्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं। एदासिं
तदियएगूणतीसाए पयडीणमेक्कहि चेव द्वाणं॥९१॥

मणुसगदिं पंचिंदियपज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स॥९२॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — ये तीर्थकरप्रकृतिमन्त्रेण एकोनत्रिंशत्प्रकृतिनामकर्मणः स्थानं बध्नन्ति ते सम्यग्मिथ्यादृष्टयः असंयतसम्यग्दृष्टयो वा अस्य स्वामिनो भवन्ति। द्वितीयैकोनत्रिंशत्स्थानस्वामिनः सासादनाः भवन्ति। तेषां भंगा द्वात्रिंशत्शतानि। पंचसंस्थान-पंचसंहनन-विहायोगत्यादिसप्तयुगलानां परस्परे गुणितेन $-(५ \times ५ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ = ३२००)$ एषा संख्या भवति।

तृतीयस्थानं मिथ्यादृष्टैर्जीवस्य एकोनत्रिंशत्संख्यायां एकोनत्रिंशत्प्रकृतिबंधप्रायोग्यपरिणामे वा भवति। अस्य भंगाः अष्टोत्तरषट्चत्वारिंशत्शतानि। तद्यथा — षट्संस्थान-षट्संहनन-विहायोगत्यादिसप्तयुगलानां गुणितेन $(६ \times ६ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ = ४६०८)$ भवन्ति।

संप्रति पंचविंशतिप्रकृतिस्थान-अपर्याप्तमनुष्यस्वामिप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

एक^{९३}, शुभ और अशुभ इन दोनों में से कोई एक^{९४}, सुभग और दुर्भग इन दोनों में से कोई एक^{९५}, सुस्वर और दुःस्वर इन दोनों में से कोई एक^{९६}, आदेय और अनादेय इन दोनों में से कोई एक^{९७}, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति इन दोनों में से कोई एक^{९८} और निर्माण नामकर्म^{९९}। इन तृतीय उनतीस प्रकृतियों का एक ही भाव में अवस्थान है॥९१॥

वह तृतीय उनतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रिय जाति और पर्याप्त नामकर्म से संयुक्त मनुष्यगति को बांधने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के होता है॥९२॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — जो तीर्थकर प्रकृति के बिना इस प्रथम उनतीसप्रकृतिक नामकर्म के स्थान को बांधते हैं वे सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि इस स्थान के स्वामी होते हैं। जो द्वितीय उनतीसप्रकृतिक स्थान को बांधते हैं वे सासादन गुणस्थानवर्ती इसके स्वामी हैं। इस द्वितीय बंधस्थान के बत्तीस सौ भंग होते हैं। पांच संस्थान, पांच संहनन और विहायोगति आदि सात युगलों को परस्पर में गुणा करने से $(५ \times ५ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ = ३२००)$ यह बत्तीस सौ की संख्या होती है।

तीसरा उनतीस प्रकृतिक स्थान मिथ्यादृष्टि जीव के उनतीस की संख्या में अथवा उनतीस प्रकृतिक बंध के योग्य परिणाम में होता है। इसके भंग छयालीस सौ आठ होते हैं। जैसे कि छह संस्थान, छह संहनन और विहायोगति आदि सात युगलों को परस्पर से गुणित करने पर $(६ \times ६ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ = ६४०८)$ चार हजार छह सौ आठ भंग होते हैं।

अब पच्चीस प्रकृतिक स्थान के अपर्याप्त मनुष्य स्वामी का प्रतिपादन करने के लिये दो सूत्र अवतार लेते हैं —

तत्थ इमं पणुवीसाए द्वाणं, मणुसगदी पंचिंदियजादी ओरालिय-तेजा-
कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं असंपत्तसेवदृसंघडणं वण्ण-
गंध-रस-फासं मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-तस-
बादर-अपज्जत्त-पत्तेयसरीर-अथिर-असुभ-दुभग-अणादेज्ज-अजसकित्ति-
णिमिणं। एदासिं पणुवीसाए पयडीण-मेक्कमिह चेव द्वाणं।।९३।।

मणुसगदिं पंचिंदियजादि-अपज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छा-
दिट्ठिस्स।।९४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अपर्याप्तेन मनुष्यगत्या च सह स्थिरादीनि न बध्यन्ते, संक्लेशकाले
बध्यमानापर्याप्तेन सह स्थिरादीनां विशुद्धिप्रकृतीनां बंधविरोधात्।

अहो आश्चर्य्य! ये केचित् जीवाः मनुष्यगतिमपि प्राप्य लब्ध्यपर्याप्ताः भवन्ति, तेषां मनुष्यजन्मनां कः
सारः। केवलं नाम्ना ते मनुष्याः, किंतु तेषां अतीव हीना गतिरेव, एतज्ज्ञात्वा दुर्लभं मनुष्यपर्याप्तशरीरं
लब्ध्वा भेदाभेदरत्नत्रयप्राप्तये एव प्रयत्नो विधेयः।

एवं नवमस्थले मनुष्यगतिस्थान-स्वामि-भंगसंख्याप्रतिपादनत्वेन एकादशसूत्राणि गतानि।

सूत्रार्थ —

नामकर्म के मनुष्यगतिसम्बन्धी उक्त तीन बन्धस्थानों में यह पच्चीस प्रकृतिक
बन्धस्थान है — मनुष्यगति^१, पंचेन्द्रिय जाति^२, औदारिक शरीर^३, तैजस शरीर^४, कार्मण
शरीर^५, हुण्डकसंस्थान^६, औदारिक शरीर-अंगोपांग^७, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन^८, वर्ण^९,
गन्ध^{१०}, रस^{११}, स्पर्श^{१२}, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी^{१३}, अगुरुलघु^{१४}, उपघात^{१५}, त्रस^{१६},
बादर^{१७}, अपर्याप्त^{१८}, प्रत्येक शरीर^{१९}, अस्थिर^{२०}, अशुभ^{२१}, दुर्भग^{२२}, अनादेय^{२३},
अयशःकीर्ति^{२४} और निर्माण नामकर्म^{२५}। इन पच्चीस प्रकृतियों का एक ही भाव में
अवस्थान है।।९३।।

वह पच्चीस प्रकृतिक बन्धस्थान पंचेन्द्रिय जाति और अपर्याप्त नामकर्म से
संयुक्त मनुष्यगति को बांधने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के होता है।।९४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अपर्याप्त मनुष्यगति के साथ स्थिर आदि प्रकृतियां नहीं बंधती हैं,
क्योंकि संक्लेश काल में बंधने वाले अपर्याप्त नामकर्म के साथ स्थिर आदि विशुद्धकाल में बंधने वाली शुभ
प्रकृतियों के बंध का विरोध है।

अहो आश्चर्य्य है! जो कोई भी जीव मनुष्यगति को भी प्राप्त करके लब्ध्यपर्याप्त होते हैं, उनके मनुष्य जन्म को
प्राप्त करने का क्या सार है? केवल नाम से वे मनुष्य हैं, किन्तु उनके अतीवही हीन गति है, ऐसा जानकर दुर्लभ ऐसे
पर्याप्त मनुष्य शरीर को प्राप्त करके भेद-अभेद रत्नत्रय की प्राप्ति के लिये ही प्रयत्न करना चाहिये।

इस प्रकार नवमें स्थल में मनुष्यगति के स्थान, स्वामी और भंगों की संख्या के प्रतिपादन रूप से
ग्यारह सूत्र पूर्ण हुये।

संप्रति देवगतिस्थानसंख्याकथनाय सूत्रमवतरति —

**देवगदिणामाए पंच द्वाणाणि, एक्कत्तीसाए तीसाए एगुणतीसाए
अट्ठवीसाए एक्किस्से द्वाणं चेदि।।९५।।**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इदं संग्रहनयसूत्रं उवरि उच्यमाणमशेषमर्थवगाह्य अवस्थितत्वात्।

संप्रति देवगत्या सह एकत्रिंशत्प्रकृतिस्थाननाम-स्वामि-भंगसंख्याप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

**तत्थ इमं एक्कत्तीसाए द्वाणं, देवगदी पंचिंदियजादी वेउव्विय-आहार-
तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरस्ससंठाणं वेउव्विय-आहारअंगोवंगं वण्ण-
गंध-रस-फासं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-
उस्सासं पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुह-सुभग-
सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-तित्थयरं। एदासिं एक्कत्तीसाए
पयडीणमेक्कमिह चेव।।९६।।**

अब देवगति के स्थान की संख्या कहने के लिये सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

देवगति नामकर्म के पाँच बन्धस्थान हैं — इकतीस प्रकृतिक, तीस प्रकृतिक, उनतीस प्रकृतिक, अट्ठाईस प्रकृतिक और एक प्रकृतिक बन्धस्थान।।९५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यह संग्रहनयाश्रित सूत्र है, क्योंकि आगे कहे जाने वाले सम्पूर्ण अर्थ का अवगाहन करके अवस्थित है।

अब देवगति के साथ इकतीस प्रकृतिक स्थान के नाम, स्वामी और भंगों का प्रतिपादन करने के लिये दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

नामकर्म के देवगति सम्बन्धी उक्त पाँच बन्धस्थानों में यह इकतीस प्रकृतिक बन्धस्थान है — देवगति^१, पंचेन्द्रिय जाति^२, वैक्रियिक शरीर^३, आहारकशरीर^४, तैजस शरीर^५, कार्मण शरीर^६, समचतुरस्त्र संस्थान^७, वैक्रियिक शरीर-अंगोपांग^८, आहारकशरीर-अंगोपांग^९, वर्ण^{१०}, गन्ध^{११}, रस^{१२}, स्पर्श^{१३}, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी^{१४}, अगुरुलघु^{१५}, उपघात^{१६}, परघात^{१७}, उच्छ्वास^{१८}, प्रशस्तविहायोगति^{१९}, त्रस^{२०}, बादर^{२१}, पर्याप्त^{२२}, प्रत्येक शरीर^{२३}, स्थिर^{२४}, शुभ^{२५}, सुभग^{२६}, सुस्वर^{२७}, आदेय^{२८}, यशःकीर्ति^{२९}, निर्माण^{३०} और तीर्थकर नामकर्म^{३१}। इन इकतीस प्रकृतियों का एक ही भाव में अवस्थान है।।९६।।

**देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-आहार-तित्थयरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं
अप्पमत्तसंजदस्स वा अपुव्वकरणस्स वा।।९७।।**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — देवगत्या सह षडपि संहननानि न बध्यन्ते, देवेषु संहननानामुदयाभावात्। इदं एकत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानं सप्तमाष्टमगुणस्थानवर्तिनोः महामुन्योरेव नान्येषां।

अधुना त्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थान-स्वामिप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

**तत्थ इमं तीसाए द्वाणं। जधा, एक्कत्तीसाए भंगो। णवरि विसेसो
तित्थयरं वज्ज। एदासिं तीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव द्वाणं।।९८।।**

**देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-आहारसंजुत्तं बंधमाणस्स तं अप्पमत्तसंजदस्स
वा अपुव्वकरणस्स वा।।९९।।**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — तीर्थकरप्रकृतिबंधं वर्जयित्वा तत् एकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमेव त्रिंशत्प्रकृतिस्थानं भवति। अत्र अस्थिरादीनां बंधो नास्ति, एतासां अशुभप्रकृतीनां विशुद्ध्या सह बंधविरोधात्। एतदपि अप्रमत्तसंयतअपूर्वकरणयोर्भवति।

**वह इकतीस प्रकृतिक बन्धस्थान पंचेन्द्रिय जाति, पर्याप्त, आहारकशरीर और
तीर्थकर नामकर्म से संयुक्त देवगति को बांधने वाले अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण
संयत जीव के होता है।।९७।।**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — देवगति के साथ छहों भी संहनन नहीं बंधते हैं, क्योंकि देवों में संहननों के उदय का अभाव है। यह इकतीस प्रकृति वाला बंधस्थान सातवें, आठवें गुणस्थानवर्ती महामुनियों के ही होता है, अन्यो के नहीं।

*अब तीस प्रकृतिक बंधस्थान और स्वामी का प्रतिपादन करने के लिये दो सूत्र अवतार लेते हैं —
सूत्रार्थ —*

**नामकर्म के देवगतिसम्बन्धी उक्त पाँच बन्धस्थानों में यह तीस प्रकृतिसम्बन्धी
बंधस्थान है। वह किस प्रकार है ? वह इकतीस प्रकृतिक बन्धस्थान के समान प्रकृति-
भंग वाला है। विशेषता केवल यह है कि यहाँ तीर्थकर प्रकृति को छोड़ देना चाहिये।
इन तीस प्रकृतियों का एक ही भाव में अवस्थान है।।९८।।**

**वह तीसप्रकृतिक बंधस्थान पंचेन्द्रिय जाति, पर्याप्त और आहारकशरीर से
संयुक्त देवगति को बांधने वाले अप्रमत्तसंयत के अथवा अपूर्वकरणसंयत के होता
है।।९९।।**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — तीर्थकर प्रकृति के बंध को छोड़कर वह इकतीस प्रकृति वाला बंधस्थान ही तीस प्रकृतिक बंधस्थान होता है। यहाँ अस्थिर आदि प्रकृतियों का बंध नहीं है, क्योंकि इन अशुभ प्रकृतियों का विशुद्धि के साथ बंध विरुद्ध है। यह स्थान भी अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरणवर्ती मुनियों के होता है।

संप्रति एकोनत्रिंशत्प्रकृतिस्थानस्वामिप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

तत्थ इमं पढमएगुणतीसाए द्वाणं। जधा, एक्कत्तीए भंगो। णवरि विसेसो, आहारसरीरं वज्ज। एदासिं पढमएगुणतीसाए पयडीणमेक्कहि चेव द्वाणं।।१००।।

देवगदिं पंचिंदियपज्जत्त-तित्थयरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं अप्पमत्तसंजदस्स वा अपुव्वकरणस्स वा।।१०१।।

तत्थ इमं विदियएगुणतीसाए द्वाणं, देवगदी पंचिंदियजादी वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं वेउव्वियसरीरअंगोवंगं वण्णगंधरसफासं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं पसत्थ-विहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाण-मेक्कदरं सुभग-सुस्सर-आदेज्जं जसकित्ति-अजस-कित्तीणमेक्कदरं णिमिण-तित्थयरं। एदासिं एगुणतीसाए पयडीणमेक्कहि चेव द्वाणं।।१०२।।

अब उनतीस प्रकृतिक स्थान और उसके स्वामी का प्रतिपादन करने के लिये चार सूत्र अवतार लेते हैं —
सूत्रार्थ —

यहाँ नामकर्म के देवगति सम्बन्धी उक्त पाँच बन्धस्थानों में यह प्रथम उनतीस प्रकृतिक बन्धस्थान है। वह किस प्रकार है ? वह इकतीस प्रकृतिक बन्धस्थान के समान प्रकृति भंग वाला है। विशेषता केवल यह है कि यहाँ आहारकशरीर और आहारक-अंगोपांग ब्रे छोड़ देना चाहिये। इन प्रथम उनतीस प्रकृतियों का एक ही भाव में अवस्थान है।।१००।।

वह प्रथम उनतीस प्रकृतिक बन्धस्थान पंचेन्द्रिय जाति, पर्याप्त और तीर्थकर प्रकृति से संयुक्त देवगति को बांधने वाले अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरणसंयत के होता है।।१०१।।

नामकर्म के देवगति सम्बन्धी उक्त पाँच बन्धस्थानों में यह द्वितीय उनतीस प्रकृतिक बन्धस्थान है — देवगति^१, पंचेन्द्रिय जाति^२, वैक्रियिक शरीर^३, तैजस शरीर^४, कर्मण शरीर^५, समचतुरस्रसंस्थान^६, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग^७, वर्ण^८, गन्ध^९, रस^{१०}, स्पर्श^{११}, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी^{१२}, अगुरुलघु^{१३}, उपघात^{१४}, परघात^{१५}, उच्छ्वास^{१६}, प्रशस्तविहायोगति^{१७}, त्रस^{१८}, बादर^{१९}, पर्याप्त^{२०}, प्रत्येक शरीर^{२१}, स्थिर और अस्थिर इन दोनों में से कोई एक^{२२}, शुभ और अशुभ इन दोनों में से कोई एक^{२३}, सुभग^{२४}, सुस्वर^{२५}, आदेय^{२६}, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति इन दोनों में से कोई एक^{२७}, निर्माण^{२८} और तीर्थकर नामकर्म^{२९}, इन द्वितीय उनतीस प्रकृतियों का एक ही भाव में अवस्थान है।।१०२।।

देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-तित्थयरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं असंजद- सम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा॥१०३॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अत्र एकोनत्रिंशत्प्रकृतिकं प्रथमस्थानं अप्रमत्तसंयतापूर्वकरणमुच्यते भवति। यथा पूर्वं एकत्रिंशत्प्रकृतिकं स्थानं, तत्र आहारशरीराहारांगोपांगौ वर्ज्य एवेदं स्थानं भवति।

द्वितीयं एकोनत्रिंशत्प्रकृतिकं स्थानं अपि तीर्थकरप्रकृतिबंधसहितमेव। एतत् तु असंयतसम्यग्दृष्टेः संयतासंयतस्य प्रमत्तसंयतस्य वा देवगत्या सह बध्यमानस्य भवति। अत्र भंगा अष्टौ। स्थिर-शुभ-यशःकीर्तियुगलानां त्रयाणां परस्परं गुणिते सति भवन्ति ($२ \times २ \times २ = ८$)।

अत्र देवगत्या सह उद्योतस्य बंधः किन्न भवति ?

न, देवगत्या सह तस्य उदयाभावात्। तिर्यग्गतिं मुक्त्वा अन्यगतिभिः सह तस्य बंधविरोधाच्च।

देवेषु उद्योतस्योदयाभावे देवानां देहदीप्तिः कुतः भवति ?

वर्णनामकर्मोदयात्। उद्योतोदयजातदेहदीप्तिः सुष्ठु स्तोका, प्रायेण स्तोकावयवप्रतिनियता, तिर्यग्गतिउदयसंबद्धा च। तेन उद्योतस्योदयः तिर्यक्षु एव, न देवेषु, विरोधात्।

सूर्याः चन्द्रमसः ग्रहनक्षत्रतारकाश्च ये विभासमानाः दृश्यन्ते, ते च न देवाः, तेषां ज्योतिर्वासिनां विमानानि। तत्र विमानेषु उद्योतनामकर्मोदयसहिताः एकेन्द्रियजीवानां देहाः एव दीप्यन्ते। सूर्यविमानेषु

वह द्वितीय उनतीस प्रकृतिक बन्धस्थान पंचेन्द्रिय जाति, पर्याप्त और तीर्थकर प्रकृति से संयुक्त देवगति को बांधने वाले असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और प्रमत्तसंयत के होता है॥१०३॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ उनतीस प्रकृति वाला प्रथम स्थान अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरणवर्ती मुनियों के होता है। जैसा पूर्व में इकतीस प्रकृति वाला बंधस्थान कहा है उसमें से आहारकशरीर और आहारक अंगोपांग को छोड़कर ही यह स्थान होता है।

दूसरा उनतीस प्रकृति वाला बन्धस्थान भी तीर्थकर प्रकृति के बंध सहित ही होता है। यह असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत या प्रमत्तसंयत मुनि के देवगति को बांधने वाले के होता है। यहाँ भंग आठ हैं। स्थिर, शुभ और यशःकीर्ति इन तीन युगलों को परस्पर में गुणा करने पर ($२ \times २ \times २ = ८$) आठ भंग होते हैं।

शंका — यहाँ देवगति के साथ उद्योत प्रकृति का बंध क्यों नहीं होता है ?

समाधान — नहीं होता है, क्योंकि देवगति के साथ उद्योत प्रकृति के उदय का अभाव है। तिर्यचगति को छोड़कर अन्य गति के साथ इसके बंध का भी विरोध है।

शंका — देवों में उद्योत प्रकृति का उदय नहीं होने पर उनके शरीर में दीप्ति कहाँ से होती है ?

समाधान — देवों के शरीर में दीप्ति वर्ण नामकर्म के उदय से होती है। उद्योत प्रकृति के उदय से उत्पन्न होने वाली देह दीप्ति अत्यन्त होती है, प्रत्यः स्तोक — थोड़े अवयवों में प्रतिनियत होती है और तिर्यचगति नामकर्म के उदय से सम्बद्ध होती है। इसलिये उद्योत प्रकृति का उदय तिर्यचों में ही होता है, देवों में नहीं, क्योंकि ऐसा मानने में विरोध आता है।

जो सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारागण चमकते हुये दिखते हैं, वे देव नहीं हैं, वे तो ज्योतिर्वासी देवों के — सूर्य आदि देवों के विमान हैं। उन विमानों में उद्योत नामकर्म के उदय से सहित एकेन्द्रिय जीवों

आतपनामकर्मोदयसहिताः एकेन्द्रियजीवानां देहाः एव विमानानि द्योतयन्ते, प्रकाशयन्ति इति ज्ञातव्यं।

संप्रति अष्टाविंशतिप्रकृतिकस्थानविधायिनां प्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

तत्थ इमं पढमअट्ठावीसाए ट्ठाणं, देवगदी पंचिंदियजादी वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं वेउव्वियअंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिणणामं। एदासिं पढमअट्ठावीसाए पयडीणमेक्कमिहे चेव ट्ठाणं॥१०४॥

देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं अप्पमत्तसंजदस्स वा अपुव्वकरणस्स वा॥१०५॥

तत्थ इमं विदियअट्ठावीसाए ट्ठाणं, देवगदी पंचिंदियजादी वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं वेउव्वियसरीरअंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं

के शरीर ही चमकते हैं। सूर्य के विमानों में आतप नामकर्म के उदय से सहित एकेन्द्रिय जीवों के शरीर ही विमान रूप से चमकते हैं— प्रकाश फैलाते हैं, ऐसा जानना चाहिये।

अब अट्ठाईस प्रकृतिक स्थान वालों का प्रतिपादन करने के लिये चार सूत्र अवतार लेते हैं—

सूत्रार्थ—

नामकर्म के देवगति सम्बन्धी उक्त पाँच बन्धस्थानों में यह प्रथम अट्ठाईस प्रकृतिक बन्धस्थान है—देवगति^१, पंचेन्द्रिय जाति^२, वैक्रियिक शरीर^३, तैजस शरीर^४, कार्मण शरीर^५, समचतुरस्र संस्थान^६, वैक्रियिक शरीर-अंगोपांग^७, वर्ण^८, गन्ध^९, रस^{१०}, स्पर्श^{११}, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी^{१२}, अगुरुलघु^{१३}, उपघात^{१४}, परघात^{१५}, उच्छ्वास^{१६}, प्रशस्तविहायोगति^{१७}, त्रस^{१८}, बादर^{१९}, पर्याप्त^{२०}, प्रत्येक शरीर^{२१}, स्थिर^{२२}, शुभ^{२३}, सुभग^{२४}, सुस्वर^{२५}, आदेय^{२६}, यशःकीर्ति^{२७} और निर्माण नामकर्म^{२८}। इन प्रथम अट्ठाईस प्रकृतियों का एक ही भाव में अवस्थान है॥१०४॥

वह प्रथम अट्ठाईस प्रकृतिक बन्धस्थान पंचेन्द्रिय जाति और पर्याप्त नामकर्म से संयुक्त देवगति को बांधने वाले अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरणसंयत के होता है॥१०५॥

नामकर्म के देवगति सम्बन्धी उक्त पाँच बन्धस्थानों में यह द्वितीय अट्ठाईस प्रकृतिक बन्धस्थान है—देवगति^१, पंचेन्द्रिय जाति^२, वैक्रियिक शरीर^३, तैजस शरीर^४, कार्मण शरीर^५, समचतुरस्रसंस्थान^६, वैक्रियिक शरीर-अंगोपांग^७, वर्ण^८, गन्ध^९, रस^{१०},

पसत्थविहायगदी-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं
सुभासुभाणमेक्कदरं सुभग-सुस्सर-आदेज्जं-जसकित्ति-अजस-कित्तीण-
मेक्कदरं णिमिणं। एदासिं विदियअट्ठावीसाए पयडीणमेक्कमिह चेव
ट्ठाणं॥१०६॥

देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स वा
सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा
संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा॥१०७॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — प्रथमाष्टाविंशतिप्रकृतिस्थाने अयशःकीर्तेः बंधो नास्ति, प्रमत्तगुणस्थाने तस्याः
बंधविनाशात्। इदं स्थानं अप्रमत्तसंयतस्यापूर्वकरणस्य वा भवति।

द्वितीयं अष्टाविंशतिकं स्थानं मिथ्यादृष्टेरारभ्य संयतपर्यंतजीवानां। संयतेनात्र प्रमत्तसंयतस्यैव ग्रहणं
कर्तव्यं। अत्र भंगाः अष्टौ — स्थिर-शुभ-यशःकीर्तियुगलानां परस्परं गुणिते सति भवन्ति। ($2 \times 2 \times 2 = 8$)।
प्रमत्तसंयतस्योपरि अस्थिर-अशुभ-अयशःकीर्तिप्रकृतीनां बंधाभावात्।

स्पर्श^{११}, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी^{१२}, अगुरुलघु^{१३}, उपघात^{१४}, परघात^{१५}, उच्छ्वास^{१६},
प्रशस्तविहायोगति^{१७}, त्रस^{१८}, बादर^{१९}, पर्याप्त^{२०}, प्रत्येक शरीर^{२१}, स्थिर और अस्थिर
इन दोनों में से कोई एक^{२२}, शुभ और अशुभ इन दोनों में से कोई एक^{२३}, सुभग^{२४},
सुस्वर^{२५}, आदेय^{२६}, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति इन दोनों में से कोई एक^{२७} और
निर्माण नामकर्म^{२८}। इन द्वितीय अट्ठाईस प्रकृतियों का एक ही भाव में अवस्थान
है॥१०६॥

वह द्वितीय अट्ठाईस प्रकृतिक बन्धस्थान पंचेन्द्रिय जाति और पर्याप्त नामकर्म से
संयुक्त देवगति को बांधने वाले मिथ्यादृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि,
असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयत के होता है॥१०७॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — प्रथम अट्ठाईस प्रकृति वाले स्थान में अयशःकीर्ति प्रकृति का बंध नहीं
है, क्योंकि प्रमत्तगुणस्थानवर्ती मुनि के उस प्रकृति के बंध का विनाश हो जाता है। यह स्थान अप्रमत्तसंयतों
के अथवा अपूर्वकरणवर्ती मुनियों के होता है।

दूसरा अट्ठाईस प्रकृति वाला स्थान मिथ्यादृष्टि जीवों से प्रारम्भ करके संयतपर्यंत जीवों के होता है,
यहाँ 'संयतपद' से प्रमत्तसंयत — छठे गुणस्थानवर्ती को ही ग्रहण करना चाहिये। यहाँ भंग आठ हैं —
स्थिर, शुभ और यशःकीर्ति इन तीन युगलों को परस्पर गुणित करने पर ($2 \times 2 \times 2 = 8$) आठ भंग होते
हैं। आगे प्रमत्तसंयत से ऊपर के गुणस्थानों में अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति इन तीन प्रकृतियों का बंध
नहीं होता है।

संप्रति देवगत्या सह एकप्रकृतिबंधस्थानस्वामिनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

तत्थ इमं एक्किस्से द्वाणं जसकित्तिणाम। एदिस्से पयडीए एक्कम्हि चेव द्वाणं।।१०८।।

बंधमाणस्स तं संजदस्स।।१०९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रयोरर्थः सुगमः। अत्रापि संयतस्य पदेन अपूर्वकरणगुणस्थानस्य सप्तमभागादारभ्य सूक्ष्मसांपरायणगुणस्थानवर्तिसंयतपर्यन्तानां ग्रहणं कर्तव्यं। केवलं यशःकीर्तिनामकर्म मुक्त्वा शेषनामकर्मप्रकृतयः अपूर्वकरणस्य षष्ठे भागे बंधात् व्युच्छिन्नाः भवन्ति, किन्तु यशःकीर्तिप्रकृतिः दशमगुणस्थानं यावत् बध्यते।

कश्चिदाशंकते — एकत्रिंशत्-त्रिंशत्-एकोनत्रिंशत्-अष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानानि चत्वारि कथितानि, तेषां देवगत्या सह बंधः भवतु नाम, किन्तु न एकप्रकृतिकस्थानं बंधः देवगत्या सह संभवति ? किंच, देवगतिबंधस्य पंचेन्द्रियजात्यादि-अष्टाविंशतिप्रकृतिबंधाविनाभावित्वेन एकत्वविरोधात् प्रवचनविरोधाच्च ?

अस्य परिहारः उच्यते — उपर्युक्तकथनं इष्टत्वात् न सूत्रविरोधो भवति, तस्य गुणस्थाननिबंधनत्वेन भूतपूर्वनयं प्रतीत्य संयुक्तरूपेण प्रतिपादने व्यापृतस्य देवगतिबंधाभावेऽपि अनिवृत्तिकरण गुणस्थाने सार्थक्यं भवति।

अब देवगति के साथ एक प्रकृतिक बन्धस्थान के स्वामी का निरूपण करने के लिये दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

नामकर्म के देवगति सम्बन्धी उक्त पाँच बन्धस्थानों में यशःकीर्ति नामकर्मसम्बन्धी यह एक प्रकृतिक बन्धस्थान है। इस एक प्रकृतिक बन्धस्थान का एक ही भाव में अवस्थान है।।१०८।।

वह एक प्रकृति रूप बन्धस्थान उसी एक यशःकीर्ति प्रकृति का बन्ध करने वाले संयत के होता है।।१०९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इन दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। यहाँ पर भी संयत पद से अपूर्वकरण गुणस्थान के सातवें भाग से प्रारम्भ करके सूक्ष्मसांपरायण गुणस्थानवर्ती संयतपर्यंत के मुनियों को ग्रहण करना चाहिये। केवल यशःकीर्ति नामकर्म को छोड़कर शेष नामकर्म की प्रकृतियां अपूर्वकरण के छठे भाग में बंध से व्युच्छिन्न हो जाती हैं, किन्तु यशःकीर्ति प्रकृति दशवें गुणस्थान तक बंधती है।

शंका — इकतीस, तीस, उनतीस और अट्ठाईस प्रकृति वाले जो चार स्थान कहे हैं, उनका देवगति के साथ बंध होवे ठीक है, किन्तु एक प्रकृति वाला स्थान देवगति के साथ बंधे यह संभव नहीं है ? क्योंकि देवगति के बंध का पंचेन्द्रिय जाति आदि अट्ठाईस प्रकृतियों के बंध के साथ अविनाभावी होने से एक प्रकृतिक बंध का उसके साथ विरोध है और आगम से भी विरोध आता है ?

समाधान — आचार्यदेव इसका परिहार करते हुये कहते हैं — उपर्युक्त कथन हमें इष्ट ही है, क्योंकि वैसा मानने पर सूत्र के साथ कोई विरोध नहीं आता है, उसके गुणस्थाननिमित्तक होने से भूतपूर्व नय की अपेक्षा संयुक्त रूप से प्रतिपादन करने में व्यापार करने वाले उस सूत्र की देवगति का बंध नहीं होने पर भी अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में सार्थकता हो जाती है।

इतो विशेषः—

नामकर्मणां स्थानानि ज्ञात्वाधुना एषां शुभाशुभभेदद्वयं विभज्य तयोः कारणाणि अवश्यमेव ज्ञातव्यानि भवन्ति। तद्यथा—

योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः॥२२॥

स्वगता योगवक्रता। परगतं विसंवादनं। सम्यगभ्युदयनिःश्रेयसार्थासु क्रियासु प्रवर्तमानमन्यं तद्विपरीतकायवाङ्मनोभिर्विसंवादयति मैवं कार्षीरिवं कुर्वीत। एतदुभयमशुभनामकर्मास्त्रवकारणं वेदितव्यं। 'च' शब्देन मिथ्यादर्शनपैशून्यास्थिरचित्तताकूटमानतुलाकरणपरनिंदात्मप्रसंशादिः समुच्चयते।

अथ शुभनामकर्मणः क आस्त्रव इत्यत्रोच्यते—

तद्विपरीतं शुभस्य॥२३॥

कायवाङ्मनसामृजुत्वमविसंवादनं च तद्विपरीतम्। 'च' शब्देन समुच्चितस्य च विपरीतं ग्राह्यं। धार्मिकदर्शन-संभ्रम-सद्भावोपनयनसंस्मरणभीरुताप्रमादवर्जनादिः। तदेतच्छुभनामकर्मास्त्रवकारणं वेदितव्यं।

नामकर्मणोऽन्तर्गततीर्थकरनामकर्मप्रकृतिः विद्यते।

उक्तं च—'यदिदं तीर्थकरनामकर्मान्तानुपमप्रभावमचिन्त्यविभूतिविशेषकारणं त्रैलोक्यविजयकरं तस्यास्त्रवविधिविशेषोऽस्तीति।

अब यहाँ कुछ विशेष कहते हैं—

अब नामकर्म के स्थानों को जानकर इनमें शुभ और अशुभ दो भेदों का विभाजन करके उन दोनों के कारणों को अवश्य ही जानना चाहिये। उसे ही दिखाते हैं—

योगवक्रता और विसंवाद ये अशुभ नामकर्म के आस्त्रव हैं॥२५॥

जो अपने में हो वह योगवक्रता है और जो परगत हो वह विसंवाद है।

जो स्वर्ग और मोक्ष के योग्य समीचीन क्रियाओं का आचरण कर रहा है उसे उसके विपरीत मन, वचन और काय की प्रवृत्ति द्वारा रोकना कि ऐसा मत करो, ऐसा करो, विसंवादन है। इस प्रकार ये दोनों एक नहीं हैं, किन्तु अलग-अलग हैं। ये दोनों अशुभनामकर्म के आस्त्रव के कारण जानने चाहियें। सूत्र में आये हुये 'च' पद से मिथ्यादर्शन, चुगलखोरी, चित्त का स्थिर न रहना, मापने और तौलने के बाँट घट-बढ़ रखना, दूसरों की निन्दा करना और अपनी प्रशंसा करना आदि आस्त्रवों का समुच्चय होता है।

अब शुभ नामकर्म का आस्त्रव क्या है यह बतलाने के लिये आगे का सूत्र कहते हैं—

उससे विपरीत अर्थात् योग की सरलता और अविस्वादन ये शुभनामकर्म के आस्त्रव हैं॥२३॥

काय, वचन और मन की सरलता तथा अविस्वादन ये उससे विपरीत हैं। उसी प्रकार पूर्व सूत्र की व्याख्या करते हुए 'च' शब्द से जिनका समुच्चय किया गया है उनके विपरीत आस्त्रवों का ग्रहण करना चाहिये। जैसे— धार्मिक पुरुषों व स्थानों का दर्शन करना, आदर-सत्कार करना, सद्भाव रखना, उपनयन, संसार से डरना और प्रमाद का त्याग करना आदि। ये सब शुभ नामकर्म के आस्त्रव के कारण हैं।

नामकर्म के अन्तर्गत तीर्थकर नामकर्म की प्रकृति है। कहा भी है—

जो यह अनन्त और अनुपम प्रभाव वाला, अचिन्त्य विभूति विशेष का कारण और तीन लोक की विजय करने वाला तीर्थकर नामकर्म है उसके आस्त्रव में विशेषता है, अतः अगले सूत्र द्वारा उसी का कथन करते हैं—

दर्शनविशुद्धिर्विनयसंपन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकपरिहाणिमार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य॥२४॥

जिनेन भगवताहृत्परमेष्ठिनोपविष्टे निर्ग्रन्थलक्षणे मोक्षवर्त्मनि रुचिर्दर्शनविशुद्धिः। तस्या निःशंकितत्वादिअष्टौ अंगानि। सम्यग्ज्ञानादिषु मोक्षमार्गेषु तत्साधनेषु च गुर्वादिषु स्वयोग्यवृत्त्या सत्कारः आदरो विनयस्तेन संपन्नता विनयसंपन्नता। अहिंसादिषु व्रतेषु तत्प्रतिपादनार्थेषु च क्रोधवर्जनादिषु शीलेषु निरवद्या वृत्तिः शीलव्रतेष्वनतिचारः। जीवादिपदार्थ-स्वतत्त्वविषये सम्यग्ज्ञाने नित्यं युक्तता अभीक्ष्णज्ञानोपयोगः। संततं जिनागमस्याध्ययनशीलत्वं इति। संसारदुःखान्नित्यभीरुता संवेगः। त्यागो दानं तत्त्रिविधं — आहारदान-मभयदानं ज्ञानदानं चेति। अन्यत्र ग्रंथे औषधिदानमपि गृहीत्वा चतुर्विधं दानं कथितं। तच्छक्तितो यथाविधि प्रयुज्यमानं त्याग इत्युच्यते। अनिगूहितवीर्यस्य मार्गाविरोधि कायक्लेशस्तपः। यथा भाण्डागारे दहने समुत्थिते तत्प्रशमनमनुष्ठीयते बहुपकारत्वात्तथानेकव्रतसमृद्धस्य मुनेस्तपसः कुतश्चित् प्रत्यूहे समुपस्थिते तत्संधारणं समाधिः। गुणवददुःखोपनिपाते निरवद्येन विधिना तदपहरणं वैयावृत्यं। अर्हदाचार्येषु बहुश्रुतेषु

दर्शनविशुद्धि, विनयसम्पन्नता, शील और व्रतों का अतिचार रहित पालन करना, ज्ञान में सतत उपयोग, सतत संवेग, शक्ति के अनुसार त्याग, शक्ति के अनुसार तप, साधु-समाधि, वैयावृत्य करना, अरिहंत भक्ति, आचार्य भक्ति, बहुश्रुत भक्ति, प्रवचन भक्ति, आवश्यक क्रियाओं को न छोड़ना, मोक्षमार्ग की प्रभावना और प्रवचन वात्सल्य ये तीर्थकर नामकर्म के आस्रव हैं॥२४॥

(१) जिन भगवान् अरिहंत परमेष्ठी द्वारा कहे हुये निर्ग्रन्थस्वरूप मोक्षमार्ग पर रुचि रखना दर्शनविशुद्धि है। उसके आठ अंग हैं — निःशंकितत्व, निःकांक्षिता, निर्विचिकित्सितत्व, अमूढदृष्टिता, उपबृंहण, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना।

(२) सम्यग्ज्ञानादि मोक्षमार्ग और उनके साधन गुरु आदि के प्रति अपने योग्य आचरण द्वारा आदर-सत्कार करना विनय है और इससे युक्त होना विनयसम्पन्नता है।

(३) अहिंसादिक व्रत हैं और इनके पालन करने के लिये क्रोधादि का त्याग करना शील है। इन दोनों के पालन करने में निर्दोष प्रवृत्ति रखना शीलव्रतानतिचार है।

(४) जीवादि पदार्थरूप स्वतत्त्वविषयक सम्यग्ज्ञान में निरन्तर लगे रहना अभीक्ष्णज्ञानोपयोग है।

(५) संसार के दुःखों से निरन्तर डरते रहना संवेग है।

(६) त्याग दान है। वह तीन प्रकार का है — आहारदान, अभयदान और ज्ञानदान। अन्य ग्रन्थों में औषधिदान को भी ग्रहण करने से दान के चार भेद हो गये हैं। उसे शक्ति के अनुसार विधिपूर्वक देना यथाशक्ति त्याग है।

(७) शक्ति को न छिपाकर मोक्षमार्ग के अनुकूल शरीर को क्लेश देना यथाशक्ति तप है।

(८) जैसे भण्डार में आग लग जाने पर बहुत उपकारी होने से आग को शान्त किया जाता है उसी प्रकार अनेक प्रकार के व्रत और शीलों से समृद्ध मुनि के तप करते हुये किसी कारण से विघ्न के उत्पन्न होने पर उसका संधारण करना — शान्त करना साधुसमाधि है।

(९) गुणी पुरुष के दुःख में आ पड़ने पर निर्दोष विधि से उसका दुःख दूर करना वैयावृत्य है।

प्रवचने च भावविशुद्धियुक्तोऽनुरागो भक्तिः। षण्णामावश्यकक्रियाणां यथाकालं प्रवर्तमानमावश्यकपरिहाणिः। ज्ञानतपोदानजिनपूजाविधिना धर्मप्रकाशनं मार्गप्रभावना। वत्से धेनुवत्सधर्मणि स्नेहः प्रवचनवत्सलत्वं। तानि एतानि षोडशकारणानि सम्यग्भाव्यमानानि व्यस्तानि च तीर्थकरनामकर्मास्त्रवकारणानि प्रत्येतव्यानि।

यद्यपि इमानि तीर्थकरप्रकृतिप्रमुखनामकर्माणि सर्वाणि व्यवहारनयेन जीवस्य सन्ति अनादिबद्ध-बंधनवशात् तथापि निश्चयनयेन सदा कर्मकलंकमलैरस्पृष्टत्वात् शुद्धात्मनः सकाशात् भिन्नान्येव।

उक्तं च तथैव श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवेन समयसारप्राभृतग्रन्थे—

जीवस्स णत्थि वण्णो, णवि गंधो णवि रसो णवि य फासो।

णवि रूवं ण सरीरं, ण वि संठाणं ण संहणणं॥५०॥

जीवस्स णत्थि रागो, णवि दोसो णेव विज्जदे मोहो।

णो पच्चया ण कम्मं, णोकम्मं चावि से णत्थि॥५१॥

जीवस्स णत्थि वग्गो, ण वग्गणा णेव फड्डया केई।

णो अज्झप्पट्टाणा, णेव य अणुभायट्टाणाणि॥५२॥

जीवस्स णत्थि केई, जोयट्टाणा य बंधट्टाणा वा।

णेव य उदयट्टाणा, ण मग्गणट्टाणया वेई॥५३॥

णो ठिदिबंधट्टाणा, जीवस्स ण संकिलेसट्टाणा वा।

णेव विसोहिट्टाणा, णो संजमलद्धिट्टाणा वा॥५४॥

(१०-१३) अरिहंत, आचार्य, बहुश्रुत और प्रवचन इनमें भावों की विशुद्धि के साथ अनुराग रखना अरिहंत भक्ति, आचार्य भक्ति, बहुश्रुत भक्ति और प्रवचन भक्ति है।

(१४) छह आवश्यक क्रियाओं को यथासमय करना आवश्यकपरिहाणि है।

(१५) ज्ञान, तप, दान और जिनपूजा इनके द्वारा धर्म का प्रकाश करना मार्गप्रभावना है।

(१६) जैसे गाय बछड़े पर स्नेह रखती है उसी प्रकार साधर्मियों पर स्नेह रखना प्रवचनवत्सलत्व है। यह सब सोलहकारण भावनाएँ हैं। यदि अलग-अलग इनका भले प्रकार चिन्तन किया जाता है तो भी ये तीर्थकर नामकर्म के आस्रव के कारण होते हैं और समुदायरूप से सबका भले प्रकार चिन्तन किया जाता है तो भी ये तीर्थकर नामकर्म के आस्रव के कारण जानने चाहिये।

यद्यपि ये तीर्थकर प्रकृति को प्रमुख करके जो नामकर्म के भेद हैं वे सभी व्यवहारनय से जीव के हैं, क्योंकि ये अनादिकाल से बंधे हुये कर्मबंधन के निमित्त से हैं फिर भी निश्चयनय से सदा यह जीव कर्मकलंक मल से अस्पर्शित ही है, अतएव ये कर्म शुद्धात्मा से भिन्न ही हैं।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसार प्राभृत ग्रन्थ में इसी प्रकार से कहा है—

जीव के वर्ण नहीं हैं, गंध भी नहीं है, रस भी नहीं है और स्पर्श भी नहीं है। रूप भी नहीं है, शरीर भी नहीं है, संस्थान भी नहीं है और संहनन भी नहीं है। जीव के राग नहीं है, द्वेष भी नहीं है और न मोह ही है, उसके आस्रव भी नहीं है, न कर्म है और न नोकर्म ही हैं। जीव के वर्ग नहीं हैं, न वर्गणा हैं और न कोई स्पर्धक ही हैं। अध्यात्मस्थान भी नहीं है और न अनुभागस्थान ही हैं। जीव के कोई योगस्थान नहीं है और बन्धस्थान ही हैं न उदयस्थान ही है और न कोई मार्गणास्थान ही हैं। जीव के स्थितिबंधस्थान नहीं है और न

णेव य जीवद्वाणा, ण गुणद्वाणा य अत्थि जीवस्स।

जेण दु एदे सव्वे, पुग्गलदव्वस्स परिणामा^१।।५५।।

आत्मख्यातिटीकायां श्रीमदमृतचन्द्रसूरिः ब्रूते —

‘यः कृष्णो हरितः पीतो रक्तः श्वेतो वर्णः स सर्वोऽपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्’ इत्यादिः।

आसां गाथानां तात्पर्यवृत्तिटीकायां श्रीमज्जयसेनाचार्येणापि कथ्यते —

‘वर्णगंधरसस्पर्शास्तु रूपशब्दवाच्याः स्पर्शरसगंधवर्णवती मूर्तिश्च औदारिकादिपञ्चशरीराणि, समचतुरस्त्रादिषट्संस्थानानि, वज्रवृषभनाराचादिषट्संहननानि चेति। एते वर्णादयो धर्मिणः शुद्धनिश्चयनयेन जीवस्य न सन्तीति साध्यो धर्मश्चेति धर्मधर्मिसमुदायलक्षणः पक्षः, आस्था, संधा, प्रतिज्ञेति यावत् पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सति शुद्धात्मानुभूतेर्भिन्नत्वात् इति हेतुः।’ इत्यादिः।

श्री कुंदकुन्ददेवेन पुनश्च निश्चयव्यवहारनयद्वयसमन्वयं उच्यते —

ननु वर्णादयो यद्यपि न सन्ति जीवस्य तदा तन्त्रान्तरे कथं सन्तीति प्रज्ञाप्यन्ते इति चेत् —

व्यवहारेण दु एदे, जीवस्स हवन्ति वण्णमादीया।

गुणठाणंता भावा, ण दु केई णिच्छयणयस्स।।५६।।

संक्लेशस्थान ही है। विशुद्धिस्थान भी नहीं है और न संयमलब्धिस्थान ही हैं। जीव के जीवसमासस्थान नहीं हैं और न गुणस्थान ही है क्योंकि ये सब पुद्गल द्रव्य के परिणाम हैं।।५०-५५।।

इन गाथाओं की आत्मख्याति टीका में श्रीमान अमृतचंद्रसूरि कहते हैं —

जो काला, हरा अथवा नीला, पीला, लाल और श्वेत वर्ण है, वे सभी जीव के नहीं हैं, क्योंकि ये पुद्गल द्रव्य के परिणामरूप हैं, अतः अनुभूति — अपने अनुभव — स्वात्मानुभव से भिन्न हैं, इत्यादि।

इन गाथाओं की तात्पर्यवृत्तिटीका में श्रीजिनसेनाचार्य भी कहते हैं —

वर्ण, गंध, रस और स्पर्श ये रूप शब्द से कहे जाते हैं और मूर्ति स्पर्श, रस, गंध, वर्ण वाली होती है तथा औदारिक आदि पाँच शरीर, समचतुरस्त्र आदि छह संस्थान और वज्रवृषभनाराचा आदि छह संहनन, ये सभी वर्णादि शुद्ध निश्चयनय से जीव के नहीं हैं क्योंकि ये पुद्गल द्रव्य के परिणाममय हैं, अतः शुद्ध आत्मा की अनुभूति से भिन्न हैं। यहाँ यह दो अंग वाला अनुमान है, उसमें ‘वर्णादि’ धर्मी हैं, ‘शुद्ध निश्चयनय से जीव के नहीं हैं’ यह साध्य है — धर्म है, इस धर्मी और धर्म के समुदाय को पक्ष कहते हैं। पक्ष, आस्था, संधा और प्रतिज्ञा ये पर्यायवाची हैं। ‘पुद्गल द्रव्य के परिणाममय होने से शुद्ध आत्मा की अनुभूति से भिन्न हैं’ यह हेतु है। इस प्रकार यहाँ व्याख्यान में पक्ष और हेतु इन दो अवयव वाला अनुमान बनाया गया है।

पुनः श्री कुन्दकुन्ददेव ने निश्चय व्यवहार दोनों नय के समन्वय को करते हुये कहा है — यदि ये वर्णादि भाव जीव के नहीं हैं तो पुनः अन्य — सिद्धान्त ग्रन्थों में ‘उनके हैं’ ऐसा कैसे कहा है ? ऐसा प्रश्न होने पर आचार्यदेव कहते हैं —

व्यवहारनय से तो ये सब वर्ण आदि भाव जीव के होते हैं, किन्तु निश्चयनय की अपेक्षा गुणस्थानपर्यन्त कोई भी भाव जीव के नहीं हैं।।

यहाँ पर आत्मख्याति टीका में श्री अमृतचन्द्रसूरि ने कहा है कि — व्यवहारनय पर्याय के आश्रित

आत्मख्यातिः — “इह हि व्यवहारनयः किल पर्यायाश्रितत्वाज्जीवस्य पुद्गलसंयोगवशादनादि-
प्रसिद्धबन्धपर्यायस्य कुसुम्भरक्तस्य कार्पासिकवासस इवौपाधिकं भावमवलम्ब्योत्प्लवमानः परभावं परस्य
विदधाति। निश्चयनयस्तु द्रव्याश्रितत्वात्केवलस्य जीवस्य स्वाभाविकं भावमवलम्ब्योत्प्लवमानः परभावं
परस्य सर्वमेव प्रतिषेधयति। ततो व्यवहारेण वर्णादयो गुणस्थानान्ताः भावाः जीवस्य सन्ति निश्चयेन न
सन्तीति युक्ता प्रज्ञप्तिः।”

एतन्निश्चयव्यवहारनयौ द्वावपि ज्ञात्वा निश्चयनयेन स्वशुद्धात्मस्वभावं श्रद्धधानैः भवद्भिः व्यवहारनयेन
शुभनामकर्मास्त्रकारणानि विधातव्यानि निरन्तरमिति।

तात्पर्यमेतत् — एकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानं एकोनत्रिंशत्स्थानं वा तीर्थकरप्रकृतिसहितं बध्यमानैः यैः पुरुषैः
पंचकल्याणपूजा संप्राप्ता, ये च संप्रति प्राप्नुवन्ति प्राप्स्यन्त्यपि तान् त्रैकालिकान् तीर्थकरान् प्रणमामो वयं
भक्त्या त्रिशुद्ध्यापि याचामहे च तदेव स्वात्मपदमिति।

एवं दशमस्थले देवगतिबंधस्थानस्वामिनिरूपणपरत्वेन पंचदश सूत्राणि गतानि।

अधुना गोत्रकर्मणः स्थान-स्वामिप्रतिपादनाय सूत्रपंचकमवतार्यते —

गोदस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ, उच्चागोदं चेव णीचागोदं चेव।।११०।।

जं तं णीचागोदं कम्मं।।१११।।

होने से पुद्गल के संयोग के वश से अनादिकाल से जिसकी बंध पर्याय प्रसिद्ध है ऐसे जीव के औपाधिक भाव
का अवलम्बन लेकर प्रवृत्त होता हुआ पर भावों को पर के — जीव के कहता है। जैसे कि कुसुम्भ — टेसू के
लाल रंग से रंगे हुये सूती सफेद वस्त्र रंग की उपाधि का अवलम्बन लेने से लाल कहलाता है किन्तु यह
निश्चयनय तो द्रव्य के आश्रित होने से केवल जीव के स्वाभाविक भाव का अवलम्बन लेकर प्रवृत्त होता हुआ
जीव में सभी ही पर के भावों का निषेध करता है इसलिये व्यवहारनय की अपेक्षा से ये वर्णादि से लेकर
गुणस्थानपर्यन्त सभी भाव जीव के हैं, किन्तु निश्चयनय से नहीं हैं, ऐसा जिनशासन का कथन युक्त ही है।

इन निश्चय और व्यवहार दोनों नयों को भी जानकर निश्चयनय से अपनी शुद्ध आत्मा के स्वभाव का
श्रद्धान करते हुये आपको निरन्तर व्यवहारनय से शुभ नामकर्म के आस्त्र के कारणों को करते रहना चाहिये।

यहाँ तात्पर्य यह है कि इकतीसप्रकृतिक अथवा उन्तीसप्रकृतिक स्थान जो कि तीर्थकर प्रकृति के बंध
से सहित हैं, इनको बांधते हुये पुरुषों ने पंचकल्याणक की पूजा को — महोत्सव को प्राप्त किया है और जो
वर्तमान में पंचकल्याणक को प्राप्त कर रहे हैं तथा जो महापुरुष आगे पंचकल्याणक को प्राप्त करेंगे उन सभी
त्रैकालिक तीर्थकर भगवन्तों को हम मन, वचन, काय की शुद्धिपूर्वक भक्ति से नमस्कार करते हैं और उसी
स्वात्मपद की याचना करते हैं।

इस प्रकार दशवें स्थल में देवगति के बंधस्थान और उनके स्वामी के निरूपणरूप से पन्द्रह सूत्र पूर्ण
हुये हैं।

अब गोत्रकर्म के स्थान और स्वामी का प्रतिपादन करने के लिये पांच सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

गोत्रकर्म की दो ही प्रकृतियां हैं — उच्च गोत्र और नीच गोत्र।।११०।।

जो नीच गोत्रकर्म है, वह एक प्रकृतिक बन्धस्थान है।।१११।।

बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा।।११२।।

जं तं उच्चागोदं कम्मं।।११३।।

बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छा-
दिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा।।११४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — नेदं प्रथमं सूत्रं पुनरुक्तदोषेण दूष्यते, विस्मरणशीलशिष्यानुग्रहार्थं पुनः पुनः प्ररूपणायां दोषाभावात्।

प्रथमद्वितीयगुणस्थानादुपरि नीचैर्गोत्रं न बध्यते इति ज्ञातव्यं। उच्चैर्गोत्रं प्रथमगुणस्थानादारभ्य दशमगुणस्थानपर्यंतं भवति इति निश्चेतव्यं। पुनश्च उच्चैर्गोत्रकारणभूतान्येव कार्याणि कर्तव्यानि निरन्तरम्।

एवं एकादशस्थले गोत्रकर्मणः स्थानस्वामिनिरूपणत्वेन पंचसूत्राणि गतानि।

संप्रति अन्तरायकर्मणः स्थान-स्वामिप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

अंतराइयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ, दाणंतराइयं लाहंतराइयं भोगंतराइयं
परिभोगंतराइयं वीरियंतराइयं चेदि।।११५।।

एदासिं पंचण्हं पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं।।११६।।

वह बन्धस्थान नीच गोत्रकर्म को बांधने वाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीव के होता है।।११२।।

जो उच्च गोत्रकर्म है, वह एक प्रकृतिक बन्धस्थान है।।११३।।

वह बन्धस्थान उच्च गोत्रकर्म को बांधने वाले मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयत के होता है।।११४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ यह प्रथम सूत्र पुनरुक्त दोष से दूषित नहीं है, क्योंकि विस्मरणशील शिष्यों के अनुग्रह के लिये पुनः-पुनः प्ररूपणा करने पर कोई दोष नहीं है। प्रथम और द्वितीय गुणस्थान के ऊपर नीच गोत्र नहीं बंधता है ऐसा जानना चाहिये और उच्च गोत्र प्रथम गुणस्थान से लेकर दसवें गुणस्थानपर्यंत होता है ऐसा निश्चय करना चाहिये। पुनः उच्चगोत्र के लिये कारणभूत ऐसे कार्यों को ही निरन्तर करते रहना चाहिये।

इस प्रकार ग्यारहवें स्थल में गोत्रकर्म के स्थान और स्वामी का निरूपण करने रूप से पांच सूत्र पूर्ण हुये।

अब अन्तराय कर्म के स्थान और स्वामी का प्रतिपादन करने के लिये तीन सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

अन्तराय कर्म की पाँच प्रकृतियाँ हैं — दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, परिभोगान्तराय और वीर्यान्तराय।।११५।।

इन प्रकृतियों के समुदायात्मक पाँच प्रकृतिक बन्धस्थान का एक ही भाव में अवस्थान होता है।।११६।।

**बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छा-
दिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स
वा।।११७।।**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। अत्र 'संजद' पदेन दशमगुणस्थानवर्तिनः
यावत् गृहीतव्यं। अन्तरायस्य कारणानि "विघ्नकरणमन्तरायस्य" इति सूत्रेण ज्ञात्वा तत्कारणाणि
परिहर्तव्यानि।

एवं द्वादशस्थले अन्तरायकर्मस्थान-स्वामिनिरूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

अत्र उपसंह्रियते —

कथंपुद्गलाः कर्मरूपेण परिणमन्ति इति चेत् ?

उच्यते —

अत्ता कुणदि सहावं तत्थ गदा पोग्गला सभावेहिं।

गच्छन्ति कम्मभावं अण्णोण्णागाहमवगाढा^१।।६५।।

ये केचित् कर्मसिद्धान्तमनभिज्ञाः ईश्वरस्य सृष्टिकर्तृत्वं मन्यन्ते तेऽपि स्वात्मज्ञानपराङ्मुखा स्वपरवञ्चका
एव। अस्मिन् विषये स्वकृतचन्द्रप्रभस्तुतौ कथितमस्ति, तद्यथा —

**वह बन्धस्थान उन पाँचों अन्तराय प्रकृतियों के बांधने वाले मिथ्यादृष्टि,
सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयत के
होता है।।११७।।**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रों का अर्थ सुगम है। यहाँ 'संयतपद' से दशवें गुणस्थानपर्यंत
महामुनियों को ग्रहण करना चाहिये। पुनः अन्तराय कर्म के आस्रव के कारण 'विघ्न करने वाले अन्तराय
कर्म का आस्रव करते हैं।' इस सूत्र से जानकर उन कारणों को छोड़ना चाहिये।

इस प्रकार बारहवें स्थल में अन्तराय कर्म के स्थान और स्वामी के निरूपण रूप से तीन सूत्र पूर्ण
हुये हैं।

यहाँ उपसंहार करते हुये कहते हैं —

यह पुद्गल कर्मरूप से कैसे परिणत होते हैं ?

ऐसा प्रश्न होने पर कहते हैं —

गाथार्थ — यह आत्मा अपने भावों को जैसे करता है, ये पुद्गल वर्गणायें अपने-अपने स्वभाव —
भावों के अनुसार परस्पर में जीव के प्रदेश और पुद्गल कर्मवर्गणायें एक-दूसरे में प्रवेश करके कर्मभाव को
प्राप्त हो जाते हैं।।६५।।

जो कोई कर्मसिद्धान्त से अनभिज्ञजन ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता मानते हैं वे अपनी आत्मा के ज्ञान से
पराङ्मुख — विमुख हुये अपने और पर के वञ्चक ही हैं। इस विषय में मैंने श्री चन्द्रप्रभस्तुति में लिखा है।
वह इस प्रकार है —

—भुजंगप्रयातछंद—

शरीरेंद्रियाद्याः धराभूधराद्याः, कृता बुद्धिमद्हेतुका सद्भवत् स्युः।

प्रसाध्येत कार्यत्वतः सृष्टिकर्ता, न तच्चारु, यद्विश्वमाद्यन्तशून्यम् ॥१७॥

तर्हि कः करोति इयं स्वसृष्टिः ?

इदमेवोच्यते—

—शिखरिणीछंद—

शरीरी प्रत्येकं भवति भुवि वेधाः स्वकृतितः।

विधत्ते नानाभू-पवन-जल-वह्नि-द्रुमतनुम् ॥

त्रसो भूत्वा भूत्वा कथमपि विधायान्न कुशलम्।

स्वयं स्वस्मिन्नास्ते भवति कृतकृत्यः शिवमयः ॥१८॥

यदि कदाचित् मन्येत ईश्वर एव सृष्टिकर्ता तर्हि को दोषः इति चेत् ?

—पृथ्वीछंद—

विचित्रभुवनत्रयं यदि कदाचिदीशः सृजेत्।

जगद्धि सकलं शुभं निखिलदोष शून्यं न किम् ॥

निगोदनरकादि-दुर्गतिकृतिश्च दुष्टाय चेत् ?

कथं पुनरधर्मिणां विहितसृष्टिरन्यायिनी ॥१९॥

काव्यार्थ—शरीर, इंद्रिय आदि एवं पृथिवी, पर्वत आदि सब किसी न किसी बुद्धिमान के द्वारा बनाये गये हैं जैसे कि मकान आदि रचनायें। इस कार्यत्व हेतु को देखकर 'सृष्टिकर्ता भगवान' को सिद्ध किया जाता है। ऐसा जो कहते हैं, उनका कहना ठीक नहीं है, क्योंकि यह सारा संसार आदि-अंत से शून्य—अनादि-अनन्त है ॥१७॥

पुनः प्रश्न यह होता है कि यह 'सृष्टि' कौन बनाता है ?

इसी बात को दिखाते हैं—

काव्यार्थ—इस संसार में प्रत्येक शरीरी—शरीरधारी संसारी प्राणी इस भूमण्डल पर अपने-अपने कार्यों से अपनी-अपनी सृष्टि का वेधा—ब्रह्मा—विधाता—कर्ता है। वह स्वयं अनेक प्रकार के पृथिवी, वायु, जल, अग्नि और वनस्पति के शरीरों को धारण करता है। पुनः जैसे-तैसे कभी इस संसार में त्रस हो-होकर कदाचित् पुण्य कार्य करके जब स्वयं अपनी आत्मा में स्थित हो जाता है तब मोक्षस्वरूप होकर कृतकृत्य हो जाता है ॥१८॥

यदि कदाचित् मान लिया जाये कि ईश्वर ही सृष्टि का कर्ता है तो क्या दोष होता है ? सो दिखाते हैं—

काव्यार्थ—यदि कदाचित् इस चित्र-विचित्र तीन लोक को—सम्पूर्ण विश्व को कोई ईश्वर बनाता है तो यह सारा जगत सम्पूर्ण दोषों से शून्य—रहित क्यों नहीं बनाता है ? यदि कहो कि यह निगोद, नरक, तिर्यच आदि दुर्गतियों की रचना दुष्टों के लिये बनायी गयी है तो पुनः अधर्मियों की यह अन्यायरूप सृष्टि क्यों बनायी ? ॥१९॥

न युज्यत इयं कृतिः सकलजन्तुकारुण्यतः।
 कुतूहलधियापि चेन्न महतां हि संभाव्यते॥
 अदृष्टपरिकल्पनापि जिन! नो भवेत्त्वद्विषाम्।
 अतश्च भवतो विना क्वचिदपीश्वरत्वं कथम्१॥२०॥

अतएव एतज्ज्ञायते — रागद्वेषादिभावैः जीवाः पुद्गलानादते त एव पुद्गलाः द्रव्यकर्मरूपेण परिणमन्ति पुनश्च उदयागताः जीवानां सुखं दुःखं च प्रयच्छन्ति इति निश्चित्य रागद्वेषमोहादिविभावभावाः परिहर्तव्याः, यावत् तेषां अभावो न भवेत् तावत् ते कृशीकर्तव्याः इति अनेनोपायेनैव निजपरमानन्दमयं परमधाम प्राप्स्यते।

—पुनश्च—

जिनपतयस्तत्प्रतिमास्तदालयास्तन्निषद्यकास्थानानि।

ते ताश्च ते च तानि च, भवन्तु भवघातहेतवो भव्यानाम्॥३६॥

अस्मिन् आर्याछन्दसि कथितश्रीपूज्यपादाचार्याभिप्रायेण त्रैलोक्ये त्रैकाल्येऽपि च तीर्थकरभगवन्त एव सर्वोत्तमाः सर्वप्रधानाः सिद्ध्यन्ति। एतज्ज्ञात्वा मयापि सर्वानुत्तरकल्पद्रुममहायज्ञे शतेन्द्रवंद्य-सर्वश्रेष्ठतीर्थकरभगवन्त एव नायकाः भवितुमर्हन्तीति निश्चित्य एषां पूजा रचिता। इयं पूजा अस्मिन् गुर्जरप्रदेशस्य

काव्यार्थ — भगवान् — ईश्वर — परमात्मा तो सम्पूर्ण प्राणीमात्र पर करुणा बुद्धि रखता है तो पुनः यह दुष्टों की सृष्टि और नरक, तिर्यच आदि की सृष्टि का बनाना उनके लिये युक्त नहीं है। यदि कहो कि भगवान् कौतूहल की बुद्धि से यह सब बनाता है तो पुनः महापुरुषों के लिये ऐसा कौतूहल करना संभव ही नहीं है।

हे जिनेन्द्रदेव ! आपके विद्वेषी — जैनधर्म के विद्वेषीजनों के यहाँ अदृष्ट परिकल्पना भी संभव नहीं है, इसलिये हे नाथ ! आपने बिना कहीं भी किन्हीं में 'ईश्वरत्व' — परमात्मपना कैसे हो सकता है ? अर्थात् नहीं हो सकता है॥२०॥

इसीलिये यह जाना जाता है कि ये संसारी प्राणी राग-द्वेष आदि भावों से पुद्गल वर्गणाओं को ग्रहण करते हैं तब वे ही पुद्गल द्रव्यकर्मरूप से परिणमन कर जाते हैं पुनः वे ही कर्म उदय में आकर जीवों को सुख-दुःख देते हैं। ऐसा निश्चय करके हमें और आपको राग, द्वेष, मोह आदि विभाव भावों को छोड़ना चाहिये और जब तक उन राग-द्वेष आदि का अभाव न हो जावे तब तक उन्हें कृश करना चाहिये, क्योंकि इस उपाय से ही निज परमानन्दमयी परमधाम मोक्ष को प्राप्त किया जावेगा।

पुनः भावना करते हैं —

श्लोकार्थ — जिनपति — तीर्थकर भगवान्, उनकी प्रतिमायें, उनके मंदिर, उनके निषीधिकास्थान — पंचकल्याणक तीर्थस्थान ये चार हैं। ये तीर्थकर देव और सभी अर्हत भगवान्, उनकी प्रतिमायें आदि सभी भव्य जीवों के भव — संसार के घात में हेतु होवें॥३६॥

इस आर्याछंद में कहे गये श्री पूज्यपादाचार्य के अभिप्राय से तीनों लोकों में और तीनों कालों में भी तीर्थकर भगवान् ही सर्वोत्तम — सभी में प्रधान सिद्ध होते हैं। ऐसा जानकर मैंने भी “सभी विधानों में श्रेष्ठ ऐसे कल्पद्रुम महायज्ञ पूजा विधान में सौ इन्द्रों से वंदित सर्वश्रेष्ठ — सर्वोत्तम तीर्थकर भगवान् ही “नायक-

राजधान्यां अहमदाबादमहानगरे संप्रति भवन्ती सती सर्वदेशे राष्ट्रे अत्रापि च मंगलं करोतु, क्षेमं सुभिक्षं च वितरतुतरां इति।

कल्पद्रुमजिनेन्द्रस्य, पादपद्मं नुमो वयम्।

यस्य पादप्रसादेन, सर्वा वाञ्छा फलिष्यति॥१॥

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे षष्ठग्रन्थे श्रीमद्भूतबलि-
सूरिविरचित-जीवस्थानचूलिकायां श्रीवीरसेनाचार्यकृतधवलाटीकाप्रमुखनानाग्रन्थाधारेण
विरचितायां अस्मिन् विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यचारित्रचक्रवर्तिश्रीशांतिसागर-
गुरुवर्यस्य प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागराचार्यः तस्य शिष्याजम्बूद्वीपरचना-
प्रेरिकागणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिंतामणिटीकायां स्थान-
समुत्कीर्तनचूलिकानाम् द्वितीयोऽधिकारः समाप्तः।

प्रमुख होने योग्य हैं”, ऐसा निश्चय करके इन तीर्थंकर भगवन्तों की पूजा रची है। यह पूजा — कल्पद्रुम मण्डल विधान यज्ञ गुजरात प्रदेश की राजधानी अहमदाबाद नगर में इस समय हो रहा है^१। यह अनुष्ठानरूप महापूजा सभी देश में, राष्ट्र में और यहाँ भी मंगलकारी होवे तथा अतिशय रूप से सर्वत्र क्षेत्र और सुभिक्ष को करे, ऐसी भावना है।

कल्पद्रुम — कल्पवृक्षस्वरूप — कल्पवृक्ष जैसा मुंहमांगा फल देने वाले ऐसे जिनेन्द्रदेव के चरणकमलों को हम नमस्कार करते हैं कि जिनके चरणकमल के प्रसाद से सम्पूर्ण मनोकामनायें फलीभूत हो जावेंगी — सफल हो जावेंगी॥

इस प्रकार श्रीमान् भगवान् पुष्पदन्त-भूतबलि प्रणीत षट्खण्डागम ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में श्रीमद् भूतबलिसूरि विरचित जीवस्थान की चूलिका में श्री वीरसेनाचार्य कृत धवला-टीकाप्रमुख नाना ग्रन्थों के आधार से इस बीसवीं शताब्दी के प्रथमाचार्य चारित्र-चक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी गुरुवर्य के प्रथम पट्टाधीश श्री वीरसागराचार्य हुये हैं, उनकी शिष्या जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका मुझ गणिनीज्ञानमती आर्यिकाकृत सिद्धान्तचिंतामणि टीका में स्थानसमुत्कीर्तन चूलिका नाम से यह दूसरा महाधिकार पूर्ण हुआ।



१. पौष कृष्णा पंचमी वीर निर्वाण संवत् २५२३ में मांगीतुंगी तीर्थ से वापस आते समय २९-१२-१९९६ के दिन ‘सोला’ अहमदाबाद गुजरात में मध्याह्न में ४ बजे यह प्रकरण लिखा है। उन दिनों वहाँ कल्पद्रुम विधान मेरे ससंघ सान्निध्य में चल रहा था। इस मध्य विधानानुष्ठान में गुजरात के मुख्यमंत्री श्री शंकरसिंह बाघेला भी आये थे और मेरा आशीर्वाद प्राप्त किया था। इसका हिन्दी अनुवाद मैंने जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में आषाढ़ कृष्णा ७, १५-६-२००९ में लिखा है।

अथ प्रथममहादण्डकः

तृतीयचूलिकाधिकारः

मंगलाचरणम्

बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिः, स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः।

चिन्तामणिं चिंतितवस्तुदाने, त्वां वंद्यमानस्य ममास्तु देवि^१!

यस्य आराधनया स्वशुद्धात्मतत्त्वदर्शनं भवति, ततश्च त्रैलोक्यस्यापि ज्ञानं भवति तस्यै सरस्वतीदेव्यै नित्यं नमो नमः।

अथ षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे षष्ठग्रन्थे त्रिषु महादण्डकेषु प्रथममहादण्डके प्रथमसम्यक्त्वप्राप्त्यभि-
मुखस्य काः प्रकृतयः बध्नन्ति काः न बध्नन्ति तासां कथनं वर्तते, अत्र सूत्रद्वयं वक्ष्यते।

संप्रति प्रथममहादण्डककथनप्रतिज्ञासूचनाय सूत्रमवतरति —

इदाणि पढमसम्मत्ताभिमुहो जाओ पयडीओ बंधदि ताओ पयडीओ
कित्तइस्सामो। तत्थ इमा पढमा महादंडआ कादव्वा भवदि।।१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — प्रकृतिसमुत्कीर्तनं स्थानसमुत्कीर्तनं च भणितानंतरं तिस्रः महादण्डकप्ररूपणाः

अथ प्रथम महादण्डक

(तृतीय चूलिका अधिकार)

मंगलाचरण

हे सरस्वती मातः! आप अपनी वन्दना करने वालों को चिन्तामणि के समान चिन्तित फल देने में समर्थ हैं, अतः हे मातः! आपकी कृपाप्रसाद से मुझे बोधि — रत्नत्रय की प्राप्ति, समाधि — धर्म्यध्यान की सिद्धि, परिणामों में विशुद्धि, अपनी आत्मा की उपलब्धि और मोक्षसुख — अतीन्द्रिय परमानन्द स्वरूप सर्वोत्कृष्ट सुख की सिद्धि प्राप्त होवे।।

जिनकी आराधना से अपने शुद्ध आत्मतत्त्व का दर्शन होता है और पुनः तीन लोक का भी ज्ञान हो जाता है ऐसी सरस्वती देवी को मेरा नित्य ही बारम्बार नमस्कार होवे।

अब इस षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड के छठे ग्रन्थ में तीन महादण्डकों में से प्रथम महादण्डक में प्रथम सम्यक्त्व की प्राप्ति के अभिमुख हुये जीव के कौन-कौन सी प्रकृतियां बंधती हैं और कौन-कौन सी नहीं बंधती हैं? इनका कथन है। इस तृतीय चूलिका में दो सूत्र हैं।

अब प्रथम महादण्डक के कथन की प्रतिज्ञा को सूचित करते हुए सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

अब प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करने के अभिमुख हुआ जीव जिन प्रकृतियों को बांधता है, उन प्रकृतियों को कहेंगे। उन तीन महादण्डकों में यह प्रथम महादण्डक कथन करने योग्य है।।१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — प्रकृतिसमुत्कीर्तन और स्थानसमुत्कीर्तन को कहने के बाद अब ये तीन

१. द्वात्रिंशतिका (श्रीअमितगतिसूरिकृत)।

कथिताः, एताः प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखमिथ्यादृष्टिभिः बध्यमानप्रकृतयो ज्ञापनार्थमिति।

पुनः पूर्वं द्वे चूलिके किमर्थं कथिते ?

न, ताभ्यां विना उपरिमचूलिकावगमे उपायाभावात्। न च प्रकृतीनां स्वरूपमजानतः तद्विशेषो ज्ञापयितुं शक्यते, अन्यत्र तथानुपलंभात्। अथवा उपरि भण्यमानचूलिकानामाधारभूते द्वे चूलिके कथयित्वा प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखजीवे बंधस्थानविकल्पप्ररूपणार्थं त्रयो महादण्डकाः आगताः, तान् इदानीं प्ररूपयामः इति उक्तं भवति। इदं सूत्रं प्रथममहादण्डकप्रतिपादनपरत्वेनास्ति।

तत्र सम्यक्त्वाभिमुखजीवैः बध्यमानप्रकृतीनां समुत्कीर्तनायां त्रिषु महादण्डकेषु एषः प्रथमो महादण्डकः कर्तव्यः-वक्तव्यः इति।

कथमेतस्य महत्त्वं कथितम् ?

एतस्यावगमेन महापापस्य क्षयोपलंभात्, प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखत्वेन महत्त्वं संप्राप्तजीवैः बध्यमानत्वाद्वा।

प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखो जीवः काः काः प्रकृतीः बध्नाति इति प्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

**पंचणहं णाणावरणीयाणं णवण्हं दंसणावरणीयाणं सादावेदणीयं मिच्छत्तं
सोलसण्हं कसायाणं पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा। आउगं च ण बंधदि।
देवगदि-पंचिंदियजाति-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं**

महादण्डक कहे जा रहे हैं, ये प्रथमोपशम सम्यक्त्व के ग्रहण करने के अभिमुख हुये मिथ्यादृष्टि जीवों के द्वारा बांधने वाली प्रकृतियों को बतलाने के लिये हैं, ऐसा समझना।

शंका — तो फिर पहली दो चूलिकायें किसलिये कही गई हैं ?

समाधान — नहीं, क्योंकि उन पहली दो चूलिकाओं के ज्ञान के बिना आगे आने वाली चूलिकाओं के समझने का अन्य उपाय कोई नहीं है। प्रकृतियों के स्वरूप को नहीं जानने वाले व्यक्ति को उनका विशेष नहीं बतलाया जा सकता है क्योंकि अन्यत्र वैसा पाया नहीं जाता अथवा आगे कहे जाने वाली चूलिकाओं के आधारभूत दो चूलिकाओं को कहकर प्रथम सम्यक्त्व के अभिमुख जीव में बंध स्थानों के भेदों का कथन करने के लिये तीन महादण्डक आये हैं। उनका इस समय कथन करते हैं, यह उक्त कथन का तात्पर्य है।

यहाँ यह सूत्र प्रथम महादण्डक के प्रतिपादनरूप है।

प्रकृत में सम्यक्त्व के अभिमुख जीवों के द्वारा बध्यमान प्रकृतियों की समुत्कीर्तना करने पर प्रथम महादण्डक का कथन करना चाहिए।

शंका — इसे बड़ापना किस कारण से है ?

समाधान — क्योंकि इसके ज्ञान से महापाप का क्षय पाया जाता है।

अब प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख हुये जीव कौन-कौन सी प्रकृतियों को बांधते हैं ? इसको प्रतिपादित करने के लिये सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

प्रथमोपशमसम्यक्त्व के अभिमुख हुआ संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच अथवा मनुष्य पाँच ज्ञानावरणीय, नव दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषायें, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा इन प्रकृतियों को बांधता है। किन्तु आयु कर्म को नहीं

वेउव्वियअंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअ-
लहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगदि-तस-बादर-पज्जत्त-
पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-उच्चागोदं
पंचण्हमंतराइयाणमेदाओ पयडीओ बंधदि पढमसम्मत्ताभिमुहो सण्णि-
पंचिंदिय-तिरिक्खो वा मणुस्सो वा॥२॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — पंचज्ञानावरण-नवदर्शनावरण-सातावेदनीय-मिथ्यात्वअनन्तानुबंधिआदि-
षोडशकषाय-पुरुषवेद-हास्य-रति-भय-जुगुप्साप्रकृतिः बध्नाति प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखः संज्ञिपंचेन्द्रियतिर्यङ्
वा मनुष्यो वा इतिष्ट्व। आयुः कर्माणि न बध्नाति। 'च' शब्देन अन्याश्च प्रकृतिः अपि न बध्नाति। तथा
च — देवगति-पंचेन्द्रियजाति-वैक्रियिक-तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्त्रसंस्थान-वैक्रियिकांगोपांग-वर्ण-
गंध-रस-स्पर्श-देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वि-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-त्रस-
बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-स्थिर-शुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-यशःकीर्ति-निर्माण-उच्चगोत्र-पंचांतराय-
कर्मप्रकृतिः इमाः बध्नाति इति ज्ञातव्यं।

बांधता है। देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजस शरीर, कार्मणशरीर,
समचतुरस्त्रसंस्थान, वैक्रियिक शरीर-अंगोपांग, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, देवगति-
प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस,
बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण,
उच्चगोत्र और पाँचों अन्तराय, इन प्रकृतियों को बांधता है॥२॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख हुआ संज्ञीपंचेन्द्रिय तिर्यच अथवा
मनुष्य पाँच ज्ञानावरण, नव दर्शनावरण, सातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी आदि सोलह कषायें, पुरुषवेद,
हास्य, रति, भय, जुगुप्सा को बांधता है किन्तु आयुर्कर्म को नहीं बांधता है। 'च' शब्द से अन्य और भी
प्रकृतियों को नहीं बांधता है।

उसी प्रकार जिनको बांधता है उनके नाम — देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक, तैजस, कार्मण
शरीर, समचतुरस्त्रसंस्थान, वैक्रियिक शरीर-अंगोपांग, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु,
उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर,
आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँचों अन्तराय इन प्रकृतियों को बांधता है, ऐसा जानना चाहिये।

शंका — प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख हुआ जीव जिनको नहीं बांधता है वे कौन सी प्रकृतियाँ हैं ?

समाधान — उनके नाम कहते हैं — असातावेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, चारों आयु, अरति, शोक,
नरकगति, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, औदारिक
शरीर, आहारकशरीर, न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान, स्वातिसंस्थान, कुब्जकसंस्थान, वामनसंस्थान, हुण्डकसंस्थान,
औदारिक शरीर-अंगोपांग, आहारकशरीर-अंगोपांग, छहों संहनन, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी,
मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण शरीर,
अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, तीर्थकर और नीचगोत्र इन प्रकृतियों को विशुद्धतम

ताः काः प्रकृतयः? याः प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखः तिर्यङ् मनुष्यो वा न बध्नाति ? उच्यते — असातावेदनीय-स्त्रीवेद-नपुंसकवेद-आयुःचतुष्क-अरति-शोक-नरकगति-तिर्यग्गति-मनुष्यगति-एकेन्द्रियादिजातिचतुष्क-औदारिकशरीर-आहारकशरीर-न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान-स्वातिसंस्थान-कुब्जकसंस्थान-वामनसंस्थान-हुंडकसंस्थान-औदारिकशरीरांगोपांग-आहारकशरीरांगोपांग-षट्संहनन-नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वि-तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वि-मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वि-आतप-उद्योत-अप्रशस्तविहायोगति-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणशरीर-अस्थिर-अशुभ-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-अयशःकीर्ति-तीर्थकर-नीचगोत्रमिति एताः प्रकृतीः न बध्नाति, विशुद्धतमपरिणामत्वात्। तीर्थकरआहारकद्विकं च न बध्नाति, सम्यक्त्वसंयमाभावाद् इति।

संप्रति बंधापसरणं कथ्यते —

अत्र विशुद्धया वर्धमानायां प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखमिथ्यादृष्टेः प्रकृतीनां बन्धव्युच्छेदक्रमः उच्यते — सर्वः — चतुर्गतिषु कश्चिदपि सम्यक्त्वाभिमुखमिथ्यादृष्टिः सागरोपमकोटीकोटिकालस्य अन्तः स्थितिं बध्नाति, नाधिककर्मस्थितिं। ततः — अंतःकोटीकोटिसागरोपमस्थितिबंधात् सागरोपमशतपृथक्त्वं अधः अपसरणं कृत्वा नरकायुषः बंधव्युच्छित्तिं करोति। ततः सागरोपमशतपृथक्त्वं अपसरणं कृत्वा तिर्यगायुषः बंधव्युच्छेदो भवति। ततः सागरोपमशतपृथक्त्वं अपसरणं कृत्वा मनुष्यायुषः बंधव्युच्छेदो भवति। ततः सागरोपमशतपृथक्त्वं अपसरणं कृत्वा देवायुषः बंधव्युच्छेदः। ततः सागरोपमपृथक्त्वं अपसरणं कृत्वा नरकगति-नरकगति-

परिणाम होने से पूर्वोक्त जीव नहीं बांधता है। तीर्थकर और आहारकद्विक को सम्यक्त्व और संयम का अभाव होने से नहीं बांधता है।

अब बंधापसरण को कहते हैं — अब यहाँ विशुद्धि के बढ़ने पर प्रथम सम्यक्त्व के अभिमुख मिथ्यादृष्टि जीव के प्रकृतियों के बंध-व्युच्छेद का क्रम कहते हैं—सभी अर्थात् चारों गति सम्बन्धी कोई भी प्रथमोपमसम्यक्त्व के अभिमुख मिथ्यादृष्टि जीव एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम के भीतर की स्थिति अर्थात् अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम की स्थिति को बांधता है। इससे बाहर अर्थात् अधिक कर्मस्थिति को नहीं बांधता। इस अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थितिबंध से सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे अपसरण कर नारकायु का बन्ध-व्युच्छेद होता है।

विशेषार्थ — अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थिति बंध से नारकायु की बन्ध-व्युच्छित्तिपर्यन्त क्रम इस प्रकार होता है — उक्त स्थितिबंध से पल्योपम के संख्यातवें भाग से हीन स्थिति को अन्तर्मुहूर्त तक समानता लिये हुए ही बांधता है। फिर उससे पल्योपम के संख्यातवें भाग से हीन स्थिति को अन्तर्मुहूर्त तक बांधता है। इस प्रकार पल्योपम के संख्यातवें भागरूप हानि से क्रम से एक पल्योपम हीन — अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थिति को अन्तर्मुहूर्त तक बांधता है। इसी पल्योपम के संख्यातवें भागरूप हानि के क्रम से ही स्थितिबन्धापसरण करता हुआ दो पल्योपम से हीन, तीन पल्योपम से हीन इत्यादि स्थिति को अन्तर्मुहूर्त तक बांधता है, पुनः इसी क्रम से आगे-आगे स्थितिबंध का हास करता हुआ एक सागरोपम से हीन, दो सागरोपम से हीन, तीन सागरोपम से हीन, इत्यादि क्रम से सात-आठ सौ सागरोपमों से हीन अन्तःकोड़ाकोड़ी प्रमाण स्थिति को जिस समय बांधने लगता है, उस समय एक नारकायु प्रकृतिबन्ध से व्युच्छिन्न होती है। नारकायु की बंध-व्युच्छित्ति के पश्चात् तिर्यगायु की बन्ध-व्युच्छित्ति तक पूर्वोक्त क्रम से ही स्थितिबन्ध का हास होता है और जब वह हास सागरोपमशतपृथक्त्व प्रमित हो जाता है तब तिर्यगायु की बन्धव्युच्छित्ति होती है। यही क्रम आगे भी जानना चाहिये। इस प्रकार से स्थिति के हास होने को स्थितिबंधापसरण कहते हैं।

कृत्वा द्वीन्द्रिय-पर्याप्तयोः युगपद् बन्धव्युच्छेदः। ततः सागरोपमशतपृथक्त्वं अपसरणं कृत्वा त्रीन्द्रिय-पर्याप्तयोः युगपद् बन्धव्युच्छेदः। ततः पूर्ववदपसरणं कृत्वा चतुरिन्द्रियपर्याप्तयोः युगपद् बन्धव्युच्छेदः। ततः सागरोपमशतपृथक्त्वं अपसरणं कृत्वा असंज्ञिपंचेन्द्रिय-पर्याप्तयोः युगपद् बन्धव्युच्छेदः। ततः सागरोपमशतपृथक्त्वं अपसरणं कृत्वा तिर्यग्गति-तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वि-उद्योतानां त्रिप्रकृतीनां युगपद् बन्धव्युच्छेदः।

ततः सागरोपमशतपृथक्त्वं अपसरणं कृत्वा नीचैर्गोत्रस्य बन्धव्युच्छेदः। ततः सागरोपमशतपृथक्त्वं अपसरणं कृत्वा अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-प्रकृतीनां युगपद् बन्धव्युच्छेदः। ततः पूर्ववदपसरणं कृत्वा हुण्डकसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिकासंहननयोः द्वयोः युगपद् बन्धव्युच्छेदः। ततः पूर्ववदपसरणं कृत्वा नपुंसकवेदबन्धव्युच्छेदः। ततः पूर्ववदपसरणं कृत्वा वामनसंस्थान-कीलितसंहननयोः युगपद् बन्धव्युच्छेदः। ततः पूर्ववदपसरणं कृत्वा कुब्जकसंस्थान-अर्द्धनाराचसंहननयोः युगपद् बन्धव्युच्छेदः। ततः पूर्ववदपसरणं कृत्वा स्त्रीवेदबन्धव्युच्छेदः। ततः पूर्ववदपसरणं कृत्वा स्वातिसंस्थान-नाराचसंहननयोः युगपद् बन्धव्युच्छेदः। ततः पूर्ववदपसरणं कृत्वा न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान-वज्रनाराचशरीरसंहननयोः युगपद् बन्धव्युच्छेदः। ततः पूर्ववदपसरणं कृत्वा मनुष्यगति-औदारिकशरीर-औदारिकशरीरांगोपांग-वज्रऋषभ वज्रनाराचशरीरसंहनन-मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्विप्रकृतीनां पंचानां युगपद् बन्धव्युच्छेदः। ततः सागरोपमशतपृथक्त्वं अपसरणं कृत्वा

उतरकर सूक्ष्म, पर्याप्त और प्रत्येक शरीर इन परस्पर-संयुक्त तीनों प्रकृतियों का एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है। उससे सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण स्थिति उतरकर बादर, पर्याप्त और साधारण शरीर इन परस्पर-संयुक्त तीनों प्रकृतियों का एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है। उससे सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण स्थिति उतरकर बादर, पर्याप्त, और प्रत्येक शरीर तथा एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर, इन परस्पर सम्बद्ध छहों प्रकृतियों का एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है। उससे सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण स्थिति उतरकर द्वीन्द्रियजाति और पर्याप्त, इन दोनों प्रकृतियों का एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है। उससे सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण स्थिति उतरकर त्रीन्द्रियजाति और पर्याप्त, इन दोनों प्रकृतियों का एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है। उससे सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण स्थिति उतरकर चतुरिन्द्रियजाति और पर्याप्त, इन दोनों प्रकृतियों का एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है। उससे सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण स्थिति उतरकर असंज्ञी पंचेन्द्रियजाति और पर्याप्त इन दोनों प्रकृतियों का एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है। उससे सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण स्थिति उतरकर तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उद्योत, इन तीनों प्रकृतियों का एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है।

उससे सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण स्थिति उतरकर नीच गोत्र का बन्ध-व्युच्छेद होता है। उससे सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण स्थिति उतरकर अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेय, इन चारों प्रकृतियों का एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है। उससे सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण स्थिति उतरकर हुण्डकसंस्थान और असंप्राप्तसृपाटिका-शरीरसंहनन इन दोनों प्रकृतियों का एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है। उससे सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण स्थिति उतरकर नपुंसकवेद का बन्ध-व्युच्छेद होता है। उससे सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण स्थिति उतरकर वामनसंस्थान और कीलितशरीरसंहनन, इन दोनों प्रकृतियों का एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है। उससे सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण स्थिति उतरकर कुब्जकसंस्थान और अर्धनाराचशरीर संहनन, इन दोनों प्रकृतियों का एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है। उससे सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण स्थिति उतरकर स्त्रीवेद का बन्ध-व्युच्छेद होता है। उससे सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण स्थिति उतरकर

असातावेदनीय-अरति-शोक-अस्थिर-अशुभ-अयशःकीर्तिप्रकृतीनां षण्णां युगपद् बन्धव्युच्छेदो भवति।
एतानि चतुस्त्रिंशद्बन्धापसरणस्थानानि कथितानि सन्ति।

कुतः एष बन्धव्युच्छेदक्रमः?

अशुभ-अशुभतर-अशुभतमभेदेन प्रकृतीनामवस्थानात्। एषः प्रकृतिबन्धव्युच्छेदक्रमः विशुद्ध्यमानानां भव्याभव्यमिथ्यादृष्टीनां साधारणः। किंतु त्रीणि करणाणि भव्यमिथ्यादृष्टेरेव, अन्यत्र तेषामनुपलंभात्।

भणितं च —

खयउवसमो विसोही देसण पाओगग करणलब्धी य।

चत्तारि वि सामण्णा करणं पुण होइ सम्मत्ते^१॥१॥

एतासु प्रकृतीषु बन्धेन व्युच्छिन्नासु अवशेषप्रकृतयः पूर्वरूपिताः तिर्यग्मिथ्यादृष्टिः मनुष्यमिथ्यादृष्टिर्वा सम्यक्त्वाभिमुखस्तावद् बध्नाति यावद् मिथ्यादृष्टिचरमसमयं प्राप्तः इति।

अत्रैतत् तात्पर्यं — अनादिसंसारे पर्यटद्भिः अस्माभिः काललब्धिबलेन पंचलब्धीः संप्राप्य सम्यग्दर्शनं संप्राप्तं। एतद्महारत्नं अस्ति, अस्याष्टौ अंगानि संरक्षणीयानि, पंचविंशतिमलदोषान् अपहृत्य इदं रत्नं निर्दोषीकर्तव्यं। पुनश्च ज्ञानाराधनया सज्ज्ञानं वर्धयद्भिः सम्यक्चारित्रमपि स्पर्शनीयं।

स्वातिसंस्थान और नाराचशरीर संहनन, इन दोनों प्रकृतियों का एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है। उससे सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण स्थिति उतरकर न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान और वज्रनाराचशरीरसंहनन, इन दोनों प्रकृतियों का एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है। उससे सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण स्थिति उतरकर मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक शरीर-अंगोपांग, वज्रवृषभवज्रनाराचशरीरसंहनन और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी इन पाँचों प्रकृतियों का एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है। इससे सागरोपम शत पृथक्त्वप्रमाण नीचे उतरकर असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशकीर्ति इन छह प्रकृतियों का एक साथ बन्ध व्युच्छेद हो जाता है। ये चौंतीस बन्धापसरण स्थान कहे गये हैं।

शंका — यह प्रकृतियों के बन्ध-व्युच्छेद का क्रम किस कारण से है ?

समाधान — अशुभ, अशुभतर और अशुभतम के भेद से प्रकृतियों का अवस्थान माना गया है, उसी अपेक्षा से यह प्रकृतियों के बन्ध-व्युच्छेद का क्रम है।

यह प्रकृतियों के बन्ध-व्युच्छेद का क्रम विशुद्धि को प्राप्त होने वाले भव्य और अभव्य मिथ्यादृष्टि जीवों के साधारण अर्थात् समान है किन्तु अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, ये तीन करण भव्य मिथ्यादृष्टि जीव के ही होते हैं क्योंकि अन्यत्र अर्थात् अभव्य जीवों में वे पाए नहीं जाते हैं। कहा भी है —

क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य और करण, ये पाँच लब्धियाँ होती हैं उनमें से प्रारम्भ की चार तो सामान्य हैं अर्थात् भव्य और अभव्य जीव, इन दोनों के होती हैं किन्तु पाँचवीं करणलब्धि सम्यक्त्व उत्पन्न होने के समय भव्यजीव के ही होती है॥१॥

इन उपर्युक्त प्रकृतियों के बन्ध से व्युच्छिन्न होने पर पूर्व प्ररूपित अवशिष्ट प्रकृतियों को सम्यक्त्व के अभिमुख तिर्यच और मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव तब तक बांधता है, जब तक कि वह मिथ्यादृष्टि गुणस्थान के अंतिम समय तक रहता है।

यहाँ तात्पर्य यह है कि — अनादि संसार में पर्यटन करते हुये हम और आप सभी ने काललब्धि के बल से पाँचों लब्धियों को प्राप्त करके सम्यग्दर्शन प्राप्त किया है, यह सम्यग्दर्शन महारत्न है, इसके आठों

सम्यग्दर्शनस्य माहात्म्यं श्रीसमन्तभद्रस्वामिना कथितं —

न सम्यक्त्वसमं किञ्चित् त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि।

श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनूभृताम्^१॥३४॥

अतएव मया याचते —

यः सारः सर्वसारेषु स सम्यग्दर्शनं मतं।

आ मुक्ते न हि मां मुञ्चेत् वृत्तं च विमलीक्रियात्॥ १॥

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्य प्रथमखंडे षष्ठग्रन्थे जीवस्थान-
चूलिकान्तर्गततृतीयचूलिकायां गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिंतामणिटीकायां
प्रथम महादण्डको नाम तृतीयचूलिकाधिकारः समाप्तः।

अंग — निःशंकित आदि संरक्षणीय हैं, इसके पच्चीस मल दोषों को छोड़कर यह रत्न निर्दोष करना चाहिये, पुनः ज्ञान की आराधना से समीचीन ज्ञान को वृद्धिगत करते हुये सम्यक्चारित्र का भी स्पर्श करना चाहिये। सम्यग्दर्शन के माहात्म्य को श्री समन्तभद्रस्वामी ने कहा है —

तीनों कालों में और तीनों लोक में भी संसारी प्राणियों के लिये सम्यक्त्व के समान कुछ भी श्रेयस्कर — हितकर नहीं है और मिथ्यात्व के समान कुछ भी अहितकर नहीं है॥३४॥

अतएव मेरे द्वारा याचना की जाती है —

जो सभी सारों में भी सार है वह सम्यग्दर्शन ही है, मेरा वह सम्यग्दर्शन मोक्ष प्राप्त होने पर्यन्त न छूटे और मेरे चारित्र को विमल — निर्दोष बनावे॥१॥

इस प्रकार श्रीमान् भगवान् पुष्पदन्त-भूतबलि आचार्य प्रणीत षट्खण्डागम
ग्रन्थ के प्रथम खण्ड के छठे ग्रन्थ में जीवस्थान चूलिका के अन्तर्गत
तीसरी चूलिका में गणिनीज्ञानमतीकृत सिद्धान्तचिंतामणि
टीका में प्रथम महादण्डक नाम का यह तीसरा
महाधिकार पूर्ण हुआ।



अथ द्वितीयो महादण्डकः

चतुर्थचूलिकाधिकारः

मंगलाचरणम्

चतुर्विंशति तीर्थेशाः, कुर्वन्तु भुवि मंगलम्।

समवसृतयस्तेषां-अस्माकं मंगलं क्रियात्॥१॥

अथ षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे षष्ठग्रन्थे जीवस्थानचूलिकाया अन्तर्गतचतुर्थचूलिकायां द्वितीयो महादण्डकः कथ्यते तत्र तावत् सूत्रद्वयं वक्ष्यते।

अथ द्वितीयमहादण्डकप्रतिपादनप्रतिज्ञापनाय सूत्रमवतरति —

तत्थ इमो विदियो महादण्डओ कादव्वो भवदि॥१॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — प्रथमदण्डकादभिन्नस्यापि एतस्य द्वितीयत्वं भवति, प्रकृतिभेदेन स्वामित्वभेदेन च भेदोपलंभात्।

देवा नारकाश्च याः याः प्रकृतीः बध्नन्ति, तासां नामकथनाय सूत्रमवतरति —

**पंचणहं णाणावरणीयाणं णवणहं दंसणावरणीयाणं सादावेदणीयं मिच्छत्तं
सोलसणहं कसायाणं पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा। आउअं च ण बंधदि।
मणुसगदि-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाणं**

अथ द्वितीय महादण्डक (चतुर्थ चूलिका अधिकार)

—मंगलाचरण—

चौबीस तीर्थंकर भगवान् जगत में मंगल करें, उनके समवसरण भी हम सबके लिये मंगलकारी होंगे॥१॥

अब षट्खण्डागम ग्रन्थराज के प्रथमखण्ड के छठे ग्रन्थ में जीवस्थान चूलिका के अन्तर्गत चौथी चूलिका में दूसरे महादण्डक नाम को कहेंगे, इसमें दो सूत्र कहेंगे।

अब दूसरे महादण्डक के प्रतिपादन की प्रतिज्ञा के रूप में सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

उन तीन महादण्डकों में से यह दूसरा महादण्डक कहने योग्य है॥१॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — प्रथम दण्डक से अभिन्न होते हुये भी इस दण्डक के द्वितीयपना है, क्योंकि प्रकृतियों के भेद से और स्वामीपने के भेद से दोनों दण्डकों में भेद पाया जाता है।

अब देव और नारकी जिन-जिन प्रकृतियों को बांधते हैं उनके नामों का कथन करने के लिये सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

प्रथमोपशमसम्यक्त्व के अभिमुख देव तथा नीचे सातवीं पृथिवी के नारकी को छोड़कर शेष नारकी जीव, पाँचों ज्ञानावरणीय, नवों दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबंधी आदि सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, इन

ओरालियसरीरअंगोवंगं वज्जरिसहसंघडणं वण्ण-गंध-रस-फासं मणुसगदि-
पाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगदी
तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-
णिमिण-उच्चागोदं पंचण्हं अंतराइयाणं एदाओ पयडीओ बंधदि पढम-
सम्मत्ताहिमुहो अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइयं वज्ज देवो वा णेरइओ वा।।२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखः कश्चिद् देवः नारको वा सूत्रकथितप्रकृतीः बध्नाति।
अत्र सप्तमपृथिवीं वर्जयित्वा षण्णां नरकभूमीनां कश्चिदेव नारको एव गृह्यते।

प्रथममहादण्डके यथा औदारिकशरीर-औदारिकशरीरांगोपांगयोः बंधव्युच्छेदः जातः, तथा तस्यामेव
विशुद्धौ वर्तमानदेवनारकयोः तयोः प्रकृत्योः बंधव्युच्छेदः किन्न भवति ?

उच्यते — मनुष्यगति-तिर्यग्गत्युदयेन सहकारिकारणेन वर्जिता केवलं एकाकिनी विशुद्धिः तयोः
बंधव्युच्छेदकरणक्षमा न भवति, कारणसामग्रीतः उत्पद्यमानस्य कार्यस्य विकलकारणात् समुत्पत्तिविरोधात्।
देवनारकयोः तयोः औदारिक-औदारिकांगोपांगयोः ध्रुवबंधित्वसंभवात् च न बंधव्युच्छेदः। एवं
वज्रऋषभसंहननस्यापि बंधविनाशे कारणं वक्तव्यं।

प्रकृतियों को बांधता है किन्तु आयुर्कर्म को नहीं बांधता है। मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति,
औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कर्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक-शरीर
अंगोपांग, वज्रऋषभनाराचसंहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी,
अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक
शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँचों
अन्तराय, इन प्रकृतियों को बांधता है।।२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख हुये कोई देव अथवा नारकी उपर्युक्त
सूत्र में कथित प्रकृतियों को बांधते हैं। यहाँ सातवीं पृथिवी को छोड़कर छह नरकभूमियों के कोई नारकी ही
ग्रहण किये गये हैं।

शंका — प्रथम महादण्डक में जिस प्रकार औदारिक शरीर और औदारिक शरीर-अंगोपांग, इन
प्रकृतियों का बंध-व्युच्छेद हुआ है, उस प्रकार उसी ही विशुद्धि में वर्तमान देव और नारकियों के उन
प्रकृतियों का बन्ध-व्युच्छेद क्यों नहीं होता ?

समाधान — सहकारी कारणरूप मनुष्यगति और तिर्यग्गति के उदय से वर्जित (रहित) अकेली
विशुद्धि उन प्रकृतियों के बंध-व्युच्छेद करने में समर्थ नहीं है क्योंकि कारण-सामग्री से उत्पन्न होने वाले
कार्य की विकल कारण से उत्पत्ति का विरोध है अर्थात् जो कार्य कारण-सामग्री की सम्पूर्णता से उत्पन्न
होता है, वह कारण-सामग्री की अपूर्णता से उत्पन्न नहीं हो सकता है। दूसरी बात यह है कि देव और
नारकियों में औदारिक शरीर आदि उन प्रकृतियों का ध्रुवबंध सम्भव है इसलिये उनका बंध-व्युच्छेद
नहीं होता है।

‘आउगं च ण बंधदि’ इति ‘च’ शब्दः समुच्चयार्थत्वात् अन्याश्च प्रकृतीः अवध्यमानाः सूचयति।
ताः कतमाः ?

असातावेदनीय-स्त्री-नपुंसकवेद-अरति-शोक-आयुःचतुष्क-नरक-तिर्यग्देवगति-एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजाति-वैक्रियिक-आहारकशरीरं-समचतुरस्रसंस्थानं वर्जयित्वा पंचसंस्थानं वैक्रियिकाहार-शरीरांगोपांगं वज्ररूषभसंहननं वर्जयित्वा पंचसंहननं नरक-तिर्यग्-देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी अप्रशस्तविहायोगतिः आतपोद्योत-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारण-अस्थिर-अशुभ-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-अयशःकीर्ति-नीचगोत्र-तीर्थकरमिति। एतासां प्रकृतीनां बंधव्युच्छेदक्रमः यथा प्रथममहादण्डके उक्तः तथा वक्तव्यः।

तात्पर्यमेतत् — कश्चिद् देवो नारको वा यदा सम्यक्त्वग्रहणाभिमुखो भवति तदा क्षयोपशमविशुद्ध्यादि-लब्धिप्रभावेण ज्ञानावरणादिप्रकृतीः द्वासप्ततिश्च बध्नाति आयूंषि न बध्नाति ततश्च असातावेदनीयादयः चतुश्चत्वारिंशत्प्रकृतयः याः कथितास्ताश्चापि न बध्नातीति। अनया विशुद्ध्या वर्धमानः करणलब्धिं संप्राप्य सम्यक्त्वमहारत्नं हस्तगतं कर्तुं शक्नोति।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे षष्ठग्रन्थे श्रीभूतबलि-
सूरिविरचितजीवस्थानचूलिकान्तर्गतचतुर्थचूलिकायां गणिनीज्ञानमतीकृत-
सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां द्वितीयमहादण्डको नाम
चतुर्थः चूलिकाधिकारः समाप्तः।

इसी प्रकार वज्रवृषभनाराचसंहनन के भी बंध-व्युच्छेद में कारण कहना चाहिये। ‘आउगं च ण बंधदि’ इस वाक्य में पठित ‘च’ शब्द समुच्चयार्थक है अतएव नहीं बंधने वाली अन्य भी प्रकृतियों को सूचित करता है।

शंका — वे नहीं बंधने वाली प्रकृतियाँ कौन सी हैं ?

समाधान — असातावेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, आयुचतुष्क, नरकगति, तिर्यग्गति, देवगति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, वैक्रियिक शरीर, आहारकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान को छोड़कर शेष पाँच संस्थान, वैक्रियिक शरीर-अंगोपांग, आहारकशरीर-अंगोपांग, वज्ररूषभनाराचसंहनन को छोड़कर शेष पाँच संहनन, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अप्रशस्तविहायोगति, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण शरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, नीचगोत्र और तीर्थकर, ये नहीं बंधने वाली प्रकृतियाँ हैं।

इन प्रकृतियों के बंध-व्युच्छेद का क्रम जिस प्रकार प्रथम महादण्डक में कहा है, उसी प्रकार यहाँ पर कहना चाहिये।

यहाँ तात्पर्य यह है कि — कोई देव अथवा नारकी जब सम्यक्त्व ग्रहण करने के अभिमुख होता है, तब क्षयोपशम, विशुद्धि आदि लब्धियों के प्रभाव से ज्ञानावरण आदि बहत्तर प्रकृतियों को बांधता है। आयु को नहीं बांधता है, और असातावेदनीय आदि चवालीस प्रकृतियों को जो कि कही गयी हैं उनको भी नहीं बांधता है। इस प्रकार से वृद्धिगत विशुद्धि से विशुद्ध होता हुआ करणलब्धि को प्राप्त करके सम्यक्त्वरूपी महारत्न को हस्तगत करना शक्य है, ऐसा समझना।

इस प्रकार श्रीमद् भगवान् पुष्पदन्त-भूतबलि आचार्य प्रणीत षट्खण्डागम ग्रन्थराज के प्रथम खण्ड में, छठे ग्रन्थ में श्री भूतबलि सूरि विरचित जीवस्थान चूलिका के अन्तर्गत चौथी चूलिका में गणिनीज्ञानमतीकृत सिद्धान्तचिंतामणि टीका में द्वितीय महादण्डक नाम का चौथा चूलिका अधिकार पूर्ण हुआ।

अथ तृतीयो महादण्डकः

पंचमचूलिकाधिकारः

मंगलाचरणम्

— उपजातिछंद—

कल्याणकल्पद्रुमसारभूतं, चिंतामणिं चिंतितदानदक्षम्।

श्रीपार्श्वनाथस्य सुपादपद्मं, भक्त्या नुमोऽभीप्सितसौख्यसिद्धयै॥१॥

अथ षट्खंडागमस्य प्रथमखण्डे षष्ठग्रन्थे जीवस्थानचूलिकायाः अन्तर्गतपंचमचूलिकायां तृतीयो महादण्डकः कथ्यते। तत्र तावत्सूत्रद्वयं निगद्यते।

संप्रति तृतीयमहादण्डककथनप्रतिज्ञापनाय सूत्रमवतरति—

तत्थ इमो तदिओ महादंडओ कादव्वो भवदि॥१॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यद्यपि एतस्य तृतीयत्वमनुक्तेऽपि ज्ञायते पूर्वं द्वयोः दण्डकयोरुपलंभात्, तथापि युक्तिवादे अकुशलशब्दानुसारिशिष्यानुग्रहार्थत्वात् अस्य सूत्रस्यावतारो जातः।

अधुना सप्तमनरकभूमिनारकाणां प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखानां बंधयोग्यप्रकृतीनां प्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

अथ तृतीय महादण्डक (पंचम चूलिका अधिकार)

मंगलाचरण

श्री पार्श्वनाथ भगवान् के चरणकमल मनवांछित, हितकारी फल को देने में कल्पवृक्ष के समान सारभूत हैं, चिंतित फल को देने में कुशल चिंतामणिरत्न के समान हैं, ऐसे तेईसवें तीर्थंकर भगवान् के चरणकमलों को हम अपने अभीष्ट सौख्य की सिद्धि के लिये नमस्कार करते हैं॥१॥

अब षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड के छठे ग्रन्थ में जीवस्थानचूलिका के अन्तर्गत पाँचवीं चूलिका में तीसरा महादण्डक कहा जा रहा है। इसमें दो सूत्र कहेंगे।

अब तृतीय महादण्डक को कहने की प्रतिज्ञारूप से सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

उन तीन महादण्डकों में से यह तृतीय महादण्डक कहा जाता है॥१॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— यद्यपि इस महादण्डक को तृतीयपना बिना कहे भी जाना जाता है, क्योंकि इसके पूर्व दो दण्डक कहे गये हैं, फिर भी युक्तिवाद में अकुशल ऐसे शब्दानुसारी के अनुग्रह के लिये इस सूत्र का अवतार हुआ है।

अब प्रथमोपशमसम्यक्त्व के अभिमुख ऐसे सातवें नरक के नारकी जीवों के बंध योग्य प्रकृतियों का प्रतिपादन करने के लिये सूत्र अवतार लेता है—

पंचणहं णाणावरणीयाणं णवणहं दंसणावरणीयाणं सादावेदणीयं मिच्छत्तं
 सोलसणहं कसायाणं पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा। आउगं च ण बंधदि।
 तिरिक्खगदि-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-
 ओरालियंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-तिरिक्खगदिपा-
 ओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सासं। उज्जोवं सिया बंधदि,
 सिया ण बंधदि। पसत्थविहायगदि-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-
 सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-णीचागोद-पंचणहमंतराइयाणं
 एदाओ पयडीओ बंधदि पढमसम्मत्ताहिमुहो अधो सत्तमाए पुढवीए
 णेरइओ।।२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखः सप्तमीपृथिवीगतः कश्चिद् नारकः एताः ज्ञानावरणादि-
 प्रकृतीः बध्नाति। आयुःकर्म न बध्नाति, 'च' शब्देन अन्याश्च प्रकृतीः न बध्नाति। उद्योतप्रकृतिं कथंचित्
 बध्नाति, कथंचिच्च न बध्नाति।

तिर्यग्गति-तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वि-उद्योत-नीचगोत्राणां अत्र कथं न बंधः व्युच्छिन्नः ?

सूत्रार्थ —

प्रथमोपशमसम्यक्त्व के अभिमुख ऐसा नीचे सातवीं पृथिवी का नारकी मिथ्यादृष्टि
 जीव पाँचों ज्ञानावरणीय, नवों दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबंधी
 आदि सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, इन प्रकृतियों को बांधता
 है किन्तु आयुर्कर्म को नहीं बांधता है। तिर्यग्गति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर,
 तैजस शरीर, कर्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक शरीर-अंगोपांग,
 वज्रऋषभनाराचसंहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, तिर्यग्गति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु,
 उपघात, परघात, उच्छ्वास इन प्रकृतियों को बांधता है। उद्योत प्रकृति को कदाचित्
 बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता है। प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त,
 प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण, नीच गोत्र और
 पाँचों अन्तराय कर्म, इन प्रकृतियों को बांधता है।।२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — प्रथमोपशमसम्यक्त्व के अभिमुख सातवीं पृथिवी का कोई एक नारकी इन
 ज्ञानावरणीय आदि प्रकृतियों को बांधता है। वह आयु कर्म को नहीं बांधता है और सूत्र में आये 'च' शब्द से अन्य
 और प्रकृतियों को भी नहीं बांधता है। कथंचित् उद्योत प्रकृति को बांधता है और कथंचित् नहीं भी बांधता है।

शंका — तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत और नीच गोत्र, इन प्रकृतियों की यहाँ पर बन्ध-
 व्युच्छित्ति क्यों नहीं होती ?

न, सप्तमपृथिवीगत-नारकमिथ्यादृष्टेः शेषगतिबंधं प्रति भवसंक्लेशेण अयोग्यस्य तिर्यग्गति-तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वि-नीचगोत्रान् मुक्त्वा सर्वकालं अन्यासामेतासां प्रतिपक्षप्रकृतीनां बंधाभावात्। न च विशुद्धिवशेन ध्रुवबंधिप्रकृतीनां बंधव्युच्छेदो भवति, ज्ञानावरणादीनामपि ततः बंधव्युच्छेदप्रसंगात्। न चैवं अनवस्थापत्तेः। 'आउगं च ण बंधदि' इति 'च' शब्देन सूचिताबध्यमानप्रकृतयोऽपि अत्र वक्तव्याः।

ताः काः ?

उच्यते — असातावेदनीय-स्त्रीवेद-नपुंसकवेद-अरति-शोक-नरकगति-मनुष्यगति-देवगति-एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजाति-वैक्रियिक-आहारशरीर-न्यग्रोधपरिमंडल-स्वाति-कुब्जक-वामन-हुंडकसंस्थान-वैक्रियिकांगोपांग-आहारांगोपांग-वज्रनाराचसंहनन-नाराचसंहनन-अर्धनाराच-कीलित-असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन-नरकगति-मनुष्यगति-देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वि-आतप-अप्रशस्तविहायोगति-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणशरीर-अस्थिर-अशुभ-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-अयशःकीर्ति-तीर्थकर-उच्चगोत्राणि-इमाः प्रकृतीः सप्तमपृथिवीगतनारकः प्रथमसम्यक्त्वग्रहणाभिमुखः मिथ्यादृष्टिः न बध्नाति।

एवं 'कदि काओ पयडीओ बंधदि' इति यत्पदं पूर्वं कथितं, तस्य व्याख्यानं कृतम्।

तात्पर्यमेतत् — त्रिविधमहादण्डकेषु कथितबंधापसरणविधिना परिणामविशुद्ध्या विशुद्ध्यद्भिः भव्यैः प्रथमसम्यक्त्वं संप्राप्य अनन्तसंसारं अर्द्धपुद्गलपरावर्तमात्रं क्रियते पुनश्च जिनदेवभक्त्या 'कालानियमाच्च

समाधान — नहीं, क्योंकि भव सम्बन्धी संक्लेश के कारण शेष गतियों के बन्ध के प्रति अयोग्य, ऐसे सातवीं पृथिवी के नारकी मिथ्यादृष्टि के तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और नीच गोत्र को छोड़कर सदाकाल इनकी प्रतिपक्षस्वरूप अन्य प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता है तथा विशुद्धि के वश से ध्रुवबन्धी प्रकृतियों का बन्ध-व्युच्छेद नहीं होता है अन्यथा उसी विशुद्धि के वश से ज्ञानावरण आदि प्रकृतियों के भी बन्ध-व्युच्छेद का प्रसंग आता है किन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि वैसा मानने पर अनवस्था दोष आता है।

'आउगं च ण बंधदि' इस वाक्य में पठित 'च' शब्द के द्वारा सूचित अबध्यमान प्रकृतियाँ यहाँ जानकर कहना चाहिये।

वे प्रकृतियाँ कौन-कौन सी हैं ? सो ही कहते हैं —

'च' शब्द से सूचित प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं — असातावेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, नरकगति, मनुष्यगति, देवगति, एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, आहारकशरीर, न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान, स्वातिसंस्थान, कुब्जकसंस्थान, वामनसंस्थान, हुण्डकसंस्थान, वैक्रियिक शरीर-अंगोपांग, आहारकशरीर अंगोपांग, वज्रनाराचसंहनन, नाराचसंहनन, अर्धनाराचसंहनन, कीलितसंहनन, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण शरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, तीर्थकर और उच्चगोत्र, इन प्रकृतियों को प्रथमोपशमसम्यक्त्व के अभिमुख हुआ सातवीं पृथिवी का मिथ्यादृष्टि नारकी नहीं बांधता है।

इस प्रकार 'कितनी और किन प्रकृतियों को बांधता है' यह जो सूत्रोक्त पद है, उसका व्याख्यान समाप्त हुआ।

यहाँ तात्पर्य यह है कि — तीन प्रकार के महादण्डकों में कही गई बंधापसरण की विधि से परिणामों की विशुद्धि से विशुद्ध होते हुए भव्य जीवों को प्रथमोपशमसम्यक्त्व को प्राप्त करके अनन्त संसार को

निर्जरायाः' इति श्रीमद्भट्टाकलंकदेवस्याभिप्रायं मुहुर्मुहुः चिन्तयद्भिः अस्माभिः ईदृशः पुरुषार्थः कर्तव्यः
यत् सत्त्वरमेव सर्वकर्मणां विनाशो भवेत्। अतएव याच्यते मया नित्यमेव।

कालचक्राद् विनिर्गन्तुं, त्रिकालं नौमि निष्कलान्।

कालकलाव्यतीतांश्च, पुष्यन्तु नः समीहितम्॥

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे षष्ठग्रन्थे श्रीभूतबलि-

विरचितजीवस्थानचूलिकायाः अन्तर्गतपंचमचूलिकायां गणिनीज्ञानमती-

कृतसिद्धान्तचिंतामणिटीकायां तृतीयो महादण्डको नाम

पंचमचूलिकाधिकारः समाप्तः।

अर्द्धपुद्गल परिवर्तनमात्र करना चाहिये, पुनः जिनेन्द्र भगवान की भक्ति से तथा 'निर्जरा के लिये काल का कोई नियम नहीं है', इस श्रीमान् भट्टाकलंक देव के अभिप्राय को बार-बार चिंतन करते हुये हम सभी को ऐसा पुरुषार्थ करना चाहिये कि शीघ्र ही सभी कर्मों का विनाश हो जावे। इसलिये हम नित्य ही याचना करते हैं—

कालचक्र से निकलने के लिये हम तीनों कालों में काल की कला से रहित ऐसे निष्कल—सिद्ध परमेशी भगवन्तों को नमस्कार करते हैं, वे सिद्ध भगवान हम सभी के अभीष्ट को पूर्ण करें॥

इस प्रकार श्रीमान् भगवान पुष्पदन्त-भूतबलि आचार्यप्रणीत षट्खण्डागम ग्रन्थराज के

प्रथम खण्ड में छठी पुस्तक में श्री भूतबलि सूरि विरचित जीवस्थान चूलिका के

अन्तर्गत पांचवीं चूलिका में गणिनीज्ञानमतीकृत सिद्धान्तचिंतामणि टीका में

यह 'तृतीय महादण्डक' नाम का पांचवां चूलिका अधिकार पूर्ण हुआ।



अथ उत्कृष्टस्थितिबंधः

षष्ठचूलिकाधिकारः

मंगलाचरणम्

आयुश्चतुरशीत्यामा, लक्षपूर्व-प्रमाणकः।

इक्ष्वाकुवंशभास्वान् यः, पुरुदेवो पुनातु नः॥१॥

युगादौ येन कर्मभूमिसृष्टेः स्रष्टा भूत्वा धर्मतीर्थप्रवर्तनं कृत्वा मोक्षमार्गस्य विधाता बभूव, यस्य च जन्मजयन्तीमहामहोत्सवस्य संदर्भेऽद्य तस्यैव भगवतः जीवनदर्शनमाश्रित्य संगोष्ठी संप्रति^१ चलति, तस्मै श्रीऋषभदेवाय अस्माकं नमो नमः।

अथ षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे षष्ठग्रन्थे जीवस्थानचूलिकायाः अन्तर्गतायां षष्ठ्यां उत्कृष्टस्थितिबंध-चूलिकायां दशभिः स्थलैः चतुश्चत्वारिंशत्सूत्राणि वक्ष्यन्ते। प्रथमतस्तावत् प्रकृतिसमुत्कीर्तनस्थानसमुत्कीर्तनाभ्यां प्रकृतिबंधस्य प्ररूपणं कृत्वा अधुना स्थितिबंधस्य कथनं कर्तव्यं। कीदृशि स्थितिबंधे वा सम्यक्त्वं न

अथ उत्कृष्टस्थितिबंध

(छठी चूलिका अधिकार)

मंगलाचरण

जिनकी आयु चौरासी लाख वर्ष पूर्व की थी, ऐसे इक्ष्वाकुवंश के सूर्य जो पुरुदेव—श्रीऋषभदेव भगवान हैं वे हम सभी को पवित्र करें।

भावार्थ—एक लाख वर्ष को चौरासी से गुणा करने पर एक पूर्वांग होता है॥१॥

इस पूर्वांग को चौरासी लाख से गुणा करने पर एक पूर्व होता है। ऐसे चौरासी लाख पूर्व की भगवान ऋषभदेव की आयु थी। यहाँ उत्कृष्टस्थितिबंध के अधिकार में इस अवसरपिणी में तीर्थकर परम्परा में उत्कृष्टस्थिति को प्राप्त ऐसे प्रथम तीर्थकर प्रभु को नमस्कार किया है। यद्यपि कर्मभूमि में चतुर्थकाल में उत्कृष्टस्थिति एक करोड़ वर्ष पूर्व की है, जिसमें यह मध्यम स्थिति कहलायेगी फिर भी चौबीस तीर्थकरों में सबसे अधिक आयुस्थिति इन्हीं की थी।

युग की आदि में कर्मभूमिरूप सृष्टि व्यवस्था के स्रष्टा—विधाता अथवा व्यवस्था बनाने वाले—बतलाने वाले जो धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करके मोक्षमार्ग के विधाता हुये हैं और जिनके जन्मजयन्ती महामहोत्सव के संदर्भ में आज यहाँ (अहमदाबाद में) उन्हीं भगवान के जीवन दर्शन का आश्रय लेकर संगोष्ठी—धर्मचर्चा चल रही है, उन श्रीऋषभदेव भगवान को हमारा बारम्बार नमस्कार होवे।

अर्थात् जिस समय यह अधिकार शुरु किया है, मैं ससंघ अहमदाबाद-सोला, गुजरात में थी, वहाँ कल्पद्रुम विधान, श्री ऋषभदेव संगोष्ठी आदि कार्यक्रम संपन्न हुये हैं।

अब षट्खण्डागम ग्रन्थराज के प्रथम खण्ड में छठे ग्रन्थ में—छठी पुस्तक में जीवस्थान चूलिका के अन्तर्गत 'उत्कृष्टस्थितिबंध चूलिका' नाम की इस छठी चूलिका में दश स्थलों द्वारा चवालीस सूत्र कहेंगे। उसमें प्रथम ही प्रकृतिसमुत्कीर्तन और स्थानसमुत्कीर्तन के द्वारा प्रकृतिबंध का प्ररूपण करके अब स्थितिबंध का कथन करना चाहिये।

१. यह प्रकरण अहमदाबाद-सोला (गुजरात) में पौष कृ. ७, वीर सं. २५२३, ईसवी सन् १-१-१९९७ को लिखा है। इस दिन वहाँ कल्पद्रुम विधान चल रहा था, उसके अन्तर्गत श्री ऋषभदेव संगोष्ठी की गई थी।

लभ्यते इति जिज्ञासायां इयं चूलिका अवतारिता। तत्र प्रथमस्थले उत्कृष्टस्थितिबंधे सति सम्यक्त्वं लभते न वा तथा चास्य बंधस्य कथनप्रतिज्ञारूपेण “केवडि कालट्टिदीएहि” इत्यादिना सूत्रद्वयं। ततः परं द्वितीयस्थले ज्ञानावरणादि-विंशतिकर्मणां उत्कृष्टस्थितिबंधस्य आबाधायाश्च प्रतिपादनार्थं “तं जहा” इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनंतरं तृतीयस्थले सातावेदनीयादिचतुःप्रकृतीनां सर्वोत्कृष्टस्थितिप्रतिपादनाय “सादावेदणीय” इत्यादिसूत्रत्रयं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले मिथ्यात्वषोडशकषायाणां उत्कृष्टस्थितिसूचनार्थं “मिच्छत्तस्स” इत्यादिसूत्रषट्कं। ततश्च पंचमस्थले पुरुषवेदादिपंचदशप्रकृति-उत्कृष्टबंधकथनत्वेन “पुरिसवेद”-इत्यादिसूत्रत्रयं। अनंतरं षष्ठस्थले नपुंसकवेदादित्रिचत्वरिंशत्प्रकृतीनां उत्कृष्टस्थितिबंधसूचकत्वेन “णउंसयवेद-” इत्यादि सूत्रत्रयं। ततः परं सप्तमस्थले चतुर्विधायुःकर्मणामुत्कृष्टस्थितिबंधनिरूपणत्वेन “णिरयाउ” इत्यादिसूत्राष्टकं। पुनश्च अष्टमस्थले द्वीन्द्रियाद्यष्टप्रकृतीनां उत्कृष्टस्थितिबंधकथनत्वेन “वीइंदिय” इत्यादिसूत्रत्रयं। तत्पश्चात् नवमस्थले आहारशरीर-आहारंगोपांग-तीर्थकरप्रकृतीनां उत्कृष्टस्थितिबंधप्ररूपणत्वेन “आहारसरीर” इत्यादिसूत्रत्रयं। पुनश्च दशमस्थले न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थानादि-त्रिसंस्थान-त्रिसंहननप्रकृतीनां उत्कृष्टस्थितिबंधप्रतिपादनपरत्वेन “णगगोध” इत्यादिना नव सूत्राणि कथ्यन्ते इति षष्ठीचूलिकाया इयं समुदायपातनिका सूचिता भवति।

संप्रति तृतीयप्रश्नस्योत्तरं प्रयच्छता श्रीमद्भूतबलिसूरिवर्येण उत्कृष्टस्थितिबंधप्रतिपादनप्रतिज्ञापनाय च सूत्रद्वयमवतार्यते—

अथवा ‘किस प्रकार के स्थितिबंध के होने पर सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती है’, ऐसी जिज्ञासा होने पर यह चूलिका अवतरित हुई है।

उसमें प्रथम स्थल में उत्कृष्टस्थितिबंध के होने पर सम्यक्त्व प्राप्त होता है या नहीं, तथा उस बंध के कथन की प्रतिज्ञारूप से “केवडि कालट्टिदीएहि” इत्यादिरूप से दो सूत्र कहेंगे। पुनः दूसरे स्थल में ज्ञानावरणादि बीस कर्मों के उत्कृष्टस्थितिबंध का और उनकी आबाधा का प्रतिपादन करने के लिये “तं जहा” इत्यादि चार सूत्र कहेंगे। इसके बाद तीसरे स्थल में सातावेदनीय आदि चार प्रकृतियों की सर्वोत्कृष्ट स्थिति का प्रतिपादन करने के लिये “सादावेदणीय” इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। इसके पश्चात् चौथे स्थल में मिथ्यात्व और सोलह कषायों की उत्कृष्टस्थिति को सूचित करने के लिये “मिच्छत्तस्स” इत्यादि छह सूत्र कहेंगे। इसके बाद पाँचवें स्थल में पुरुषवेद आदि पन्द्रह प्रकृतियों की उत्कृष्टस्थिति सूचित करने के लिये “पुरिसवेद —” इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। इसके अनन्तर छठे स्थल में नपुंसकवेद आदि तेतालीस प्रकृतियों का उत्कृष्टस्थितिबंध सूचित करने के लिये “णउंसयवेद —” इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। इसके बाद सातवें स्थल में चार प्रकार की आयु कर्मों के उत्कृष्टस्थितिबंध को निरूपित करने के लिये “णिरयाउ” इत्यादि आठ सूत्र कहेंगे। पुनः आठवें स्थल में द्वीन्द्रिय आदि आठ प्रकृतियों का उत्कृष्टस्थितिबंध कहने के लिये “वीइंदिय —” आदि तीन सूत्र कहेंगे। पुनः नवमें स्थल में आहारकशरीर, आहारक-अंगोपांग और तीर्थकर प्रकृति का उत्कृष्टस्थितिबंध प्ररूपित करते हुये “आहारसरीर —” इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। इसके बाद दशवें स्थल में न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान आदि तीन संस्थान और तीन संहनन प्रकृतियों का उत्कृष्टस्थितिबंध प्रतिपादित करने के लिये “णगगोध —” इत्यादि नवसूत्र कहेंगे। इस प्रकार छठी चूलिका की यह समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब श्रीमान् भूतबलि आचार्यवर्य तृतीय प्रश्न का उत्तर देते हुये और उत्कृष्टस्थितिबंध के प्रतिपादन की प्रतिज्ञा करते हुये दो सूत्र अवतरित करते हैं—

केवडि कालट्टिदीएहि कम्मेहि सम्मत्तं लभदि वा ण लभदि वा, ण लभदि त्ति विभासा।।१।।

एत्तो उक्कस्सयट्ठिदिं वण्णइस्सामो।।२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — कालापेक्षया कियत्स्थितिमत्कर्मभिः जीवः सम्यक्त्वं लभ्यते कियत्स्थितिमत्कर्मभिः सम्यक्त्वं न लभ्यते इति एषा पृच्छा वर्तते। एतस्य पृच्छासूत्रस्य द्रव्यार्थिकनयमवलम्ब्य अवस्थानात् संगृहीताशेषपदार्थस्य व्याख्याने क्रियमाणे तत्र यत्सम्यक्त्वं न लभ्यते इति पदं तस्य विभाषा क्रियते। तासां स्थितीनां प्ररूपणां कुर्वता उत्कृष्टस्थितिर्वर्णनार्थं उत्तरसूत्रमवतारितं।

एत्तो — एतस्मादग्रे उत्कृष्टस्थितिं वर्णयिष्यामः।

किमर्थमत्र स्थितिप्ररूपणा क्रियते ?

न, संगृहीतार्थशेषस्थितिविशेषकर्मस्थितौ अनवगतायां एषा स्थितिः सम्यक्त्वग्रहणयोग्या एषापि न योग्या इति प्ररूपणायाः उपायाभावात्, उत्कृष्टस्थितिं बध्नन् जीवः प्रथमसम्यक्त्वं न प्रतिपद्यते इति ज्ञापनार्थं वा उत्कृष्टस्थितिप्ररूपणा क्रियते।

का स्थितिः इति चेत् ?

योगवशेन कर्मस्वरूपेण परिणतानां पुद्गलस्कंधानां कषायवशेन जीवे एकस्वरूपेण अवस्थानकालः

सूत्रार्थ —

‘काल की अपेक्षा यह जीव कितनी स्थिति वाले कर्मों के द्वारा सम्यक्त्व को प्राप्त करता है अथवा नहीं प्राप्त करता है’ इस वाक्य के अन्तर्गत ‘अथवा नहीं प्राप्त करता है’ इस पद की व्याख्या करते हैं।।१।।

अब इससे आगे उत्कृष्टस्थितिबंध का वर्णन करेंगे।।२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — काल की अपेक्षा कितनी स्थिति वाले कर्मों के होते हुए जीव सम्यक्त्व को प्राप्त करता है और काल की अपेक्षा कितनी स्थिति वाले कर्मों के होते हुए सम्यक्त्व को नहीं प्राप्त करता है, यह एक प्रश्न है। इस पृच्छासूत्र का द्रव्यार्थिकनय का अवलम्बन लेकर अवस्थान होने से संगृहीत समस्त प्रकृत अर्थ का व्याख्यान किये जाने पर उसमें जो ‘सम्यक्त्व को नहीं प्राप्त करता है’ यह पद है, उसकी विभाषा की जाती है। उन स्थितियों का प्ररूपण करते हुये आचार्य ने कर्मों की उत्कृष्टस्थिति के वर्णन के लिये उत्तर सूत्र अवतारित किया है। जैसे कि — ‘एत्तो’ अर्थात् इसके आगे उत्कृष्टस्थिति का वर्णन करेंगे।

शंका — यहाँ पर कर्मों की स्थिति का निरूपण किसलिए किया जा रहा है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि समस्त स्थिति विशेषों का संग्रह करने वाली कर्मस्थिति के ज्ञात नहीं होने पर, यह स्थिति सम्यक्त्व को ग्रहण करने के योग्य है और यह स्थिति सम्यक्त्व को ग्रहण करने के योग्य नहीं है। इस प्रकार की प्ररूपणा करने का और कोई उपाय न होने से अथवा कर्मों की उत्कृष्टस्थिति को बांधने वाला जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्व को नहीं प्राप्त करता है, इस बात का ज्ञान कराने के लिए कर्मों की उत्कृष्टस्थिति का निरूपण किया जा रहा है।

शंका — स्थिति किसे कहते हैं ?

समाधान — योग के वश से कर्मस्वरूप से परिणत पुद्गल-स्कन्धों का कषाय के वश से जीव में

स्थितिः नाम।

उक्तं चान्यत्रापि — ‘प्रकृतिः स्वभावः। निंबस्य का प्रकृतिः? तिक्तता। गुडस्य का प्रकृतिः? मधुरता। तथा ज्ञानावरणस्य का प्रकृतिः? अर्थानवगमः। इत्यादिः। तदेवं लक्षणं कार्यं प्रक्रियते प्रभवत्यस्या इति प्रकृतिः। तत्स्वभावदप्रच्युतिः स्थितिः। यथा — अजागोमहिष्यादिक्षीराणां माधुर्यस्वभावादप्रच्युतिः स्थितिः। तथा ज्ञानावरणादीनामर्थावगमादिस्वभावादप्रच्युतिः स्थितिः।” तद्वत्सविशेषोऽनुभवः यथा अजागोमहिष्यादिक्षीराणां तीव्रमंदादिभावेन रसविशेषः। तथा कर्म पुद्गलानां स्वगतसामर्थ्यविशेषोऽनुभवः। इयत्तावधारणं प्रदेशः। कर्मभावपरिणतपुद्गलस्कंधानां परमाणु परिच्छेदेनावधारणं प्रदेशः^१।” इति प्रकृतिस्थिति-अनुभवप्रदेशभेदात् चतुर्विधो बंधः उच्यते।

तासां उत्कृष्टस्थितिश्चैव प्रथमं किमर्थमुच्यते ?

न, उत्कृष्टस्थितौ संगृहीताशेषस्थितिविशेषायां प्ररूपितायां सर्वस्थितीनां प्ररूपणा सिद्धेः।

एवं प्रथमस्थले उत्कृष्टस्थितिनिरूपणसूचकत्वेन द्वे सूत्रे गते।

अधुना ज्ञानावरणादिविंशतिप्रकृतीनां उत्कृष्टस्थितिप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

तं जहा।।३।।

एक स्वरूप से रहने के काल को स्थिति कहते हैं।

सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ में कहा भी है— प्रकृति अर्थात् स्वभाव। नीम की क्या प्रकृति है अर्थात् क्या स्वभाव है ? तिक्त होना— कडुवा होना। गुड़ का क्या स्वभाव है ? मीठा होना। उसी प्रकार से ज्ञानावरणकर्म का क्या स्वभाव है ? अर्थ का ज्ञान न होना, इत्यादि। इस लक्षण वाला कार्य जो किया जाता है वह प्रकृति है अथवा जिससे होता है वह प्रकृति है। जिसका जो स्वभाव है उससे च्युत न होना स्थिति है, जैसे— बकरी, गाय, भैंस आदि के दूध का माधुर्य स्वभाव से च्युत न होना स्थिति है, उसी प्रकार से ज्ञानावरण आदि कर्मों के अर्थ का ज्ञान न होने देना आदि स्वभाव से च्युत न होना स्थिति है।

इन कर्मों के रस विशेष का नाम अनुभव है— अनुभाग है, जैसे— बकरी, गाय, भैंस आदि के दूध का अलग-अलग तीव्र मंद आदि रूप से रस विशेष होता है, उसी प्रकार कर्म पुद्गलों का अलग-अलग स्वगत सामर्थ्य-विशेष अनुभव है। तथा इयत्ता— कालमर्यादा का अवधारण करना प्रदेश है। कर्मरूप से परिणत पुद्गलस्कंधों के परमाणुओं की जानकारी करके निश्चय करना प्रदेशबंध है। इस प्रकार प्रकृति, स्थिति, अनुभव और प्रदेश के भेद से बंध चार प्रकार का है।

शंका— इन कर्मों की उत्कृष्टस्थिति ही पहले क्यों कही गयी है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, समस्त स्थिति विशेषों का संग्रह करने वाली उत्कृष्टस्थिति के प्ररूपित करने पर सर्वस्थितियों के निरूपण की सिद्धि हो जाती है।

इस प्रकार प्रथमस्थल में उत्कृष्टस्थिति के निरूपण की प्रतिज्ञारूप से दो सूत्र पूर्ण हुये।

अब ज्ञानावरण आदि बीस प्रकृतियों की उत्कृष्टस्थिति का प्रतिपादन करने के लिये दो सूत्र अवतार लेते हैं—

सूत्रार्थ—

वह उत्कृष्टस्थिति किस प्रकार है।।३।।

**पंचणहं णाणावरणीयाणं णवणहं दंसणावरणीयाणं असादावेदणीयं
पंचणहमंतराड्याणं उक्कस्सओ द्विदिबंधो तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ ॥४॥**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — एतेषां उक्तकर्मणां उत्कृष्टा स्थितिः त्रिंशत्सागरोपमकोटाकोटिमात्रा भवति।

तत्र एकसमयप्रबद्धपरमाणुपुद्गलानां किं सर्वेषामपि त्रिंशत्सागरोपमकोटाकोटिस्थितिर्भवति आहोस्वित् न भवति इति ? प्रथमपक्षे उपरि उच्यमाणाबाधानिषेकसूत्रयोरभावप्रसंगात्। समानस्थितिकर्मस्कंधेषु आबाधानिषेकविशेषाणामस्तित्वविरोधात्। द्वितीयपक्षे ज्ञानावरणादीनां त्रिंशत्सागरोपमकोटाकोटिस्थितिरिति न घटते, ततः समयोनादिस्थितीनामपि तत्रोपलंभात् ?

अत्र परिहारः उच्यते, तद्यथा — न तावदेकसमयप्रबद्धपरमाणुपुद्गलानां पृथक्-पृथक् ज्ञानावरण-विवक्षात्रास्ति, ज्ञानावरणस्य अनन्तत्वप्रसंगात्। न निषेकं प्रति ज्ञानावरणव्यपदेशोऽस्ति, तस्यासंख्येयत्वप्रसंगात्। ततः मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानावरणसामान्यस्य मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानावरणत्वमिष्यते, अन्यथा ज्ञानावरण प्रकृतीनां पंचकत्वविरोधात्। अत्रापि न प्रथमपक्षोक्तदोषः, अनभ्युपगमात्। न द्वितीयपक्षोक्तदोषोऽपि, ततः समयोनादिस्थितीनां उत्कृष्टस्थितेः द्रव्यार्थिकनयावलंबने अपृथग्भूतानां पृथग्निर्देशानुपपत्तेः। संप्रति द्रव्यार्थिकनयदेशनायाः व्याकुलितचित्तस्य पर्यायार्थिकनयशिष्यस्य

**पाँचों ज्ञानावरणीय, नवों दर्शनावरणीय, असातावेदनीय और पाँचों अन्तराय,
इन कर्मों का उत्कृष्ट स्थितिबंध तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ॥४॥**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इन सूत्रोक्त कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण होती है।

शंका — इस स्थितिबंध में एक समय में बंधे हुए क्या सभी पुद्गल-परमाणुओं की स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम होती है अथवा सबकी नहीं होती है ? प्रथम पक्ष के मानने पर आगे कहे जाने वाले आबाधा और निषेक सम्बन्धी सूत्रों के अभाव का प्रसंग आता है, क्योंकि, समान स्थिति वाले कर्म-स्कन्धों में आबाधा, निषेक और विशेष अर्थात् हानिवृद्धि को सूचित करने वाले चय के अस्तित्व मानने में विरोध आता है। द्वितीय पक्ष के मानने पर ज्ञानावरणादि कर्मों की सूत्रोक्त तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण स्थिति घटित नहीं होती है, क्योंकि उस उत्कृष्टस्थिति से एक समय कम आदि स्थितियाँ भी उन कर्मों में पायी जाती हैं ?

समाधान — यहाँ पर उक्त आशंका का परिहार कहते हैं। वह इस प्रकार है — यहाँ पर न तो एक समय में बंधे हुए पुद्गल-परमाणुओं के पृथक्-पृथक् ज्ञानावरण कर्म की विवक्षा है, क्योंकि वैसा मानने पर ज्ञानावरणकर्म के अनन्तता का प्रसंग आता है। न यहाँ पर एक-एक निषेक के प्रति 'ज्ञानावरण' ऐसा व्यपदेश (नाम) दिया गया है, क्योंकि, वैसा मानने पर ज्ञानावरण कर्म के असंख्येयता का प्रसंग आता है। इसलिये मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान के आवरण सामान्य के मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञानावरणता मानी गई है। अर्थात् यहाँ मति, श्रुत आदि ज्ञानावरणों के भेद-प्रभेदों की विवक्षा नहीं की गई है किन्तु मति, श्रुत आदि पाँच भेदों की सामान्य से ही विवक्षा की गई है। यदि ऐसा न माना जाये, तो ज्ञानावरण की प्रकृतियों के 'पाँच' इस संख्या का विरोध आता है। तथा ऐसा मानने पर भी प्रथम पक्ष में कहा गया दोष नहीं आता है, क्योंकि वैसा माना नहीं गया है। अर्थात् एक समय में बंधे हुए पाँचों ज्ञानावरणीय कर्मों के समस्त पुद्गल-परमाणुओं की स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण ही स्वीकार नहीं की गई है। इसी

मतिव्याकुलत्वविनाशनार्थं पर्यायार्थिकनयदेशना अग्रिमसूत्रे क्रियते।

एषां कर्मणां उत्कृष्टस्थितिः मयाऽपि बहुवारं बद्धासीत् अधुना आसां स्थितीनां अध्ययनं मननं चिंतनं कृत्वा श्रुतज्ञानावरणकर्मक्षयोपशमबलेन मया ज्ञानं संप्राप्य पुनः पुनः मया चिन्त्यते यत् एषा उत्कृष्टा स्थितिः कदाचिदपि मयि न बध्येत मध्यमां स्थितिं अवलंब्य इयं जघन्यरूपा भवेदिति भाव्यते, जिनेन्द्रदेववचनस्य पठनस्य सार एष एव।

संप्रति एषां कर्मणामाबाधाप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

तिणिण वाससहस्साणि आबाधा।।५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — न बाधा अबाधा, अबाधा चैव आबाधा। यस्मिन् समयप्रबद्ध त्रिंशत्कोटाकोटिसागरस्थितिकाः परमाणुपुद्गलाः सन्ति, न तत्र एकसमयकालास्थितिकाः परमाणुपुद्गलाः संभवन्ति, विरोधात्। एवं तदुत्कृष्टस्थितिमत्समयप्रबद्धे द्वौ त्रीन् समयान् आदिं कृत्वा त्रिसहस्रवर्षप्रमित-कालस्थितिका अपि पुद्गलपरमाणवः न सन्ति।

कुत एतत् ?

स्वभावात्। ‘ न हि स्वभावाः परपर्यनुयोगार्हाः ’ एषा उत्कृष्टा आबाधा।

अस्यायमर्थः — एकसमयप्रबद्धः त्रिंशत्सागरोपमकोटाकोटिस्थितिपुद्गलस्कंधैः आत्मनः असंख्यातभागैः

प्रकार द्वितीय पक्ष में कहा गया दोष नहीं आता है, क्योंकि, द्रव्यार्थिक नय का अवलम्बन करने पर उस उत्कृष्टस्थिति से अपृथग्भूत एक समय कम, दो समय कम आदि स्थितियों के पृथक् निर्देश की आवश्यकता नहीं रहती।

अब द्रव्यार्थिक नय की देशना से व्याकुलित चित्त वाले, पर्यायार्थिकनयी शिष्य की बुद्धि व्याकुलता को दूर करने के लिये आचार्य पर्यायार्थिकनय की देशना करते हैं।

इन कर्मों की उत्कृष्टस्थिति मैंने भी बहुत बार बांधी है, अब इस समय इन स्थितिबंधों का अध्ययन, मनन, चिन्तन करके श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम के बल से किंचित् ज्ञान प्राप्त करके मेरा यह चिंतन हो रहा है कि ये उत्कृष्ट स्थितियाँ मुझमें कभी न बंधें। मैं मध्यम स्थिति का अवलम्बन लेकर इन्हें जघन्यरूप कर दूँ, ऐसी भावना मेरे द्वारा भायी जा रही है, क्योंकि जिनेन्द्रदेव के वचनों के पढ़ने का सार यही है।

अब इन्हीं कर्मों की आबाधा का प्रतिपादन करने के लिये सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

पूर्व सूत्रोक्त ज्ञानावरणीयादि कर्मों का आबाधाकाल तीन हजार वर्ष है।।५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — बाधा के अभाव को अबाधा कहते हैं और अबाधा ही आबाधा कहलाती है। जिस समयप्रबद्ध में तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थिति वाले पुद्गल परमाणु होते हैं, उस समयप्रबद्ध में एक समय प्रमाण काल-स्थिति वाले पुद्गल परमाणु रहना संभव नहीं है, क्योंकि वैसा मानने में विरोध आता है। इसी प्रकार उस उत्कृष्ट स्थिति वाले समयप्रबद्ध में दो समय, तीन समय को आदि करके तीन हजार वर्ष-प्रमित काल-स्थिति वाले भी पुद्गल परमाणु नहीं हैं।

ऐसा क्यों ?

क्योंकि, ऐसा स्वभाव ही है और स्वभाव अन्य के प्रश्न योग्य नहीं हुआ करते हैं, ऐसा न्याय है। पूर्व

सहितः अपकर्षणेन विना स्थितिक्षयेण एतावत्कालं उदयं नागच्छति इति ज्ञातव्यं। समयोन-
द्विसमयोनादित्रिंशत्कोटाकोटिसागराणामपि एषा चैवाबाधा भवति यावत् समयोनाबाधाकाण्डकेनोन-
उत्कृष्टस्थितिः इति।

कथमाबाधाकाण्डकस्योत्पत्तिः ?

उत्कृष्टाबाधाकालं विरलव्य उत्कृष्टस्थितेः समखण्डं कृत्वा एकैकरूपं प्रतिदाने आबाधाकाण्डकप्रमाणं प्राप्नोति।

कल्पनारूपेण अंकसंदृष्ट्या तस्य उदाहरणं दीयते —

यदि उत्कृष्टस्थितिः त्रिंशत्समयाः, आबाधा त्रिसमयाः। तर्हि उत्कृष्टस्थितेः समखंडाः ‘दश दश दश’
तत्र एकैकरूपं दाने आबाधाकाण्डकप्रमाणं $\frac{१०}{१} \frac{१०}{१} \frac{१०}{१}$ अर्थात् $\frac{३०}{३} = १०$ भवति, अस्य स्थितिबंधस्याभ्यन्तरे
आबाधायाः त्रिभेदाः संजाताः।

तत्र रूपोनाबाधाकाण्डकमात्रस्थितयः उत्कृष्टस्थितेः यावत् हीना भवन्ति तावत्सा चैव त्रिसहस्रवर्षप्रमिता
उत्कृष्टाबाधा भवति। एकाबाधाकाण्डकेन न्यूनोत्कृष्टस्थितिं बध्नतः समयोनत्रिसहस्रवर्षप्रमाणं आबाधा
भवति। एतेन स्वरूपेण सर्वस्थितीनामपि आबाधाप्ररूपणं ज्ञात्वा कर्तव्यं। विशेषेण तु — द्वाभ्यामाबाधा-
सूत्रोक्त कर्मों की यह उत्कृष्ट आबाधा है। एक समयप्रबद्ध अपने असंख्यातवें भाग-प्रमाण तीस कोड़ाकोड़ी
सागरोपम स्थिति वाले पुद्गल स्कंधों से सहित होता हुआ अपकर्षण के द्वारा बिना स्थिति क्षय के इतने अर्थात्
तीन हजार वर्ष प्रमित काल तक उदय को नहीं प्राप्त होता है, यह अर्थ कहा गया है। एक समय कम तीस
कोड़ाकोड़ी सागरोपम, दो समय कम तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम, इत्यादि क्रम से एक समय हीन आबाधाकाण्डक
से कम तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम-प्रमित-उत्कृष्टस्थिति तक के पुद्गल स्कंधों की भी यही, तीन हजार वर्ष
प्रमाण आबाधा होती है।

शंका — आबाधाकाण्डक की उत्पत्ति कैसे होती है ?

समाधान — उत्कृष्ट आबाधाकाल को विरलन करके ऊपर उत्कृष्ट स्थिति के समान खण्ड करके
एक-एक रूप के प्रति देने पर आबाधाकाण्डक का प्रमाण प्राप्त होता है।

कल्पनारूप से अंक संदृष्टि से उसे दिखाते हैं —

उदाहरण — मान लो उत्कृष्टस्थिति ३० समय, आबाधा ३ समय। तो $\frac{१०}{१} + \frac{१०}{१} + \frac{१०}{१} = \frac{३०}{३} = १०$
यह आबाधाकाण्डक का प्रमाण हुआ और उक्त स्थितिबंध के भीतर ३ आबाधा के भेद हुए।

विशेषार्थ — कर्मस्थिति के जितने भेदों में एक प्रमाण वाली आबाधा होती है, उतने स्थिति भेदों के
समुदाय को आबाधाकाण्डक कहते हैं। विवक्षित कर्म-स्थिति में आबाधाकाण्डक का प्रमाण जानने का उपाय
यह है कि विवक्षित कर्म की उत्कृष्टस्थिति में उसी की उत्कृष्ट आबाधा का भाग देने पर जो भजनफल आता
है, तत्प्रमाण ही उस कर्मस्थिति में आबाधाकाण्डक होता है। यही बात प्रकृत में विरलन-देय के क्रम से
समझाई गई है। इस प्रकार जितने स्थिति के भेदों का एक आबाधाकाण्डक होता है, उतने ही स्थितिभेदों की
आबाधा समान होती है। यह कथन नाना समयप्रबद्धों की अपेक्षा से है।

उन कर्मस्थिति के भेदों में एक समय, दो समय आदि के क्रम से जब तक एक समय हीन
आबाधाकाण्डक मात्र तक स्थितियाँ उत्कृष्टस्थिति से कम होती हैं तब तक उन सब स्थिति विकल्पों की वही
अर्थात् तीन हजार वर्ष-प्रमित उत्कृष्ट आबाधा होती है। एक आबाधाकाण्डक से हीन उत्कृष्टस्थिति को बंधने

काण्डकाभ्यामूनां उत्कृष्टस्थितिं बध्नतः जीवस्य आबाधा उत्कृष्टा द्विसमयोना भवति। त्रिभिराबाधाकाण्ड-
कैरूनामुत्कृष्टस्थितिं बध्नतः आबाधा उत्कृष्टा त्रिसमयोना। चतुर्भिराबाधाकाण्डकैः ऊनामुत्कृष्टस्थितिं बध्नतः
आबाधा उत्कृष्टा चतुःसमयोना। एवं नेतव्यं यावत् जघन्यस्थितिः इति। सर्वाबाधाकाण्डकेषु वीचारस्थानत्वं
प्राप्तेषु समयोनाबाधाकाण्डकमात्रस्थितीनामवस्थिता आबाधा भवति इति गृहीतव्यम्।

अस्योदाहरणमंकसंदृष्ट्या प्रदर्श्यते — यदि उत्कृष्टस्थितिः चतुःषष्टिसमयाः तस्य उत्कृष्टाबाधा षोडश
समयाः सन्ति। अतएव आबाधाकाण्डकप्रमाणं $\frac{६४}{१६} = ४$ चतुःसमयाः।

कदाचित् मन्येत् जघन्यस्थितयः पंचचत्वारिंशत्समयाः सन्ति। अतएव स्थितेः भेदाः षष्टितः
पंचचत्वारिंशत्पर्यन्ता भवन्ति। येषां रचना आबाधाकाण्डकानुसारेण एवं भवति —

- (१) ६४, ६३, ६२, ६१ — उत्कृष्टाबाधा।
- (२) ६०, ५९, ५८, ५७ — एकसमयोना।
- (३) ५६, ५५, ५४, ५३ — द्विसमयोना।
- (४) ५२, ५१, ५०, ४९ — त्रिसमयोना।
- (५) ४८, ४७, ४६, ४५ — चतुःसमयोना।

इमे पंच भेदाः आबाधायाः सन्ति। आबाधाकाण्डकाः ४×५ (आबाधाभेदाः) = २० स्थितिभेदाः।

वाले समयप्रबद्ध के एक समय कम तीन हजार वर्ष की आबाधा होती है। इसी प्रकार सभी कर्मस्थितियों की भी आबाधा सम्बन्धी प्ररूपणा जानकर करना चाहिये। विशेषता केवल यह है कि दो आबाधाकाण्डकों से हीन उत्कृष्टस्थिति को बांधने वाले जीव के समयप्रबद्ध की उत्कृष्ट आबाधा दो समय कम होती है। तीन आबाधाकाण्डकों से हीन उत्कृष्टस्थिति को बांधने वाले जीव के समयप्रबद्ध की उत्कृष्ट आबाधा तीन समय कम होती है। चार आबाधाकाण्डकों से हीन उत्कृष्टस्थिति को बांधने वाले समयप्रबद्ध की उत्कृष्ट आबाधा चार समय कम होती है। इस प्रकार यह क्रम विवक्षित कर्म की जघन्य स्थिति तक ले जाना चाहिये। इस प्रकार सर्व आबाधाकाण्डकों के वीचारस्थानत्व अर्थात् स्थिति भेदों को प्राप्त होने पर एक समय कम आबाधाकाण्डक मात्र स्थितियों की आबाधा अवस्थित अर्थात् एक सी होती है, यह अर्थ जानना चाहिये।

इसका उदाहरण अंक संदृष्टि से दिखाते हैं —

उदाहरण — मान लो उत्कृष्टस्थिति ६४ समय और उत्कृष्ट आबाधा १६ समय है। अतएव आबाधाकाण्डक का प्रमाण $\frac{६४}{१६} = ४$ होगा।

मान लो जघन्य स्थिति ४५ समय है। अतएव स्थिति के भेद ६४ से ४५ तक होंगे जिनकी रचना आबाधाकाण्डकों के अनुसार इस प्रकार होगी —

- (१) ६४, ६३, ६२, ६१ — उत्कृष्ट आबाधा
- (२) ६०, ५९, ५८, ५७ — एक समय कम उत्कृष्ट आबाधा
- (३) ५६, ५५, ५४, ५३ — दो समय कम उत्कृष्ट आबाधा
- (४) ५२, ५१, ५०, ४९ — तीन समय कम उत्कृष्ट आबाधा
- (५) ४८, ४७, ४६, ४५ — चार समय कम उत्कृष्ट आबाधा

ये पाँच आबाधा के भेद हुए। आबाधाकाण्डक ४×५ (आबाधा-भेद) = २० स्थितिभेद।

स्थितिभेदेषु विंशतिषु एकरूपोऽनं वीचारस्थानं २०-१=१९ वीचारस्थानि।

इमानि वीचारस्थानानि उत्कृष्टस्थितिभ्यः अपनीते सति जघन्यस्थितिः प्राप्नोति। स्थितीनां क्रमहानिरपि इयत्सु स्थानेषु एव भवति।

संप्रति कर्मनिषेकलक्षणप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

आबाधूणिआ कम्मट्टिदी कम्मणिसेओ॥६॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — निषेचनं निषेकः कर्मपरमाणुस्कंधनिक्षेपः निषेको नाम।

अत्र कश्चिदाह — आबाधायामवगतायां तदुपरि कर्मनिषेको भवति इति अनुक्तेऽपि ज्ञायते ततो नेदं सूत्रं वक्तव्यं ?

नैतत् कथयितव्यं, किंच — प्रवचने अनुमानस्य प्रमाणस्य प्रमाणत्वाभावात्^१।

उक्तं च — “आगमो हि णाम केवलणाणपुरस्सरो पाएण अणिंदियत्थविसओ अचिंतियसहावो जुत्तिगोयरादीदो। तदो ण लिंगबलेण किंचि वोत्तुं सक्किज्जदि तम्हा सुत्तमिदमाढवेदव्वं चेव^२।”

अत्र निषेकानां अंकसंदृष्टिः विस्तरेण धवलाटीकायां द्रष्टव्यास्ति। संक्षेपेण यदि मन्येत — कस्यचित् कर्मणः स्थितिः उत्कृष्टेन चतुःषष्टिः समयाः, आबाधा षोडशसमयाः। निषेकस्थितिचतुःषष्टितः आबाधाकालस्य

स्थितिभेद २० - १ = १९ वीचारस्थान।

इन्हीं वीचारस्थानों को उत्कृष्टस्थिति में से घटाने पर जघन्यस्थिति प्राप्त होती है। स्थिति की क्रम हानि भी इतने ही स्थानों में होती है। अर्थात् इस प्रकार ‘जेट्टाबाहोवट्टिय’ (गो.क. १४७) के अनुसार गणित क्रम से निकले हुये स्थिति के भेदों को वीचारस्थान समझना चाहिये।

अब कर्मों के निषेकलक्षण का प्रतिपादन करने के लिये सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

पूर्वोक्त ज्ञानावरणादि कर्मों का आबाधाकाल से हीन कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेककाल होता है॥६॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — जो कर्म परमाणु निषिक्त होते हैं — उदय में आते हैं उन्हें निषेक कहते हैं अर्थात् कर्म परमाणुओं के स्कंध की रचना का नाम निषेक है।

शंका — कोई शंका करता है — आबाधा के जान लेने पर उसके ऊपर अर्थात् आबाधाकाल के पश्चात् कर्मनिषेक होता है, यह बात नहीं कहने पर भी जानी जाती है, अतएव यह सूत्र नहीं कहना चाहिये ?

समाधान — ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि प्रवचन (परमागम) में अनुमान प्रमाण के प्रमाणता नहीं मानी गई है। श्री वीरसेन स्वामी ने धवला टीका में कहा है कि — “जो केवलज्ञानपूर्वक उत्पन्न हुआ है, प्रायः अतीन्द्रिय पदार्थों को विषय करने वाला है, अचिन्त्य-स्वभावी है और युक्ति के विषय से परे है, उसका नाम आगम है।” अतएव उस आगम में लिंग अर्थात् अनुमान के बल से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। इसलिए यह सूत्र बनाना ही चाहिये।

यहाँ जो निषेक रचना की अंकसंदृष्टि है, उसे विस्तार से धवला टीका में देखना चाहिये। संक्षेप में यदि मान लो — किसी कर्म की उत्कृष्ट स्थिति चौंसठ समय और आबाधा सोलह समय है तो निषेक स्थिति चौंसठ समय में आबाधाकाल की सोलह समय घटाने पर अठतालीस समय शेष रहते हैं। ये ही कर्मों के

षोडशसमयेषु अपनीतेषु निषेकस्थितिः अष्टचत्वारिंशत्समयप्रमाणास्ति। तथा च समयप्रबद्धेषु पुद्गलपरमाणूनां संख्या त्रिषष्टिशतानि। एषां कोष्टकरचना टीकाग्रन्थे पठितव्या।

निषेक हैं तथा समयप्रबद्ध — बंधे हुये कर्मस्कंधों में पुद्गल परमाणुओं की संख्या त्रेसठ सौ है। इनकी कोष्टकरचना भी टीका ग्रन्थ में देखना चाहिये।

विशेषार्थ — यहाँ निषेक क्रम को कहते हैं^१। वह इस प्रकार है — नानागुणहानि शलाका प्रमाण जो गच्छ तत्प्रमाण एक से लेकर दुगुनी-दुगुनी संख्या लो और उसका योग कर लो। इस संकलन का जो फल आवे, उससे समयप्रबद्ध में भाग देने पर जो लब्ध होगा उससे पूर्वोक्त दुगुण क्रम के अंतिम आदिधन में गुणा करने से क्रमशः प्रथम, द्वितीय आदि गुणहानियों का द्रव्य प्राप्त होता है।

उदाहरण — समयप्रबद्ध = ६३००, नानागुणहानि शलाका = ६, अतएव गुणहानि — शलाका माण गच्छका एकादि-द्विगुण संकलन हुआ —

$$\begin{array}{cccccc} १ & २ & ३ & ४ & ५ & ६ \\ १ + २ + ४ + ८ + १६ + ३२ = ६३ \text{ या } \frac{६३००}{६३} = १०० \end{array}$$

अतः छह गुणहानियों का द्रव्य इस प्रकार होगा —

$$\begin{array}{l} १०० \times ३२ = ३२०० \text{ प्रथम गुणहानि का द्रव्य} \\ १०० \times १६ = १६०० \text{ द्वितीय गुणहानि का द्रव्य} \\ १०० \times ८ = ८०० \text{ तृतीय गुणहानि का द्रव्य} \\ १०० \times ४ = ४०० \text{ चतुर्थ गुणहानि का द्रव्य} \\ १०० \times २ = २०० \text{ पंचम गुणहानि का द्रव्य} \\ १०० \times १ = १०० \text{ षष्ठ गुणहानि का द्रव्य} \\ = ६३०० \text{ समस्त द्रव्य का प्रमाण} \end{array}$$

इन गुणहानियों के द्रव्यों में से किसी भी एक गुणहानि सम्बन्धी द्रव्य में गुणहानि प्रमाण (आयाम) के त्रिचतुर्थांश में एक रूप का चतुर्थ भाग (१/४) और मिलाकर उसका भाग देने पर विवक्षित गुणहानि का प्रथम निषेक होता है।

उदाहरण — गुणहानि आयाम = ८ =

$$८ \times \frac{३}{४} + \frac{१}{४} = ६ \frac{१}{४} = \frac{२५}{४} \text{ इसका पूर्वोक्त गुणहानि द्रव्यों में भाग देने से निकलेगा —}$$

$$\text{प्रथम गुणहानि का} = ३२०० \times \frac{४}{२५} = ५१२ \text{ प्रथम निषेक}$$

$$\text{द्वितीय गुणहानि का} = १६०० \times \frac{४}{२५} = २५६ \text{ प्रथम निषेक}$$

$$\text{तृतीय गुणहानि का} = ८०० \times \frac{४}{२५} = १२८ \text{ प्रथम निषेक}$$

$$\text{चतुर्थ गुणहानि का} = ४०० \times \frac{४}{२५} = ६४ \text{ प्रथम निषेक}$$

$$\text{पंचम गुणहानि का} = २०० \times \frac{४}{२५} = ३२ \text{ प्रथम निषेक}$$

$$\text{षष्ठ गुणहानि का} = १०० \times \frac{४}{२५} = १६ \text{ प्रथम निषेक}$$

प्रत्येक गुणहानि के प्रथम निषेक में दो गुणहानियों का भाग देने से उस गुणहानि का गोपुच्छों का विशेष (चय-प्रमाण) आता है।

उदाहरण—दो गुणहानि (निषेकहार) = $८ \times २ = १६$

अतएव प्रत्येक गुणहानि का विशेष (चय) इस प्रकार होगा—

$$\text{प्रथम गुणहानि का } \frac{५१२}{१६} = ३२ \text{ विशेष या चय का प्रमाण}$$

$$\text{द्वितीय गुणहानि का } \frac{२५६}{१६} = १६ \text{ विशेष या चय का प्रमाण}$$

$$\text{तृतीय गुणहानि का } \frac{१२८}{१६} = ८ \text{ विशेष या चय का प्रमाण}$$

$$\text{चतुर्थ गुणहानि का } \frac{६४}{१६} = ४ \text{ विशेष या चय का प्रमाण}$$

$$\text{पंचम गुणहानि का } \frac{३२}{१६} = २ \text{ विशेष या चय का प्रमाण}$$

$$\text{षष्ठ गुणहानि का } \frac{१६}{१६} = १ \text{ विशेष या चय का प्रमाण}$$

विशेषार्थ—गौ की पूँछ मूल में विस्तीर्ण और क्रमशः नीचे की ओर संक्षिप्त होती है। अतएव जहाँ किसी संख्या-समुदाय में संख्याएं उत्तरोत्तर घटती हुई पाई जाती हैं वहाँ उन संख्याओं को उपमान का उपमेय में उपचार से गोपुच्छ कहते हैं। उन संख्याओं के बीच जो व्यवस्थित हानि प्रमाण होता है उसे विशेष या चय कहते हैं।

पुनः प्रथम निषेक को एक कम गुणहानि प्रमाण स्थानों में रखकर उनमें से एकादि एकोत्तर क्रम से गोपुच्छों के विशेषों को यथाक्रम से घटाने पर द्वितीय, तृतीय आदि निषेक प्राप्त होते हैं।

यहाँ पर सर्व निषेकों की संदृष्टि इस प्रकार है—

गुणहानि	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ	पंचम	षष्ठ							
आयाम	गुणहानि	गुणहानि	गुणहानि	गुणहानि	गुणहानि	गुणहानि							
१	५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६							
२	४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५							
३	४४८	२२४	११२	५६	२८	१४							
४	४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३							
५	३८४	१९२	९६	४८	२४	१२							
६	३५२	१७६	८८	४४	२२	११							
७	३२०	१६०	८०	४०	२०	१०							
८	२८८	१४४	७२	३६	१८	९							
सर्वद्रव्य	३२००	+	१६००	+	८००	+	४००	+	२००	+	१००	=	६३००

एवं द्वितीयस्थले ज्ञानावरणादि कर्मप्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितिबंध-आबाधानिषेक कथनत्वेन सूत्र चतुष्टयं गतम्।
संप्रति सातावेदनीयादिप्रकृतिचतुष्कोत्कृष्टस्थितिप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

**सादावेदणीय-इत्थिवेद-मणुसगदि-मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्विणामाण-
मुक्कस्सओ द्विदिबंधो पण्णारस सागरोवमकोडाकोडीओ॥७॥**

पण्णारस वाससदाणि आबाधा॥८॥

आबाधूणिआ कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो॥९॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते। अयं स्थितिबंधः पारिणामिकोऽस्ति। पंचदशसागरोपमकोटाकोटिमात्रस्थितिसमयप्रबद्धे कर्मप्रदेशानां मध्ये सुष्ठु यदि जघन्यस्थितयः कर्मप्रदेशाः भवेयुः तर्हि अपि समयाधिकपंचदशवर्षशतमात्रस्थितयो भवेयुः, नोऽधः, तत्र तथाविधपरिणामप्रदेशानाम-संभवात्। संप्रति त्रैराशिकक्रमेण पंचदशवर्षशतमात्राबाधायां आनयनविधिः उच्यते— त्रिंशत्कोटाकोटि-सागरमात्रकर्मस्थितेः यदि आबाधा त्रिसहस्रवर्षमात्रा लभ्यते, तर्हि पंचदशकोटाकोटिसागरमात्रस्थितेः किं लभ्येत इति फलेन इच्छाराशिं गुणयित्वा प्रमाणराशिना अपवर्तिते पंचदशशतवर्षमात्रा आबाधा भवति इति ज्ञातव्यं।

इस प्रकार द्वितीयस्थल में ज्ञानावरण आदि प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितिबंध का और आबाधा का कथन करते हुये चार सूत्र पूर्ण हुये।

अब सातावेदनीय आदि चार प्रकृतियों की उत्कृष्टस्थिति का प्रतिपादन करने के लिये तीन सूत्र अवतार लेते हैं—

सूत्रार्थ—

सातावेदनीय, स्त्रीवेद, मनुष्यगति और मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म, इन प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबंध पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरोपम है॥७॥

उक्त सातावेदनीय आदि चारों कर्म प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति का आबाधाकाल पन्द्रह सौ वर्ष है॥८॥

आबाधाकाल से हीन कर्मस्थिति प्रमाण उन कर्मों का कर्म-निषेक होता है॥९॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूत्रों का अर्थ सुगम है। यह स्थितिबंध पारिणामिक है—स्वाभाविक है।

पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण स्थिति वाले समयप्रबद्ध में कर्मप्रदेशों के भीतर यदि अच्छी तरह जघन्य स्थितिवाले कर्म प्रदेश हों, तो भी एक समय अधिक पन्द्रह सौ वर्ष प्रमाण स्थिति वाले कर्म प्रदेश ही होंगे, इससे नीचे की स्थिति वाले कर्म प्रदेश नहीं होंगे, क्योंकि उन कर्म प्रकृतियों में उस प्रकार के परिणाम वाले प्रदेशों का होना असंभव है। अब त्रैराशिक क्रम से पन्द्रह सौ वर्ष प्रमाण आबाधा के लाने की विधि कहते हैं—यदि तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण कर्म-स्थिति की आबाधा तीन हजार वर्ष प्रमाण प्राप्त होती है, तो पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण कर्म-स्थिति की आबाधा कितनी प्राप्त होगी। इस प्रकार फलराशि से इच्छाराशि को गुणित करके प्रमाणराशि से अपवर्तित करने पर पन्द्रह सौ वर्ष ($\frac{15 \times 3000}{30} = 1500$ वर्ष) प्रमाण आबाधा प्राप्त होती है।

एवं तृतीयस्थले सातावेदनीयादिउत्कृष्टस्थिति-आबाधानिषेकप्रतिपादनत्वेन सूत्रत्रयं गतं।

अधुना मिथ्यात्वोत्कृष्टस्थिति-आबाधा-निषेकप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

मिच्छत्तस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंथो सत्तरि सागरोवमकोडाकोडीओ॥१०॥

सत्तवाससहस्साणि आबाधा॥११॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी णिसेगो॥१२॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अतीवाप्रशस्तत्वात् अस्य मिथ्यात्वस्य स्थितिः सर्वाधिका वर्तते। सप्तसहस्रवर्षैः मिथ्यात्वोत्कृष्टस्थितौ भागे कृते आबाधाकाण्डकमागच्छति। इदं च सर्वकर्मणां सदृशं, यथान्यायं भाज्य-भागहारयोः वृद्धिहानिदर्शनात्।

संप्रति षोडशकषायाणां उत्कृष्टस्थिति-आबाधा-निषेकप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

सोलसण्हं कसायाणं उक्कस्सगो ट्ठिदिबंथो चत्तालीसं सागरोवमकोडा-कोडीओ॥१३॥

चत्तारि वाससहस्साणि आबाधा॥१४॥

इस प्रकार तृतीयस्थल में सातावेदनीय आदि की उत्कृष्ट स्थिति और आबाधा तथा निषेक के प्रतिपादन रूप से तीन सूत्र पूर्ण हुये।

अब मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति-आबाधा और निषेक का प्रतिपादन करने के लिये तीन सूत्र अवतार लेते हैं—

सूत्रार्थ—

मिथ्यात्व कर्म का उत्कृष्ट स्थितिबंध सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम है॥१०॥

मिथ्यात्व कर्म के उत्कृष्ट स्थितिबंध का आबाधाकाल सात हजार वर्ष है॥११॥

मिथ्यात्व कर्म के आबाधाकाल से हीन कर्म-स्थिति प्रमाण उसका कर्म-निषेक होता है॥१२॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — मिथ्यात्व कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सबसे अधिक है, क्योंकि यह अत्यन्त अप्रशस्त है। सात हजार वर्षों से मिथ्यात्व कर्म की उत्कृष्टस्थिति में भाग देने पर आबाधाकाण्डक का प्रमाण आता है। यह आबाधाकाण्डक सभी कर्मों का समान है, क्योंकि भाज्य और भागहारों में यथान्याय — अनुरूप वृद्धि और हानि देखी जाती है।

अब सोलह कषायों की उत्कृष्ट स्थिति, आबाधा एवं निषेकों का प्रतिपादन करने के लिये तीन सूत्र अवतार लेते हैं—

सूत्रार्थ—

अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषायों का उत्कृष्ट स्थितिबंध चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम है॥१३॥

अनन्तानुबन्धी आदि सोलहों कषायों का उत्कृष्ट आबाधाकाल चार हजार वर्ष है॥१४॥

आबाधूणिया कम्मट्टिदी कम्मणिसेगो॥१५॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। एषां षोडशकषायाणां उत्कृष्टा स्थितिरपि दर्शनमोहनीयापेक्षया मिथ्यात्वस्य हीना एव चारित्रमोहनीयत्वात्।

मोहनीयत्वं प्रति सामान्यत्वात् मिथ्यात्वस्थितिसमाना कषायस्थितिः किं न संजायते ?

नैतद् वक्तव्यं, सम्यक्त्व-चारित्रयोः भेदेन भेदमुपगतकर्मणोरपि समानत्वविरोधात्। एषां आबाधा चतुःसहस्रवर्षमात्रा भवति।

एवं चतुर्थस्थले मिथ्यात्व-षोडशकषायस्थिति-आबाधा-निषेकप्ररूपणत्वेन सूत्रषट्कं गतम्।

अधुना पुरुषवेदादिपंचदशप्रकृतीनां उत्कृष्टस्थिति-आबाधा-निषेकप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यति —

**पुरिसवेद-हस्स-रदि-देवगदि-समचउरससंठाण-वज्जरिसहसंधडण-
देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी-पसत्थविहायगदि-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-
आदेज्ज-जसकित्ति-उच्चागोदाणं उक्कस्सगो ट्टिदिबंधो दससागरोवमकोडा-
कोडीओ॥१६॥**

दसवाससदाणि आबाधा॥१७॥

सोलहों कषायों के आबाधाकाल से हीन कर्म-स्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है॥१५॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रों का अर्थ सुगम है। इन सोलह कषायों की उत्कृष्ट स्थिति भी दर्शनमोहनीय कर्म की अपेक्षा मिथ्यात्व से कम ही है, क्योंकि ये चारित्रमोहनीय हैं।

शंका — मोहनीयत्व की अपेक्षा समान होने से मिथ्यात्व कर्म की स्थिति के समान ही कषायों की स्थिति क्यों नहीं होती है ?

समाधान — ऐसा नहीं कहना, क्योंकि सम्यक्त्व और चारित्र में भेद होने से भेद को प्राप्त हुये कर्मों के भी समानता का विरोध है। इन कर्मों की आबाधा चार हजार वर्ष मात्र है।

इस प्रकार चतुर्थस्थल में मिथ्यात्व और सोलह कषायों की उत्कृष्ट स्थिति, आबाधा तथा निषेक का निरूपण करते हुये छह सूत्र पूर्ण हुये।

अब पुरुषवेद आदि पन्द्रह प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति, आबाधा व निषेकों का प्रतिपादन करने के लिये तीन सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

पुरुषवेद, हास्य, रति, देवगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभनाराचसंहनन, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्र, इन प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबंध दश कोड़ाकोड़ी सागरोपम है॥१६॥

पुरुषवेद आदि उक्त कर्मप्रकृतियों की आबाधा दश सौ वर्ष है॥१७॥

आबाधूणिया कम्मट्टिदी कम्मणिसेओ॥१८॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — पुरुषवेदादिपंचदशप्रकृतीनां उत्कृष्टस्थितिबंधः दशकोटाकोटिसागरप्रमाणं, प्रकृतिविशेषात्। शेषं सुगमं वर्तते।

एवं पंचमस्थले पंचदशप्रकृतीनां उत्कृष्टस्थितिआदिनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतं।

संप्रति नपुंसकवेदादित्रिचत्वारिंशत्प्रकृतीनां उत्कृष्टस्थितिबंधाबाधानिषेकप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

णउंसयवेद-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा णिरयगदी तिरिक्खगदी एइंदिय-
पंचिंदियजादि-ओरालिय-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-हुंडसंठाण-
ओरालिय-वेउव्वियसरीर-अंगोवंग-असंपत्तसेवट्टसंघडण-वण्ण-गंध-रस-
फास-णिरियगदि-तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-
परघाद-उस्सास-आदाव-उज्जोव-अप्पसत्थविहायगदि-तस-थावर-बादर-
पज्जत्त-पत्तेयसरीर-अथिर-अशुभ-दुब्भग-दुस्सर-अणादेज्ज-अजसकित्ति-
णिमिण-णीचागोदाणं उक्कस्सगो ट्टिदिबंधो वीसं सागरोवमकोडा-
कोडीओ॥१९॥

उक्त प्रकृतियों के आबाधाकाल से हीन कर्मस्थिति प्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है॥१८॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — पुरुषवेद आदि पन्द्रह प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबंध दश कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है, क्योंकि, ये प्रकृतियां विशेष हैं। शेष अर्थ सुगम है।

इस प्रकार पाँचवें स्थल में पन्द्रह प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति आदि के निरूपणरूप से तीन सूत्र पूर्ण हुये।

अब नपुंसकवेद आदि तेतालीस प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबंध, आबाधा और निषेकों का प्रतिपादन करने के लिये तीन सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, नरकगति, तिर्यग्गति, एकेन्द्रिय जाति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, वैक्रियिक शरीर, तैजस शरीर, कर्मण शरीर, हुण्डकसंस्थान, औदारिक शरीर-अंगोपांग, वैक्रियिक शरीर-अंगोपांग, असंप्राप्ता-सृपाटिकासंहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यग्गति-प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, अप्रशस्त-विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण और नीच गोत्र इन प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबंध बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम है॥१९॥

वेवाससहस्साणि आबाधा॥२०॥

आबाधूणि या कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो॥२१॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — प्रकृतिविशेषात् सूत्रोक्तानां प्रकृतीनां अयं स्थितिबंधः कथितः। न च सर्वाणि कार्याणि एकान्तेन बाह्यार्थमपेक्ष्य एव उत्पद्यन्ते, शालिबीजात् यवांकुरस्यापि उत्पत्तिप्रसंगात्। किंतु तादृशानि द्रव्याणि त्रिष्वपि कालेषु कदाचिदपि न सन्ति, यत् येषां बलेन शालिबीजस्य यवांकुरस्योत्पादनशक्तिर्भवेत्। अनवस्थाप्रसंगात्। तस्मात् कुत्रापि अंतरंगकारणात् चैव कार्योत्पत्तिर्भवतीति निश्चयः कर्तव्यः। शेषं सुगमं अस्ति।

एवं षष्ठस्थले नपुंसकवेदादिप्रकृतीनां स्थित्यादिप्ररूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

संप्रति चतुर्विधायुःस्थिति-आबाधा-निषेकप्रतिपादनाय सूत्राष्टकमवतार्यते —

णिरयाउ-देवाउअस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो तेत्तीसं सागरोवमाणि॥२२॥

पुव्वकोडितिभागो आबाधा॥२३॥

आबाधा॥२४॥

नपुंसकवेदादि पूर्व सूत्रोक्त प्रकृतियों की उत्कृष्ट कर्म-स्थिति का आबाधाकाल दो हजार वर्ष है॥२०॥

नपुंसकवेदादि पूर्व सूत्रोक्त प्रकृतियों के आबाधाकाल से हीन कर्म-स्थिति प्रमाण उनका कर्मनिषेक होता है॥२१॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — प्रकृति विशेष होने से सूत्र में कथित प्रकृतियों का यह स्थितिबंध कहा गया है। सभी कार्य एकान्त से बाह्य अर्थ की अपेक्षा करके ही नहीं उत्पन्न होते हैं, अन्यथा शालि-धान्य के बीज से जौ के अंकुर की भी उत्पत्ति का प्रसंग प्राप्त होगा। किन्तु उस प्रकार के द्रव्य तीनों ही कालों में किसी भी क्षेत्र में नहीं हैं कि जिनके बल से शालि-धान्य के बीज के जौ के अंकुर को उत्पन्न करने की शक्ति हो सके। यदि ऐसा होने लगेगा तो अनवस्था दोष प्राप्त होगा। इसलिये कहीं पर भी अंतरंग कारण से ही कार्य की उत्पत्ति होती है, ऐसा निश्चय करना चाहिये।

शेष अर्थ सुगम है।

इस प्रकार छठे स्थल में नपुंसकवेद आदि प्रकृतियों का स्थिति आदि के कथनरूप से तीन सूत्र पूर्ण हुये।

अब आयु के चारों भेदों की स्थिति, आबाधा और निषेक का प्रतिपादन करने के लिये आठ सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

नारकायु और देवायु का उत्कृष्ट स्थितिबंध तेतीस सागरोपम है॥२२॥

नारकायु और देवायु का उत्कृष्ट आबाधाकाल पूर्वकोटि वर्ष का त्रिभाग (तीसरा भाग) है॥२३॥

आबाधाकाल में नारकायु और देवायु की निषेक-स्थिति बाधारहित है॥२४॥

कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ॥२५॥

तिरिक्खाउ-मणुसाउअस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो तिण्णि पलिदोव-
माणि॥२६॥

पुव्वकोडितिभागो आबाधा॥२७॥

आबाधा॥२८॥

कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो॥२९॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति, नारकायुषः देवायुषश्चोत्कृष्टस्थितिः त्रयस्त्रिंशत्सागर-
प्रमाणा, एषा देवनारकयोः आयुष्कस्य उत्कृष्टनिषेकस्थितिः ज्ञातव्या। देवनारकयोः सम्यग्दृष्टिमिथ्यादृष्टयोः
गुणस्थानस्थितेः कालानुयोगद्वारे त्रयस्त्रिंशत्सागरप्रमाणमेव निर्दिष्टं। यथा ज्ञानावरणादीनामाबाधा
निषेकस्थितिपरतन्त्रा, एवमायुषः आबाधा निषेकस्थितिः अन्योन्यायत्ताः न भवन्ति इति ज्ञापनार्थं निषेकस्थितिश्चैव
प्ररूपिता। पूर्वकोटिनिषेकस्थितिं कृत्वा यावत् आसंक्षेपाद्धा इति एतेषु आबाधाविकल्पेषु देवनारकयोः
आयुषः उत्कृष्टनिषेकस्थितिः संभवति इति उक्तं भवति।

पूर्वकोटिनिषेकस्थितिं कृत्वा यावत् आसंक्षेपाद्धा इति यदि एते आबाधाविकल्पाः आयुषः
सर्वनिषेकस्थितिषु भवन्ति। तर्हि पूर्वकोटिनिषेकस्थितौ किमर्थं उच्यते ?

नारकायु और देवायु की कर्मस्थिति प्रमाण उन कर्मों का कर्म-निषेक होता
है॥२५॥

तिर्यगायु और मनुष्यायु का उत्कृष्ट स्थितिबंध तीन पल्योपम है॥२६॥

तिर्यगायु और मनुष्यायु का उत्कृष्ट आबाधाकाल पूर्वकोटी का त्रिभाग है॥२७॥

आबाधाकाल में तिर्यगायु और मनुष्यायु की निषेक-स्थिति बाधारहित है॥२८॥

तिर्यगायु और मनुष्यायु की कर्मस्थिति प्रमाण ही उनका कर्म-निषेक होता
है॥२९॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ सूत्रों का अर्थ सुगम है। नारकियों की आयु और देवों की आयु की
उत्कृष्टस्थिति तेतीस सागर प्रमाण है। यही देव-नारकियों के आयु की उत्कृष्ट निषेक स्थिति है ऐसा जानना,
क्योंकि देव और नारकियों में यथाक्रम से सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवों की गुणस्थान सम्बन्धी स्थिति का
“कालानुयोग द्वार सूत्र” में तेतीस सागरोपम प्रमाण ही निर्देश किया गया है। जिस प्रकार ज्ञानावरण आदि
कर्मों की आबाधा निषेकस्थिति के आधीन है, उसी प्रकार आयुकर्म की आबाधा और निषेकस्थिति परस्पर में
एक दूसरे के आधीन नहीं है, इस बात को बतलाने के लिये यहाँ आयु कर्म की निषेकस्थिति की ही प्ररूपणा
की गई है।

इसका अर्थ यह होता है कि पूर्वकोटि वर्ष के त्रिभाग — तीसरे भाग से लेकर आसंक्षेपाद्धा — जिससे
छोटा कोई काल न हो सके, ऐसे काल तक जितने आबाधा के विकल्प — भेद होते हैं, उनमें देव और
नारकियों के आयु की उत्कृष्ट निषेक-स्थिति संभव है।

न, उत्कृष्टाबाधया विना उत्कृष्टनिषेकस्थितौ चैव उत्कृष्टस्थितिः न भवति इति ज्ञापनार्थं उत्कृष्टाबाधोक्तेः।

आबाधाकाले नरकायुषः देवायुषश्च निषेकस्थितिः बाधारहिता एव। पूर्वोक्ताबाधाकालस्याभ्यन्तरे विवक्षितस्य कस्यापि आयुःकर्मणः निषेकस्थितौ बाधा न भवति।

अत्र कश्चिदाह — यथा ज्ञानावरणादीनां आबाधाप्ररूपकसूत्रेण बाधाभावो सिद्धः, एवमत्रापि सिद्ध्यति, किमर्थं द्विवारमाबाधा उच्यते ?

न, यथा ज्ञानावरणादिसमयप्रबद्धानां बंधावलिर्व्यतिक्रान्तानां अपकर्षण-परप्रकृतिसंक्रमणाभ्यां बाधा अस्ति, तथा आयुषः अपकर्षण-परप्रकृतिसंक्रमणादिभिः बाधाभावप्ररूपणार्थं द्वितीयवारमाबाधानिर्देशात्।

अत्र सूत्रे उभयायुषः कर्मस्थितिप्रमाणं कर्मनिषेकः भवति इति कथितं।

आबाधोना कर्मस्थितिः कर्मनिषेकः इति किमर्थमत्र न प्ररूपितं ?

न, द्वितीयवारमाबाधानिर्देशेन आबाधोना कर्मस्थितिः कर्मनिषेको भवतीति सिद्धेः।

विशेषार्थः — देवायु का बंध मनुष्य या तिर्यचगति में हो सकता है, नरक या देवगति में नहीं और आगामी आयु का बंध शीघ्र से शीघ्र भुज्यमान आयु के २/३ भाग व्यतीत होने पर तथा अधिक से अधिक मृत्यु के पूर्व होता है। कर्मभूमिज मनुष्य या तिर्यच की उत्कृष्ट आयु एक कोटिपूर्व वर्ष की है। अतएव देवायु का बंध भुज्यमान आयु के १/३ भाग शेष रहने पर हो सकता है और यही काल देवायु के स्थितिबंध का उत्कृष्ट आबाधाकाल होगा। मरते समय ही आयु का बंध होने से आसंक्षेप-अद्वारूप जघन्य आबाधाकाल प्राप्त होता है। इन दोनों मर्यादाओं के बीच देवायु की आबाधा के मध्यम विकल्प संभव हैं। भोगभूमिज प्राणियों के आगामी आयु के केवल ६ मास तथा अन्यमतानुसार ९ मास शेष रहने पर होता है।

शंका — यदि पूर्वकोटि वर्ष के त्रिभाग से लेकर आसंक्षेपाद्धा काल तक संभव सब आबाधा के भेद आयुर्कर्म की सर्व निषेक-स्थितियों में होते हैं तो पूर्वकोटि वर्ष के त्रिभागप्रमाण ही यह उत्कृष्ट आबाधाकाल उत्कृष्ट निषेक-स्थिति में किसलिए कहते हैं ?

समाधान — नहीं, क्योंकि उत्कृष्ट आबाधाकाल के बिना उत्कृष्ट निषेक-स्थितिसम्बन्धी उत्कृष्ट कर्मस्थिति प्राप्त नहीं होती है, यह बात बतलाने के लिये यह उत्कृष्ट आबाधाकाल कहा गया है अर्थात् यद्यपि आयुर्कर्म के संबंध में उत्कृष्ट निषेकस्थिति और उत्कृष्ट आबाधाकाल का अविनाभावी सम्बन्ध नहीं है, जैसा कि अन्य कर्मों का है। तथापि आयुर्कर्म की उत्कृष्टस्थिति तो तभी जानी जा सकती है जब उत्कृष्ट आबाधा के साथ उत्कृष्ट निषेकस्थिति का योग किया जाए। इसीलिए इन दोनों उत्कृष्टस्थितियों का मेल करना आवश्यक है।

आबाधाकाल में नरकायु और देवायु की निषेक-स्थिति बाधारहित है। पूर्व सूत्रोक्त आबाधाकाल के भीतर विवक्षित किसी भी आयुर्कर्म की निषेकस्थिति में बाधा नहीं होती है।

यहाँ कोई कहता है — जिस प्रकार ज्ञानावरणादि कर्मों की आबाधा का प्ररूपण करने वाले सूत्र से बाधा का अभाव सिद्ध है, उसी प्रकार यहाँ पर भी बाधा का अभाव सिद्ध होता है, फिर दूसरी बार 'आबाधा' यह सूत्र किसलिए कहा है ?

आचार्य उत्तर देते हैं — नहीं, क्योंकि जिस प्रकार बंधावलि-व्यतिक्रान्त अर्थात् जिनका बंध होने पर एक आवलीप्रमाण काल व्यतीत हो गया है, ऐसे ज्ञानावरणादि कर्मों के समयप्रबद्धानां के अपकर्षण और पर-प्रकृति-संक्रमण आदि के द्वारा बाधा होती है, उस प्रकार आयुर्कर्म के आबाधाकाल के पूर्ण होने तक अपकर्षण और पर-प्रकृति-संक्रमण आदि के द्वारा बाधा का अभाव है अर्थात् आगामी भवसम्बन्धी आयुर्कर्म

कुतः ?

अन्यथा द्वितीयवार-आबाधानिर्देशानुपपत्तेः।

तिर्यगायुषः मनुष्यायुषश्च उत्कृष्टः स्थितिबंधः त्रीणि पल्योपमानि सन्ति। एषापि निषेकस्थितिश्चैव निर्दिष्टा। तिर्यग्मनुष्ययोः त्रिपल्योपममात्रा-औदारिक शरीरोत्कृष्टस्थितेः उपलंभात्।

किमर्थमाबाधया सह निषेकोत्कृष्टस्थितिर्न प्ररूपिता ?

न, निषेकाबाधाकालाः अन्योन्यायत्ताः न भवन्ति इति ज्ञापनार्थं तथा निर्देशात्। एतस्य भावः — उत्कृष्टाबाधया सह जघन्यनिषेकस्थितिमादिं कृत्वा यावदुत्कृष्टनिषेकस्थितिस्तावत् बध्नाति। एवं समयोन-द्विसमयोन्तोत्कृष्टाबाधादीनां अपि प्ररूपयितव्यं यावत् आसंक्षेपाद्धा इति।

कश्चिदाह — पूर्वकोटिर्त्रिभागात् आबाधा अधिका किन्न भवति ?

उच्यते — न तावत् देवनारकयोः बहुसागरोपमायुःस्थितिकेषु पूर्वकोटिर्त्रिभागादधिका आबाधा अस्ति तेषां देवनारकाणां भुज्यमानायुषि षण्मासावशेषे असंक्षेपाद्धापर्यवसाने सति परभवसंबन्धि-आयुर्बध्यमानानां

की निषेकस्थिति में कोई व्याघात नहीं होता है, इस बात के प्ररूपण करने के लिये दूसरी बार 'आबाधा' इस सूत्र का निर्देश किया है।

इस सूत्र में दोनों आयु के कर्म-स्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होते हैं, ऐसा कहा गया है।

अर्थात् नारकायु और देवायु की कर्म-स्थितिप्रमाण उन कर्मों का कर्म-निषेक होता है।

शंका — यहाँ पर 'आबाधा काल से रहित कर्मस्थिति ही उन कर्मों की निषेक-स्थिति है' इस प्रकार प्ररूपण किसलिए नहीं किया ?

समाधान — नहीं, क्योंकि दूसरी बार 'आबाधा' इस सूत्र के निर्देश द्वारा 'आबाधा-काल से रहित कर्मस्थिति ही उन कर्मों की निषेक-स्थिति होती है' यह बात सिद्ध हो जाती है। क्यों ? क्योंकि यदि वैसा न माना जाए तो दूसरी बार 'आबाधा' इस सूत्र के निर्देश की उपपत्ति बन नहीं सकती है।

तिर्यगायु और मनुष्यायु का उत्कृष्टस्थितिबंध तीन पल्योपम है। यह भी निषेकस्थिति ही कही गई है, क्योंकि तिर्यचों और मनुष्यों में तीन पल्योपममात्र औदारिक शरीर की उत्कृष्टस्थिति पाई जाती है।

शंका — आबाधा के साथ निषेकों की उत्कृष्टस्थिति किसलिए नहीं निरूपण की गई ?

समाधान — नहीं, क्योंकि यहाँ निषेककाल और आबाधाकाल परस्पर एक-दूसरे के आधीन नहीं होते हैं, यह बतलाने के लिए उस प्रकार से निर्देश किया गया है अर्थात् आबाधा के साथ निषेकों की उत्कृष्टस्थिति नहीं बतलाई गई है।

इस उपर्युक्त कथन का भाव यह है कि — उत्कृष्ट आबाधा के साथ जघन्य निषेक-स्थिति को आदि करके उत्कृष्ट निषेक-स्थिति तक जितनी निषेक स्थितियाँ हैं, वे सब बंधती हैं। इसी प्रकार एक समय कम, दो समय कम (इत्यादि रूप से उत्तरोत्तर एक-एक समय कम करते हुए) आसंक्षेपाद्धा काल तक उत्कृष्ट आबाधा आदि की प्ररूपणा करनी चाहिये।

शंका — आयुकर्म की आबाधा पूर्वकोटि के त्रिभाग से अधिक क्यों नहीं होती है ?

समाधान — कहते हैं — न तो अनेक सागरोपमों की आयुस्थिति वाले देव और नारकियों में पूर्वकोटि के त्रिभाग से अधिक आबाधा होती है, क्योंकि उनकी भुज्यमान आयु के (अधिक से अधिक) छह मास अवशेष रहने पर (तथा कम से कम) आसंक्षेपाद्धा काल के अवशेष रहने पर आगामी भवसम्बन्धी आयु को

तदसंभवात्। न तिर्यग्मनुष्ययोः अपि ततोऽधिका आबाधा अस्ति, तत्र पूर्वकोट्यः अधिकभवस्थितेरभावात्।

असंख्यातवर्षायुष्काः तिर्यग्मनुष्याः सन्ति इति चेत् ?

न, तेषां देवनारकाणामिव भुज्यमानायुषः षण्मासादधिके सति परभवसंबन्धिआयुषः बंधाभावात्। संख्यातवर्षायुष्का अपि तिर्यग्मनुष्याः कदलीघातेन वा अर्धस्थितिगलनेन वा यावत् यावत् भुज्य-
अवभुक्तायुःस्थितिकेषु अर्द्धप्रमाणेन ततः हीनप्रमाणेन वा भुज्यमानायुः न कृतं तावत् न परभवसंबन्धि
आयुः बध्नन्ति, पारिणामिकात्। तस्मात् उत्कृष्टाबाधा पूर्वकोटिः त्रिभागोऽस्ति। आबाधाकाले तिर्यगायुषः मनुष्यायुषश्च

तिर्यग्मनुष्यायुषोः उत्कृष्टाबाधा पूर्वकोटिः त्रिभागोऽस्ति। आबाधाकाले तिर्यगायुषः मनुष्यायुषश्च
निषेकस्थितिः बाधारहिता अस्ति।

कश्चिदाह — “पूर्वकोटिः त्रिभागः आबाधा” इति सूत्रेण पूर्वकोटिः त्रिभागे बाधाभावे ज्ञाते सति पुनः
“आबाधा” इति सूत्रं किमर्थं उच्यते ?

नैतत् वक्तव्यं, यथा ज्ञानावरणादीनां आबाधायाः अभ्यन्तरे अपकर्षणोत्कर्षणपरप्रकृतिसंक्रमणैः निषेकानां
बाधा भवति, तथा आयुषः बाधा नास्तीति ज्ञापनार्थं पुनः ‘आबाधाप्ररूपणा’ क्रियते, अतो नास्ति दोषः।

बांधने वाले उन देव और नारकियों के पूर्वकोटि के त्रिभाग से अधिक आबाधा का होना असंभव है। न तिर्यच
और मनुष्यों में भी इससे अधिक आबाधा संभव है, क्योंकि उनमें पूर्वकोटि से अधिक भवस्थिति का अभाव है।

शंका — (भोगभूमियों में) असंख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यच और मनुष्य होते हैं फिर उनके
पूर्वकोटि के त्रिभाग से अधिक आबाधा का होना संभव नहीं है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि उनके देव और नारकियों के समान भुज्यमान आयु के छह मास से
अधिक होने पर पर-भवसम्बन्धी आयु के बंध का अभाव है अतएव पूर्वकोटि के त्रिभाग से अधिक आबाधा
का होना संभव नहीं है।

तथा संख्यात वर्ष की आयु वाले भी तिर्यच और मनुष्य कदलीघात से अथवा अधःस्थिति के गलन से
अर्थात् बिना किसी व्याघात के समय-समय प्रति एक-एक निषेक के खिरने से, जब तक भुज्य और अवभुक्त
आयुस्थिति में भुक्त आयु स्थिति के अर्धप्रमाण से अथवा उससे हीन प्रमाण से भुज्यमान आयु को नहीं कर
देते हैं, तब तक परभवसम्बन्धी आयु को नहीं बाँधते हैं, क्योंकि यह नियम पारिणामिक है। इसलिये आयुक्रम
की उत्कृष्ट आबाधा पूर्वकोटि के त्रिभाग से अधिक नहीं होती है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिये।

तिर्यगायु और मनुष्यायु का उत्कृष्ट आबाधाकाल पूर्वकोटि का त्रिभाग है। अर्थात् अनेक आबाधा
विकल्पों के संभव होने पर भी यहाँ पूर्वकोटी-त्रिभागमात्र ही आबाधा होती है यह कथन किया गया है अन्यथा
उत्कृष्टस्थिति बन नहीं सकती है, इस बात को बतलाने के लिए ही यह कथन है।

क्योंकि आबाधाकाल में तिर्यगायु और मनुष्यायु की निषेध-स्थिति बाधारहित है।

कोई कहता है — तिर्यगायु और मनुष्यायु की उत्कृष्ट आबाधा पूर्वकोटि का त्रिभाग है।” इस पूर्वोक्त
सूत्र से ही पूर्वकोटी के त्रिभाग में बाधा का अभाव जान लेने पर पुनः ‘आबाधा’ यह सूत्र किसलिए कहते हैं ?

ऐसा नहीं कहना, क्योंकि जिस प्रकार ज्ञानावरणादि कर्मों की आबाधा के भीतर अपकर्षण-उत्कर्षण
और पर-प्रकृति संक्रमण के द्वारा निषेकों के बाधा होती है, उस प्रकार आयुक्रम की बाधा नहीं होती है, यह
बतलाने के लिये पूर्वसूत्र द्वारा आबाधा के कहे जाने पर भी पुनः आबाधा का प्ररूपण किया गया है। अतः कोई
दोष नहीं है।

तिर्यगायुषः मनुष्यायुषश्च कर्मस्थितिप्रमाणमेव कर्मनिषेकाः भवन्ति।

एवं सप्तमस्थले आयुषां स्थिति-आबाधा-निषेकरचनाप्रतिपादनत्वेन अष्टौ सूत्राणि गतानि।

संप्रति द्वीन्द्रियाद्यष्टकर्मणां उत्कृष्टस्थिति-आबाधा-कर्मनिषेकप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

**वीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-वामणसंठाण-खीलियसंघडण-सुहुम-
अपज्जत्त-साधारणणामाणं उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो अट्टारससागरोवमकोडा-
कोडीओ॥३०॥**

अट्टारसवाससदाणि आबाधा॥३१॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो॥३२॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। एककोटाकोटिसागरस्य आबाधा शतवर्षप्रमाणं अस्ति। तत्रैराशिकक्रमेण आगताष्टादशरूपैः गुणिते अष्टादशकोटाकोटिसागरस्थितिकर्मकर्मणां अष्टादशशतवर्षप्रमाणमाबाधा भवति।

तासु निषेकस्थितिषु किञ्चिन्न्यून-द्वयर्द्धगुणहान्या समयप्रबद्धे भागे कृते प्रथमनिषेकः भवति। द्वितीयनिषेकभागहारः पूर्वभागहारतः सातिरेको भवति। एवं गुणहान्यभ्यन्तरसर्वनिषेकानां भागहाराः साधयितव्याः।

तिर्यगायु और मनुष्यायु की कर्मस्थिति प्रमाण ही उनके कर्मनिषेक होते हैं।

इस प्रकार सातवें स्थल में आयुकर्माँ की स्थिति, आबाधा और निषेक रचना का प्रतिपादन करते हुये आठ सूत्र पूर्ण हुये।

अब द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय आदि आठ कर्मों की उत्कृष्टस्थिति, आबाधा और कर्मनिषेक का प्रतिपादन करने के लिये तीन सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, वामनसंस्थान, कीलकसंहनन, सूक्ष्मनाम, अपर्याप्तनाम और साधारणनाम, इन प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबंध अट्टारह कोड़ाकोड़ी सागरोपम है॥३०॥

पूर्व सूत्र कथित द्वीन्द्रियजाति आदि प्रकृतियों का उत्कृष्ट आबाधाकाल अट्टारह सौ वर्ष है॥३१॥

उक्त कर्मों के आबाधाकाल से हीन कर्मस्थिति प्रमाण उन कर्मों का कर्म-निषेक होता है॥३२॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रों का अर्थ सुगम है। एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम की आबाधा सौ वर्ष होती है। उसे त्रैराशिक-क्रम से प्राप्त अट्टारह रूपों से गुणित करने पर अट्टारह सौ वर्ष प्रमाण आबाधाकाल की उत्पत्ति होती है।

यहाँ पर, अर्थात् उक्त निषेक-स्थिति में कुछ कम डेढ़ गुणहानि से समयप्रबद्ध में भाग देने पर प्रथम निषेक का प्रमाण होता है। दूसरे निषेक का भागहार पूर्व निषेक के भागहार से सातिरेक होता है। इस प्रकार

एवं अष्टमस्थले द्वीन्द्रियादीनां उत्कृष्टस्थिति-आबाधा-निषेकप्रतिपादनपरत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।
संप्रति आहारद्विक-तीर्थकरप्रकृतीनां उत्कृष्टस्थिति-आबाधा-निषेकप्ररूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

**आहारसरीर-आहारसरीरंगोवंग-तित्थयरणामाणमुक्कस्सगो ट्टिदिबंधो
अंतोकोडा-कोडीए॥३३॥**

अंतोमुहुत्तमाबाधा॥३४॥

आबाधूणिया कम्मट्टिदी कम्मणिसेगो॥३५॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — आसां त्रिप्रकृतीनां सम्यग्दृष्टेरेव बंधो भवति, तथा च सम्यग्दृष्टेर्जीवस्य अन्तःकोटाकोट्यधिकबंधो नास्ति। अत्र अन्तः कोटाकोटिप्रमाणे कथिते एककोटाकोटिसागरस्य संख्यातकोटिभिः खंडिते एकखण्डं भवतीति ज्ञातव्यं।

अन्तर्मुहूर्तमात्राबाधायाः अस्याः स्थितेः ज्ञातुमुपायोऽयं कथ्यते — दशकोटाकोटिसागरप्रमितकर्मस्थितेः आबाधावर्षसहस्रं स्थापयित्वा तेषां मुहूर्ते कृते अष्टलक्षाधिककोटिमात्रा मुहूर्ता भवन्ति। तेषां प्रमाणमिदं-
१०८०००००।

विवक्षित गुणहानि के भीतर सर्व निषेकों के भागहार सिद्ध करना चाहिये।

इस प्रकार आठवें स्थल में दो इन्द्रिय आदि जीवों की उत्कृष्ट स्थिति, आबाधा और निषेकों का प्ररूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब आहारद्विक और तीर्थकर प्रकृति की उत्कृष्टस्थिति, आबाधा और निषेक का प्ररूपण करने के लिये तीन सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

**आहारकशरीर, आहारकशरीर-अंगोपांग और तीर्थकर नामकर्म इन प्रकृतियों
का उत्कृष्ट स्थितिबंध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम है॥३३॥**

पूर्व सूत्रोक्त आहारकशरीरादि प्रकृतियों का आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्तमात्र है॥३४॥

**उक्त तीनों कर्मों के आबाधाकाल से हीन कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक
होता है॥३५॥**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इन तीनों प्रकृतियों का बंध सम्यग्दृष्टि जीव के ही होता है और सम्यग्दृष्टि के अन्तःकोड़ाकोड़ी से अधिक बन्ध होता नहीं है। 'अन्तःकोड़ाकोड़ी' ऐसा कहने पर एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम को संख्यात कोटियों से खण्डित होने पर जो एक खण्ड होता है, वह अन्तःकोड़ाकोड़ी का अर्थ ग्रहण करना चाहिये। अन्तर्मुहूर्तमात्र आबाधा के द्वारा इस स्थिति के प्रज्ञापन अर्थात् जानने का उपाय यह है — दश कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमित कर्मस्थिति की आबाधा एक हजार वर्ष स्थापित करके उसके मुहूर्त करने पर आठ लाख से अधिक एक कोटिप्रमाण मुहूर्त होते हैं। उनका प्रमाण यह है — १०८०००००।

विशेषार्थ — चूँकि एक अहोरात्र में ३० मुहूर्त होते हैं तो मध्यम प्रतिपत्ति से एक वर्ष के ३६० दिनों में कितने मुहूर्त होंगे, इस प्रकार त्रैराशिक करने पर १०८०० मुहूर्त प्राप्त होते हैं। इस प्रमाण को १००० वर्षों से गुणा करने पर १०८००००० एक करोड़ आठ लाख मुहूर्त सिद्ध हो जाते हैं।

एतैः मुहूर्तैः अपवर्तितदशकोटाकोटिसागरमात्रस्थितिः यदि एतेषां त्रयाणां कर्मणां भवेत्, तर्हि अस्याः स्थितेः एकमुहूर्तमात्रा आबाधा प्राप्नोति। पूर्वोक्तभागहारेण दशगुणेन अपवर्तितदशकोटाकोटिसागरमात्रा स्थितिः यदि भवति, तर्हि मुहूर्तस्य दशमभागः आबाधा भवेत्। न च एतेषां इयन्मात्रा आबाधा भवति, अन्यथा असंयतसम्यग्दृष्टेः उत्कृष्टबंधात् उत्कृष्टस्थितिसत्त्वादपि संख्यातगुणमिथ्यादृष्टिध्रुवस्थितेः संख्यातान्तर्मुहूर्तमात्राबाधाप्रसंगात्। किन्तु नैवं, तस्मात् संख्यातगुणितपंचेन्द्रियापर्याप्तोत्कृष्टस्थितेरपि अन्तर्मुहूर्तमात्राबाधोपलंभात्। ततः संख्यातकोटिभिः खण्डितदशकोटाकोटिसागरप्रमाणा उत्कृष्टस्थिति-र्भवतीति सिद्धम्।

इन मुहूर्तों से अपवर्तन की गई दश कोड़ाकोड़ी सागरोपममात्र स्थिति यदि इन सूत्रोक्त तीनों कर्मों की हो तो इस स्थिति की एक मुहूर्तमात्र आबाधा प्राप्त होती है।

उदाहरण — $\frac{10000000000000000}{10000000} = 92492492 \frac{68}{100}$ इतने सागरोपमप्रमित स्थिति की आबाधा एक मुहूर्त होती है।

दश गुणित पूर्वोक्त भागहार से अपवर्तित दश कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमित स्थिति यदि उक्त तीनों कर्मों की हो, तो उनकी आबाधा मुहूर्त का दशवाँ भाग होगी किन्तु इन आहारक-शरीरादि तीनों कर्मों की इतनी आबाधा नहीं होती है अन्यथा असंयतसम्यग्दृष्टि के उत्कृष्ट स्थितिबंध से और उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व से भी संख्यातगुणी मिथ्यादृष्टि की ध्रुवस्थिति के संख्यात अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा होने का प्रसंग आता है। किन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि उससे संख्यातगुणी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त की उत्कृष्ट स्थिति के भी अन्तर्मुहूर्तमात्र आबाधा पाई जाती है इसलिये संख्यात कोटियों से खण्डित अर्थात् भाजित दश कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट स्थिति सूत्रोक्त तीनों कर्मों की पृथक्-पृथक् होती है, यह बात सिद्ध हुई।

विशेषार्थ — सूत्रकार ने जो आहारकशरीरादि तीन प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबंध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम बतलाया है, उसी को धवलाकार ने यहाँ और भी सूक्ष्मता से समझाने का प्रयास किया है कि यहाँ अन्तःकोड़ाकोड़ी से अभिप्राय एक सागरोपम कोड़ाकोड़ी के संख्यातवें भाग से है न कि एक कोटि सागरोपम से ऊपर और एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम से नीचे किसी भी मध्यवर्ती संख्या से, जैसा कि सामान्यतः माना जाता है और इसका कारण उन्होंने यह दिया है कि यदि यह अन्तःकोड़ाकोड़ी का प्रमाण $= 92492492 \frac{68}{100}$ सागरोपमों का दशवाँ भाग भी लेवें, तो उसका आबाधाकाल मुहूर्त के १/१०वाँ भाग पड़ेगा किन्तु यदि यही प्रमाण ग्रहण किया जाये तो असंयतसम्यग्दृष्टि, संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि और संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि अपर्याप्तकों के स्थितिबंध का जो संख्यातगुणित क्रम से अल्पबहुत्व बतलाया गया है, उसके अनुसार संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि अपर्याप्तकों का आबाधाकाल संख्यात मुहूर्त प्राप्त होगा। उदाहरणार्थ — धवला में (अ.प्रतिपत्र ९४०-९४३ पर) संयत का उत्कृष्ट^१, संयतासंयत का जघन्य^२ व उत्कृष्ट^३, असंयतसम्यग्दृष्टि पर्याप्त का जघन्य^४, इसी के अपर्याप्त का जघन्य^५ व उत्कृष्ट^६, इसी के पर्याप्त का उत्कृष्ट^७, संज्ञी मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय पर्याप्त का जघन्य^८, इसी के अपर्याप्त का जघन्य^९ और इसी के अपर्याप्त का उत्कृष्ट^{१०} स्थितिबंध उत्तरोत्तर संख्यातगुणा बतलाया गया है। अब यदि हम संयत के अंतःकोड़ाकोड़ी स्थितिबन्ध का प्रमाण एक कोटी सागरोपम ही मान लें और तदनुसार उसके आबाधाकाल का प्रमाण मुहूर्त का १/१०वाँ भाग मान लें तो जघन्य संख्या गुणितक्रम से भी संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्ट स्थितिबंध $१ \times २ \times २ \times २$

इदं व्याख्यानं 'पाहुडचुणिणसुत्तेण' अपूर्वकरणप्रथमसमयस्थितिबंधस्य सागरोपमकोटिलक्षपृथक्त्वप्रमाणं प्ररूप्यता विरुध्यते ?

नैतत् आशंकनीयं, तस्य तन्त्रान्तरत्वात्। अथवा स्वक-स्वकजातिप्रतिबंधस्थितिबंधेषु आबाधासु च एषः त्रैराशिकनियमः, नान्यत्र, क्षपकश्रेण्यां अन्तर्मुहूर्तस्थितिबंधानां आबाधाभावप्रसंगात्। तस्मात् स्वक-स्वकोत्कृष्टस्थितिबंधेषु स्वक-स्वकोत्कृष्टाबाधाभिः अपवर्तितेषु आबाधाकाण्डकानि आगच्छन्ति इति गृहीतव्यं। अतएव अत्र त्रिकर्मणां स्थितिषु अन्तर्मुहूर्तमात्राबाधायां सन्त्यां अपि स्थितिबंधः अन्तःकोटाकोटिप्रमाणं भवतीति।

आसां त्रिप्रकृतीनां उत्कृष्टस्थितिबंधस्वामिनां कथनं क्रियते —

आहारकद्विकस्योत्कृष्टस्थितिं बध्नाति षष्ठगुणस्थानाभिमुखोऽप्रमत्तगुणस्थानवर्ती संयतः। तीर्थकरप्रकृतेः उत्कृष्टस्थितिबंधकः बद्धनरकायुष्कः अविरतसम्यग्दृष्टिर्मनुष्यः कर्मभूमिजः।

उक्तं च —

देवाउगं पमत्तो आहारयमप्यमत्तविरदो दु।

तित्थयरं च मणुस्सो अविरदसम्मो समज्जेइ^१॥१३६॥

$\times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 = 412$ कोटी सागरोपम और उसकी आबाधा का प्रमाण $1/10 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 = 412/10 = 41 (1/5)$ मुहूर्त होगा किन्तु आगम में संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त मिथ्यादृष्टि का आबाधाकाल भी अन्तर्मुहूर्त ही माना गया है। इससे सिद्ध हो जाता है कि प्रकृत में अन्तःकोड़ाकोड़ी का प्रमाण एक कोटि सागरोपम से भी बहुत नीचे ही ग्रहण करना चाहिये तभी उससे उत्तरोत्तर संख्यातगुणित स्थितिबंधों की आबाधा भी अन्तर्मुहूर्त ही सिद्ध हो सकेगी। इस प्रकार धवलाकार का यह कथन सर्वथा युक्तिसंगत है कि सूत्रोक्त तीनों कर्मों का उत्कृष्ट स्थितिबंध संख्यात कोटियों से भाजित सागरोपम कोड़ाकोड़ी ग्रहण करना चाहिये।

शंका — यह व्याख्यान, अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रथम समय की स्थितिबंध का सागरोपम कोटिलक्ष-पृथक्त्व प्रमाण के प्ररूपण करने वाले कसायपाहुडचूर्णिसूत्र से विरोध को प्राप्त होता है ?

समाधान — ऐसी आशंका नहीं करना चाहिये क्योंकि वह तन्त्रान्तर अर्थात् दूसरा सिद्धान्तग्रन्थ या मत है। अथवा, अपनी-अपनी जाति के प्रतिबद्ध स्थितिबंधों में और आबाधाओं में यह त्रैराशिक का नियम लागू होता है अन्यत्र नहीं, अन्यथा क्षपकश्रेणी में होने वाले अन्तर्मुहूर्तप्रमित स्थितिबंधों की आबाधा के अभाव का प्रसंग प्राप्त होता है। इसलिये अपने-अपने उत्कृष्टस्थितिबंधों को अपनी-अपनी उत्कृष्ट आबाधाओं से अपवर्तन करने पर आबाधाकांडक आ जाते हैं, ऐसा नियम ग्रहण करना चाहिये। अतएव यह सिद्ध हुआ कि यहाँ पर अर्थात् उक्त दोनों कर्मों की स्थिति में अन्तर्मुहूर्तमात्र आबाधा के होने पर भी स्थितिबंध अन्तःकोड़ाकोड़ी प्रमाण होता है।

इन आहारकद्विक और तीर्थकर प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थितिबंध के स्वामी का कथन करते हैं —

अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती मुनि जो कि छठे गुणस्थान के अभिमुख हैं वे आहारकद्विक की उत्कृष्ट स्थिति को बांधते हैं। जिन्होंने नरक की आयु पहले बांध ली है ऐसे अविरत सम्यग्दृष्टि कर्मभूमिज मनुष्य तीर्थकर प्रकृति की उत्कृष्टस्थिति बांधते हैं।

कहा भी है — प्रमत्तमुनि देवायु को, अप्रमत्तसंयतमुनि आहारकशरीर को एवं तीर्थकर प्रकृति को बांधते हैं तथा कर्मभूमिज मनुष्य अविरतसम्यग्दृष्टि भी तीर्थकर प्रकृति को बांधता है॥

एवं नवमस्थले आहारकद्वयतीर्थकरप्रकृति-उत्कृष्टस्थिति-आबाधा-निषेकप्ररूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।
अधुना न्यग्रोधपरिमण्डलादिप्रकृतीनां उत्कृष्टस्थिति-आबाधा-निषेकप्रतिपादनाय सूत्रनवकमवतार्यते—

णगगोधपरिमंडलसंठाण-वज्जणारायणसंघडणणामाणं उक्कस्सगो
ट्टिदिबंथो वारस सागरोवमकोडाकोडीओ॥३६॥

वारसवाससदाणि आबाधा॥३७॥

आबाधूणिया कम्मट्टिदी कम्मणिसेगो॥३८॥

सादियसंठाण-णारायसंघडणणामाणमुक्कस्सओ ट्टिदिबंथो
चोद्दससागरोवम-कोडाकोडीओ॥३९॥

चोद्दसवाससदाणि आबाधा॥४०॥

आबाधूणिया कम्मट्टिदी कम्मणिसेओ॥४१॥

खुज्जसंठाण-अद्धणारायणसंघडणणामाणमुक्कस्सओ ट्टिदिबंथो
सोलस-सागरोवमकोडाकोडीओ॥४२॥

इस प्रकार नवमें स्थल में आहारकद्विक और तीर्थकर प्रकृति की उत्कृष्टस्थिति का, आबाधा एवं निषेकों का निरूपण करते हुये तीन सूत्र पूर्ण हुये।

अब न्यग्रोधपरिमण्डल आदि प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति, आबाधा और निषेकों का प्रतिपादन करने के लिये नव सूत्र अवतार लेते हैं—

सूत्रार्थ—

न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान और वज्रनाराचसंहनन, इन दोनों नामकर्मों का उत्कृष्ट स्थितिबंध बारह कोड़ाकोड़ी सागरोपम है॥३६॥

न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान और वज्रनाराचसंहनन, इन दोनों प्रकृतियों का उत्कृष्ट आबाधाकाल बारह सौ वर्ष है॥३७॥

उक्त दोनों कर्मों के आबाधाकाल से हीन कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्मों का कर्मनिषेक होता है॥३८॥

स्वातिसंस्थान और नाराचसंहनन, इन दोनों नामकर्मों का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध चौदह कोड़ाकोड़ी सागरोपम है॥३९॥

उक्त दोनों कर्मों का आबाधाकाल चौदह सौ वर्ष है॥४०॥

स्वातिसंस्थान और नाराचसंहनन, इन दोनों नामकर्मों के आबाधाकाल से हीन कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है॥४१॥

कुब्जकसंस्थान और अर्धनाराचसंहनन, इन दोनों नामकर्मों का उत्कृष्टस्थितिबन्ध सोलह कोड़ाकोड़ी सागरोपम है॥४२॥

सोलसवाससदाणि आबाधा॥४३॥

आबाधूणिआ कम्मट्टिदी कम्मणिसेओ॥४४॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते। नामत्वेन भेदे इतरनामकर्मभ्यः असत्यपि किमर्थं स्थितिभेदः ?

नैतत् वक्तव्यं, प्रकृतिविशेषण भिन्नानां स्थितिभेदं प्रति विरोधाभावात्।

एकेन आबाधाकाण्डकेन अर्पितोत्कृष्टस्थितौ भागे हते द्वादशशतवर्षमात्रा आबाधा भवति स्वातिसंस्थान-नाराचसंहननयोः उत्कृष्टाबाधाकालः चतुर्दशवर्षशतानि।

तद्यथा —

दशकोटाकोटिसागरोपमानां यदि दशवर्षशतमात्राबाधा लभ्यते, तर्हि चतुर्दशकोटाकोटीसागरोपमेषु किं लभामहे इति फलगुणितेच्छाराशिं प्रमाणराशिना अपवर्तिते चतुर्दशशतवर्षाणि आबाधा भवति।

स्वातिसंस्थान-नाराचसंहननयोः आबाधोना कर्मस्थितिः कर्मनिषेको भवति।

कुब्जकसंस्थान-अर्द्धनाराचसंहननयोः उत्कृष्टः स्थितिबंधः षोडशसागरोपमकोटाकोटि प्रमाणास्ति। अनयोराबाधा षोडशवर्षशतानि ज्ञातव्याः।

अनयोः कर्मणोः आबाधाकालेन ऊना कर्मस्थितिः कर्मनिषेको भवतीति ज्ञातव्यम्।

उक्त दोनों कर्मों का उत्कृष्ट आबाधाकाल सोलह सौ वर्ष है॥४३॥

उक्त दोनों कर्मों के आबाधाकाल से हीन कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्मनिषेक होता है॥४४॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रों का अर्थ सुगम है।

शंका — नामत्व की अपेक्षा इतर नामकर्मों से भेद नहीं होने पर भी उक्त प्रकृतियों की स्थिति-भेद किसलिए है ?

समाधान — ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि प्रकृतिविशेष की अपेक्षा से भिन्नता को प्राप्त प्रकृतियों के स्थिति-भेद मानने में कोई विरोध नहीं है।

एक आबाधाकांडक से विवक्षित उत्कृष्टस्थिति में भाग देने पर बारह सौ वर्ष प्रमाण आबाधा प्राप्त होती है। स्वाति संस्थान और नाराच संहनन का उत्कृष्ट आबाधाकाल १४०० चौदह सौ वर्ष प्रमाण है। वह इस प्रकार है — दश कोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थिति वाले कर्मों की आबाधा यदि दश सौ (१०००) वर्ष प्रमाण होती है, तो चौदह कोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थिति वाले कर्मों में कितनी आबाधा प्राप्त होगी ? इस प्रकार इच्छाराशि को फलराशि से गुणा करके प्रमाणराशि से अपवर्तन करने पर चौदह सौ (१४००) वर्ष प्रमाण आबाधा प्राप्त होती है।

$$\frac{१४ \times १०००}{१०} = १४००$$

स्वातिसंस्थान और नाराचसंहनन, इन दोनों नामकर्मों के आबाधाकाल से हीन कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है।

कुब्जकसंस्थान और अर्धनाराचसंहनन, इन दोनों नामकर्मों का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सोलह कोड़ाकोड़ी सागरोपम है।

उक्त दोनों कर्मों का उत्कृष्ट आबाधाकाल सोलह सौ वर्ष है।

इतो विस्तरः — तिर्यग्मनुष्यदेवायुर्भिः विना सप्तदशोत्तरशतप्रकृतीनां उत्कृष्टस्थितिबंधः उत्कृष्टसंकलेश-परिणामेन भवति।

उक्तं च —

सव्वट्ठिदीणमुक्कस्सओ दु उक्कस्ससंकिलेसेण।

विवरीदेण जहण्णो आउगतिवज्जियाणं तु।।१३४।।

जघन्यस्थितिबंधस्तु उत्कृष्टविशुद्धपरिणामेन भवति। त्रि-आयुषां तु उत्कृष्टविशुद्धपरिणामेन उत्कृष्टस्थितिबंधः जघन्यस्थितिबंधस्तु उत्कृष्टसंकलेशपरिणामेन।

एतयोः उत्कृष्टजघन्यबंधयोः स्वामिनः के सन्तीति ?

सव्वुक्कस्सठिदीणं मिच्छाइट्ठी दु बंधगो भणिदो।

आहारं तित्थयरं देवाउं वा विमोत्तूणं।।१३५।।

एतेनैव ज्ञायते आहारद्विकतीर्थकरदेवायुषां प्रकृतीनां उत्कृष्टस्थितिबंधः सम्यग्दृष्टीनामेव।

अत्र एतदपि ज्ञातव्यं — भोगभूमिजानामेव उत्कृष्टायुः त्रिपल्योपमानि, कर्मभूमिजानां पूर्वकोटिवर्षमेव मनुष्याणां तिरश्चां च। अत एषां भुज्यमानायुषां अपि उदीरणारूपेण कदलीघातमरणं संभवति इति ज्ञातव्यं।

तात्पर्यमेतत् — उत्कृष्टस्थितिबंधे सति कर्मणां सम्यक्त्वलाभो न भवति, न च जघन्यस्थितिबंधे सति, मध्यमस्थितिबंधे सत्येव सम्यक्त्वग्रहणयोग्यता संभवतीति ज्ञातव्यं।

उक्त दोनों कर्मों के आबाधाकाल से हीन कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्मनिषेक होता है।

यहाँ विस्तार से कहते हैं —

तिर्यचायु, मनुष्यायु और देवायु के बिना एक सौ सत्रह प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबंध, उत्कृष्ट संकलेश परिणामों से होता है।

कहा भी है, गोम्मटसार कर्मकाण्ड ग्रन्थ में —

तीन आयु को छोड़कर सभी कर्मों का उत्कृष्ट स्थितिबंध उत्कृष्ट संकलेश परिणामों से होता है और इसके विपरीत — उत्कृष्ट विशुद्ध परिणामों से जघन्य स्थितिबंध होता है।।३४।।

इन कर्मों का — एक सौ सत्रह प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध उत्कृष्ट विशुद्ध परिणामों से होता है तथा तीनों आयु का उत्कृष्ट स्थितिबंध उत्कृष्ट विशुद्ध परिणामों से एवं जघन्य स्थितिबंध उत्कृष्ट संकलेश परिणामों से होता है।

शंका — इन आयु के उत्कृष्ट और जघन्य स्थितिबंध के स्वामी कौन हैं ?

समाधान — आहारकद्विक, तीर्थकर और देवायु को छोड़कर सभी प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबंध करने वाले मिथ्यादृष्टि ही कहे गये हैं।।३५।।

इस गाथा से ही जाना जाता है कि आहारकद्विक, तीर्थकर और देवायु इन चार प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबंध सम्यग्दृष्टियों के ही होता है।

यहाँ यह भी जानना चाहिये कि भोगभूमिया मनुष्यों के ही उत्कृष्टायु तीन पल्योपम है। कर्मभूमिया मनुष्यों और तिर्यचों के उत्कृष्टायु पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण ही है। इसलिये इन कर्मभूमियों के ही भुज्यमान आयु में भी उदीरणारूप से कदलीघात मरण संभव है, ऐसा जानना चाहिए।

यहाँ तात्पर्य यह है कि — कर्मों की उत्कृष्ट स्थितिबंध के होने पर सम्यक्त्व का लाभ नहीं होता है और न जघन्य स्थितिबंध के होने पर ही, किन्तु मध्यम स्थितिबंध के होने पर ही सम्यक्त्व ग्रहण की योग्यता संभव है, ऐसा जानना चाहिये।

उक्तं च श्रीमदकलंकदेवेन — “अपरा कर्मस्थितिका काललब्धिः — उत्कृष्ट स्थितिकेषु कर्मसु जघन्यस्थितिकेषु प्रथमसम्यक्त्वलाभो न भवति।

क्व तर्हि भवति ?

अन्तःकोटाकोटिसागरोपमस्थितिकेषु कर्मसु बंधमापद्यमानेषु, विशुद्धिपरिणामवशात् सत्कर्मसु च ततः संख्येयसागरोपमसहस्रोनायामन्तःकोटाकोटिसागरोपमस्थितौ स्थापितेषु प्रथमसम्यक्त्वयोग्यो भवति^१।”

एतज्ज्ञात्वा यावत्कषायाणां क्रोधमानमायालोभादीनां समूलनाशो न भवेत् तावत्पुरुषार्थबलेन वैराग्यज्ञानभावनाबलेन च यथा भवति तथा कषायाः कृशीकरणीयाः, एवमेवात्मविशुद्धिर्बोधिः समाधिः सिद्धिश्च भवति।

दर्शनमोहनीयचारित्रमोहनीयकर्मणां यानि कानिचित् कारणानि, तेभ्योऽपि अपसर्तव्या अस्माभिः।

कानि तानि कारणानि इति चेत् ?

केवलश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य॥१३॥

कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य॥१४॥

निरावरणज्ञानाः केवलिनः। तदुपदिष्टं बुद्ध्यतिशयवर्द्धियुक्तगणधरानुस्मृतं ग्रन्थरचनं श्रुतं भवति। रत्नत्रयोपेतः श्रमणगणः संघः। अहिंसालक्षणस्तदागमदेशितो धर्मः। देवाश्चतुर्णिकाया उक्ताः। गुणवत्सु महत्सु असद्भूतदोषोद्भावनमवर्णवादः। एतेष्ववर्णवादो दर्शनमोहस्यास्त्रवहेतुः। कवलाभ्यवहारजीविनः

श्रीमान अकलंकदेव ने कहा भी है —

दूसरी कर्मस्थिति वाली काललब्धि है — जब कर्म उत्कृष्टस्थिति में बंध रहे हों या जघन्य स्थिति में बंध रहे हों, उस समय प्रथम सम्यक्त्व का लाभ नहीं होता।

प्रश्न — कैसी कर्म स्थिति में सम्यग्दर्शन का लाभ होता है ?

उत्तर — जब कर्म अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थिति के बंध रहे हों तथा पूर्वबद्ध कर्म परिणामों की निर्मलता के द्वारा संख्यात हजार सागर कम अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर की स्थिति वाले कर दिये गये हों तब प्रथम सम्यक्त्व के ग्रहण करने की योग्यता होती है।

यह जानकर जब तक क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायों का जड़मूल से नाश न हो जावे तब तक पुरुषार्थपूर्वक वैराग्य भावना और ज्ञान भावना के बल से जैसे बने वैसे कषायों को कृश करना चाहिये, इसी प्रकार से आत्मा की विशुद्धि, बोधि — रत्नत्रय की प्राप्ति, समाधि एवं सिद्धि — आत्मा की उपलब्धि होती है।

दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय कर्मों के जो कोई कारण हैं, हमें और आपको उन्हें भी दूर करना चाहिये। वे कारण कौन-कौन से हैं ?

केवली, श्रुत, संघ, धर्म और देव इनका अवर्णवाद दर्शनमोहनीय कर्म का आस्त्र है॥१३॥

कषाय के उदय से होने वाला तीव्र आत्मपरिणाम चारित्रमोहनीय का आस्त्र है॥१४॥

जिनका ज्ञान आवरणरहित है, वे केवली कहलाते हैं। अतिशय बुद्धि वाले गणधरदेव उनके उपदेशों का स्मरण करके जो ग्रन्थों की रचना करते हैं, वह श्रुत कहलाता है। रत्नत्रय से युक्त श्रमणों का समुदाय संघ कहलाता है। सर्वज्ञ द्वारा प्रतिपादित आगम में उपदिष्ट अहिंसा ही धर्म है। चार निकाय वाले देवों का कथन

केवलिनः इत्येवमादिवचनं केवलिनामवर्णवादः। मांसभक्षणाद्यनवद्याभिधानं श्रुतावर्णवादः। शूद्रत्वा-
शुचित्वाद्याविर्भावनं संघावर्णवादः। जिनोपदिष्टो धर्मो निर्गुणस्तदुपसेविनो ये ते चासुराः भविष्यन्तीत्येव-
माद्यभिधानं धर्मावर्णवादः। सुरामांसोपसेवाद्याघोषणं देवावर्णवादः।

अधुना चारित्रमोहनीयास्त्रवभेदाः कथ्यन्ते —

कषाया उक्ताः। उदयो विपाकः। कषायाणामुदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्यास्त्रवो वेदितव्यः। तत्र
स्वपरकषायोत्पादनं तपस्विजनवृत्तदूषणं संक्लिष्टलिंगव्रतधारणादिः कषायवेदनीयस्यास्त्रवः। सद्धर्मोपहसन-
दीनातिहास-कंदर्पोपहासबहुविप्रलापोहासशीलतादिर्हास्यवेदनीयस्य। विचित्रक्रीडनपरताव्रतशीलारुच्यादिः
रतिवेदनीयस्य। परारतिप्रादुर्भावनरतिविनाशन-पापशीलसंसर्गादिः अरतिवेदनीयस्य। स्वशोकोत्पादन-
परशोकप्लुताभिनन्दनादिः शोकवेदनीयस्य। स्वभयपरिणाम-परभयोत्पादनादिर्भयवेदनीयस्य। कुशलक्रियाचार-
जुगुप्सापरिवादशीलत्वादिर्जुगुप्सावेदनीयस्य। अलीकाभिधायिता-तिसंधानपरत्व-पररन्ध्रेक्षित्वप्रवृद्धरागादिः
स्त्रीवेदनीयस्य। स्तोत्रक्रोधानुत्सुकत्वस्वदारसंतोषादिः पुँवेदनीयस्य। प्रचुरकषायागुहोन्मियव्यपरोपण
परांगनावस्कंदादिर्नपुंसकवेदनीयस्य^१।”

पहले कर आये हैं। गुण वाले बड़े पुरुषों में जो दोष नहीं है उनका उनमें उद्धावन करना अवर्णवाद है। इन
केवली आदि के विषय में किया गया अवर्णवाद दर्शनमोहनीय के आस्त्रव का कारण है। यथा — केवली
कवलाहार से जीते हैं इत्यादि रूप से कथन करना केवलियों का अवर्णवाद है।

शास्त्र में माँस भक्षण आदि को निर्दोष कहा है इत्यादि रूप से कथन करना श्रुत का अवर्णवाद है। ये
शूद्र हैं, अशुचि हैं इत्यादि रूप से अपवाद करना संघ का अवर्णवाद है। जिनदेव के द्वारा उपदिष्ट धर्म में कोई
सार नहीं, जो इसका सेवन करते हैं वे असुर होंगे, इस प्रकार कथन करना धर्म का अवर्णवाद है। देव सुरा
और माँस का सेवन करते हैं इस प्रकार का कथन करना देवों का अवर्णवाद है।

अब मोहनीय का दूसरा भेद जो चारित्रमोहनीय है उसके आस्त्रव के भेदों का कथन करने के लिये
आगे कहते हैं —

कषाय का व्याख्यान पहले कर आये हैं। विपाक को उदय कहते हैं। कषायों के उदय से जो आत्मा
का तीव्र परिणाम होता है, वह चारित्रमोहनीय का आस्त्रव जानना चाहिये। स्वयं कषाय करना, दूसरों में कषाय
उत्पन्न करना, तपस्वीजनों के चारित्र में दूषण लगाना, संक्लेश को पैदा करने वाले लिंग (वेष) और व्रत को
धारण करना आदि कषायवेदनीय के आस्त्रव हैं। सत्य धर्म का उपहास करना, दीन मनुष्य की दिल्लगी
उड़ाना, कुत्सित राग को बढ़ाने वाला हंसी-मजाक करना, बहुत बकने और हंसने की आदत रखना आदि
हास्यवेदनीय के आस्त्रव हैं। नाना प्रकार की क्रीड़ाओं में लगे रहना, व्रत और शील के पालन करने में रुचि न
रखना आदि रतिवेदनीय के आस्त्रव हैं। दूसरों में अरति उत्पन्न हो और रति का विनाश हो, ऐसी प्रवृत्ति करना
और पापी लोगों की संगति करना आदि अरतिवेदनीय के आस्त्रव हैं। स्वयं शोकातुर होना, दूसरों के शोक को
बढ़ाना तथा ऐसे मनुष्यों का अभिनन्दन करना आदि शोकवेदनीय के आस्त्रव हैं। भयरूप अपना परिणाम और
दूसरे को भय पैदा करना आदि भयवेदनीय के आस्त्रव के कारण हैं। सुखकर क्रिया और सुखकर आचार से
घृणा करना और अपवाद करने में रुचि रखना आदि जुगुप्सावेदनीय के आस्त्रव हैं। असत्य बोलने की आदत,
अतिसन्धानपरता, दूसरे के छिद्र ढूँढना और बढ़ा हुआ राग आदि स्त्रीवेदनीय के आस्त्रव हैं। क्रोध का अल्प

एतादृशान्येव सर्वकर्मणां आस्रवकारणानि सर्वार्थसिद्धितत्त्वार्थवृत्तितत्त्वार्थवार्तिकादिग्रन्थेभ्यः ज्ञातव्यानि भवन्ति। सर्वस्रवकारणानि अवबुध्य पुनः पुनः चिन्तयद्भिः अस्माभिरीदृशी भावना कर्तव्या यत् एतासु कर्मप्रकृतिषु कस्याश्चिदपि प्रकृतेः मयि उत्कृष्टस्थितिबंधो मा भवेत् केवलं देवायुर्विहाय, किंच देवायुरुत्कृष्टस्थितिः सर्वार्थसिद्धौ उत्पन्नाहमिन्द्राणामेव ते चाहमिन्द्राः एकभवावतारिणः, अथवा “विजयादिषु द्विचरमाः^१” इति सूत्रेण तेषामपि आयुषि लभ्यमाने च काचिद् हानिर्मम ते द्विभवावतारिणोऽपि नियमेन मोक्षं गमिष्यन्ति। तीर्थकरप्रकृतेरुत्कृष्टस्थितिस्तु बद्धनरकायुष्कस्यैवातः सापि न याच्यते मया, केवलं देवायुरुत्कृष्टस्थितिरेव प्रार्थ्यते उत्कृष्टस्थितिबंधचूलिकामभ्यस्य, अथवा न किमपि याच्यते केवलं बोधिः समाधिरेव वाञ्छ्यते।

उक्तं च श्रीमत्कुन्दकुन्देवेन —

“दुःखक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो, सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं^२।”

श्रीमत्पूज्यपाददेवनन्दिसूरिणापि तथैव याच्यते —

“गुरुमूले यतिनिचिते चैत्यसिद्धान्तवार्धिसद्व्योषे।

मम भवतु जन्मजन्मनि सन्यसन-समन्वितं मरणम्^३।।

होना, ईर्ष्या नहीं करना, अपनी स्त्री में संतोष करना आदि पुरुषवेदनीय के आस्रव हैं। प्रचुर मात्रा में कषाय करना, गुप्त इन्द्रियों का विनाश करना और पर-स्त्री से बलात्कार करना आदि नपुंसकवेदनीय के आस्रव हैं।

इस प्रकार इन सभी कर्मों के आस्रव कारणों को “सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थवृत्ति और तत्त्वार्थराजवार्तिक” आदि तत्त्वार्थसूत्र के टीका ग्रन्थों से जानना चाहिये। इन सभी आस्रव कारणों को समझकर हमें और आप सभी को पुनः-पुनः इनका चिंतन करते हुये ऐसी भावना करना चाहिये कि इन सभी प्रकृतियों में से किसी भी प्रकृति का मुझमें उत्कृष्ट स्थितिबंध नहीं होवे, केवल देवायु को छोड़कर, क्योंकि देवायु की उत्कृष्ट स्थिति सर्वार्थसिद्धि में उत्पन्न होने वाले अहमिन्द्रों के ही होती है और वे अहमिन्द्र एक भवावतारी होते हैं। अथवा तत्त्वार्थसूत्र में कथित सूत्र के अनुसार विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित विमानों में जन्म लेने वाले अहमिन्द्र दो भवावतारी होते हैं। इस नियम से उन अहमिन्द्रों की भी उत्कृष्ट, मध्यम अथवा जघन्य आयु के मिलने पर कुछ भी मेरी हानि नहीं है, क्योंकि वे दो भवावतारी भी नियम से मोक्ष को प्राप्त करेंगे।

तीर्थकर प्रकृति की उत्कृष्ट स्थिति तो ‘जिसने नरकायु पहले बांध ली है उसी के ही होती है अतः उसकी भी हम याचना नहीं करते हैं, इस उत्कृष्ट स्थितिबंध चूलिका को पढ़कर — अभ्यास करके मात्र हम देवायु की ही उत्कृष्ट स्थिति चाहते हैं। अथवा हम कुछ भी याचना नहीं करते हैं, केवल — मात्र बोधि और समाधि की ही वाञ्छा करते हैं।

श्री कुन्दकुन्ददेव ने कहा भी है —

मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधि का लाभ हो, सुगति में गमन हो, समाधिपूर्वक मरण हो और जिनेन्द्र भगवान के गुणों की संपत्ति मुझे प्राप्त होवे।

श्रीमान् देवनन्दि आचार्य जिनका दूसरा नाम पूज्यपाद आचार्य था, वे भी इसी प्रकार याचना करते हैं —

गुरुओं का पादमूल हो, यतियों का समुदाय हो, जिनप्रतिमाओं की भक्ति एवं जिनआगमरूपी समुद्र का उद्घोष हो रहा है ऐसे स्थान में मेरा समाधिपूर्वक मरण होवे, मैं जन्म-जन्म में ऐसे सन्यास्मरण की भावना करता हूँ।

१. तत्त्वार्थसूत्र अध्याय ४, सूत्र २७। २. सिद्धभक्ति आदि सर्वभक्तियों की अंचलिका के अंतिम अंश। ३. समाधिभक्ति श्लोक ४।

पुनरपि अतीवोत्कटभावनाया कथ्यते —

आबाल्याज्जिनदेवदेव! भवतः श्रीपादयोः सेवया।
सेवासक्तविनेयकल्पलतया कालोऽद्य यावद्गतः।।
त्वां तस्याः फलमर्थये तदधुना प्राणप्रयाणक्षणे।
त्वन्नाम-प्रतिबद्धवर्णपठने कंठोऽस्त्वकुण्ठो मम^१।।”

ईदृशीं भावना पुनः पुनः भावयित्वा परंपरया स्वात्मातीन्द्रियसुखमयं सिद्धिधाम प्राप्स्यते।

यैः भगवद्भिः ब्राह्म्यै अक्षरविद्यां सुंदर्यै अंकविद्यां च ददुः तेभ्यः युगादिपुरुषेभ्यः श्रीऋषभदेवेभ्यः
अस्माकं नमोऽस्तु, ब्राह्मीं प्रथमगणिनीं मातरं सुन्दरीमार्यिकां च वन्दामहे अहर्निशम् भक्तिभावेन।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्य प्रथमखंडे षष्ठग्रन्थे श्रीमद्भूतबलि-
विरचितजीवस्थानचूलिकायां श्रीवीरसेनाचार्यरचितधवलाटीकाप्रमुखनानाग्रन्था-
धारेण विरचितायां विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यः चारित्रचक्रवर्ती
श्रीशांतिसागरः तस्य प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागराचार्यः तस्य
शिष्या-जंबूद्वीपरचनाप्रेरिका गणिनी ज्ञानमतीकृत-
सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां उत्कृष्टस्थितिबंध-
चूलिकानाम षष्ठोऽधिकारः समाप्तः।

पुनरपि आचार्यदेव इसी समाधिभक्ति में अतीव उत्कट भावना से कहते हैं —

हे जिनदेव देव! बचपन से लेकर आज तक मैंने आपके चरणकमलों की सेवा — भक्ति करते हुए आपकी आराधना में आसक्त होकर, आपकी शिष्यत्वरूपी कल्पलता के द्वारा जो आज तक समय व्यतीत किया। हे भगवन्! आज मैं इस समय उस भक्ति का फल यही माँगता हूँ कि जब मेरे प्राण प्रयाण कर रहे हों — शरीर से निकल रहे हों, उस समय आपके नाममंत्र के उच्चारण में मेरा कंठ अकुंठित बना रहे — कंठ बन्द न हो जावे। इस प्रकार की भावना को पुनः-पुनः भाते हुये परम्परा से अपनी आत्मा के अतीन्द्रिय सुखमय ऐसे सिद्धिधाम — मोक्षधाम को प्राप्त करेंगे।

जिन तीर्थंकर भगवान ने ब्राह्मी पुत्री को अक्षर विद्या एवं सुन्दरी पुत्री को अंकविद्या प्रदान की — पढ़ायी, उन युगादिपुरुष श्री ऋषभदेव भगवान को हमारा नमस्कार होवे। पुनः प्रथम गणिनी — युग की आदि में प्रथम गणिनी पद प्राप्त ब्राह्मी आर्यिका माताजी को और सुन्दरी आर्यिका माताजी को हम अहर्निश — हमेशा भक्तिभावपूर्वक वंदन करते हैं।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान पुष्पदन्त-भूतबलि आचार्य प्रणीत षट्खण्डागम ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में इस छठे ग्रन्थ में श्रीमान् भूतबलि आचार्य विरचित जीवस्थान की चूलिका में श्रीमान् वीरसेनाचार्य रचित धवलाटीका प्रमुख अनेक ग्रन्थों के आधार से विरचित, बीसवीं शताब्दी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागराचार्य, उनके प्रथम पट्टाधीश श्री वीरसागराचार्य, उनकी शिष्या मैं जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती आर्यिका, मेरे द्वारा कृत सिद्धान्तचिंतामणिटीका में उत्कृष्ट स्थितिबंध चूलिका नाम का यह छठा अधिकार पूर्ण हुआ।

जघन्यस्थितिबंधः

सप्तम चूलिकाधिकारः

मंगलाचरणं

जघन्यस्थितिबंधान् ये, कृत्वा कर्माणि सर्वतः।

नाशयन्ति स्म तान् भक्त्या, प्रणुमः कर्महानये॥१॥

यैः सूक्ष्मसांपराये ज्ञानावरणादिकर्मणां जघन्यस्थितिं कृत्वा क्षीणकषायान्त्यसमये घातिकर्माणि भस्मीकृतानि, तेभ्यो नित्यं नमोऽस्तु मे।

अथ षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे षष्ठग्रन्थे अष्टभिः स्थलैः त्रिचत्वारिंशत्सूत्रैः जघन्यस्थितिबंधनामा सप्तमश्चूलिकाधिकारः कथ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले प्रतिज्ञाकथनरूपेण जघन्यस्थितिबंधस्य “एतो” इत्यादि सूत्रद्वयं। तदनु द्वितीयस्थले ज्ञानावरणादीनां जघन्यस्थितिबंधकथनमुख्यत्वेन “पंचणहं णाणावरणीयाणं” इत्यादिनवसूत्राणि। ततः परं तृतीयस्थले मिथ्यात्वादिमोहनीयकर्मणां जघन्यस्थितिबंधप्रतिपादनत्वेन “मिच्छत्तस्स” इत्यादिना द्वादश सूत्राणि। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले स्त्रीवेदादिप्रकृतीनां जघन्यस्थितिबंधकथनत्वेन “इत्थिवेद” इत्यादिना सूत्रत्रयं। तदनंतरं पंचमस्थले आयुषां जघन्यस्थितिबंधप्ररूपणत्वेन “णिरयाउअ” इत्यादिसूत्राष्टकं। तदनु षष्ठस्थले नरकगत्यादि-प्रकृतिजघन्यस्थितिबंधनिरूपणत्वेन “णिरयगदि”

जघन्य स्थितिबंध चूलिका

(सातवाँ चूलिका अधिकार)

मंगलाचरण

जो कर्मों की जघन्य स्थिति को बांधकर सब प्रकार से कर्मों का नाश कर देते हैं, अपने कर्मों का नाश करने के लिये हम भक्तिपूर्वक उन्हें नमस्कार करते हैं।

जिन्होंने — जिन महामुनियों ने सूक्ष्मसांपराय नाम के दसवें गुणस्थान में ज्ञानावरण आदि कर्मों की जघन्य स्थिति करके क्षीणकषाय नाम के ग्यारहवें गुणस्थान में न जाकर बारहवें गुणस्थान में पहुँचकर घातिया कर्मों को भस्मसात् कर दिया है, उन सब केवली भगवन्तों को मेरा नित्य ही नमस्कार होवे।

अब इस षट्खण्डागम ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में छठी पुस्तक में आठ स्थलों द्वारा तेतालीस सूत्रों से जघन्यस्थिति बंध नाम की सातवाँ चूलिका कहते हैं। उसमें प्रथम स्थल में जघन्य स्थितिबंध की प्रतिज्ञा के कथनरूप से ‘एतो’ इत्यादि दो सूत्र कहेंगे। इसके बाद द्वितीय स्थल में ज्ञानावरण आदि कर्मों की जघन्य स्थितिबंध के कथनरूप से ‘पंचणहं णाणावरणीयाणं’ इत्यादि नव सूत्र कहेंगे। इसके बाद तीसरे स्थल में मिथ्यात्वादि मोहनीय कर्मों की जघन्य स्थितिबंध के प्रतिपादन रूप से ‘मिच्छत्तस्स’ इत्यादि बारह सूत्र कहेंगे। इसके पश्चात् चौथे स्थल में स्त्रीवेद आदि प्रकृतियों की जघन्य स्थितिबंध के कहने रूप से ‘इत्थिवेद’ इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। पुनः पाँचवें स्थल में आयु की जघन्य स्थितिबंध की प्ररूपणा करते हुये ‘णिरयाउअ’ इत्यादि आठ सूत्र कहेंगे। इसके अनंतर छठे स्थल में नरकगति आदि प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध निरूपण करने वाले ‘णिरयगदि’ इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। पुनः सातवें स्थल में आहारकद्विक और तीर्थकर प्रकृति की

इत्यादिसूत्रत्रयं। ततश्च सप्तमस्थले आहारद्विक-तीर्थकरप्रकृतीनां जघन्यस्थितिबंधप्रतिपादनत्वेन “आहारसरीर” इत्यादिसूत्रत्रयं। पुनश्चाष्टमस्थले यशःकीर्ति-उच्चगोत्रप्रकृतिजघन्यस्थितिबंधनिरूपणपरत्वेन “जसकिति” इत्यादिसूत्रत्रयं, इति समुदायपातनिका सूचिता भवति।

अधुना कर्मणां जघन्यस्थितिबंधकथनप्रतिज्ञापनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

एत्तो जहणियट्टिदिं वण्णइस्सामो।।१।।

तं जहा।।२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — एतस्मात् उत्कृष्टस्थितिबंधकथनादग्रे कर्मणां जघन्यस्थितिबंधं वर्णयिष्यामः इति श्रीमद्भूतबलिसूरिवर्येण प्रतिज्ञाप्यते। तद्यथा — इति प्रकारेण।

उत्कृष्टविशुद्ध्या या स्थितिः बध्यते सा जघन्या भवति, सर्वासां स्थितीनां प्रशस्तभावाभावात्। किंच — संक्लेशवृद्धेः सर्वप्रकृतीनां स्थितीनां वृद्धिर्भवति, विशुद्धिवृद्धेः तासां चैव हानिर्भवति।

कः संक्लेशो नाम ?

असाताप्रकृतिबंधयोग्यपरिणामः संक्लेशः कथ्यते।

का विशुद्धिः नाम ?

साताप्रकृतिबंधयोग्यपरिणामः विशुद्धिरुच्यते।

केऽपि आचार्याः भणन्ति — उत्कृष्टस्थितेः अधस्तनस्थितीः बध्नतः जीवस्य परिणामः विशुद्धिः इति उच्यते, जघन्यस्थितेः उपरिमद्वितीयादिस्थितीः बध्नतः जीवस्य परिणामः संक्लेशः इति, तत्र घटते।

जघन्य स्थितिबंध का प्रतिपादन करने वाले ‘आहारसरीर’-आदि तीन सूत्र कहेंगे। इसके बाद आठवें स्थल में यशकीर्ति और उच्चगोत्र कर्मों की जघन्य स्थितिबंध का निरूपण करते हुये ‘जसकिति’-इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। इस प्रकार यह समुदायपातनिका कही गई है।

अब कर्मों के जघन्य स्थितिबंध को कहने की प्रतिज्ञा करते हुये दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

अब इससे आगे जघन्य स्थिति का वर्णन करेंगे।।१।।

वह किस प्रकार है ?।।२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अब कर्मों की उत्कृष्ट स्थितिबंध के कथन के बाद यहाँ कर्मों की जघन्य स्थितिबंध को कहेंगे। इस प्रकार श्रीमान् भूतबलि आचार्यवर्य ने प्रतिज्ञासूत्र कहा है। वह इस प्रकार है —

उत्कृष्ट विशुद्धि के द्वारा जो स्थिति बंधती है, वह जघन्य होती है क्योंकि सर्व स्थितियों के प्रशस्त भाव का अभाव है। संक्लेश की वृद्धि से सर्व प्रकृतिसम्बन्धी स्थिति की वृद्धि होती है और विशुद्धि की वृद्धि से उन्हीं स्थितियों की हानि होती है।

शंका — संक्लेश नाम किसका है ?

समाधान — असाता प्रकृति के बंध योग्य परिणाम को संक्लेश कहते हैं।

शंका — विशुद्धि नाम किसका है ?

समाधान — साता प्रकृति के बंध योग्य परिणाम को विशुद्धि कहते हैं।

कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि उत्कृष्ट स्थिति से अधस्तन स्थितियों को बाँधने वाले जीव का परिणाम ‘विशुद्धि’ इस नाम से कहा जाता है और जघन्य स्थिति से उपरिम द्वितीय, तृतीय आदि स्थितियों को

जघन्योत्कृष्टस्थितिपरिणामान् मुक्त्वा शेषमध्यमस्थितीनां सर्वपरिणामानां अपि संक्लेशविशुद्धित्वप्रसंगात्। न चैवं, एकस्य परिणामस्य लक्षणभेदेन विना द्विभावविरोधात्। अतएव एतन्निर्णेतव्यं — साताबंध-योग्यपरिणामा विशुद्धिरिति।

एवं प्रथमस्थले जघन्यस्थितिबंधसूचकप्रतिज्ञापरत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

संप्रति ज्ञानावरणीयादीनां जघन्यस्थितिबंध-आबाधा-निषेकप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

पंचणहं णाणावरणीयाणं चदुणहं दंसणावरणीयाणं लोभसंजलणस्स पंचणहमंतराइयाणं जहण्णओ ढिदिबंधो अंतोमुहुत्तं॥३॥

अंतोमुहुत्तमाबाधा॥४॥

आबाधूणिआ कम्मडिदी कम्मणिसेगो॥५॥

पंचदंसणावरणीय-असादावेदणीयाणं जहण्णगो ढिदिबंधो सागरोवमस्स तिणिण सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणया॥६॥

अंतोमुहुत्तमाबाधा॥७॥

बांधने वाले जीव का परिणाम 'संक्लेश' कहलाता है। किन्तु उनका यह कथन घटित नहीं होता है क्योंकि जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति के बाँधने के योग्य परिणामों को छोड़कर शेष मध्यम स्थितियों के बाँधने योग्य सर्व परिणामों में भी संक्लेश और विशुद्धिता का प्रसंग आता है किन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि एक परिणाम के लक्षणभेद के बिना द्विभाव अर्थात् दो प्रकार के होने का विरोध है। इसलिये यह निर्णय करना चाहिये कि — साता प्रकृति के बंध योग्य परिणामों का नाम ही विशुद्धि है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में जघन्य स्थितिबंधसूचक प्रतिज्ञारूप से दो सूत्र पूर्ण हुये।

अब ज्ञानावरणीय आदि प्रकृतियों के जघन्य स्थितिबंध, आबाधा और निषेकों का प्रतिपादन करने के लिये छह सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

पाँचों ज्ञानावरणीय, चक्षु दर्शनावरणादि चारों दर्शनावरणीय, लोभसंज्वलन और पाँचों अन्तराय, इन कर्मों का जघन्य स्थितिबंध अन्तर्मुहूर्त है॥३॥

पूर्व सूत्रोक्त ज्ञानावरणीयादि पन्द्रह कर्मों का जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है॥४॥

पूर्व सूत्रोक्त ज्ञानावरणीयादि पन्द्रह कर्मों के आबाधाकाल से हीन जघन्य कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है॥५॥

निद्रानिद्रादि पाँच दर्शनावरणीय और असातावेदनीय, इन कर्मप्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध पल्योपम के असंख्यातवें भाग से हीन सागरोपम के तीन बटे सात भाग प्रमाण है॥६॥

पूर्व सूत्रोक्त निद्रानिद्रादि छह कर्म प्रकृतियों का जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है॥७॥

आबाधूणिआ कम्मट्टिदी कम्मणिसेओ॥८॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते। पंचज्ञानावरण-चतुर्दर्शनावरण-लोभसंज्वलन-पंचान्तरायाणां पंचदशप्रकृतीनां जघन्यस्थितिबंधः अंतर्मुहूर्तमात्रमेव, किंच इमाः प्रकृतयः कषायक्षपकाणां चरमसमयपर्यन्तमेव बध्नन्ति, शेषं सुगमं।

संप्रति सातावेदनीयजघन्यस्थितिबंधादिरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

सातावेदणीयस्स जहण्णओ ट्टिदिबंधो वारस मुहुत्ताणि॥९॥

अंतोमुहुत्तमाबाधा॥१०॥

आबाधूणिआ कम्मट्टिदी कम्मणिसेओ॥११॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूक्ष्मसांपरायणगुणस्थानवर्तिक्षपकसंयतस्य अन्तिमसमये अयं जघन्यस्थितिबंधो भवति। दर्शनावरणीयप्रकृतिः पापरूपास्ति, अतः विशुद्धिपरिणामेन तस्याः स्थितिघातमधिकं भवति। किन्तु सातावेदनीयप्रकृतिः शुभरूपास्ति, अतः विशुद्धिपरिणामेन तस्याः स्थितिबंधस्याधिकापवर्तना नास्ति। शेषं सुगमं।

एवं द्वितीयस्थले ज्ञानावरणादिविंशतिप्रकृतीनां जघन्यस्थितिबंधादिप्रतिपादनत्वेन नव सूत्राणि गतानि।

पूर्व सूत्रोक्त निद्रानिद्रादि छह कर्मो के आबाधाकाल से हीन जघन्य कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है॥८॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रों का अर्थ सुगम है। पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, लोभ संज्वलन और पाँच अन्तराय इन पन्द्रह प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध अन्तर्मुहूर्त मात्र ही है, क्योंकि ये प्रकृतियाँ कषायों का क्षपण करने वाले क्षपक श्रेणी में आरोहक महामुनियों के अंतिम समय पर्यन्त ही बंधती हैं। शेष अर्थ सुगम है।

अब सातावेदनीय की जघन्य स्थितिबंध आदि का निरूपण करने के तीन सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

सातावेदनीय का जघन्य स्थितिबंध बारह मुहूर्त है॥९॥

सातावेदनीय कर्म का जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है॥१०॥

सातावेदनीय कर्म के आबाधाकाल से हीन जघन्य कर्मस्थितिप्रमाण उसका कर्म-निषेक होता है॥११॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूक्ष्मसांपरायणगुणस्थानवर्ती क्षपक महामुनि के अंतिम समय में यह जघन्य स्थितिबंध होता है। दर्शनावरण प्रकृति पापरूप है, इसलिये विशुद्ध परिणामों से उसका स्थितिघात अधिक होता है, किन्तु सातावेदनीय प्रकृति शुभरूप है, इसलिये विशुद्ध परिणामों से उसके स्थितिबंध का अधिक घात नहीं होता है। शेष अर्थ सुगम है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में ज्ञानावरण आदि बीस प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंधादि का प्रतिपादन करने वाले नव सूत्र पूर्ण हुये।

अधुना मिथ्यात्वादिप्रकृतीनां जघन्यस्थितिबंध-आबाधा-निषेकप्रतिपादनाय द्वादशसूत्राण्यवतार्यन्ते—

मिच्छत्तस्स जहण्णागा द्विदिबंधो सागरोवमस्स सत्त सत्तभागा
पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणिया॥१२॥

अंतोमुहुत्तमाबाधा॥१३॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ॥१४॥

वारसण्हं कसायाणं जहण्णाओ द्विदिबंधो सागरोवमस्स चत्तारि सत्तभागा
पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणिया॥१५॥

अंतोमुहुत्तमाबाधा॥१६॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ॥१७॥

क्रोधसंजलण-माणसंजलण-मायासंजलणाणं जहण्णाओ द्विदिबंधो वे
मासा मासं पक्खं॥१८॥

अंतोमुहुत्तमाबाधा॥१९॥

अब मिथ्यात्वादि प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध, आबाधा और निषेकों का प्रतिपादन करने के लिये
बारह सूत्र अवतार लेते हैं—

सूत्रार्थ—

मिथ्यात्वकर्म का जघन्य स्थितिबंध पल्योपम के असंख्यातवें भाग से हीन
सागरोपम के सात बटे सात भाग प्रमाण है॥१२॥

मिथ्यात्वकर्म का जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है॥१३॥

मिथ्यात्वकर्म के आबाधाकाल से हीन जघन्य कर्म-स्थितिप्रमाण उसका कर्म-
निषेक होता है॥१४॥

अनन्तानुबंधी आदि बारह कषायों का जघन्य स्थितिबंध पल्योपम के असंख्यातवें
भाग से हीन सागरोपम के चार बटे सात भाग प्रमाण है॥१५॥

अनन्तानुबंधी आदि बारह कषायों का जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है॥१६॥

उक्त बारह कषायों के आबाधाकाल से हीन जघन्य कर्म स्थितिप्रमाण उनका
कर्म-निषेक होता है॥१७॥

क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन और मायासंज्वलन, इन तीनों का जघन्य स्थितिबंध
क्रमशः दो मास, एक मास और एक पक्ष है॥१८॥

क्रोधादि तीनों संज्वलन कषायों का जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है॥१९॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ॥२०॥

पुरिसवेदस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो अट्ठ वस्साणि॥२१॥

अंतोमुहुत्तमाबाधा॥२२॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ॥२३॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति।

बादरैकेन्द्रियापर्याप्तेषु सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्तेषु वा मिथ्यात्वस्य जघन्य स्थितिबंधो न भवति, एतेषु वीचारस्थानानां बहुत्वाभावात्।

एवं तृतीयस्थले मिथ्यात्वादिप्रकृतीनां जघन्यस्थित्यादि कथनत्वेन द्वादशसूत्राणि गतानि।

अधुना स्त्रीवेदादिप्रकृतीनां जघन्यस्थितिबंधादिप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

इत्थिवेद-णउंसयवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-तिरिक्खगइ-
मणुसगइ-एइंदिय-बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियजादि-ओरालिय-
तेजा-कम्मइयसरीरं छण्हं संट्ठाणाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं छण्हं संघडणाणं
वण्णगंधरसफासं तिरिक्खगइ-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-

क्रोधादि तीनों संज्वलन कषायों के आबाधाकाल से हीन जघन्य कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है॥२०॥

पुरुषवेद का जघन्य स्थितिबंध आठ वर्ष है॥२१॥

आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है॥२२॥

आबाधाकाल से हीन जघन्य-कर्मस्थितिप्रमाण उसका कर्म-निषेक होता है॥२३॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रों का अर्थ सुगम है।

बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों में और सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त जीवों में मिथ्यात्व का जघन्य स्थितिबंध नहीं है, क्योंकि, इनमें वीचारस्थानों की बहुलता का अभाव है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में मिथ्यात्व आदि प्रकृतियों की जघन्य स्थिति आदि के कथन करने वाले बारह सूत्र पूर्ण हुये।

अब स्त्रीवेद आदि प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध आदि प्रतिपादित करने के लिये तीन सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, छहों संस्थान, औदारिकशरीर-अंगोपांग, छहों संहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी,

उवघाद-परघाद-उस्सास-आदाउज्जोव-पसत्थविहायगदि-अप्पसत्थ-
विहायगदि-तस-थावर-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-पत्तेय-साहारणसरीर-
थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-दुभग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्ज-अणादेज्ज-
अजसकित्ति-णिमिण-णीचागोदाणं जहण्णगो ढ्ढिदिबंधो सागरोवमस्स वे-
सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणया।।२४।।

अंतोमुहुत्तमाबाधा।।२५।।

आबाधूणिआ कम्मड्ढिदी कम्मणिसेओ।।२६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — नपुंसकवेद-अरतिशोकभयजुगुप्सा-पंचेन्द्रियजात्यादीनां जघन्यस्थितिबंधः पल्योपमस्य असंख्यातभागो न सागरोपमस्य द्वि-सप्तभागमात्रं अस्ति, किंच एतासां विंशतिकोटा-कोटिसागरमात्रमुत्कृष्टस्थितिबंधः कथितः। किन्तु स्त्रीवेदहास्यरतिस्थिरशुभसुभगसुस्वरादीनां एषा जघन्यस्थितिः न घटते, एतासां विंशतिकोटाकोटिसागरोत्कृष्टस्थितिर्नास्तीति ?

नैष दोषः, यद्यपि एतासामात्मनः उत्कृष्टस्थितिः विंशतिकोटाकोटिसागरप्रमाणं नास्ति तथापि मूलप्रकृति-उत्कृष्टस्थित्यनुसारेण हासं प्राप्नुवन्तीनां पल्योपमस्य असंख्यातभागो न सागरोपम द्वि-सप्तभागमात्रजघन्य-

अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्तविहायोगति, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येकशरीर, साधारणशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण और नीचगोत्र, इन प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध पल्योपम के असंख्यातवें भाग से कम सागरोपम के दो बटे सात भाग है।।२४।।

पूर्व सूत्रोक्त स्त्रीवेदादि प्रकृतियों का जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है।।२५।।

उक्त प्रकृतियों के आबाधाकाल से हीन जघन्य कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है।।२६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका —

शंका — नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा और पंचेन्द्रियजाति आदि प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध पल्योपम के असंख्यातवें भाग से कम सागरोपम के दो बटे सात भागमात्र भले ही रहा आवे, क्योंकि इन प्रकृतियों की बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट स्थिति देखी जाती है। किन्तु स्त्रीवेद, हास्य, रति, स्थिर, शुभ, सुभग और सुस्वर आदि प्रकृतियों का पल्योपम के असंख्यातवें भाग से कम सागरोपम के दो बटे सात भागमात्र जघन्य स्थितिबंध नहीं घटित होता है क्योंकि इन स्त्रीवेदादि प्रकृतियों की बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट स्थिति का अभाव है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, यद्यपि इन स्त्रीवेद आदि की अपनी उत्कृष्ट स्थिति बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण नहीं है, तो भी मूल प्रकृति की उत्कृष्ट स्थिति के अनुसार हास को प्राप्त होती हुई

स्थितिबंधस्य विरोधो नास्ति। न च स्त्रीवेद-हास्य-रतयः कषायबन्धानुसारिण्यः, नोकषायस्य तदनुसरण-विरोधात्। एषा जघन्यस्थितिः बादरैकेन्द्रियपर्याप्तकेषु सर्वविशुद्धेषु मन्तव्या; अन्यत्र सर्वजघन्यस्थितिबंधस्य अनुपलंभात्। जातिविशुद्धीः अपेक्ष्य स्थितिबंधस्य जघन्यत्वसंभवात्। शेषं सुगममस्ति।

एवं चतुर्थस्थले स्त्रीवेदादिजघन्यस्थितिबंधादिनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

अधुना आयुषां जघन्यस्थित्यादिनिरूपणाय सूत्राष्टकमवतार्यते —

णिरयाउअ-देवाउअस्स जहण्णओ ढिदिबंधो दसवाससहस्साणि।।२७।।

अंतोमुहुत्तमाबाधा।।२८।।

आबाधा।।२९।।

कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ।।३०।।

तिरिक्खाउअ-मणुसाउअस्स जहण्णओ ढिदिबंधो खुद्दाभवग्गहणं।।३१।।

अंतोमुहुत्तमाबाधा।।३२।।

आबाधा।।३३।।

कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।।३४।।

इन प्रकृतियों का पल्योपम के असंख्यातवें भाग से कम सागरोपम के दो बटे सात भागमात्र जघन्य स्थिति के बंधने में कोई विरोध नहीं है तथा स्त्रीवेद, हास्य और रति ये प्रकृतियाँ कषायों के बंध का अनुसरण करने वाली नहीं हैं क्योंकि नो-कषाय के कषायबंध के अनुसरण का विरोध है।

यह जघन्यस्थिति बादरएकेन्द्रियपर्याप्तक सर्वविशुद्ध जीवों में मानना चाहिये, क्योंकि अन्यत्र — अन्य जीवों में सर्वजघन्यस्थिति की उपलब्धि नहीं होती है। विशिष्ट जातियों की विशुद्धि को देखकर स्थितिबंध के जघन्यता संभव है। शेष प्रकरण सरल है।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में स्त्रीवेद आदि के जघन्य स्थितिबंध आदि का निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुये।

अब आयु कर्मों की जघन्य स्थिति आदि का निरूपण करने के लिये आठ सूत्र अवतरित होते हैं — सूत्रार्थ —

नारकायु और देवायु का जघन्य स्थितिबंध दस हजार वर्ष है।।२७।।

नारकायु और देवायु का जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है।।२८।।

आबाधाकाल में नारकायु और देवायु की कर्मस्थिति बाधारहित है।।२९।।

नारकायु और देवायु की कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है।।३०।।

तिर्यगायु और मनुष्यायु का जघन्य स्थितिबंध क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है।।३१।।

तिर्यगायु और मनुष्यायु का जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है।।३२।।

आबाधाकाल में तिर्यगायु और मनुष्यायु की कर्मस्थिति बाधारहित है।।३३।।

तिर्यगायु और मनुष्यायु की कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है।।३४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति।

अन्यत्रापि कथितं — भिण्णमुहुत्तो णरतिरियाऊणं वासदससहस्साणि।

सुरणिरयआउगाणं जहण्णओ होदि द्विदिबंधो॥१४२॥

वर्तमानकाले याः काश्चित् स्त्रियः गर्भे पुत्रः पुत्री वा इति ज्ञातुकामाः गर्भपरीक्षणं कारयित्वा यदि कदाचित् गर्भे पुत्री अस्तीति श्रुत्वा गर्भपातं — भ्रूणहत्यां कुर्वन्ति कारयन्ति वा, अथवा ये केचित् अपघातेन म्रियन्ते शोकेन इष्टवियोगानिष्टसंयोगजनितदुःखेन येन केनापि कारणेन, तेऽपि मृत्वा मनुष्याणां तिरश्चां च योनिं संप्राप्य जघन्यस्थितिप्रमाणमायुः गृहीत्वा पुनः पुनः म्रियन्ते, अतः एतानि कारणाणि त्यक्तव्यानि भव्यजीवैः इति।

एवं पंचमस्थले आयुषां स्थितिबंधादिनिरूपणत्वेन सूत्राष्टकं गतम्।

अधुना नरकगत्यादिषट्प्रकृतीनां स्थितिबंधादिप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

**णिरयगदि-देवगदि-वेउव्वियसरीर-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-णिरयगदि-
देवगदिपा-ओग्गाणुपुव्वीणामाणं जहण्णगो द्विदिबंधो सागरोवमसहस्सस्स
वेसत्तभागा पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणया॥३५॥**

अंतोमुहुत्तमाबाधा॥३६॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रों का अर्थ सुगम है। अन्य ग्रन्थों में भी कहा है — मनुष्य और तिर्यचों की जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त है। देव तथा नारकियों की जघन्य आयु का स्थितिबंध दस हजार वर्ष है।

वर्तमान काल में कोई-कोई स्त्रियाँ गर्भ में बालक है या बालिका ऐसा जानने की इच्छा से गर्भ का परीक्षण कराकर यदि कदाचित् गर्भ में बालिका है तो गर्भपात — भ्रूणहत्या कर देती हैं या करा देती हैं। अथवा जो कोई भी मनुष्य अपघात से मरते हैं, शोक से या इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग से उत्पन्न हुये दुःख से दुःखित होकर जिस किसी भी कारण से अपघात से मरण करते हैं वे भी मनुष्य या तिर्यच योनि को प्राप्त करके जघन्य आयु प्रमाण आयु को प्राप्त कर पुनः-पुनः मरण को प्राप्त होते रहते हैं, इसलिये भव्यजीवों को इन कारणों का त्याग कर देना चाहिये।

इस प्रकार पाँचवें स्थल में आयु के स्थितिबंध आदि का निरूपण करने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुये।

अब नरकगति आदि छह प्रकृतियों के स्थितिबंध आदि का प्रतिपादन करने के लिये तीन सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

नरकगति, देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग, नरकगति-प्रायोग्यानुपूर्वी और देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मों का जघन्य स्थितिबंध पल्योपम के संख्यातवे भाग से हीन सागरोपमसहस्र के दो बटे सात भाग है॥३५॥

पूर्व सूत्रोक्त नरकगति आदि छहों प्रकृतियों का जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है॥३६॥

आबाधूणिा कम्मट्टिदी कम्मणिसेगो।।३७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — एतेषां वैक्रियिकषट्कानां जघन्यस्थितिबंधम् सर्वविशुद्धाः असंज्ञिपंचेन्द्रियतिर्यञ्च एव कुर्वन्ति।

अस्य जघन्यस्थितिबंधस्य अत्र उपयोगि-अर्थस्य किंचित् प्ररूपणं क्रियते — एकेन्द्रियेषु मिथ्यात्वस्योत्कृष्टस्थितिबंधः एकः सागरः। कषायाणां सागरोपमस्य चत्वारः सप्तभागाः। ज्ञानदर्शना-वरणान्तरायवेदनीयानां सागरोपमस्य त्रयः सप्तभागाः। नामगोत्रनोकषायाणां सागरोपमस्य द्वौ सप्तभागाः।

$$\left[१ \text{ सा. } \frac{४}{७} \text{ सा. } \frac{३}{७} \text{ सा. } \frac{२}{७} \text{ सा. } \right]$$

$$\text{द्वीन्द्रियाणां एतेषां कर्मणामेव क्रमशः — } \left[२५ \text{ सा. } \frac{१००}{७}, \frac{७५}{७}, \frac{५०}{७} \right]$$

$$\text{त्रीन्द्रियाणां क्रमशः — } \left[५०, \frac{२००}{७}, \frac{१५०}{७}, \frac{१००}{७} \right]$$

$$\text{चतुरिन्द्रियाणां — } \left[१०० \text{ सा. }, \frac{४००}{७}, \frac{३००}{७}, \frac{२००}{७} \right]$$

$$\text{असंज्ञिपंचेन्द्रियाणां — } \left[१००० \text{ सा. }, \frac{४०००}{७}, \frac{३०००}{७}, \frac{२०००}{७} \right]$$

उक्त प्रकृतियों के आबाधाकाल से हीन कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है।।३७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यह जघन्य स्थिति सर्वविशुद्ध असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के द्वारा बांधी जाती है। इसी जघन्य स्थितिबंध के प्ररूपण के लिये यहाँ पर उपयोगी कुछ अर्थ की प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है — एकेन्द्रिय जीवों में मिथ्यात्व कर्म का उत्कृष्ट स्थितिबंध एक सागरोपम (१) है। कषायों का उत्कृष्ट स्थितिबंध एक सागरोपम के चार बटे सात भाग (४/७) है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और वेदनीय, इन कर्मों का उत्कृष्ट स्थितिबंध एक सागरोपम के तीन बटे सात भाग (३/७) है। नामकर्म, गोत्रकर्म और नोकषायों का उत्कृष्ट स्थितिबंध एक सागरोपम के दो बटे सात भाग (२/७) है। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय जीवों से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक के जीवों का उत्कृष्ट स्थितिबंध कहना चाहिये। द्वीन्द्रिय जीवों में मिथ्यात्व कर्म का उत्कृष्ट स्थितिबंध पच्चीस (२५) सागरोपम है। कषायों का उत्कृष्ट स्थितिबंध सौ बटे सात (१००/७) सागरोपम है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और वेदनीय, इन कर्मों का उत्कृष्ट स्थितिबंध पचहत्तर बटे सात (७५/७) सागरोपम है। नामकर्म, गोत्रकर्म और नोकषायों का उत्कृष्ट स्थितिबंध पचास बटे सात (५०/७) सागरोपम है। ये द्वीन्द्रिय जीवों के उत्कृष्ट स्थितिबंध हैं। त्रीन्द्रिय जीवों में मिथ्यात्व कर्म का उत्कृष्ट स्थितिबंध पचास (५०) सागरोपम है। कषायों का उत्कृष्ट स्थितिबंध दो सौ बटे सात (२००/७)

एवं द्वीन्द्रियादीनामसंज्ञिपंचेन्द्रियान्तानामुत्कृष्टस्थितिबंधा ज्ञातव्याः।

स्वोत्कृष्टस्थितिषु पल्यस्यासंख्यातभागे हीने कृते यत्प्रमाणमवशेषं ता जघन्यस्थितिः एकेन्द्रिया बध्नन्ति। द्वीन्द्रियादसंज्ञिपंचेन्द्रियपर्यन्ता जीवाः स्वस्वोत्कृष्टस्थितिषु पल्यस्य संख्यातभागे हीने यत्प्रमाणमवशिष्टं, ताः जघन्यस्थितिः बध्नन्ति। संज्ञिपंचेन्द्रियाणाम् उत्कृष्टजघन्यस्थितिबंधाः सूत्रेषु पृथक्-पृथक् दर्शिताः। तेषां कोष्ठकानि—

सागरोपम है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और वेदनीय, इन कर्मों का डेढ़ सौ बटे सात (१५०/७) सागरोपम है। नामकर्म, गोत्रकर्म और नोकषायों का उत्कृष्ट स्थितिबंध सौ बटे सात (१००/७) सागरोपम है। ये त्रीन्द्रिय जीवों के उत्कृष्ट स्थितिबंध हैं। चतुरिन्द्रिय जीवों में मिथ्यात्वकर्म का उत्कृष्ट स्थितिबंध सौ (१००) सागरोपम है। कषायों का उत्कृष्ट स्थितिबंध चार सौ बटे सात (४००/७) सागरोपम है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और वेदनीय, इन कर्मों का उत्कृष्ट स्थितिबंध तीन सौ बटे सात (३००/७) सागरोपम है। नामकर्म, गोत्रकर्म और नोकषायों का उत्कृष्ट स्थितिबंध दो सौ बटे सात (२००/७) सागरोपम है। ये चतुरिन्द्रिय जीवों के उत्कृष्ट स्थितिबंध हैं। असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में मिथ्यात्वकर्म का उत्कृष्ट स्थितिबंध एक हजार (१०००) सागरोपम है। कषायों का उत्कृष्ट स्थितिबंध चार हजार बटे सात (४०००/७) सागरोपम है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और वेदनीय, इन कर्मों का उत्कृष्ट स्थितिबंध तीन हजार बटे सात (३०००/७) सागरोपम है। नामकर्म, गोत्रकर्म और नोकषायों का उत्कृष्ट स्थितिबंध दो हजार बटे सात (२०००/७) सागरोपम है। ये असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के उत्कृष्ट स्थितिबंध हैं।

इस प्रकार द्वीन्द्रिय आदि से असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यंत जीवों का उत्कृष्ट स्थितिबंध जानना चाहिए।

स्थितिबंध उत्कृष्ट	कर्मों के नाम मिथ्यात्व	एकेन्द्रिय १ सागरोपम	द्वीन्द्रिय २५ सागरोपम	त्रीन्द्रिय ५० सागरोपम	चतुरिन्द्रिय १०० सागरोपम	असंज्ञी पंचेन्द्रिय १००० सागरोपम
”	सोलह कषाय	४/७ सा.	१००/७ सा.	२००/७ सा.	४००/७ सा.	४०००/७ सा.
”	ज्ञानावरण					
	दर्शनावरण	३/७ सा.	७५/७ सा.	१५०/७ सा.	३००/७ सा.	३०००/७ सा.
	वेदनीय					
”	अन्तराय					
	नामकर्म					
	गोत्रकर्म					
	नोकषाय	२/७ सा.	५०/७ सा.	१००/७ सा.	२००/७ सा.	२०००/७ सा.

अपनी उत्कृष्ट स्थिति में से पल्य का असंख्यातवाँ भाग कम करने पर जो प्रमाण शेष रहे, उतनी जघन्य स्थिति को एकेन्द्रिय जीव बाँधते हैं। द्वीन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक के जीव अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति में से पल्य का संख्यातवाँ भाग कम करने पर जो प्रमाण शेष रहे, उतनी जघन्य स्थिति को बाँधते हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों का उत्कृष्ट और जघन्य स्थितिबंध सूत्रों में पृथक्-पृथक् दिखाया गया है। उसका कोष्ठक इस प्रकार है—

एकेन्द्रियेषु वीचारस्थानानि पल्योपमस्य असंख्यातभागः, आबाधास्थानानि आवलिकायाः असंख्यातभागः। द्वीन्द्रियादिषु वीचारस्थानानि पल्योपमस्य संख्यातभागः, आबाधास्थानानि आवलिकायाः संख्यातभागः। वैक्रियिकषट्कं च नामकर्म, तेन पल्योपमस्य संख्यातभागेन न्यूना सागरोपमसहस्रस्य द्वौ

सप्तभागा जघन्यस्थितिर्भवति $\left[\frac{२०००}{७} \right]$ ।

एवं षष्ठस्थले वैक्रियिकषट्कप्रकृतीनां जघन्यस्थितिनिरूपणमुख्यत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

अधुना आहारकद्वयतीर्थकरप्रकृतीनां जघन्यस्थितिबंधनिरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

आहारसरीर-आहारसरीरअंगोवांग-तित्थयरणामाणं जहण्णगो ढिदिबंधो
अंतोकोडा-कोडीओ।।३८।।
अंतोमुहुत्तमाबाधा।।३९।।

संज्ञी पंचेन्द्रिय	मिथ्यात्व कर्म दर्शनमोहनीय	चारित्र मोहनीय	ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय अन्तराय	नामकर्म गोत्रकर्म	आयुर्कर्म
उत्कृष्ट	७० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	४० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	३० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	३३ कोड़ाकोड़ी सागरोपम
जघन्य	अन्तःकोड़ाकोड़ी	अन्तर्मुहूर्त	१२ मुहूर्त वेदनीय का १ मुहूर्त शेष कर्मों का अन्तर्मुहूर्त	८ मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त

एकेन्द्रिय जीवों में वीचारस्थान पल्योपम के असंख्यातवें भाग हैं और आबाधास्थान आवली के असंख्यातवें भाग हैं। द्वीन्द्रियादि जीवों में वीचारस्थान पल्योपम के संख्यातवें भाग हैं और आबाधास्थान आवली के संख्यातवें भाग हैं। वैक्रियिकषट्क अर्थात् नरकगति आदि सूत्रोक्त छहों प्रकृतियाँ नामकर्म की हैं इसलिये पल्योपम के संख्यातवें भाग से हीन सागरोपम सहस्र के दो बटे सात भाग (२०००/७) उस वैक्रियिकषट्क का जघन्य स्थितिबंध होता है।

इस प्रकार छठे स्थल में वैक्रियिक षट्क प्रकृतियों की जघन्य स्थिति का निरूपण करते हुये तीन सूत्र पूर्ण हुये।

अब आहारकद्विक और तीर्थकर प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध निरूपण करने के लिये तीन सूत्र अवतार लेते हैं—

सूत्रार्थ—

आहारकशरीर, आहारकशरीर-अंगोपांग और तीर्थकर नामकर्मों का जघन्य स्थितिबंध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम है।।३८।।

आहारकशरीर, आहारक-अंगोपांग और तीर्थकरनामकर्म का जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है।।३९।।

आबाधूणिया कम्मट्टिदी कम्मणिसेओ॥४०॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — एतासां तिसृणां प्रकृतीनां जघन्यस्थितिबंधः अपूर्वकरणगुणस्थानचरमसमयात् सप्तमभागपर्यंतं भवति अवतीर्यमाणस्य अपूर्वकरणक्षपकस्य महासाधोरिति।

उक्तं च—

तित्थाहाराणंतोकोडाकोडी जहण्णठिदिबंधो।

खवगे सगसगबंधच्छेदणकाले हवे णियमा^१॥१४१॥

एषा तीर्थकरप्रकृतिः क्व बध्यते कस्य च इति पृष्ठे सति कथ्यते—

पढमुवसमिये सम्मे सेसतिये अविरदादिचत्तारि।

तित्थयरबंधपारंभया णरा केवलिदुगंते^२॥१३॥

आसां तिसृणां प्रकृतीनां बंधव्युच्छित्तिश्च अपूर्वकरणक्षपकस्य अष्टमगुणस्थानस्य षष्ठभागस्यान्त्यसमये भवतीति ज्ञातव्यं।

एवं सप्तमस्थले आहारद्वयादिप्रकृतिजघन्यस्थिति-आबाधा-निषेकप्ररूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

अधुना यशःकीर्ति-उच्चगोत्रयोरजघन्यस्थिति-आबाधा-निषेकप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

उक्त कर्मों के आबाधाकाल से हीन कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है॥४०॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इन तीनों प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध अपूर्वकरण गुणस्थान के चरम समय से लेकर सप्तम भाग तक उतरते हुये अपूर्वकरण क्षपक के — महामुनि के होता है।

कहा भी है गोम्मटसार कर्मकाण्ड ग्रन्थ में कि—

तीर्थकर और आहारकद्विक का जघन्य स्थितिबंध अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण है। अन्तःकोड़ाकोड़ी के अनेक भेद होते हैं इसलिये जघन्य का भी इतना ही प्रमाण है। यह जघन्य स्थितिबंध क्षपकश्रेणी वालों के अपनी-अपनी बन्धव्युच्छित्ति के समय आठवें गुणस्थान के छठे भाग में नियम से होता है॥१४१॥

यह तीर्थकर प्रकृति कब और किनके बंधती है ? ऐसा प्रश्न होने पर कहते हैं—

प्रथमोपशम अथवा द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में तथा क्षायोपशमिक या क्षायिक सम्यक्त्व में असंयत से प्रमत्तगुणस्थान पर्यन्त कर्मभूमिज मनुष्य ही तीर्थकरप्रकृति के बंध का प्रारम्भ केवली अथवा श्रुतकेवली के पादमूल में करते हैं॥१३॥

इन तीनों प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति अपूर्वकरण नाम के आठवें गुणस्थानवर्ती महामुनि क्षपक के इस आठवें गुणस्थान के छठे भाग के अन्त्य समय में होती है, ऐसा जानना चाहिये।

इस प्रकार सातवें स्थल में आहारक आदि तीन प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध, आबाधा और निषेक का निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब यशकीर्ति और उच्चगोत्र की जघन्य स्थिति, आबाधा और निषेक का प्रतिपादन करने के लिये तीन सूत्र अवतार लेते हैं—

जसगिति-उच्चगोदाणं जहण्णगो द्विदिबंधो अट्ट मुहुत्ताणि।।४१।।

अंतोमुहुत्तमाबाधा।।४२।।

आबाधूणिआ कम्मट्टिदी कम्मणिसेओ।।४३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अनयोर्द्वयोः प्रकृत्योः जघन्यस्थितिबंधः चरमसमयवर्तिसकषायिणां महासाधूनां भवति। शेषं सुगममस्ति।

इतो विस्तरः — पंचज्ञानावरण-चतुःदर्शनावरण-पंचअन्तराय-यशःकीर्ति-उच्चगोत्र-सातावेदनीयानां आसां सप्तदशप्रकृतीनां जघन्यस्थितिबंधं सूक्ष्मसांपरायवर्ती महायतिः करोति। पुरुषवेदचतुःसंज्वलनप्रकृतीनां पंचानां अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्ती महासाधुः जघन्यस्थितिं बध्नाति। आहारकद्विक-तीर्थकरप्रकृतीनां जघन्यस्थितिं अपूर्वकरणः महामुनिः बध्नाति। वैक्रियकषट्कं असंज्ञी पंचेन्द्रियजीवः चतुर्विधायुषां जघन्यस्थितिं संज्ञी असंज्ञी वा बध्नाति। मिथ्यात्वस्य जघन्यस्थितिस्वामिनां कथितमेव।

आसां व्यतिरिक्तानां चतुरशीतिप्रकृतीनां जघन्यस्थितिबंधं बादर पर्याप्तः यथायोग्यविशुद्धपरिणामी एकेन्द्रियजीवः करोति इति ज्ञातव्यं।

कार्मणशरीरनामकर्मोदयेन योगनिमित्तेन आत्मनि कर्मस्वरूपेण परिणतं यत् पुद्गलद्रव्यं यावत् उदयरूपेण उदीरणारूपेण वा न एति तावत्कालस्य आबाधा इति संज्ञा। उदयस्याबाधा तु सूत्रेषु कथिता एव, उदीरणाया आबाधा तावदुच्यते —

सूत्रार्थ —

यशःकीर्ति और उच्चगोत्र, इन दोनों कर्मों का जघन्य स्थितिबंध आठ मुहूर्त है।।४१।।

यशःकीर्ति और उच्चगोत्र, इन दोनों कर्मों का जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है।।४२।।

उक्त कर्मों के आबाधाकाल से हीन कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्मनिषेक होता है।।४३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इन दोनों प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध चरमसमयवर्ती, कषाय सहित महासाधुओं के होता है। शेष अर्थ सुगम है। यहाँ कुछ विस्तार से कहते हैं —

पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पाँच अन्तराय, यशकीर्ति, उच्चगोत्र और सातावेदनीय इन सत्रह प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध सूक्ष्मसांपरायवर्ती महामुनि करते हैं। पुरुषवेद और चार संज्वलन प्रकृति इन पाँच का जघन्य स्थितिबंध अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्ती महामुनि करते हैं। आहारकद्विक और तीर्थकर प्रकृति का जघन्य स्थितिबंध अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती महामुनि करते हैं। वैक्रियिक की छह प्रकृतियों को असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव तथा चार प्रकार की आयु का जघन्य स्थितिबंध संज्ञी अथवा असंज्ञी बांधते हैं। मिथ्यात्व के जघन्यस्थिति के स्वामी पहले बता चुके हैं। इनसे अतिरिक्त चौरासी प्रकृतियों का जघन्य स्थिति बंध बादर, पर्याप्त, एकेन्द्रिय जीव यथायोग्य विशुद्ध परिणामी करते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

कार्मण शरीर नामकर्म के उदय से और योग के निमित्त से आत्मा में कर्मरूप से परिणत हुए जो पुद्गलरूप हैं, वे जब तक उदयरूप से या उदीरणा रूप से नहीं आते हैं उतने काल का नाम 'आबाधा' है। उदय की आबाधा तो सूत्र में कही गई है, अब यहाँ उदीरणा की आबाधा कहते हैं —

आवलियं आबाहा उदीरणमासिज्ज सत्तकम्माणं।

परभविय-आउगस्स य उदीरणा णत्थि णियमेण^१॥१५९॥

अत्रायमर्थः — वर्तमानकाले भुज्यमानायुषः उदीरणा भवितुं शक्नोति किंतु बध्यमानागामिभवस्यायुषः उदीरणा नास्ति।

राज्ञः श्रेणिकस्य बद्ध नरकायुषः अपकर्षणं जातं चतुरशीतिसहस्रवर्षमात्रं इति ज्ञातव्यं।

भुज्यमानायुषां उदीरणाविषये सूत्रं प्ररूपितं श्रीमदुमास्वामिना तत्त्वार्थसूत्रग्रन्थे —

औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः॥५३॥

चरमशब्दस्यान्तवाचित्वात्तज्जन्मनि निर्वाणार्हग्रहणं। उत्तमशब्दस्योत्कृष्टवाचित्वाच्चक्रधरादिग्रहणं। बाह्यस्योपघातनिमित्तस्य विषयशस्त्रादेः सति सन्निधाने हासोऽपवर्त इत्युच्यते।

उत्तमदेहाश्चक्रधरादयोऽनपवर्त्यायुषः इत्येतल्लक्षणमव्यापि। कुतः? अन्तस्य चक्रधरस्य ब्रह्मदत्तस्य वासुदेवस्य च कृष्णस्य अन्येषां च तादृशानां बाह्यनिमित्तवशादायुरपवर्तदर्शनात् ?

न वैष दोषः। किं कारणं ? चरमशब्दस्योत्तमविशेषणत्वात्।

पुनरपि कश्चिदाशङ्कते —

उदीरणा की अपेक्षा सात कर्मों की आबाधा एक आवलीमात्र है और परभव संबंधी बध्यमान आयु की उदीरणा नियम से नहीं होती है॥१५९॥

इसका अर्थ यह है कि वर्तमानकाल की भुज्यमान आयु की उदीरणा होना शक्य है किन्तु बध्यमान आगामी भव की आयु की उदीरणा नहीं होती है।

राजा श्रेणिक के नरकायु का बंध हो गया था ऐसे बंधी आयु का अपकर्षण हुआ है जो कि चौरासी हजार वर्ष मात्र रह गया है, ऐसा समझना।

भुज्यमान आयु की उदीरणा के विषय में श्रीमान् उमास्वामी आचार्य ने तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ में कहा है —

उपपाद जन्म वाले देव और नारकी चरमोत्तम देहधारी और असंख्यात वर्ष की आयु वाले जीव परिपूर्ण आयु वाले होते हैं अर्थात् इनकी आयु का घात नहीं होता है॥५३॥

चरम शब्द अन्तवाची है, इसलिए उसी जन्म में निर्वाण के योग्य हो उसका ग्रहण करना चाहिए। उत्तम शब्द उत्कृष्टवाची है, इससे चक्रवर्ती आदि का ग्रहण होता है। बाह्य उपघात के निमित्त विषय, शस्त्रादि के कारण आयु का हास होता है, वह अपवर्त्य है—अपवर्त्य आयु जिनके है वे अपवर्त्य आयु वाले कहलाते हैं।

प्रश्न — उत्तम देह वाले अंतिम चक्रवर्ती आदि के आयु का अपवर्तन देखा जाता है इसलिए यह लक्षण अव्याप्त है। अंतिम चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त, वासुदेव कृष्ण आदि के आयु का बाह्य के निमित्तवश अपवर्तन देखा गया है अर्थात् इनकी अकालमृत्यु सुनी जाती है और अन्य भी ऐसे लोगों की आयु का बाह्य निमित्तों से हास हुआ है इसलिए यह अव्याप्ति दोष से दूषित है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि यहाँ चरम शब्द में उत्तम विशेषण दिया गया है।

यहाँ कोई पुनः शंका करता है —

अप्राप्तकालस्य मरणानुपलब्धेरपवर्ताभावः इति चेत्, न; दृष्टत्वादास्रफलादिवत् । १०। यथा अवधारितपाककालात् प्राक् सोपायोपक्रमे सत्यास्रफलादीनां दृष्टः पाकस्तथा परिच्छिन्नमरणकालात् प्रागुदीरणाप्रत्यय आयुषो भवत्यपवर्तः।

आयुर्वेदसामर्थ्याच्च । ११। यथा अष्टाङ्गायुर्वेदविद् भिषक् प्रयोगे अतिनिपुणो यथाकालवाताद्युदयात् प्राक् वमनविरेचनादिना अनुदीर्णमेव श्लेष्मादि निराकरोति, अकालमृत्युव्युदासार्थं रसायनं चोपदिशति, अन्यथा रसायनोपदेशस्य वैयर्थ्यं । न चादोऽस्ति ? अतः आयुर्वेदसामर्थ्यादस्त्यकालमृत्युः।

स्यान्मतं — दुःखप्रतीकारोऽर्थः आयुर्वेदस्येति ?

तत्र, किं कारणं ? उभयथा दर्शनात् । उत्पन्नानुत्पन्नवेदनयोर्हि चिकित्सादर्शनात्।

स्यान्मतं — यद्यकालमृत्युरस्ति कृतप्रणाशः प्रसज्येत इति ?

तत्र,

किं कारणं ?

दत्तैव फलं निवृत्तेः, नाकृतस्य कर्मणः फलमुपभुज्यते, न च कृतकर्मफलविनाशः अनिमोक्षप्रसंगात्, दानादिक्रियारम्भाभावप्रसंगात् च । किंतु कृतं कर्म फलं दत्तैव निवर्तते विततार्द्रपट शोषवत् अथवाकालनिवृत्तः पाकः इत्ययं विशेषः^१।

अप्राप्त काल में मरण की अनुपलब्धि होने से अकालमरण नहीं है, ऐसा नहीं कहना क्योंकि फलादि के समान—जैसे—कागज, पयाल आदि उपायों के द्वारा आम्र आदि फल अवधारित (निश्चित) परिपाक काल के पूर्व ही पका दिये जाते हैं या परिपक्व हो जाते हैं, ऐसा देखा जाता है। उसी प्रकार परिच्छिन्न (अवधारित) मरणकाल के पूर्व ही उदीरणा के कारण से आयु की उदीरणा होकर अकालमरण हो जाता है।

आयुर्वेद के सामर्थ्य से अकालमरण सिद्ध होता है। जैसे—आयुर्वेद को जानने वाला अतिनिपुण वैद्य यथाकाल वातादि के उदय के पूर्व ही वमन, विरेचन आदि के द्वारा अनुदीर्ण ही कफ आदि दोषों को बलात् निकाल देता है—दूर कर देता है तथा अकालमृत्यु को दूर करने के लिए रसायन आदि का उपदेश देता है। अन्यथा यदि अकालमरण नहीं है तो रसायन आदि का उपदेश व्यर्थ हो जायेगा, किन्तु रसायन आदि का उपदेश है अतः आयुर्वेद के सामर्थ्य से भी अकालमरण सिद्ध होता है।

शंका—केवल दुःख के प्रतीकार के लिए ही औषध दी जाती है ?

समाधान—यह बात नहीं है, अपितु उत्पन्न रोग को दूर करने के लिए और अनुत्पन्न को हटाने के लिए भी दी जाती है। जैसे—औषधि से असाता कर्म दूर किया जाता है, उसी प्रकार विष आदि के द्वारा आयु ह्रास और उसके अनुकूल औषधि से आयु का अपवर्तन देखा जाता है।

शंका—यदि अकालमृत्यु है तो कृतप्रणाश दोष आता है अर्थात् किये हुए का फल नहीं भोगा गया, अकाल में आयु नष्ट हो गई ?

समाधान—ऐसी आशंका भी नहीं है। न तो अकृत कर्म का फल भोगना पड़ता है और न कृत कर्म का नाश ही होता है, अन्यथा मोक्ष नहीं हो सकेगा और न दानादि क्रियाओं के करने का उत्साह ही होगा। दानादिक्रिया के आरंभ के अभाव का प्रसंग आयेगा। किन्तु कृत कर्म कर्त्ता को अपना फल देकर के ही नष्ट होता है। जैसे—गीला कपड़ा फैला देने पर जल्दी सूख जाता है और वही कपड़ा इकट्ठा रखा रहे तो सूखने में बहुत समय लगता है, उसी तरह उदीरणा के निमित्तों से समय के पहले ही आयु झड़ जाती है, यही अकालमृत्यु है।

अस्यैव तत्त्वार्थसूत्रमहाग्रन्थस्य श्लोकवार्तिकमहाभाष्ये ग्रन्थे श्रीमदाचार्यविद्यानन्दमहोदयेनापि^१ प्रोक्तं —
 “सत्यप्यसद्वेद्योदयेऽन्तरंगे हेतौ दुःखं बहिरंगे वातादिविकारे तत्प्रतिपक्षौषधौपयोगोपनीते दुःखस्यानुत्पत्तेः

प्रतिकारः स्यात्” —

कटुकादिभेषजौपयोगजपीडामात्रं स्वफलं दत्तैवासद्वेद्यस्य निवृत्तेर्न कृतप्रणाशः^२।”

अकालमृत्युविषये श्रीकुंदकुंददेवेनापि प्रोक्तं —

विसवेयणरत्तक्खय-भयसत्थग्गहणसंकिलेसाणं।

आहारुस्सासाणं णिरोहणा खिज्जदे आऊ^३॥२५॥

पुरा षडशीतिसहस्रपंचशतवर्षपूर्वं महाभारतयुद्धकाले सर्वाधिकाकालमृत्युः संजातः इति उत्तरपुराणे श्रीगुणभद्रसूरिणा कथितं —

तत्र वाच्यो मनुष्याणां मृत्योरुत्कृष्टसञ्चयः।

कदलीघातजातस्येत्युक्तिमत् तदर्णाङ्गणम्^४॥१०९॥

वर्तमानकालेऽपि आकस्मिक दुर्घटना नानाविधा श्रूयते — क्वचित् भूकंपदुर्घटनायां सहस्राणि मनुष्याः पशवश्च सार्धमेव म्रियन्ते, क्वचिद् नदीपूरप्रवाहेण अनेकग्रामाः जलमग्नाः जायन्ते, तत्रापि शतानि सहस्राणि च परिवाराः नश्यन्ति। कुत्रचिद् वायुयानपतनदुर्घटनायां शतानि मनुष्याः उपरितनादधो पतित्वा मृत्युं

इसी तत्त्वार्थसूत्र महाग्रंथ के श्लोकवार्तिक महाभाष्य ग्रंथ में श्रीमान् आचार्य विद्यानन्द महोदय^५ ने भी कहा है —

अंतरंग में असाता वेदनीय का उदय होने पर और बहिरंग में वात, पित्त आदि विकार के होने पर दुःख-रोग आदि होते हैं, उनके प्रतिपक्षी औषधि के देने पर दुःख-रोग की अनुत्पत्ति — दूर होना रूप प्रतीकार देखा जाता है।

कडुवी आदि औषधि का उपयोग करने से उतने मात्र से पीड़ारूप फल देकर ही असातावेदनीय का उदय खत्म हो जाता है अतः किये हुए कर्म का फल नहीं भोगा — नष्ट हो गया, ऐसा ‘कृतप्रणाश’ दोष नहीं आता है।

अकाल मृत्यु के विषय में श्री कुंदकुंददेव ने भी कहा है —

विष के भक्षण से, अधिक वेदना से, रक्तक्षय हो जाने से, भय से, शस्त्र लग जाने से — शस्त्रों के घात से, संक्लेश परिणामों से, आहार-भोजन न मिलने से, श्वासोच्छ्वास के रुक जाने से — या रोक लेने से आयु छिद जाती है — अकाल में मरण हो जाता है॥२५॥

पहले छियासी हजार पाँच सौ वर्ष पूर्व महाभारत के युद्ध के समय सबसे अधिक अकालमृत्यु हुई हैं, ऐसा श्री गुणभद्रसूरि ने उत्तरपुराण ग्रंथ में कहा है —

“आगम में जो मनुष्यों का कदलीघात नाम का अकालमरण बतलाया गया है, उसकी अधिक से अधिक संख्या यदि हुई भी तो उस महाभारत के युद्ध में ही हुई थी, ऐसा उस युद्ध के विषय में कहा जाता है॥१०९॥”

वर्तमानकाल में भी नाना प्रकार की आकस्मिक दुर्घटनाएँ सुनी जाती हैं — कहीं भूकंप की दुर्घटना में हजारों मनुष्य और पशु एक साथ मर जाते हैं। कहीं नदी पूर — नदियों के बाढ़ से अनेक गाँव जल में डूब जाते हैं, तब सैकड़ों, हजारों परिवार नष्ट हो जाते हैं। कहीं पर हवाई जहाज के गिरने से ऊपर से नीचे गिरकर

१. एक हजार वर्ष पूर्व ये विद्यानन्द आचार्य हुए हैं। इन्होंने ही अष्टसहस्री एवं श्लोकवार्तिक ग्रंथ लिखे हैं।

२. तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, मूल मुद्रित, प्रति पृ. ३४३। ३. भावपाहुड। ४. उत्तरपुराण पर्व ७१, पृ. ३८२, श्लोक १०९।

प्राप्नुवन्ति। कदाचित् एवमेव वाष्पयान-विद्युदयान-चतुश्चक्रिका-त्रिचक्रिका-द्विचक्रिकादिपतन-परस्पर-संघट्टनादिदुर्घटनासु अनेके मनुष्याः म्रियन्ते, क्वचित् बमविस्फोटकेन वा कालं कुर्वन्ति, एतत्सर्वं प्रत्यक्षेण दृश्यते, अत्रापि नानादुर्घटनाभिर्धैर्यं म्रियन्ते तेषामधिकांशतः अकालमृत्युना एव मरणं, न च सर्वेषां युगपदेव मृत्युमागच्छति, अतो जिनवचनस्योपरि श्रद्धानं कर्तव्यम्।

तथा च संप्रत्यपि अकालमृत्युनिवारणं श्रूयते — केषांचित् संघट्टनादिदुर्घटनाभिः अधिकरूपेण रक्तस्रावे संजाते आंग्लवैद्याः परस्य रक्तं तस्य मरणासन्नस्य शरीरे प्रवेश्य जीवनदानं ददति। हृदयरोगस्यापि शल्यचिकित्सां कृत्वा आरोग्यं जीवनं च यच्छन्ति। केषांचित् रुग्णानां नेत्रादीन् अवयवानपि परिवर्त्य स्वस्थं कुर्वन्ति, न चैषामपलापं कर्तुं शक्यते।

जिनभक्त्या महद्जाप्याद्यनुष्ठानेन सिद्धचक्र कल्पद्रुम-इन्द्रध्वजादिमहामण्डलविधानैश्च बहूनि दुःखानि नश्यन्ति अकालमृत्युमपि जित्वा पूर्णायुः भुञ्जन्ति जनाः।

एका कथापि श्रीशांतिनाथपुराणे पठ्यते —

एकदा श्रीविजयनरेशस्य सभायामागत्य केनचित् निमित्तज्ञेन कथितं — अस्य पोदनपुरनरेशस्य अद्यप्रभृति सप्तमे दिवसे अशनपातेन मृत्युर्भवविष्यति। राज्ञा तस्यापमृत्योर्निवारणार्थं राज्यं त्यक्त्वा जिनालयं गत्वा महतीं जिनपूजां चकार। ततः तस्याकालमृत्युरभूत्वा राज्यसिंहासनस्थमूर्तेः शतखण्डानि बभूव।

उक्तं च —

“एकदागामुकः कश्चिद् दृष्ट्वा श्रीविजयं द्विजः। सिंहासनस्थमित्याह रहसि प्राप्य चासनम्॥५२॥

सैकड़ों मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। कहीं-कहीं इस प्रकार रेलगाड़ी, हवाई जहाज, बसें, स्कूटर, साइकिल आदि के गिरने, परस्पर टकराने (एक्सीडेंट) आदि की दुर्घटनाओं में अनेकों मनुष्य मर जाते हैं, कहीं बम विस्फोट से मरते हैं, यह सब प्रत्यक्ष में देखा जाता है। यहाँ पर भी जो मनुष्य नाना प्रकार की दुर्घटनाओं से मरते हैं, उनमें तो अधिकांश लोगों का मरण अकालमृत्यु से ही होता है, क्योंकि सभी मरने वालों की एक साथ मृत्यु नहीं आती है, अतः जिनेन्द्रदेव के वचनों पर श्रद्धान करना चाहिए।

इसी प्रकार वर्तमान में अकालमृत्यु के निवारण — दूर करने के उपाय भी सुने जाते हैं — किन्हीं लोगों के संघट्टन — एक्सीडेंट आदि दुर्घटनाओं से अधिकरूप से रक्तस्राव हो जाने से डाक्टर दूसरे का खून उस मरणासन्न के शरीर में चढ़ाकर जीवनदान दे देते हैं — बचा लेते हैं।

हृदय रोग की भी शल्य चिकित्सा — आप्रेशन करके स्वस्थता एवं जीवन देते हैं। किन्हीं रोगियों के नेत्र आदि अवयवों का प्रत्यारोपण करके स्वस्थ कर देते हैं, इनका अपलाप करना — झुठलाना भी शक्य नहीं है।

जिनेन्द्र भगवान की भक्ति से, महान् जाप्य आदि के अनुष्ठान से, सिद्धचक्र, कल्पद्रुम, इन्द्रध्वज आदि महामण्डल विधानों से बहुत से दुःख नष्ट हो जाते हैं, वे लोग अकालमृत्यु को जीतकर पूरी आयु का उपभोग कर लेते हैं।

एक कथा श्री शांतिनाथ पुराण में पढ़ी जाती है —

एक समय श्री विजयनरेश की सभा में आकर किसी निमित्तज्ञानी ने कहा — इस पोदनपुर के राजा की आज से सातवें दिन वज्रपात से मृत्यु होगी। राजा ने अपमृत्यु के निवारण के लिए राज्य का त्याग करके जिनमंदिर में जाकर विशाल — महती जिनेन्द्रदेव की पूजा की। तब उस पूजानुष्ठान के प्रभाव से राजा की अकालमृत्यु न होकर राज्यसिंहासन पर स्थापित पाषाण मूर्ति के सौ टुकड़े हो गये।

शांतिनाथ पुराण में यह कथा इस प्रकार है — एक दिन किसी आगन्तुक ब्राह्मण ने श्रीविजय को सिंहासन पर स्थित देख एकान्त में आसन प्राप्त कर इस प्रकार कहा। आज से सातवें दिन पोदनपुर नरेश के

इतः पौदननाथस्य सप्तमे वासरे दिवः। मूर्ध्नि प्रध्वनन्नुच्चैरशनैः पतिताशानिः॥५३॥
 इत्युक्त्वा विरते वाणीं तस्मिन् पप्रच्छ स स्वयं। कस्त्वं किमभिधानो वा कियञ्ज्ञानं तवेति तम् ॥५४॥
 इति पृष्ठः स्वयं राज्ञा ततोऽवादीत्स धीरधीः। बंधुरं सिंधुदेशेऽस्ति पद्मिनीखेटकं पुरम् ॥५५॥
 तस्मादमोघजिह्वाख्यस्त्वां द्विजातिरिहागमम्। पुत्रो विशारदस्याहं ज्योतिर्ज्ञानविशारदः ॥५६॥
 इत्थमात्मानमावेद्य स्थितिमन्तं विसर्ज्य तं। अप्राक्षीत्सचिवान् राजा स्वरक्षामशनेस्ततः ॥५७॥
 रक्षोपायेषु बहुषु प्रणीतेष्वथ मंत्रिभिः। प्रत्याचिख्यासुरित्याह तां कथां मतिभूषणः ॥५८॥
 कुंभकारकटं नाम शैलेन्द्रोपत्यकं पुरं। अस्ति तत्रावसद् विप्रो दुर्गतश्चंडकौशिकः ॥५९॥
 अभूत्प्रणयिनी तस्य सोमश्रीरिति विश्रुता। भूतान्याराध्य सा प्रापदपत्यं मुण्डकौशिकम् ॥६०॥
 जिघत्सो रक्षसः कुंभाद्रक्षितुं पुत्रमन्यदा। भूतानामर्पयद् विप्रो गुहायां तैर्न्यधायि सः ॥६१॥
 तं तत्राप्यघद् भीष्मः शिशुमाकस्मिकः शयुः। को वा त्रातुमलं मृत्योर्धर्मं मुक्त्वा शरीरिणां ॥६२॥
 ततः शांतिं विधायासो रक्षोपायो न विद्यते। अस्यापि पौदनेतिश्वं निरस्यामो महीपतेः ॥६३॥
 इत्युक्त्वा विरते तस्मिन् राज्यं वैश्रवणे प्रजाः। ताम्रीये स्थापयामास राजा चास्थाञ्जिनालये ॥६४॥
 सप्तमेऽहनि संपूर्णे पपाताशनिरम्बरात्। मुकुटालंकृते मूर्ध्नि धनदस्य महीक्षितः ॥६५॥
 ततः श्रीविजयस्तस्मै तन्मनोरथवाञ्छितं। दिदेशामोघजिह्वाय पद्मिनीखेटमेव सः^१ ॥६६॥

मस्तक पर जोर से गरजता हुआ वज्र वेगपूर्वक आकाश से गिरेगा। इतना कहकर जब वह चुप हो गया तब श्रीविजय ने उससे स्वयं पूछा कि तुम कौन हो ? किस नाम के धारक हो और तुम्हें कितना ज्ञान है ?

इस प्रकार राजा के द्वारा स्वयं पूछे गये, धीर बुद्धि वाले उस आगन्तुक ब्राह्मण ने कहा कि सिंधु देश में एक पद्मिनीखेट नाम का सुन्दर नगर है। वहाँ से मैं तुम्हारे पास यहाँ आया हूँ अमोघजिह्व मेरा नाम है, मैं विशारद का पुत्र हूँ तथा ज्योतिष ज्ञान का पण्डित हूँ। इस प्रकार अपना परिचय देकर बैठे हुए उस ब्राह्मण को राजा ने विदा किया। पश्चात् मंत्रियों से वज्र से अपनी रक्षा का उपाय पूछा। तदनन्तर मंत्रियों ने बहुत सारे रक्षा के उपाय बतलाये, परन्तु उन उपायों का खंडन करने की इच्छा रखते हुए मतिभूषण मंत्री ने इस प्रकार एक कथा कही—

गिरिराज के निकट एक कुंभकारकट नाम का नगर है। उसमें चण्डकौशिक नाम वाला एक दरिद्र ब्राह्मण रहता था। 'सोमश्री' इस नाम से प्रसिद्ध उसकी स्त्री थी। उसने भूतों की आराधना कर एक मुण्डकौशिक नाम का पुत्र प्राप्त किया। कुंभ नाम का राक्षस उस पुत्र को खाना चाहता था अतः उससे रक्षा के लिए ब्राह्मण ने वह पुत्र भूतों को दे दिया और भूतों ने उसे गुहा में रख दिया। परन्तु वहाँ भी अकस्मात् आये हुए एक भयंकर अजगर ने उस पुत्र को खा लिया अतः ठीक ही है क्योंकि धर्म को छोड़कर मृत्यु से प्राणियों की रक्षा करने के लिए कौन समर्थ है ? इसलिए शांति को छोड़कर रक्षा का अन्य उपाय नहीं है। फिर भी हम इनके पोदनपुर के स्वामित्व को दूर कर दें अर्थात् इनके स्थान पर किसी अन्य को राजा घोषित कर दें।

इस प्रकार कहकर जब मतिभूषण मंत्री चुप हो गया तब प्रजा ने ताम्बे की प्रतिमा बनाकर उसे राज्य सिंहासन पर स्थापित कर दिया और राजा जिनालय में स्थित हो गया। सातवां दिन पूर्ण होते ही राजा की प्रतिमा के मुकुटविभूषित मस्तक पर आकाश से वज्र गिरा अर्थात् वह राज्यसिंहासन की प्रतिमा वज्रपात से नष्ट हो गई। तदनन्तर (मंदिर में अनुष्ठान करते हुए सुरक्षित रहे राजा) श्रीविजय ने उस अमोघजिह्व नामक आगन्तुक ब्राह्मण के लिए उसका मनचाहा पद्मिनीखेट नगर ही दे दिया।

अदः कथानकं श्रुत्वा ज्योतिर्विदः शरणं न गन्तव्यं, न च पुरुषार्थविहीनेन भवितव्यं। प्रत्युत जिनभक्ति-पूजा-जाप्यानुष्ठानादिभिः असाताकर्मणां उदयः कृशीकरणीयः। अकालमृत्योरुपरि अपि विजयः प्राप्तव्यः इति सारः गृहीतव्यः।

अत्र स्थितिबंधप्ररूपणायां जघन्योत्कृष्टप्रदेशबंधः अनुभागबंधश्च किन्न प्ररूपितः?

नैष दोषः, प्रकृतिस्थितिबंधयोः अनुभागप्रदेशाविनाभाविनोः प्ररूपितयोः तत्प्ररूपणासिद्धेः। तद्यथा — स्वक-स्वककर्मप्रतिभागिनीं अन्तःकोटाकोटिप्रमाणं संज्ञिपंचेन्द्रियध्रुवस्थितिं स्व-स्वोत्कृष्टस्थितौ शोधिते स्थितिबंधस्थानविशेषो भवति। तत्र एकरूपं प्रक्षिप्ते स्थितिबंधस्थानानि भवन्ति। एकैकस्य स्थितिबंधस्थानस्य असंख्याताः लोकाः स्थितिबंधाध्यवसायस्थानानि यथाक्रमेण विशेषाधिकानि भवन्ति।

कुतः एतेषामस्तित्वं ज्ञायते ?

जघन्योत्कृष्टस्थितिभ्यः सिद्धस्थितिबंधस्थानस्यान्यथानुपपत्तेः। न च कारणमन्तरेण कार्योत्पत्तिः कुत्रापि भवति, अनवस्थानात्।

तानि च स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानि जघन्यस्थानाद् यावदात्मात्मनः उत्कृष्टस्थानं तावद् अनन्तभागवृद्धिः असंख्यातभागवृद्धिः संख्यातभागवृद्धिः संख्यातगुणवृद्धिः असंख्यातगुणवृद्धिः अनन्तगुणवृद्धिः इति षड्विधाभिः वृद्धिभिः स्थितानि।

अनन्तभागवृद्धिकाण्डकं गत्वा एका असंख्यातभागवृद्धिर्भवति, अस्यायमर्थः — सूच्यंगुलस्य असंख्यातभागमात्रवारं अनन्तभागवृद्धौ सत्यां एकवारं असंख्यातभागवृद्धिर्भवति। असंख्यातभागवृद्धिकाण्डकं

इस कथानक को सुनकर ज्योतिषियों की शरण में नहीं जाना चाहिए और न पुरुषार्थहीन होना चाहिए, प्रत्युत जिनेन्द्रदेव की भक्ति, पूजा-विधानानुष्ठान, जाप्यानुष्ठान आदि से असाता कर्मों के उदय को कम करना चाहिए और अकालमृत्यु पर भी विजय प्राप्त करना चाहिए, यहाँ यही सार लेना है।

शंका — यहाँ पर जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिबंध कहते समय या उनके पश्चात् जघन्य और उत्कृष्ट प्रदेशबंध तथा अनुभागबंध क्यों नहीं प्ररूपण किया ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं, क्योंकि अनुभागबंध और प्रदेशबंध के अविनाभावी प्रकृतिबंध और स्थितिबंध के प्ररूपण किये जाने पर उनकी प्ररूपणा स्वतः सिद्ध है। वह इस प्रकार है — अपने-अपने कर्म के प्रतिभागीरूप अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों की ध्रुवस्थिति को अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति में से घटाने पर स्थितिबंध का स्थान विशेष होता है। उसमें एक रूप और मिलाने पर स्थितिबंध के स्थान हो जाते हैं। एक-एक स्थितिबंध के असंख्यात लोकप्रमाण स्थितिबंधाध्यवसायस्थान होते हैं, जो कि यथाक्रम से विशेष-विशेष अधिक हैं। अर्थात् इस विशेष का प्रमाण असंख्यात लोक है। उनका प्रतिभाग पत्योपम का असंख्यातवाँ भाग है।

शंका — इन स्थितिबंधाध्यवसायस्थानों का अस्तित्व कैसे जाना जाता है ?

समाधान — जघन्य और उत्कृष्ट स्थितियों से प्राप्त या सिद्ध होने वाले स्थितिबंधस्थानों की अन्यथानुपपत्ति से स्थितिबंधाध्यवसायस्थानों का अस्तित्व जाना जाता है। कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति कहीं पर भी होती नहीं है, क्योंकि यदि ऐसा न माना जाये तो अनवस्था दोष प्राप्त होगा।

वे स्थितिबंधाध्यवसायस्थान जघन्य स्थान से लेकर अपने-अपने उत्कृष्ट स्थान तक अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, अनन्तगुणवृद्धि, इस छह प्रकार की वृद्धि से अवस्थित हैं। अनन्तभागवृद्धिकाण्डक जाकर, अर्थात् सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागमात्र जाकर

गत्वा एका संख्यातभागवृद्धिर्भवति। संख्यातभागवृद्धिकांडकं गत्वा एका संख्यातगुणवृद्धिर्भवति। संख्यातगुणवृद्धिकांडकं गत्वा एका असंख्यातगुणवृद्धिर्भवति। असंख्यातगुणवृद्धिकांडकं गत्वा एका अनन्तगुणवृद्धिर्भवति। इदमेकं षड्वृद्धिरूपं स्थानं। एतादृशानि असंख्यातलोकमात्रषड्वृद्धिरूपस्थानानि तेषां स्थितिबंधाध्यवसायस्थानानां भवन्ति।

सर्वस्थितिबंधस्थानानां एकैकस्थितिबंधाध्यवसानस्थानस्याधः षड्वृद्धिक्रमेण असंख्यातलोकमात्राणि अनुभागबंधाध्यवसानस्थानानि भवन्ति। तानि च जघन्यकषायोदयानुभागबंधाध्यवसानस्थानादारभ्य उपरि यावत् जघन्यस्थितिउत्कृष्टकषायोदयस्थानानुभागबंधाध्यवसानस्थानानि इति विशेषाधिकानि। विशेषः पुनः असंख्याता लोकाः तस्य प्रतिभागोऽपि असंख्याता लोकाः।

एतेषामस्तित्वं कुतो ज्ञायते ?

कषायोदयस्थानात् अनुभागेन विना अलब्धात्मस्वरूपात् ततः सिद्धा प्रकृतिस्थितिबंधयोः अनुभागबंधसिद्धिः।

कथं प्रदेशबंधस्य ततः सिद्धिः ?

उच्यते — स्थितिबंधे निषेकविरचना प्ररूपिता। न सा प्रदेशैः विना संभवति, विरोधात्। ततः तस्मादेव प्रदेशबंधोऽपि सिद्धः। प्रदेशबंधात् योगस्थानानि श्रेण्याः असंख्यातभागमात्राणि जघन्यस्थानात् अवस्थितप्रक्षेपेण श्रेण्याः असंख्यातभागप्रतिभागरूपेण विशेषाधिकानि यावत् उत्कृष्टयोगस्थानमिति द्विगुण-द्विगुणगुणहानि-

अनंतभागवृद्धि हो जाने पर, एक बार असंख्यातभागवृद्धि होती है। असंख्यातभागवृद्धि कांडक जाकर एक बार संख्यातभागवृद्धि होती है। संख्यातभागवृद्धिकांडक जाकर एक बार संख्यातगुणवृद्धि होती है। संख्यातगुणवृद्धिकांडक जाकर एक बार असंख्यातगुणवृद्धि होती है। असंख्यातगुणवृद्धिकांडक जाकर एक बार अनन्तगुणवृद्धि होती है। (यहाँ सर्वत्र कांडक से अभिप्राय सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र वारों से है।) यह एक षड्वृद्धिरूप स्थान है। इस प्रकार के असंख्यात लोकमात्र षड्वृद्धिरूप स्थान उन स्थितिबंधाध्यवसायस्थानों के होते हैं।

सर्व स्थितिबंध स्थानों संबंधी एक-एक स्थितिबंधाध्यवसायस्थान के नीचे उपर्युक्त षड्वृद्धि के क्रम से असंख्यात लोकमात्र अनुभागबंधाध्यवसायस्थान होते हैं। वे अनुभागबंधाध्यवसायस्थान जघन्य कषायोदयसंबंधी अनुभागबंधाध्यवसायस्थान से लेकर ऊपर जघन्य स्थिति के उत्कृष्ट कषायोदयस्थान संबंधी अनुभागबंधाध्यवसायस्थान तक विशेष-विशेष अधिक हैं। यहाँ पर विशेष का प्रमाण असंख्यात लोक है तथा उसका प्रतिभाग भी असंख्यात लोक है।

शंका — इन अनुभागबंधाध्यवसायस्थानों का अस्तित्व कैसे जाना जाता है ?

समाधान — अनुभाग के बिना जिनका आत्मस्वरूप प्राप्त नहीं हो सकता है, ऐसे कषायों के उदय स्थानों से अनुभागबंधाध्यवसायस्थानों का अस्तित्व जाना जाता है।

इसलिए यह बात सिद्ध हुई कि प्रकृतिबंध और स्थितिबंध से अनुभागबंध की सिद्धि होती है।

शंका — प्रकृतिबंध और स्थितिबंध से प्रदेशबंध की सिद्धि कैसे होती है ?

समाधान — कहते हैं — स्थितिबंध में निषेकों की रचना प्ररूपणा की गई है। वह निषेक — रचना प्रदेशों के बिना संभव नहीं है, क्योंकि प्रदेशों के बिना निषेक — रचना होने में विरोध आता है। इसलिए निषेक — रचना से ही प्रदेशबंध भी सिद्ध होता है।

आयामेन सहितानि सिद्धानि भवन्ति। किं च योगेन विना प्रदेश बंधानुपपत्तेः। अथवा अनुभागबंधात् प्रदेशबंधः तत्कारणयोगस्थानानि च सिद्धानि भवन्ति।

कुत एतत् ?

प्रदेशैः विना अनुभागानुपपत्तेः। ते च कर्मप्रदेशाः जघन्यवर्गणायाः बहवः तस्मात् उपरि वर्गणां प्रति विशेषहीना अनंतभागेन। भागहारस्याद्धं गत्वा द्विगुणहीनाः। एवं नेतव्यं यावत् चरमवर्गणा इति। एवं चत्वारोऽपि बंधाः प्ररूपिताः भवन्ति।

केन परिणामेन कीदृशोऽनुभागो भवतीति चेत् ?

उच्यते—

सुहृपयडीण विसोही तिव्वो असुहाण संकिलेसेण।

विवरीदेण जहण्णो अणुभागो सव्वपयडीणं॥१६३॥

बादालं तु पसत्था विसोहिगुणमुक्कडस्स तिव्वाओ।

बालीदि अप्पसत्था मिच्छुक्कसंकिलिट्ठस्सं॥१६४॥

अनुभागबंधस्य लक्षणं घातिकर्मसु शक्तिरूपेण दर्शयते—

सत्ती य लतादारुअट्टीसेलोवमाहु घादीणं।

दारुअणंतिमभागोत्ति देसघादी तदो सव्वं॥१८०॥

प्रदेशबंध से योगस्थान सिद्ध होते हैं। वे योगस्थान जगश्रेणी के असंख्यातवें भागसत्र हैं और जघन्य योगस्थान से लेकर जगश्रेणी के असंख्यात भाग प्रतिभागरूप अवस्थित प्रक्षेप के द्वारा विशेष अधिक होते हुए उत्कृष्ट योगस्थान तक दुगने-दुगने गुणहानि आयाम से सहित सिद्ध होते हैं, क्योंकि योग के बिना प्रदेशबंध नहीं हो सकता है।

अथवा, अनुभागबंध से प्रदेशबंध और उसके कारणभूत योगस्थान सिद्ध होते हैं। क्यों ? क्योंकि प्रदेशों के बिना अनुभाग बंध नहीं हो सकता है। वे कर्मप्रदेश जघन्य वर्गणा में बहुत होते हैं, उससे ऊपर प्रत्येक वर्गणा के प्रति विशेष हीन, अर्थात् अनन्तवें भाग से हीन होते जाते हैं और भागहार के आधे प्रमाण दूर जाकर दुगने हीन अर्थात् आधे रह जाते हैं। इस प्रकार यह क्रम अंतिम वर्गणा तक ले जाना चाहिए।

इस प्रकार प्रकृतिबंध और स्थितिबंध के द्वारा यहाँ चारों ही बंध प्ररूपित हो जाते हैं।

शंका—किन परिणामों से कैसा अनुभाग होता है ?

समाधान—कहते हैं—

सातावेदनीयादि शुभ प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभागबंध विशुद्ध परिणामों से होता है और असातावेदनीयादि अशुभ (पाप) प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभागबंध संक्लेश परिणामों से होता है तथा इनसे विपरीत परिणामों से जघन्य अनुभागबंध होता है अर्थात् शुभ प्रकृतियों का संक्लेश परिणामों से और अशुभ प्रकृतियों का विशुद्ध परिणामों से जघन्य अनुभागबंध होता है। इस प्रकार सभी प्रकृतियों का अनुभाग बंध जानना। मंदकषायरूप तो विशुद्ध परिणाम तथा तीव्र कषायरूप संक्लेश परिणाम होते हैं।

पूर्वकथित ४२ पुण्य प्रकृतियों का तीव्र अनुभागबंध विशुद्धतारूप उत्कृष्ट परिणाम वाले जीव के होता है और असातादि ८२ अशुभ प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभागबंध तीव्र संक्लेश परिणाम वाले मिथ्यादृष्टि जीव के होता है॥१६३-१६४॥

अनुभागबंध का लक्षण घातिका कर्मों में शक्तिरूप से दिखाते हैं—

घातिकाकर्मों की शक्ति (स्पर्धक) लता, काष्ठ, हड्डी और पाषाण के समान है तथा दारुभाग के अनन्तवें भाग पर्यन्त शक्तिरूप स्पर्धक देशघाति हैं। शेष बहुभाग से शैलभाग पर्यन्त स्पर्धक सर्वघाति हैं॥१८०॥

देसोत्ति हवे सम्मं तत्तो दारूअणंतिमे मिसं।
 सेसा अणंतभागा अट्टिसिलाफड्डया मिच्छे।।१८१।।
 अवसेसा पयडीओ अघादिया घादियाण पडिभागा।
 ता एव पुण्णपावा सेसा पावा मुणेयव्वा^१।।१८३।।

प्रशस्ताप्रशस्ताघातिकर्मणां शक्तयः कथ्यन्ते —

गुडखंडसक्करामियसरिसा सत्था हु णिंबकंजीरा।
 विसहालाहलसरिसाऽसत्था हु अघादिपडिभागा^२।।१८४।।

भावार्थ — ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तरायरूप घातियाकर्मों की शक्ति (स्पर्धक) लता, दारु, अस्थि, शैल की उपमा के समान चार प्रकार की है। जिस प्रकार लता आदि में क्रम से अधिक-अधिक कठोरता पाई जाती है, उसी प्रकार इन कर्मस्पर्धक अर्थात् कर्मवर्गणा के समूहों में अपने फल देने की शक्तिरूप अनुभाग क्रम से अधिक-अधिक पाया जाता है।

दर्शनमोहनीय कर्म के लता भाग से दारुभाग के अनन्तभागों में से एक भाग पर्यन्त देशघाति के सभी स्पर्धक सम्यक्त्वप्रकृतिरूप हैं तथा दारुभाग के एकभाग बिना शेष बहुभाग के अनन्तखण्ड करके उनमें से अधस्तन एकखण्ड प्रमाण भिन्न जाति के सर्वघातिस्पर्धक मिश्रप्रकृतिरूप जानना और शेष दारुभाग के बहुभाग में एकभाग बिना बहुभाग से अस्थिभाग — शैल भाग पर्यन्त जो स्पर्धक हैं वे सर्वघातिमिथ्यात्वरूप जानना।

विशेषार्थ — माना कि दर्शनमोहनीय कर्म की अनुभाग शक्ति के स्पर्धक १२० हैं और अनन्त की संख्या ४ मानो, लताभाग की शक्ति के स्पर्धक ८, दारुभाग के स्पर्धक १६, अस्थिभाग के स्पर्धक ३२ तथा शैलभाग के स्पर्धक ६४ हैं। अर्थात् $८+१६+३२+६४=१२०$ ये दर्शनमोहनीयकर्म की अनुभागशक्ति के स्पर्धक हैं। इनमें से मिथ्यात्वप्रकृति को कितना भाग मिलेगा ? मिश्र को कितना मिलेगा ? सम्यक्त्वप्रकृति को कितना भाग मिलेगा ? लता भाग के ८ +दारुभाग का अनन्तवाँ भाग अर्थात् $१६÷४=४$ इस प्रकार $८+४=१२$ भाग सम्यक्त्वप्रकृति को मिलेंगे। मिश्रप्रकृति को दारुभाग के $१६-४=१२$ भाग जो शेष था उसका अनन्तवाँ भाग अर्थात् $१२÷४=३$ भाग। मिथ्यात्वप्रकृति के दारुभाग में से ९ भाग बचे तथा अस्थिभाग की अनुभागशक्ति के स्पर्धक ३२ व शैल भाग के स्पर्धक ६४ मिलाकर $९+३२+६४=१०५$ स्पर्धक मिलेंगे।

शेष अघातिया कर्म की प्रकृतियाँ घातिया कर्मों के समान प्रतिभागयुक्त हैं इनके स्पर्धक भी तीन भावरूप ही परिणत होते हैं। इन अघातिया कर्मों की प्रकृतियाँ पुण्य व पापरूप होती हैं। शेष घातिया कर्मों की प्रकृतियाँ पापरूप ही होती हैं।।१८१।।

आगे प्रशस्त और अप्रशस्त अघातिया कर्मों की शक्ति को कहते हैं —

अघातिया कर्मों की प्रशस्त प्रकृतियों में शक्ति (स्पर्धक) के भेद गुड़, खाण्ड, शर्करा (मिश्री) और अमृत के समान हैं। इनमें क्रम से अधिक-अधिक मिठास है तथा अप्रशस्त प्रकृतियों के निम्ब, काज्जीर, विष और हलाहल के समान अनुभाग हैं।।१८४।।

विशेषार्थ — अघातिया कर्मों की प्रशस्त प्रकृतियों के प्रतिभाग अर्थात् शक्ति के भेद गुड़, खाण्ड, शर्करा (मिश्री) और अमृत के समान हैं। जैसे गुड़, खाण्ड, शर्करा (मिश्री) और अमृत एक-दूसरे से अधिक-

अधुना मनाक्प्रदेशबंधो निरूप्यते —

एयक्खेत्तोगाढं सव्वपदेसेहिं कम्मणो जोगं।

बंधदि सगहेदूहिं य अणादियं सादियं उभयं१॥१८५॥

अयं जीवः मिथ्यात्वादिनिमित्तेन एकस्मिन् समये कर्मरूपपरिणमनयोग्यपरमाणून् गृहीत्वा कर्मरूपेण परिणामयति तस्य समयप्रबद्धमिति संज्ञा। तस्य समयप्रबद्धस्य प्रमाणं कथ्यते —

सयलरसरुवगंधेहिं परिणदं चरमचदुहिं फासेहिं।

सिद्धादोऽभव्वादोऽणंतिम भागं गुणं दव्वं२॥१९१॥

एकस्मिन् समये गृहीतसमयप्रबद्धं अष्टविधमूलप्रकृतिरूपं परिणमति।

उक्तं च३ —

आउगभागो थोवो णामागोदे समो तदो अहियो।

घादितियेवि य तत्तो मोहे तत्तो तदो तदिये॥१९२॥

अधिक सुख के कारण यानि मिष्ट हैं उसी प्रकार गुड़भाग, खाण्डभाग, शर्कराभाग और अमृतभागरूप प्रशस्त प्रकृति के स्पर्धक अधिक-अधिक सांसारिक सुख के कारण हैं तथा अप्रशस्त प्रकृतियों के प्रतिभाग निम्ब, काञ्जीर, विष और हलाहल विष के समान हैं। जिस प्रकार निम्ब, काञ्जीर, विष और हलाहल एक दूसरे की अपेक्षा अधिक-अधिक कटु हैं। उसी प्रकार निम्बभाग, काञ्जीर भाग, विषभाग व हलाहल भागरूप अप्रशस्त प्रकृतियों के स्पर्धक दुःख के कारण हैं।

यहाँ प्रशस्त प्रकृतियाँ ४२ और अप्रशस्त प्रकृतियाँ ३७ हैं। वर्णादि चार प्रकृतियाँ प्रशस्त और अप्रशस्त दोनों रूप से गिनी गई हैं। प्रशस्त प्रकृति गुड़, खाण्ड, शर्करा व अमृत या गुड़, खाण्ड, शर्करा अथवा गुड़ व अन्य, इन तीन भावरूप तथा अप्रशस्त प्रकृतियाँ निम्ब, काञ्जीर, विष, हलाहल या निम्ब, काञ्जीर, विष अथवा निम्ब, काञ्जीर इन तीन भावरूप परिणत होती हैं।

अब किंचित् प्रदेशबंध का निरूपण करते हैं —

एकक्षेत्र में अवगाहनरूप से स्थित और कर्मरूप परिणमन के योग्य अनादि अथवा सादि या उभयरूप जो पुद्गलद्रव्य हैं उसे यह जीव सर्वप्रदेशों से अपने-अपने निमित्त से बांधता है॥१८५॥

भावार्थ — कर्मरूप पुद्गलों का आत्मप्रदेशों के साथ संश्लेषसंबंध होना प्रदेशबंध कहलाता है। यहाँ सूक्ष्म निगोदिया जीव की घनाङ्गुल के असंख्यातवें भाग जघन्यरूप अवगाहना को एक जघन्य क्षेत्र जानना चाहिए।

यह जीव मिथ्यात्वादि के निमित्त से एक समय में कर्मरूप से परिणमन योग्य परमाणुओं को ग्रहण करके कर्मरूप से परिणमन कराता है उसकी 'समयप्रबद्ध' यह संज्ञा है। उस समयप्रबद्ध का प्रमाण कहते हैं —

वह समयप्रबद्ध पाँच प्रकार रस, पाँच प्रकार वर्ण, दो प्रकार गंध तथा स्पर्श के आठ भेदों में से चार गुणों से सहित परिणमता हुआ सिद्धराशि के अनन्तवें भाग अथवा अभव्यराशि से अनन्तगुणा कर्मरूप पुद्गलरूप जानना अर्थात् इतने परमाणुओं के समूहरूप वर्गणा को ग्रहण कर प्रतिसमय कर्मरूप करता है॥१९१॥

एक समय में ग्रहण किया गया 'समयप्रबद्ध' आठ प्रकार के मूल प्रकृतिरूप से परिणमन करता है।

गोम्मटसार कर्मकांड में कहा भी है —

सभी मूलप्रकृतियों में आयुर्कर्म का भाग स्तोक है, नाम व गोत्रकर्म का भाग आपस में समान है तो भी आयुर्कर्म के भाग से अधिक है। अन्तराय, ज्ञानावरण और दर्शनावरण इन तीन घातिया कर्मों का भाग आपस

सुहृदुक्खणिमित्तादो बहुणिज्जरगोत्ति वेयणीयस्स।
 सव्वेहिंतो बहुगं दव्वं होदित्ति णिदिट्ठं॥१९३॥
 सेसाणं पयडीणं ठिदिपडिभागेण होदि दव्वं तु।
 आवलिअसंखभागे पडिभागे होदि णियमेण॥१९४॥
 बहुभागे समभागो अट्ठहं होदि एक्कभागमिह।
 उत्तकमो तत्थवि बहुभागो बहुगस्स देओ दु९॥१९५॥

जीवतत्त्वप्रदीपिकाटीकायां —

आयुःकर्मणो भागः स्तोकः। नामगोत्रयोः परस्परं समानोऽपि ततोऽधिकः। अन्तरायदर्शनज्ञानावरणेषु तथा समानोऽपि ततोऽधिकः। ततो मोहनीयेऽधिकः, ततो वेदनीयेऽधिकः। एवं भक्त्वा दत्ते सति मिथ्यादृष्टौ आयुश्चतुर्विधं। सासादने नारकं नेति त्रिविधं। असंयते तैरश्रमपि नेति द्विविधम्। देशसंयतादित्रये एकं देवायुरेव। उपर्यनिवृत्तिकरणान्तेषु सप्तविधमूलप्रकृतीनां प्रदेशबंधः सूक्ष्मसांपराये षष्ठां उपशान्तादित्रये एकाया उदयात्मिकायाः।

अथ वेदनीयस्य सर्वतः आधिक्ये कारणमाह —

में समान है तो भी नाम व गोत्र कर्म से अधिक है इससे अधिक मोहनीयकर्म का है तथा मोहनीय कर्म से भी अधिक वेदनीय कर्म का है।

वेदनीयकर्म संसारी जीवों को सुख-दुःख का कारण है अतः इसकी निर्जरा अधिक होती है। इसी कारण अन्य मूलकर्मों से अधिक भागरूपद्रव्य वेदनीयकर्म को मिलता है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है॥१९३॥

वेदनीयकर्म के बिना सर्व मूलप्रकृतियों के द्रव्य का स्थिति के अनुसार विभाग होता है। जिनकी स्थिति अधिक है उनको अधिक तथा जिनकी स्थिति कम है, उनको कम हिस्सा मिलता है। समान स्थिति वाले कर्म में समानरूप से द्रव्य का बंटवारा होता है तथा इसके विभाग करने में प्रतिभागहार नियम से आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण समझना चाहिए॥१९४॥

बहुभाग के समान भाग करके आठ प्रकृतियों को देना और शेष एक भाग में पहले कहे हुए क्रम से आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देते जाना। उसमें भी जो बहुत द्रव्य वाला हो उसको बहुत देना इस प्रकार अन्तर्पर्यन्त प्रतिभाग करते जाना॥१९५॥

‘जीवतत्त्वप्रदीपिका’ टीका में कहा है —

आयु कर्म का भाग सबसे कम है। नाम और गोत्र का परस्पर में समान है और आयु से अधिक है। अंतराय, दर्शनावरण, ज्ञानावरण परस्पर में समान हैं तथा इनका भाग (हिस्सा) नाम, गोत्र से अधिक है। इससे अधिक मोहनीय का है और इससे अधिक वेदनीय का है। इस प्रकार भाग करने पर मिथ्यादृष्टियों में चारों आयु हैं। सासादन में नरकायु के बिना तीन आयु हैं। असंयत में तिर्यच के बिना दो आयु हैं। देशसंयत आदि तीन गुणस्थानों में एक देवायु ही है। ऊपर अनिवृत्तिकरण पर्यंत गुणस्थानों में सात प्रकार की मूल प्रकृतियों का प्रदेशबंध है। सूक्ष्मसाम्पराय में छह प्रकृतियों का, उपशांत आदि तीन गुणस्थानों में उदयात्मक एक प्रकृति का प्रदेश बंध है।

यहाँ वेदनीय का सबसे अधिक भाग का कारण कहते हैं —

वेदनीयस्य सुख-दुःखनिमित्तत्वात् बहुकं निर्जरयति इति हेतोः, सर्वप्रकृतिभागद्रव्यात् बहुकं द्रव्यं भवतीति निर्दिष्टम्।

अथ शेषाणां स्थित्यनुसारिद्रव्यविभञ्जनमित्याह —

शेष सर्वमूलप्रकृतीनां स्थितिप्रतिभागेन द्रव्यं भवति। तु — पुनः तत्राधिकागमननिमित्तं प्रतिभागहारः आवल्यसंख्येयभागो नियमेन। भागहारान्तरनिवृत्त्यर्थं नियमवचनम्। अत्रापि विशेषो जीवतत्त्वप्रदीपिका-टीकायां द्रष्टव्योऽस्ति।

कश्चिदाह — अस्मिन् सूत्रग्रन्थे सत्त्वोदयोदीरणाः किं न प्ररूपिताः ?

उच्यते — नैष दोषः, बंधप्ररूपणातः तासामपि प्ररूपणासिद्धेः। बंधश्चैव बंधद्वितीयसमयप्रभृति सत्त्वकर्म उच्यते यावत् क्षपणस्यान्तिमसमय इति। स एव बंधः बंधावलिकातिक्रान्तः अपकर्षणं कृत्वा उदये संक्षुभ्यमानः उदीरणा भवति। स एव द्विसमयाधिकबंधावलिकायां व्यतीतायां निषेकस्थितिक्षेपेण उदये पतमानः उदयसंज्ञितः भवति इति।

एकैकस्याः प्रकृतेः प्रकृतिबंधः स्थितिबंधः अनुभागबंधः प्रदेशबंधश्चेति चतुर्विधो बंधः। तत्र एकैकः चतुर्विधः — उत्कृष्टः, अनुत्कृष्टः जघन्योऽजघन्यश्चेति। एतैः षोडशभिः सर्वबंधप्रकृतीनां गुणिता अशीत्या ऊना द्विसहस्रबंधविकल्पाः भवन्ति (१९२०)। एवमुदयोदीरणसत्त्वानामपि भेदाः प्ररूपयितव्याः। तेषां प्रमाणमिदं २३६८।२३६८।२३६८। त्रिवारं द्विसहस्रत्रिशत-अष्टषष्टिः भवन्ति।

वेदनीय कर्म का सुख-दुःख में निमित्त होने से उसकी निर्जरा बहुत होती है, इसलिए सर्वप्रकृतियों के भाग की अपेक्षा इसका द्रव्य बहुत है ऐसा परमागम में निर्दिष्ट है।

शेष प्रकृतियों का स्थिति के अनुसार द्रव्य में विभाजन होता है — शेष सभी मूल प्रकृतियों का स्थिति के प्रतिभाग से द्रव्य होता है। पुनः उनमें अधिक आने का निमित्त प्रतिभागहार आवली के असंख्यातभाग निश्चित है। भागहार के अन्तर को दूर करने के लिए नियम वचन है।

यहाँ भी विशेष विवरण जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका में देखना चाहिए।

शंका — यहाँ पर सत्त्व, उदय और उदीरणा, इन तीनों का प्ररूपण क्यों नहीं किया ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि बंध की प्ररूपणा से उनकी अर्थात् सत्त्व, उदय और उदीरणा की भी प्ररूपणा सिद्ध हो जाती है। वह इस प्रकार है — बंध ही बंधने के दूसरे समय से लेकर निर्लेपन अर्थात् क्षपण होने के अंतिम समय तक सत्कर्म या सत्त्व कहलाता है। वही बंध बंधावली के अर्थात् बंधने की आवली के व्यतीत होने पर अपकर्षण कर जब उदय में संक्षुभ्यमान किया जाता है, तब वह उदीरणा कहलाता है। वही बंध दो समय अधिक बंधावली के व्यतीत हो जाने पर स्थिति के अर्थात् निषेकस्थिति के क्षय से उदय में पतमान अर्थात् गिरता हुआ 'उदय' इस संज्ञा वाला होता है। इस प्रकार बंध की प्ररूपणा से सत्त्व, उदय और उदीरणा की भी प्ररूपणा सिद्ध हो जाती है।

एक-एक प्रकृति का प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध और प्रदेशबंध, इस प्रकार चार तरह का बंध होता है। उनमें वह एक-एक बंध भी उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य के भेद से चार प्रकार का होता है। इन सोलह भेदों के द्वारा सर्वबंध प्रकृतियों को गुणित करने पर (१२०×१६=१९२०) अस्सी कम दो हजार बंध के भेद हो जाते हैं। इसी प्रकार उदय, उदीरणा और सत्ता के भी भेद प्ररूपित करना चाहिए। उनका प्रमाण यह है —

उदय के विकल्प १४८×१६=२३६८

तेषां सर्वसमासः चतुर्विंशत्यधिकनवसहस्राणि (१०२४) भवन्ति।

संक्षेपेण एताः कथिताः।

कर्मणां सत्त्वविषये मनाक्विशेषः कथ्यते —

तित्थाहारा जुगवं सत्त्वं तित्थं ण मिच्छगादिति।

तस्सत्तकम्मियाणं तग्गुणठाणं ण संभवदि।।३३३।।

चत्तारि वि खेत्ताइं आउगबंधेण होइ सम्मत्तं।

अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं।।३३४।।

णिरयतिरिक्खसुराउगसत्ते ण हि देससयलवदखवगां।

येषां आहारद्विकतीर्थकरप्रकृतीनां सत्त्वं युगपदस्ति ते मिथ्यादृष्टयो न भवन्ति। तिसृणां प्रकृतीनां कस्याश्चित् सत्त्वे सति सासादनं न भवति। तीर्थकरप्रकृतिसत्त्वे सति मिश्रगुणस्थानं न संभवति। चतुर्गतिषु कस्यचिदपि आयुषः बंधे सति सम्यक्त्वं संभवति। किंतु देवायुर्बन्धव्यतिरेकेण त्रयाणामायुषां कस्यचिदपि बन्धकस्य अणुव्रतमहाव्रतानि न भवितुं शक्नुवन्ति, किंच तत्र व्रतानां कारणभूतविशुद्धपरिणामाभावात्।

नरकायुःसत्त्वे देशव्रतानि, तिर्यगायुःसत्त्वे महाव्रतानि, देवायुःसत्त्वे च क्षपकश्रेणी न भवन्ति।

उदीरणा के विकल्प $१४८ \times १६ = २३६८$

सत्ता के विकल्प $१४८ \times १६ = २३६८$

इन सबका जोड़ $१९२० + २३६८ + २३६८ + २३६८ = १०२४$ होता है।

संक्षेप में यह कहा गया है।

अब कर्मों के सत्त्व के विषय में किंचित् कहते हैं —

मिथ्यात्व आदि तीन गुणस्थान में जिसके तीर्थकरप्रकृति का सत्त्व है उसके आहारकद्विक का सत्त्व नहीं होता है तथा जिसके आहारकद्विक का सत्त्व होता है उसके तीर्थकर प्रकृति का सत्त्व नहीं है।।३३३।।

चारों ही गतियों में किसी भी आयु का बंध होने पर सम्यक्त्व होता है, किन्तु देवायु के बिना अन्य तीन आयु का बंध करने वाला अणुव्रत-महाव्रत धारण नहीं कर सकता।।३३४।।

जिसके आहारकद्विक और तीर्थकरप्रकृति का युगपत् सत्त्व पाया जाता है उसके मिथ्यात्वगुणस्थान नहीं होता है। अतः मिथ्यात्वगुणस्थान में एक जीव की अपेक्षा आहारकद्विक और तीर्थकरप्रकृति का युगपत् सत्त्व न होकर एक का ही सत्त्व रहता है तथा नाना जीवों की अपेक्षा दोनों का सत्त्व पाया जाता है। इस प्रकार मिथ्यात्वगुणस्थान में १४८ प्रकृतियों का सत्त्व नाना जीवों की अपेक्षा होता है। सासादनगुणस्थान में एक जीव अथवा नाना जीवों की अपेक्षा क्रम से या युगपत् तीर्थकर और आहारकद्विक का सत्त्व नहीं होने से १४५ प्रकृति सत्त्वयोग्य हैं। मिश्र गुणस्थान में एक तीर्थकरप्रकृति का सत्त्व न होने से १४७ प्रकृति का सत्त्व है, क्योंकि इन प्रकृतियों का जिनके सत्त्व पाया जावे, उनके वह गुणस्थान नहीं होता।

चारों गतियों में किसी भी आयु के बंध होने पर सम्यक्त्व संभव है, किन्तु देवायु के बंध के बिना तीन आयु में से किसी भी आयु का बंध हो जाने पर उस जीव के अणुव्रत और महाव्रत होना शक्य नहीं है, क्योंकि वहाँ व्रतों के कारणभूत विशुद्ध परिणामों का अभाव है।

नरकायु की सत्ता होने पर देशव्रत, तिर्यचायु की सत्ता होने पर महाव्रत और देवायु की सत्ता होने पर क्षपकश्रेणी पर आरोहण नहीं होते हैं।

संप्रति कर्मणां उदयविषये कश्चित् विशेषः उच्यते —

आहारकद्वयस्य प्रमत्तगुणस्थाने उदयो भवति, तीर्थकरप्रकृतेरुदयोऽर्हद्भगवतोः सयोगिअयोगिकेवलिनोः भवति, मिश्रप्रकृतेरुदयः तृतीयगुणस्थाने, सम्यक्त्वप्रकृतेरुदयः असंयताद्यप्रमत्तगुणस्थानेषु चतुःषु, आनुपूर्विकर्मणां उदयः मिथ्यात्व-सासादन-असंयतगुणस्थानेषु भवति। सासादनः नरकगतिं न गच्छति अतः तस्य नरकानुपूर्विकर्मणः उदयो नास्ति, शेषसर्वप्रकृतीनां उदयः मिथ्यात्वादिगुणस्थानेषु स्व-स्वगुणस्थानेषु उदयस्थानान्तसमय इति ज्ञातव्यं भवति।

अत्र मनाग् विशेष उच्यते — अयोगिकेवलिनामन्तसमये वेदनीयस्य काचिदेका प्रकृतिः, मनुष्यगति-पंचेन्द्रियजाति-सुभग-त्रस-बादर-पर्याप्त-आदेय-यशःकीर्ति-मनुष्यायुः-उच्चगोत्रतीर्थकरनामप्रकृतयश्च उदयेन व्युच्छिन्ना भवन्ति।

एतच्छ्रुत्वा कश्चिदाह — यथा अन्यगुणस्थानेषु सातासातयोः उदयेन इन्द्रियजन्यसुखदुःखे भवतः, तथैव केवलिभगवतामपि सातासातयोरुदयेन सुखं दुःखं परीषहोपसर्गादिकं च भवेत् ?

आचार्यः प्राह — नैतत् संभवति।

उक्तं च — श्रीनेमिचंद्रसिद्धान्तचक्रवर्तिदेवेन —

णट्ठा य रायदोसा इंदियणाणं च केवलिमिह जदो।

तेण दु सादासादज-सुहदुक्खं णत्थि इंदियजं।।२७३।।

समयट्टिदिगो बंधो सादस्सुदयप्पिगो जदो तस्स।

तेण असादस्सुदओ सादसरूवेण परिणमदि।।२७४।।

नरक, तिर्यच तथा देवायु का सत्त्व होने पर क्रम से देशव्रत-महाव्रत और क्षपकश्रेणी नहीं होती है।

अब कर्मों के उदय के विषय में कुछ विशेष कहते हैं —

आहारकद्वय का उदय प्रमत्तगुणस्थान में होता है। तीर्थकर प्रकृति का उदय अर्हत भगवान् के सयोगी-अयोगी केवली गुणस्थानों में होता है। मिश्र प्रकृति का उदय तीसरे गुणस्थान में, सम्यक्त्व प्रकृति का उदय असंयत गुणस्थान से लेकर अप्रमत्त पर्यंत चारों गुणस्थानों में होता है। आनुपूर्वी का उदय मिथ्यात्व, सासादन, असंयतगुणस्थानों में होता है। सासादन नरकगति में नहीं जाता है अतः उसके नरकानुपूर्वी कर्म का उदय नहीं है। शेष सर्वप्रकृतियों का उदय मिथ्यात्व आदि गुणस्थानों में अपने-अपने गुणस्थानों के उदय स्थान के अन्त समय तक रहत है, ऐसा जानना।

यहाँ कुछ विशेष कहते हैं —

अयोगिकेवलियों के अंत समय में वेदनीय की कोई एक प्रकृति, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशकीर्ति, मनुष्यायु, उच्चगोत्र और तीर्थकर ये प्रकृतियाँ उदय से व्युच्छिन्न होती हैं।

ऐसा सुनकर कोई कहते हैं —

शंका — जैसे अन्य गुणस्थानों में साता-असाता के उदय से इन्द्रियजन्य सुख-दुःख होते हैं, वैसे ही केवली भगवन्तों के भी साता या असाता के उदय से सुख-दुःख तथा परिषह और उपसर्ग आदि होवें, क्या बाधा है ?

समाधान — आचार्य देव कहते हैं — ऐसा संभव नहीं है।

श्री नेमिचंद्र सिद्धान्त चक्रवर्ती देव ने कहा है —

केवली भगवान् के घातिया कर्मों का नाश हो जाने से राग के कारणभूत चार प्रकार की माया, चार प्रकार का लोभ, तीनवेद, हास्य-रति तथा द्वेष के कारणभूत चार प्रकार का क्रोध, चार प्रकार का मान, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा का निर्मूल नाश हो गया है अतः इनका राग-द्वेष नष्ट हो चुका है तथा युगपत् सकलतत्त्वप्रकाशी ज्ञान में क्षयोपशमरूप परोक्ष मतिज्ञान और श्रुतज्ञान नहीं हो सकते इसलिए इन्द्रियजनित

एदेण कारणेण दु सादस्सेव दु णिरंतरो उदओ।

तेणासादणिमित्ता परीसहा जिणवरे णत्थि।।२७५।।

अतएव केवलानां भगवतां अतीन्द्रियसुखत्वेन सांसारिकसुखं दुःखं वा रोगशोकपरीषहोपसर्गादीन् वा न संभवति तेषामव्याबाधमनन्तसुखमेवेति ज्ञातव्यं।

षष्ठ्यां चूलिकायां उत्कृष्टस्थितिबंधप्ररूपणा कृता, अस्यां सप्तम्यां चूलिकायां जघन्यस्थितिबंधप्ररूपणा कृता। जघन्यस्थितिबंधादुपरितनादारभ्य उत्कृष्टादधस्तनेषु मध्ये ये केचिदपि भेदाः ते सर्वे मध्यमस्थितिबंधानामेव ज्ञातव्याः।

एनं जघन्यस्थितिबंधं पठित्वा एतादृशी भावना भावयितव्या यत् अपूर्वकरणादारभ्य सूक्ष्मसांपरायपर्यंतानां महायतीनां तीर्थकरप्रकृत्यादीनां जघन्यस्थितिबंधः कथितः स कदा मे भवेदिति अस्मिन् श्रीवरदत्तवरांगसागर-दत्तादिसार्धत्रयकोटिमहामुनीनां सिद्धक्षेत्रे तारंगानामध्ये मया चिन्त्यते, किंच सिद्धभूमिं वंदित्वा सिद्धपदस्यैव

ज्ञान नष्ट हो गया, इसी कारण केवली के साता और असातावेदनीय के उदय से सुख-दुःख नहीं है, क्योंकि सुख-दुःख इन्द्रियजनित हैं तथा वेदनीय के सहकारी कारण मोहनीय का अभाव हो गया है अतः वेदनीय के उदय होने पर भी वह सुख-दुःख देने रूप कार्य करने में असमर्थ है।।२७३।।

केवली भगवान के सातावेदनीय का बंध एक समय की स्थिति वाला है। अतः उदयरूप ही है तथा केवली के असातावेदनीय का उदय सातारूप से परिणत होता है।।२७४।।

केवली के निरन्तर साता का ही उदय है, क्योंकि असाता के उदय से होने वाले (क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, निषद्या, रोग, तृणस्पर्श और मल) परीषह नहीं होते हैं।।२७५।।

विशेषार्थ — केवली भगवान के अनन्तगुणीहीन अनुभागशक्ति वाली असाता का उदय है, क्योंकि पूर्व में अनेकों अनुभागकाण्डकों के द्वारा असाता वेदनीय की अनुभागशक्ति क्षीण की जा चुकी है और मोहनीय की सहायता का भी अभाव हो गया है अतः असातावेदनीय का अप्रकट — सूक्ष्म उदय है तथा जो सातावेदनीय का बंध होता है उसका अनुभाग अनन्तगुणा है। सातावेदनीय की स्थिति की अधिकता संक्लेश से एवं अनुभाग की अधिकता विशुद्धता से होती है अतः केवली के विशुद्धता विशेष होने से स्थिति का अभाव है तथापि जो एक समय की स्थितिसहित अनन्त अनुभाग वाला बंध हो रहा है, वह उदयरूप ही जानना। चूँकि केवली के सातावेदनीय का अनुभाग अनन्तगुणा होता है अतः जो असाता का उदय है, वह भी उदयागत अनुभागयुक्त सातावेदनीय के द्वारा प्रतिहत हो जाता है।

इसलिए केवली भगवन्तों के अतीन्द्रिय सुख होने से सांसारिक सुख अथवा दुःख या रोग, शोक, परिषह, उपसर्ग आदि संभव नहीं है, क्योंकि उनके अव्याबाध अनंत सुख ही सुख है।

छठी चूलिका में उत्कृष्ट स्थितिबंध की प्ररूपणा की गई। इस सातवीं चूलिका में जघन्य स्थितिबंध की प्ररूपणा की गई है। जघन्य स्थितिबंध के ऊपर से प्रारंभ कर उत्कृष्ट से नीचे के मध्य में जितने भी भेद हैं, वे सब मध्यम स्थिति बंध ही हैं, ऐसा जानना चाहिए।

इस जघन्य स्थितिबंध को पढ़कर ऐसी भावना करना चाहिए कि — अपूर्वकरण से लेकर सूक्ष्मसांपरायपर्यंत महासाधुओं के तीर्थकर प्रकृति आदि का जघन्य स्थितिबंध कहा गया है, वह मेरे कब होगा।

इस तारंगा नाम के सिद्धक्षेत्र पर श्री वरदत्त, वरांग, सागरदत्त आदि साढ़े तीन करोड़ मुनियों को नमस्कार करके मेरा यह चिंतन चल रहा है, क्योंकि हम सभी भव्यों को सिद्धभूमि की वंदना करके सिद्धपद

याचना विधातव्या अस्माभिर्भव्यपुंगवैरिति।

वरदत्तो य वरंगो, सागरदत्तो य तारवरणयरे।

आउट्टयकोडीओ, णिव्वाणगया णमो तेसिं।।

श्रीवरदत्तवरांगसागरदत्तादयः सार्धत्रयकोटिमुनिवराः तारवरनगरे वर्तमानकाले तारंगानामध्ये पर्वते शुक्लध्यानाग्निना अघातिकर्माणि निर्मूल्य निर्वाणं गताः। अद्य त्रयोविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे वीराब्दे पौषशुक्लासप्तम्यां तिथौ अत्र पावननिर्वाणक्षेत्रे आगत्य तान् सिद्धपदप्राप्तान् सिद्धपरमेष्ठिनः पुनः पुनः नमस्कृत्य एषा सप्तमी चूलिका मया पूर्यते ज्ञानावरणकर्मणां जघन्यस्थितिकरणार्थं क्षपणार्थं चेति।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे षष्ठग्रन्थे श्रीमद्भूतबलि-
सूरिविरचितजीवस्थानचूलिकायां श्रीवीरसेनाचार्यकृतधवलाटीकाप्रमुखनानाग्रन्थाधारेण
विरचितायां विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यः चारित्रचक्रवर्तिश्रीशांतिसागरः
तस्य प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागराचार्यः तस्य शिष्या जंबूद्वीप रचना
प्रेरिका गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिंतामणिटीकायां जघन्य-
स्थितिबंध-चूलिकानाम सप्तमोऽधिकारः समाप्तः।

की ही याचना करना चाहिए।

श्री वरदत्त, वरांग, सागरदत्त आदि साढ़े तीन करोड़ मुनि तारवरनगर — तारंगा नाम के सिद्धक्षेत्र से निर्वाण गये हैं। उन सबको मेरा नमस्कार होवे॥

श्री वरदत्त, वरांग, सागरदत्त आदि साढ़े तीन करोड़ मुनिवर्यगण तारवर नगर से — वर्तमान में प्रसिद्ध तारंगा सिद्धक्षेत्र पर्वत से शुक्लध्यानरूपी अग्नि से अघाति कर्मों का निर्मूलन करके निर्वाण को प्राप्त हुए। आज वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ तेईस पौष शुक्ला सप्तमी तिथि में यहाँ पावन निर्वाण क्षेत्र पर आकर उन सिद्ध पद प्राप्त सिद्ध परमेष्ठियों को पुनः-पुनः नमस्कार करके ज्ञानावरण कर्म का जघन्य स्थितिबंध करने के लिए और पुनः क्षपण करने के लिए यह सातवीं चूलिका मेरे द्वारा पूर्ण की जा रही है।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान् पुष्पदन्त-भूतबलि प्रणीत षट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथम खंड में इस छठे ग्रंथ में श्रीमान् भूतबलि सूरि विरचित जीवस्थान चूलिका में श्री वीरसेनाचार्य-
कृत धवला टीका प्रमुख नाना ग्रंथों के आधार से विरचित बीसवीं शताब्दी के
प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर, उनके प्रथम शिष्य प्रथम
पट्टाधीश श्री वीरसागर आचार्य, उनकी शिष्या जम्बूद्वीप रचना
की पावन प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणि
टीका में जघन्य स्थितिबंध चूलिका नाम का
यह सातवाँ अधिकार पूर्ण हुआ।



सम्यक्त्वोत्पत्तिचूलिका

अष्टम चूलिकाधिकारः

मंगलाचरणं

अनुष्टुप्छंद—पुरुदेव! नमस्तुभ्यं, युगादिपुरुषाय ते।

इक्ष्वाकुवंशसूर्याय, वृषभाय नमो नमः॥१॥

येषां आदिब्रह्मणां श्रीऋषभदेवभगवतां जन्मजयंतीमहामहोत्सवः संपूर्णभारतवर्षे राष्ट्रीयस्तरेण क्रियते इति संकल्पमकार्षम्। तेषामेव भगवतां युगादितीर्थकराणां 'नवफुट' इति उत्तुंगपद्मासनप्रतिमा अत्र तारंगानामध्ये सिद्धक्षेत्रे स्थापयिष्यते। तेषां कृते अत्र भूमिपूजनं कृत्वा लघुकैलाशपर्वतनिर्माणार्थं रक्षायंत्रं स्थापितं, तेभ्यं श्रीऋषभदेवेभ्यः अस्माकमनन्तशो नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।

अथ षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे षष्ठग्रन्थे अष्टभिःस्थलैः षोडशसूत्रैः सम्यक्त्वोत्पत्तिचूलिकानाम अष्टमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले कीदृक्कालस्थितौ सत्यां प्रथमसम्यक्त्वं न लभते, लभते वा इति प्रश्नोत्तररूपेण "एवदिकाल" इत्यादिसूत्रत्रयं। ततः परं द्वितीयस्थले सः भव्यजीवः कीदृशो भवेत् इति प्रतिपादनत्वेन "सो पुण्य पंचिंदिओ" इत्यादिसूत्रद्वयं। तत्पश्चात् तृतीयस्थले प्रथमसम्यक्त्वमुत्पादयन् मिथ्यात्वस्य भागत्रयं करोति इति सूचनपरत्वेन "पढमसम्मत्तं" इत्यादिना सूत्रद्वयं। पुनश्च चतुर्थस्थले

सम्यक्त्वोत्पत्ति चूलिका

(आठवाँ चूलिका अधिकार)

मंगलाचरण

हे पुरुदेव! आपको नमस्कार हो, युगादिपुरुष, इक्ष्वाकु वंश के सूर्य, श्री ऋषभदेव भगवान आपके लिये बारम्बार नमस्कार हो, नमस्कार हो।

जिन आदिब्रह्मा श्री ऋषभदेव भगवान का जन्मजयंती महोत्सव सम्पूर्ण भारतवर्ष में राष्ट्रीय स्तर पर मनाया जावे ऐसा मैंने संकल्प किया, उन्हीं भगवान युग के आदि तीर्थकर ऋषभदेव की 'नव फुट' की उत्तुंग पद्मासन प्रतिमा यहाँ 'तारंगा' नाम के सिद्धक्षेत्र पर स्थापित की जायेंगी। उसके लिये यहाँ भूमिपूजन करके लघु कैलाश पर्वत निर्माण हेतु रक्षायंत्र मैंने स्थापित किया है। उन श्री ऋषभदेव को हमारा अनंत बार नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो।

इस षट्खण्डागम ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में, छठे ग्रन्थ में आठ स्थलों द्वारा, सोलह सूत्रों से सम्यक्त्वोत्पत्ति चूलिका नाम का आठवाँ अधिकार प्रारम्भ किया जा रहा है। उसमें प्रथम स्थल में कैसी काल की स्थिति के होने पर प्रथम सम्यक्त्व नहीं प्राप्त होता है या प्राप्त होता है इस प्रकार प्रश्नोत्तर के रूप में 'एवदिकाल' इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। पुनः आगे द्वितीय स्थल में वह भव्य जीव कैसा हो, इत्यादि प्रतिपादन रूप से 'सो पुण पंचिंदिओ' इत्यादि तीन सूत्र हैं। इसके बाद तृतीय स्थल में प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हुये मिथ्यात्व के तीन भाग करता है, इसको सूचित करते हुए 'पढमसम्मत्तं' इत्यादि दो सूत्र हैं। पुनः चौथे स्थल

१. मेरी प्रेरणा से यह श्री ऋषभदेव प्रतिमा वहाँ तारंगा तीर्थ पर स्थापित हो चुकी है एवं पंचकल्याणक प्रतिष्ठा भी सम्पन्न हो चुकी है।

प्रथमसम्यक्त्वमुत्पादयन् कदा कस्यां गत्यां इत्यादिकथनपरत्वेन “दंसण” इत्यादि सूत्रत्रयं। तदनंतरं पंचमस्थले क्षायिकसम्यक्त्वमुत्पादयन् भव्यः क्व उत्पादयति इत्यादिना विस्तरकथनत्वेन “दंसणमोहणीयं” इत्यादिना सूत्रत्रयं। तदनु षष्ठस्थले सम्यक्चारित्रं प्राप्नुवन् कीदृशीं स्थितिं करोति इति समाधानरूपेण “चारित्तं” इत्यादिसूत्रमेकं। तत्पश्चात् सप्तमस्थले संपूर्णं चारित्रं प्राप्नुवन् सन् घातिकर्मणां स्थितिमन्तर्मुहूर्तं करोति इति प्रतिपादनपरत्वेन “संपुण्णं” इत्यादि सूत्रमेकं। पुनरपि अष्टमस्थले अघातिकर्मणां स्थितिं कीदृशीं करोतीति निरूपणत्वेन “वेदणीयं” इत्यादिसूत्रमेकं इति समुदायपातनिका सूचिता भवति।

अधुना सम्यक्त्वोत्पत्तिकालनिषेधार्थं सूत्रमवतरति —

एवदिकालट्टिदिएहि कम्मेहि सम्मत्तं ण लहदि।।१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इदं देशामर्षकसूत्रं, तेन एतेषु कर्मषु जघन्यस्थितिबंधे उत्कृष्टस्थितिबंधजघन्योत्कृष्ट-स्थितिसत्त्वकर्मसु जघन्योत्कृष्टानुभागसत्त्वकर्मसु जघन्योत्कृष्टप्रदेशसत्त्वकर्मसु सम्यक्त्वं न प्रतिपद्यते इति गृहीतव्यम्।

अधुना जीवस्थानचूलिकायाः प्रथमसूत्रे ‘लभदि’ इतिपदस्य व्याख्याकरणार्थं प्रतिज्ञासूत्रमवतरति —

लभदि त्ति विभासा।।२।।

में प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हुये कब किस गति में इत्यादि को कहते हुए ‘दंसण’ इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनः पाँचवें स्थल में क्षायिक सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हुए ‘भव्य जीव कहाँ उत्पन्न करता है’ इत्यादि रूप से विस्तृत कथन करते हुये ‘दंसणमोहणीयं’ इत्यादि तीन सूत्र हैं। इसके बाद छठे स्थल में सम्यक्चारित्र को प्राप्त करते हुये कैसी स्थिति करता है, इसके समाधान रूप में ‘चारित्तं’ इत्यादि एक सूत्र है। इसके बाद सातवें स्थल में सम्पूर्ण चारित्र को प्राप्त करते हुये घातिया कर्मों की स्थिति अन्तर्मुहूर्त करता है ऐसा प्रतिपादन करते हुए ‘संपुण्णं’ इत्यादि एक सूत्र है। अनन्तर आठवें स्थल में अघातिया कर्मों की कैसी स्थिति करता है ऐसा निरूपण करते हुए ‘वेदणीयं’ इत्यादि रूप से एक सूत्र कहेंगे। इस प्रकार से यह समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब जो सम्यक्त्व की उत्पत्ति का काल नहीं है, उसको बतलाने के लिये सूत्र का अवतार होता है —
सूत्रार्थ —

इतने काल प्रमाण स्थिति वाले कर्मों के द्वारा जीव सम्यक्त्व को नहीं प्राप्त करता है।।१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यह देशामर्षक सूत्र है, इसलिये इन (पूर्व दो चूलिकाओं में उक्त) कर्मों के जघन्य स्थितिबंध होने पर, उत्कृष्ट स्थितिबंध होने पर, जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति सत्त्वकर्म अर्थात् स्थितिसत्त्व होने पर, जघन्य और उत्कृष्ट अनुभागसत्त्व होने पर तथा जघन्य और उत्कृष्ट प्रदेशसत्त्व होने पर जीव सम्यक्त्व को नहीं प्राप्त करता है, यह अर्थ ग्रहण करना चाहिये।

अब जीवस्थान की चूलिका के प्रथम सूत्र में ‘लभदि’ जो पद है, उसकी व्याख्या करने के लिये प्रतिज्ञा सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

प्रथम चूलिका का प्रथम सूत्र-पठित ‘लभति’ यह जो पद है, उसकी व्याख्या की जाती है।।२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यान् प्रकृति-स्थिति-अनुभाग-प्रदेशान् बध्नन् सन् यैः प्रकृति-स्थिति-अनुभाग-प्रदेशैः सत्त्वस्वरूपेण भवद्भिः उदीर्यमाणैः सम्यक्त्वं प्रतिपद्यते तेषां प्ररूपणा क्रियते इति प्रतिज्ञासूत्रमिदमिति।
संप्रति प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखो जीवः कीदृक्स्थितिं करोतीति प्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

एदेसिं चेव सव्वकम्माणं जावे अंतो कोडाकोडिट्ठिदिं बंधदि तावे पढमसम्मत्तं लभदि।।३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — एतेषां चैव सर्व कर्मणां यदा अंतःकोटाकोटिस्थितिं बध्नाति तदा अयं जीवः प्रथमोपशमसम्यक्त्वं लभ्यते। प्रथमसम्यक्त्वस्य प्राप्तयोग्यो जीवः उपचारेण 'प्रथमसम्यक्त्वं लभ्यते' इति प्ररूपितः। अर्थतः पुनः न लभ्यतेऽत्र, त्रिकरणचरमसमये सम्यक्त्वोत्पत्तेः।

एतेन सूत्रेण क्षयोपशमलब्धिः विशुद्धिलब्धिः देशनालब्धिः प्रायोग्यलब्धिः इति चतस्रो लब्धयः प्ररूप्यन्ते।

पूर्वसंचितकर्ममलपटलस्य अनुभागस्पर्धकानि यदा विशुद्ध्या प्रतिसमयमनन्तगुणहीनानि भूत्वा उदीर्यन्ते तदा क्षयोपशमलब्धिर्भवति।

प्रतिसमयमनन्तगुणहीनक्रमेण उदीरितानुभागस्पर्धकजनितजीवपरिणामः सातादिशुभकर्मबंधनिमित्तः असातादि-अशुभकर्मबंधविरुद्धः विशुद्धिः कथ्यते। तस्याः उपलब्धिर्विशुद्धिलब्धिर्नाम।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — जिन प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों को बाँधता हुआ, जिन प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों के द्वारा सत्त्वस्वरूप होते हुए और उदीरणा को प्राप्त होते हुए यह जीव सम्यक्त्व को प्राप्त करता है, उनकी प्ररूपणा की जाती है, इस प्रकार यह प्रतिज्ञासूत्र है।

अब प्रथम सम्यक्त्व के अभिमुख हुआ जीव कैसी स्थिति को करता है, ऐसा प्रतिपादन करने के लिये सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

इन ही सर्व कर्मों की जब अन्तःकोडाकोड़ी स्थिति को बाँधता है, तब यह जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्व को प्राप्त करता है।।३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इन सभी कर्मों की जब यह जीव अन्तःकोटाकोटी प्रमाण स्थिति को बाँधता है तब प्रथम सम्यक्त्व को प्राप्त करता है। प्रथमोपशमसम्यक्त्व के प्राप्त करने योग्य जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्व को प्राप्त करता है, यह बात उपचार से प्ररूपण की गई है परन्तु यथार्थ से यहाँ पर अर्थात् उक्त प्रकार की स्थिति होने पर, नहीं प्राप्त करता है, क्योंकि त्रिकरण अर्थात् अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण के अन्तिम समय में सम्यक्त्व की उत्पत्ति होती है। इस सूत्र के द्वारा क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि और प्रायोग्यलब्धि, ये चारों लब्धियाँ प्ररूपण की गई हैं। पूर्व संचित कर्मों के मलरूप पटल के अनुभागस्पर्धक जिस समय विशुद्धि के द्वारा प्रतिसमय अनन्तगुणहीन होते हुए उदीरणा को प्राप्त किए जाते हैं, उस समय क्षयोपशमलब्धि होती है। प्रतिसमय अनन्तगुणित हीन क्रम से उदीरित अनुभागस्पर्धकों से उत्पन्न हुआ, साता आदि शुभ कर्मों के बंध का निमित्तभूत और असाता आदि अशुभ कर्मों के बंध का विरोधी जो जीव का परिणाम है, उसे विशुद्धि कहते हैं। उसकी प्राप्ति का नाम विशुद्धिलब्धि है।

षड्द्रव्यनवपदार्थोपदेशो देशना नाम। तथा देशनया परिणताचार्यादीनामुपलंभः, देशितार्थस्य ग्रहण धारणविचारणशक्त्याः समागमश्च देशनालब्धिर्नाम।

सर्वकर्मणामुत्कृष्टस्थितिमुत्कृष्टानुभागं च घातयित्वा अन्तःकोटाकोटिस्थितौ द्विःस्थानीयानुभागे च अवस्थानकरणं प्रायोग्यलब्धिर्नाम। किंच एतेषु सत्सु करणयोग्यभावोपलंभात्।

सूत्रे काललब्धिश्चैव प्ररूपिता, तासु एतासां लब्धीनां कथं संभवः ?

नैतद् वक्तव्यं, प्रतिसमयमनन्तगुणहीनानुभागोदीरणायाः अनन्तगुणक्रमेण वर्द्धमानविशुद्धेः आचार्योपदेशोपलंभस्य च तत्रैव संभवात्।

एताः चतस्रोऽपि लब्धयः भव्याभव्यमिथ्यादृष्ट्योः साधारणाः, द्वयोरपि एतासां संभवात्।

उक्तं च — खयउवसमिय-विसोही देसणपाओग्ग-करणलब्धी य।

चत्तारि वि सामण्णा करणं पुण होइ सम्मत्ते^१।।

छह द्रव्यों और नौ पदार्थों के उपदेश का नाम देशना है। उस देशना से परिणत आचार्य आदि की उपलब्धि को और उपदिष्ट अर्थ के ग्रहण, धारण तथा विचारण की शक्ति के समागम को देशनालब्धि कहते हैं। सर्वकर्मों की उत्कृष्ट स्थिति और उत्कृष्ट अनुभाग को घात करके अन्तःकोटाकोटी स्थिति में और द्विःस्थानीय अनुभाग में अवस्थान करने को प्रायोग्यलब्धि कहते हैं क्योंकि इन अवस्थाओं के होने पर करण अर्थात् पाँचवीं करणलब्धि के योग्य भाव पाये जाते हैं।

विशेषार्थ — यहाँ पर अनुभाग को घात करके द्विस्थानीय अनुभाग में अवस्थान कहा है उसका अभिप्राय यह है कि घातिया कर्मों की अनुभाग शक्ति लता, दारू, अस्थि और शैल के समान चार प्रकार की होती है। अघातिया कर्मों में दो विभाग हैं — पुण्यप्रकृतिरूप और पापप्रकृतिरूप। पुण्यरूप अघातिया कर्मों की अनुभागशक्ति गुड़, खाण्ड, शक्कर और अमृत के समान होती है और पापरूप अघातिया कर्मों की अनुभागशक्ति नीम, कांजीर, विष और हलाहल के समान हीनाधिकता लिए होती है (देखें गो.क. गाथा १८-१८४)। प्रथमोपशमसम्यक्त्व के अभिमुख जीव प्रायोग्यलब्धि के द्वारा घातिया कर्मों के अनुभाग को घटाकर लता और दारू इन दो स्थानों में तथा अघातिया कर्मों की पापरूप प्रकृतियों के अनुभाग को नीम और कांजीर, इन दो स्थानों में अवस्थित करता है। इसी को द्विस्थानीय अनुभाग में अवस्थान कहते हैं।

शंका — सूत्र में केवल एक काललब्धि ही प्ररूपण की गई है, उसमें इन शेष लब्धियों का होना कैसे संभव है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि प्रतिसमय अनन्तगुणहीन अनुभाग की उदीरणा का, अनन्तगुणितक्रम द्वारा वर्धमान विशुद्धि का और आचार्य के उपदेश की प्राप्ति का उसी एक काललब्धि में होना संभव है अर्थात् उक्त चारों लब्धियों की प्राप्ति काललब्धि के ही आधीन है अतः वे चारों लब्धियाँ काललब्धि में अन्तर्निहित हो जाती हैं।

ये प्रारम्भ की चारों ही लब्धियाँ भव्य और अभव्य मिथ्यादृष्टि जीवों के साधारण हैं क्योंकि दोनों ही प्रकार के जीवों में इन चारों लब्धियों का होना संभव है। कहा भी है —

क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि, ये पाँच लब्धियाँ होती हैं। इनमें से पहली चार तो सामान्य हैं अर्थात् भव्य और अभव्य, दोनों प्रकार के जीवों के होती हैं किन्तु करणलब्धि सम्यक्त्व होने के समय होती है।।

एवमभव्ययोग्यपरिणामैः स्थिति-अनुभागयोः काण्डकघातं बहुवारं कृत्वा गुरुपदेशबलेन तेन विना वा अभव्यजीवयोग्यविशुद्धीः व्यतीत्य भव्यजीवयोग्यविशुद्धौ अधःप्रवृत्तकरणसंज्ञितायां भव्यो जीवो परिणमति, तस्य जीवस्य लक्षणं अग्रिमसूत्रे कथयन्ति सूरिवर्याः।

एवं प्रथमस्थले सम्यक्त्वोत्पत्तिकथनप्रतिज्ञारूपेण सूत्रत्रयं गतम्।

प्रथमोपशमसम्यक्त्वं प्राप्तुकामः कीदृशो भवतीतिकथनाय सूत्रमवतरति —

सो पुण पंचिंदिओ सण्णी मिच्छाइटी पज्जत्तओ सव्वविसुद्धो ॥४॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यः कश्चिद् भव्यः सः सम्यक्त्वं प्रतिपद्यमानः एकेन्द्रियः द्वीन्द्रियः त्रीन्द्रियः चतुरिन्द्रियो वा न भवति, तत्र सम्यक्त्वग्रहणपरिणामाभावात्। ततः पंचेन्द्रियश्चैव तत्रापि असंज्ञी न भवति, तेषु मनसा विना विशिष्टज्ञानानुत्पत्तेः। ततः सः संज्ञी चैव सासादनसम्यग्दृष्टिः सम्यग्मिथ्यादृष्टिः वेदकसम्यग्दृष्टिः वा प्रथमसम्यक्त्वं न प्रतिपद्यते, एतेषां तेन पर्यायेण परिणमनशक्तेरभावात्। उपशमश्रेणिं चटमानवेदकसम्यग्दृष्टिजीवाः उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपद्यमानाः सन्ति, किन्तु न तस्य प्रथमसम्यक्त्वव्यपदेशः, किंच तस्य उपशमश्रेण्याः उपशमसम्यक्त्वस्योत्पत्तिः सम्यक्त्वादेव भवति। ततः तेन मिथ्यादृष्टिजीवेन चैव भवितव्यम्। सोऽपि पर्याप्तश्चैव, अपर्याप्ते प्रथमसम्यक्त्वोत्पत्तिविरोधात्।

इस प्रकार अभव्य जीवों के योग्य परिणाम के होने पर स्थिति और अनुभागों के कांडकघात को बहु बार करके गुरुपदेश के बल से अथवा उसके बिना भी, अभव्य जीवों के योग्य विशुद्धियों को व्यतीत करके भव्य जीवों के योग्य अधःप्रवृत्तकरण संज्ञा वाली विशुद्धि में जो भव्य जीव परिणत होता है, उस जीव का लक्षण बतलाने के लिये आचार्यदेव उत्तरसूत्र कहते हैं।

इस प्रकार प्रथमस्थल में सम्यक्त्व की उत्पत्ति के कथन की प्रतिज्ञारूप से तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब प्रथमोपशमसम्यक्त्व को प्राप्त करने का इच्छुक कैसा होता है ? इस बात को बतलाने के लिये सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

वह प्रथमोपशमसम्यक्त्व को प्राप्त करने वाला जीव पंचेन्द्रिय, संज्ञी, मिथ्यादृष्टि, पर्याप्त और सर्व विशुद्ध होता है ॥४॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — जो सम्यक्त्व को प्राप्त होने वाला जीव है, वह एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय अथवा चतुरिन्द्रिय नहीं होता है, क्योंकि उसमें सम्यक्त्व को ग्रहण करने योग्य परिणाम नहीं पाये जाते हैं। इसलिए वह पंचेन्द्रिय ही होता है। पंचेन्द्रियों में भी वह असंज्ञी नहीं होता है क्योंकि, असंज्ञी जीवों में मन के बिना विशिष्ट ज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती है। इसलिए वह संज्ञी ही होता है। सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा वेदकसम्यग्दृष्टि जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्व को नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि, इन जीवों के उस प्रथमोपशमसम्यक्त्वरूप पर्याय के द्वारा परिणमन होने की शक्ति का अभाव है। उपशमश्रेणी पर चढ़ने वाले वेदकसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त करने वाले होते हैं, किन्तु उस सम्यक्त्व का 'प्रथमोपशमसम्यक्त्व' यह नाम नहीं है, क्योंकि, उस उपशमश्रेणी वाले उपशमसम्यक्त्व की उत्पत्ति सम्यक्त्व से होती है। इसलिए प्रथमोपशमसम्यक्त्व को प्राप्त करने वाला जीव मिथ्यादृष्टि ही होना चाहिये। वह भी पर्याप्तक ही होना चाहिये, क्योंकि, अपर्याप्त जीव में प्रथमोपशमसम्यक्त्व की उत्पत्ति होने का विरोध है।

स देवो वा नारको वा तिर्यङ् वा। स्त्रीवेदः पुरुषवेदः नपुंसकवेदो वा। मनोयोगी वचोयोगी काययोगी वा। क्रोधकषायी मानकषायी मायाकषायी लोभकषायी वा, किन्तु हायमानकषायः। असंयतः मतिश्रुतसाकारोपयुक्तः। तत्र अनाकारोपयोगो नास्ति, तस्य बाह्यार्थे प्रवृत्तेरभावात्। षण्णां लेश्यानामन्यतरलेश्यः, किन्तु हायमानाशुभलेश्यः वर्धमानशुभलेश्यः। भव्यः। आहारः। ज्ञानावरणस्य पंचप्रकृतिसत्कर्मिकः। दर्शनावरणस्य नवप्रकृतिसत्कर्मिकः। वेदनीयस्य द्विप्रकृतिसत्कर्मिकः। मिथ्यात्वस्य सम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्वाभ्यां विना षड्विंशतिप्रकृतीनां सत्कर्मिकः, सम्यक्त्वेन विना मोहनीयस्य सप्तविंशतिसत्कर्मिकः, मोहनीयस्य अष्टाविंशतिसत्कर्मिकः वा। यदि बद्धायुष्कः आयुषः द्विविधसत्कर्मिकः। अथवा अबद्धायुष्कः आयुषः एकप्रकृतिसत्कर्मिकः।

चतुर्गति-पंचजाति-आहारशरीररहित चतुःशरीर-चतुःबंधन-चतुःसंघात-षट्संस्थान-आहारांगोपांग-विरहितद्वि-अंगोपांग-षट्संहनन-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-चतुःआनुपूर्वि-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-आतप-उद्योत-द्विविहायोगति-त्रस-स्थावर-बादर-सूक्ष्म-प्रत्येक-साधारण-पर्याप्त-अपर्याप्त-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभगदुर्भग-सुस्वर-दुःस्वर-आदेय-अनादेय-यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति-निर्माणमिति नामकर्मणः द्वाप्तप्रकृतिसत्कर्मिकः। गोत्रस्य द्विप्रकृतिसत्कर्मिकः। अन्तरायस्य पंचप्रकृतिसत्कर्मिकः। आयुः

प्रथमोपशमसम्यक्त्व के अभिमुख यह जीव देव अथवा नारकी अथवा तिर्यच होना चाहिये। स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी अथवा नपुंसकवेदी हो। मनोयोगी, वचनयोगी अथवा काययोगी हो अर्थात् तीनों योगों में से किसी एक योग में वर्तमान हो। क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी अथवा लोभकषायी हो अर्थात् चारों कषायों में से किसी एक कषाय से उपयुक्त हो, किन्तु हीयमान कषाय वाला होना चाहिये। असंयत हो। मतिश्रुतज्ञानरूप साकारोपयोग से उपयुक्त हो, प्रथमोपशमसम्यक्त्व उत्पन्न होने के समय अनाकार उपयोग नहीं होता है, क्योंकि अनाकार उपयोग को बाह्य अर्थ में प्रवृत्ति का अभाव है। कृष्णादि छहों लेश्याओं में से किसी एक लेश्या वाला हो, किन्तु यदि अशुभ लेश्या हो तो हीयमान होना चाहिये और यदि शुभ लेश्या हो तो वर्धमान होना चाहिये। भव्य हो। आहारक हो। ज्ञानावरणीय कर्म की पाँच प्रकृतियों का सत्कर्मिक अर्थात् सत्ता वाला हो। दर्शनावरणीय कर्म की नौ प्रकृतियों की सत्ता वाला हो। वेदनीय कर्म की दो प्रकृतियों की सत्ता वाला हो। मोहनीय कर्म में मिथ्यात्व की सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति, इन दो के बिना छब्बीस प्रकृतियों की सत्ता वाला हो अथवा सम्यक्त्वप्रकृति के बिना मोहनीय कर्म की सत्ताईस प्रकृतियों की सत्ता वाला हो अथवा मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला है। यदि वह बद्धायुष्क हो तो आयुकर्म की भुज्यमान आयु और बध्यमान आयु, इन दो प्रकार के आयुकर्मों की सत्ता वाला हो अथवा यदि अबद्धायुष्क हो तो एक आयुकर्म की सत्ता वाला हो।

चारों गतियाँ, पाँचों जातियाँ, आहारकशरीर को छोड़कर चार शरीर, आहारकबंधन को छोड़कर चार बंधन, आहारकसंघात को छोड़कर चार संघात, छहों संस्थान, आहारकशरीर-अंगोपांग के बिना शेष दो शरीर अंगोपांग, छहों संहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, चारों आनुपूर्वियाँ, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दोनों विहायोगतियाँ, त्रय, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, प्रत्येक शरीर, साधारण शरीर, पर्याप्त, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति और निर्माण, नामकर्म की इन बहत्तर प्रकृतियों की सत्ता वाला हो। गोत्रकर्म की दोनों प्रकृतियों की सत्ता वाला हो, अन्तराय कर्म की पाँचों प्रकृतियों की सत्ता वाला हो। आयुकर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों की

कर्मरहितकर्मणां अन्तःकोटाकोटिस्थितिसत्त्वकर्मिकः।

पंचज्ञानावरणीय-नवदर्शनावरणीय-असातावेदनीय-मिथ्यात्व-षोडशकषाय नवनोकषाय-सम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्व-नरकगति-तिर्यग्गति-एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजाति-पंचसंस्थान-पंचसंहनन-अप्रशस्तवर्णगंधरसस्पर्श-नरकगति-तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वि-उपघात-अप्रशस्तविहायोगति-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणशरीर-अस्थिर-अशुभ-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-अयशःकीर्ति-नीचगोत्र-पंचान्तरायाणां द्विःस्थानीयानुभागसत्त्वकर्मिकः, एतासां अप्रशस्तप्रकृतीनामनुभागस्य त्रिचतुःस्थानानां विशुद्ध्या घातसंभवात्।

सातावेदनीय-मनुष्यगति-देवगति-पंचेन्द्रियजाति-औदारिकवैक्रियिकतैजसकार्मणशरीर-चतुःबंधन-चतुःसंघात-समचतुरस्रसंस्थान-औदारिकवैक्रियिक-शरीरांगोपांग-वज्रऋषभवज्रनाराचशरीरसंहनन-प्रशस्तवर्णगंधरसस्पर्श-मनुष्यगति-देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वि-अगुरुलघुक-परघात-उच्छवास-आतप-उद्योत-प्रशस्तविहायोगति-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-स्थिर-शुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-यशःकीर्ति-निर्माण-उच्चगोत्राणां चतुःस्थानानुभागसत्त्वकर्मिकः। एतासां प्रशस्तप्रकृतीनां विशुद्धेः अनुभागस्य घाताभावात्, समयं प्रतिविशुद्धिवृद्धितः अनन्तगुणक्रमेण एतासामनुभागबंधस्य वृद्धिदर्शनाच्च।

मासां प्रकृतीनां सत्त्वकर्मास्ति, तासां अजघन्यानुत्कृष्टप्रदेशसत्त्वकर्मिकः। त्रिषु महादण्डकेषु उक्तप्रकृतीनां बंधकः, अवशेषाणामबंधकः। त्रिषु महादण्डकेषु कथितप्रकृतीनामन्तःकोटाकोटिस्थितेर्बंधकः। त्रिमहादण्डकेषु कथिताप्रशस्तप्रकृतीनां द्विःस्थानीयानुभागबंधकः। तत्रोक्त प्रशस्तप्रकृतीनां चतुःस्थानीयानुभागस्य बंधकः।

अन्तःकोडाकोड़ी प्रमाण स्थितिसत्त्व वाला हो।

पाँचों ज्ञानावरणीय, नवों दर्शनावरणीय, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबंधी आदि सोलह कषाय, हास्य आदि नवों नोकषाय, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, नरकगति, तिर्यग्गति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, प्रथम संस्थान के सिवाय शेष पाँच संस्थान, प्रथम संहनन के सिवाय शेष पाँच संहनन, अप्रशस्त वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारणशरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, नीचगोत्र और पाँचों अन्तराय, इन प्रकृतियों के द्विस्थानीय अर्थात् नीम और कांजीर, इन दो स्थानरूप अनुभाग की सत्ता वाला हो, क्योंकि इन अप्रशस्तप्रकृतियों के त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय अनुभाग का विशुद्धि के द्वारा घात संभव है।

सातावेदनीय, मनुष्यगति, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, इन चारों शरीरों के चार बन्धन नाम कर्म, चार संघात नामकर्म, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीर-अंगोपांग, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग, वज्रऋषभ वज्रनाराच-शरीरसंहनन, प्रशस्तवर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, परघात, उच्छवास, आतप, उद्योत, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण और उच्चगोत्र, इन प्रकृतियों के चतुःस्थानीय अर्थात् गुड़, खांड, शक्कर और अमृत, इन चार स्थानरूप अनुभाग की सत्ता वाला हो, क्योंकि, इन प्रशस्त प्रकृतियों के अनुभाग का विशुद्धि से घात नहीं होता है, किन्तु प्रतिसमय विशुद्धि के बढ़ने से अनन्तगुणित क्रम द्वारा इन उपर्युक्त प्रकृतियों के अनुभागबंध की वृद्धि देखी जाती है।

जिन प्रकृतियों का उसके सत्त्व है, उनके अजघन्य-अनुत्कृष्ट प्रदेश की सत्ता वाला हो। तीनों महादण्डकों में कही गई प्रकृतियों का बांधने वाला हो, उनसे अवशिष्ट प्रकृतियों का बांधने वाला न हो। तीनों महादण्डकों में उक्त प्रकृतियों की अन्तःकोडाकोड़ी स्थिति का बांधने वाला हो, तीनों महादण्डकों में उक्त

पंचज्ञानावरणीय-षड्दर्शनावरणीय-सातावेदनीय-द्वादशकषाय-पुरुषवेद-हास्य-रति-भय-जुगुप्सा-तिर्यग्गति-मनुष्यगति-पंचेन्द्रियजाति-औदारिक-तैजस-कर्मणशरीर-औदारिकशरीरांगोपांग-वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-तिर्यग्गति-मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वि-अगुरुलघुक-उपघात-परघात-उच्छ्वास-उद्योत-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-स्थिर-शुभ-यशःकीर्ति-निर्माण-उच्चगोत्र-पंचान्तरायाणां अनुत्कृष्टप्रदेशबंधकः।

निद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचला-स्त्यानगृद्धि-मिथ्यात्व-अनन्तानुबंधिक्रोध-मान-माया-लोभ-देवगति-वैक्रियिकशरीर-समचतुरस्रशरीरसंस्थान-वैक्रियिकशरीरांगोपांग-वज्रर्षभसंहनन-देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वि-प्रशस्तविहायोगति-सुभग-सुस्वर-आदेय-नीचगोत्राणां उत्कृष्टप्रदेशबंधको वा अनुत्कृष्टप्रदेशबंधको वा।

पंचानां ज्ञानावरणीयाणां वेदकः। चक्षुर्दर्शनावरणीयमचक्षुर्दर्शनावरणीयमवधिदर्शनावरणीयं केवलदर्शनावरणीयमिति चतुर्णां वेदकः, निद्राप्रचलयोः एकतरेण सह पंचानां वा वेदकः। साता सातयोरेकतरस्य वेदकः। मोहनीयस्य दशानां नवानां अष्टानां वा वेदकः।

कास्ताः दशप्रकृतयः ?

मिथ्यात्वं अनन्तानुबंधिचतुष्कानामेकतरं अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कानामेकतरं प्रत्याख्यानावरणचतुष्कानामेकतरं संज्वलनचतुष्कानां एकतरं त्रयाणां वेदानां एकतरं हास्यरति-अरतिशोकद्वियुगलयोः एकतरं

अप्रशस्त प्रकृतियों के द्विस्थानीय अनुभाग का बांधने वाला हो। उन्हीं तीनों महादण्डकों में उक्त प्रशस्त प्रकृतियों के चतुःस्थानीय अनुभाग का बाँधने वाला हो, पाँच ज्ञानावरणीय, स्त्यानगृद्धि आदि तीन प्रकृतियों को छोड़कर शेष छह दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, अनन्तानुबंधी चतुष्क को छोड़कर शेष बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कर्मणशरीर, औदारिक शरीर-अंगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, यशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँचों अन्तराय, इन प्रकृतियों का अनुत्कृष्ट प्रदेश बंधने वाला हो। निद्रानिद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि, मिथ्यात्व, अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, देवगति, वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रशरीरसंस्थान, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग, वज्रर्षभसंहनन, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और नीचगोत्र, इन प्रकृतियों का उत्कृष्ट प्रदेशबंध करने वाला हो अथवा अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध करने वाला हो। पाँचों ज्ञानावरणीय प्रकृतियों का वेदक अर्थात् उदय वाला हो। चक्षुर्दर्शनावरणीय, अचक्षुर्दर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और केवलदर्शनावरणीय, इन चार दर्शनावरणीय प्रकृतियों का वेदक हो, अथवा निद्रा और प्रचला, इन दोनों में से किसी एक के साथ पाँच दर्शनावरणीय प्रकृतियों का वेदक हो। सातावेदनीय और असातावेदनीय, इन दोनों में से किसी एक का वेदक हो। मोहनीय कर्म की दश, नौ अथवा आठ प्रकृतियों का वेदक हो।

शंका — मोहनीय कर्म की वे दश प्रकृतियाँ कौन सी हैं ?

समाधान — मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारों में से कोई एक, अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारों में से कोई एक, प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारों में से कोई एक, संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारों में से कोई एक, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद इन तीनों वेदों में से कोई एक, हास्य-रति और अरति-शोक इन दोनों युगलों में से कोई एक युगल, भय और जुगुप्सा ये मोहनीय कर्म की वे दश प्रकृतियाँ हैं जिनका उक्त जीव

भयजुगुप्से चेति दश प्रकृतयः सन्ति। इमाः एव भयजुगुप्सयोरन्यतरोदयेन विना नव, भयजुगुप्सयोरुदयेन विना अष्टौ भवन्ति।

चतुर्णामायुषामन्यतरस्य वेदकः भवति।

यदि नारकः, नरकगति-पंचेन्द्रियजाति-वैक्रियिक-तैजस-कर्मणशरीर-हुंडसंस्थान-वैक्रियिक-शरीरांगोपांग-वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-अगुरुलघुक-उपघात-परघात-उच्छ्वास-अप्रशस्तविहायोगति-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-अयशःकीर्ति-निर्माण-नीचगोत्र-पंचान्तरायाणां वेदकः भवति।

यदि तिर्यङ्, तिर्यगति-पंचेन्द्रियजाति-औदारिक-तैजस-कर्मणशरीराणि-षट्संस्थानानां एकतरस्य औदारिकशरीरांगोपांगस्य षट्संहननानां एकतरस्य वर्णगन्धरसस्पर्श-अगुरुलघुक-उपघात-परघात-उच्छ्वासानां, उद्योतस्य कदाचित् वेदकः, कदाचित् न वेदकः। द्विविहायोगत्योरेकतरस्य, त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकशरीराणां स्थिरास्थिर-शुभाशुभानां सुभग-दुर्भगयोरेकतरस्य सुस्वरदुःस्वरयोरेकतरस्य आदेयानादेययोरेकतरस्य यशःकीर्ति-अयशःकीर्त्योः एकतरस्य निर्माणनीचगोत्र-पंचान्तरायाणां वेदको भवति।

यदि मनुष्यः, मनुष्यगति-पंचेन्द्रियजाति-औदारिक-तैजस-कर्मणशरीराणां, षट्संस्थानानामेकतरस्य औदारिकशरीरांगोपांगस्य षट्संहननानामेकतरस्य वर्णगन्धरसस्पर्श-अगुरुलघुक-उपघात-परघात-उच्छ्वासानां वेदक होता है।

पूर्वोक्त दश प्रकृतियों में से भय और जुगुप्सा, इन दोनों में से किसी एक के उदय के बिना शेष नौ प्रकृतियाँ ऐसी जानना चाहिये जिनका उक्त जीव वेदक होता है।

पूर्वोक्त दस प्रकृतियों में से भय, जुगुप्सा, इन दोनों के उदय के बिना शेष आठ प्रकृतियाँ होती हैं, जिनका कि उदय प्रथमोपशमसम्यक्त्व के अभिमुख मिथ्यादृष्टि जीव के होता है।

चारों आयु कर्मों में से किसी एक का वेदक होता है।

यदि वह जीव नारकी है तो नरकगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक शरीर, तैजस शरीर, कर्मण शरीर, हुण्डकसंस्थान, वैक्रियिक शरीर-अंगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र और पाँचों अन्तराय, इन प्रकृतियों का वेदक होता है।

यदि वह जीव तिर्यच है, तो तिर्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कर्मण शरीर, छहों संस्थानों में से कोई एक, औदारिक शरीर-अंगोपांग, छहों संहननों में से कोई एक, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, इन प्रकृतियों का वेदक होता है। उद्योत प्रकृति का कदाचित् वेदक होता है कदाचित् नहीं। दोनों विहायोगतियों में से कोई एक, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुभग और दुर्भग इन दोनों में से कोई एक, सुस्वर और दुःस्वर इन दोनों में से कोई एक, आदेय और अनादेय इन दोनों में से कोई एक, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति इन दोनों में से कोई एक, निर्माण, नीचगोत्र और पाँचों अन्तराय, इन प्रकृतियों का वेदक होता है।

यदि वह जीव मनुष्य है तो मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कर्मण शरीर, छहों संस्थानों में से कोई एक, औदारिक शरीर-अंगोपांग, छहों संहननों में से कोई एक, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, दोनों विहायोगतियों में से कोई एक, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग इन दोनों में से कोई एक, सुस्वर और दुःस्वर इन दोनों में से कोई एक,

द्वयोः विहायोगत्योरेकतरस्य त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीराणां स्थिरास्थिर-शुभाशुभानां सुभगदुर्भगयोरे-
कतरस्य सुस्वरदुःस्वरयोरेकतरस्य आदेयानादेययोरेकतरस्य यशःकीर्ति-अयशःकीर्त्योः एकतरस्य निर्माणनाम्नः
नीचोच्चगोत्रयोरेकतरस्य पंचानामन्तरायाणां वेदको भवति।

यदि देवो, देवगति-पंचेन्द्रियजाति-वैक्रियिक-तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्रशरीरसंस्थान-
वैक्रियिकशरीरांगोपांग-वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-अगुरुलघुक-उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-
त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-यशःकीर्ति-निर्माण-उच्चगोत्र-
पंचान्तरायाणां वेदको भवति, उक्तशेषसर्वप्रकृतीनामवेदकश्च भवति।

प्रथमोपशमसम्यक्त्वाभिमुखस्य जीवस्य यासां प्रकृतीनामुदयोऽस्ति तासां प्रकृतीनां एकस्याः स्थितेः
स्थितिक्षयेण उदयं प्रविष्टायाः वेदकः, शेषाणां स्थितीनामवेदकः। यासां प्रकृतीनामप्रशस्तानामुदयोऽस्ति
तासां द्विःस्थानीयानुभागस्य वेदकः। प्रशस्तानां प्रकृतीनां उदयागतानां चतुःस्थानीयानुभागस्य वेदकः।
उदयागतानां प्रकृतीनामजघन्यानुत्कृष्टप्रदेशयोः वेदकः। यासां प्रकृतीनां वेदकः तासां प्रकृतिस्थिति-
अनुभागप्रदेशानामुदीरकः भवति।

उदयोदीरणयोः को विशेषः इति चेत् ?

उच्यते — ये कर्मस्कन्धाः अपकर्षणोत्कर्षणादिप्रयोगेन विना स्थितिक्षयं प्राप्य आत्मात्मनः फलं ददति,
तेषां कर्मस्कन्धानामुदय इति संज्ञा। ये महत्सु स्थिति-अनुभागेषु अवस्थिताः कर्मस्कन्धाः अपकर्षणं कृत्वा
फलदायिनः क्रियन्ते, तेषामुदीरणा इति संज्ञा, अपक्वपाचनस्य उदीरणव्यपदेशात्।

आदेय और अनादेय इन दोनों में से कोई एक, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति इन दोनों में से कोई एक, निर्माणनाम,
नीचगोत्र और उच्चगोत्र इन दोनों में से कोई एक और पाँचों अन्तराय, इन प्रकृतियों का वेदक होता है।

यदि वह जीव देव है, तो देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर,
समचतुरस्रशरीरसंस्थान, वैक्रियिक शरीर-अंगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात,
उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग,
सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँचों अन्तराय, इन प्रकृतियों का वेदक होता है। ऊपर
कही गई प्रकृतियों के सिवाय शेष सर्व प्रकृतियों का अवेदक होता है।

प्रथमोपशमसम्यक्त्व के अभिमुख जीव के जिन प्रकृतियों का उदय होता है, उन प्रकृतियों की स्थिति
के क्षय से उदय में प्रविष्ट एक स्थिति का वह वेदक होता है। शेष स्थितियों का अवेदक होता है। उक्त जीव
के जिन अप्रशस्त प्रकृतियों का उदय होता है, उनके निंब और कांजीर रूप द्विस्थानीय अनुभाग का वेदक
होता है। उदय में आई हुई प्रशस्त प्रकृतियों के चतुःस्थानीय अनुभाग का वेदक होता है। उदय में आई हुई
प्रकृतियों के अजघन्य-अनुत्कृष्ट प्रदेशों का वेदक होता है। जिन प्रकृतियों का वेदक होता है उनके प्रकृति,
स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों की उदीरणा करता है।

शंका — उदय और उदीरणा में क्या भेद है ?

समाधान — कहते हैं — जो कर्म-स्कन्ध अपकर्षण, उत्कर्षण आदि प्रयोग के बिना स्थिति क्षय को
प्राप्त होकर अपना-अपना फल देते हैं, उन कर्म-स्कन्धों की 'उदय' यह संज्ञा है। जो महान स्थिति और
अनुभागों में अवस्थित कर्म-स्कन्ध अपकर्षण करके फल देने वाले किए जाते हैं, उन कर्म-स्कन्धों की
'उदीरणा' यह संज्ञा है, क्योंकि अपक्व कर्म-स्कन्ध के पाचन करने को उदीरणा कहा गया है।

उदयोदीरणादिलक्षणानि सूत्रे अनुपदिष्टानि कथमत्र प्ररूप्यन्ते ?

नैष दोषः, एतस्य सूत्रस्य देशामर्षकत्वात्। येनेदं सूत्रं देशामर्षकं तेनोक्ताशेषलक्षणानि एतेनैवोक्तानि ज्ञातव्यानि।

अधुना 'सर्वविशुद्धः' इति एतस्य पदस्यार्थः उच्यते—तद्यथा अत्र प्रथमसम्यक्त्वं प्रतिपद्यमानस्य अधःप्रवृत्तकरण-अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरणभेदेन त्रिविधा विशुद्धयो भवन्ति।

तत्राधःप्रवृत्तकरणसंज्ञितविशुद्धीनां लक्षणं किंचिदुच्यते—तद्यथा—अन्तर्मुहूर्तमात्रसमयपंक्तिं ऊर्ध्वाकारेण स्थापयित्वा तेषां समयानां प्रायोग्यपरिणामप्ररूपणं ज्ञातव्यं। प्रथमसमयप्रायोग्यपरिणामाः असंख्याताः लोकाः, अधःप्रवृत्तकरणद्वितीयसमयप्रायोग्याः अपि परिणामाः असंख्याताः लोकाः। एवं समयं प्रति अधःप्रवृत्तपरिणामानां प्रमाणप्ररूपणं कर्तव्यं यावत् अधःप्रवृत्तकरणकालस्य चरमसमयः इति। प्रथमसमयपरिणामेभ्यः द्वितीयसमयप्रायोग्यपरिणामाः विशेषाधिकाः। विशेषः पुनः अन्तर्मुहूर्तप्रतिभागिकः। द्वितीयसमयपरिणामेभ्यः तृतीयसमयपरिणामाः विशेषाधिकाः। एवं नेतव्यं यावत् अधःप्रवृत्तकरणकालस्य चरमसमय इति।

अस्मिन् करणे उपरिमपरिणामाः अधस्तनपरिणामेषु प्रवर्तन्ते—समानत्वं प्राप्नुवन्ति इति अस्य अधःप्रवृत्तकरणसंज्ञा।

कथं परिणामानां करणसंज्ञा ?

शंका—सूत्र में अनुपदिष्ट उदय और उदीरणा आदि के लक्षण यहाँ क्यों निरूपण किये जा रहे हैं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि यह सूत्र देशामर्शक है। चूँकि यह सूत्र देशामर्शक है, इसलिए कहे गये लक्षणों के सिवाय अन्य समस्त लक्षण इसके द्वारा कहे ही गये हैं।

अब सूत्रोक्त 'सर्वविशुद्धि' इस पद का अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है—यहाँ पर प्रथमो-पशमसम्यक्त्व को प्राप्त होने वाले जीव के अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण के भेद से तीन प्रकार की विशुद्धियाँ होती हैं। उनमें पहले अधःप्रवृत्तकरण संज्ञा वाली विशुद्धियों का लक्षण कहते हैं। वह इस प्रकार है—अन्तर्मुहूर्तप्रमाण समयों की पंक्ति को ऊर्ध्व आकार से स्थापित करके उन समयों के प्रायोग्य परिणामों का प्ररूपण करते हैं—अधःप्रवृत्तकरण में प्रथम समयवर्ती जीवों के योग्य परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण हैं। द्वितीय समयवर्ती जीवों के योग्य परिणाम भी असंख्यात लोकप्रमाण हैं। इस प्रकार समय-समय के प्रति अधःप्रवृत्तकरण सम्बन्धी परिणामों के प्रमाण का निरूपण अधःप्रवृत्तकरण काल के अन्तिम समय तक करना चाहिये। अधःप्रवृत्तकरण के प्रथम समय सम्बन्धी परिणामों से द्वितीय समय के योग्य परिणाम विशेष अधिक होते हैं। वह विशेष अन्तर्मुहूर्त प्रतिभागी है, अर्थात् प्रथम समय सम्बन्धी परिणामों के प्रमाण में अन्तर्मुहूर्त का भाग देने पर जितना प्रमाण आता है, उतने प्रमाण से अधिक हैं। अधःप्रवृत्तकरण के द्वितीय समयसम्बन्धी परिणामों से तृतीय समय के परिणाम विशेष अधिक होते हैं। इस प्रकार यह क्रम अधःप्रवृत्त—करणकाल के अंतिम समय तक ले जाना चाहिए। इन पूर्वोक्त अधःप्रवृत्त लक्षण वाली विशुद्धियों की 'अधःप्रवृत्तकरण' यह संज्ञा है, क्योंकि उपरितन समयवर्ती परिणाम अधः अर्थात् अधस्तन, समयवर्ती परिणामों में समानता को प्राप्त होते हैं इसलिए अधःप्रवृत्त यह संज्ञा सार्थक है।

शंका—परिणामों की 'करण' यह संज्ञा कैसे हुई ?

नैष दोषः, असिवास्यादीनामिव साधकतमभावविवक्षायां परिणामानां करणत्वोपलंभात्।

उक्तं च जैनेन्द्रव्याकरणे —

“साधकतमः करणम्।।” इति सूत्रेण यस्तु साधकतमः तस्य करणसंज्ञा, किन्तु यस्तु साधकः साधनरूपेण वा तस्य कारणमिति संज्ञा अस्ति।

यद्येवं तर्हि मिथ्यादृष्ट्यादीनां स्थितिबंधादिपरिणामाः अपि अधस्तना उपरिमेषु उपरिमाः अधस्तनेषु अनुकुर्वन्ति, पुनस्तेषामपि अधःप्रवृत्तसंज्ञा किन्न कृताः ?

नैष दोषः, इष्टत्वात्।

कथमेतत् ज्ञायते ?

अधःप्रवृत्तनाम्नः अंतदीपकत्वात्।

अस्मिन् करणे प्रथमसमयजघन्या विशुद्धिः स्तोकाः। द्वितीयसमये जघन्या विशुद्धिः अनन्तगुणा। तृतीयसमयजघन्या विशुद्धिः अनन्तगुणा। एवं नेतव्यं यावत् अन्तर्मुहूर्तमात्रनिर्वर्गणाकांडकचरम-समयजघन्यविशुद्धिः इति।

तस्मात्निवृत्त्यु प्रथमसमयोत्कृष्टा विशुद्धिः ततोऽनन्तगुणा। पूर्वप्ररूपितजघन्यविशुद्धेः उपरिमसमय-जघन्यविशुद्धिरनन्तगुणा। ततः द्वितीयसमयोत्कृष्टा विशुद्धिरनन्तगुणा। ततः पूर्वोक्त-जघन्यविशुद्धितः उपरिमसमयजघन्यविशुद्धिरनन्तगुणा। इत्यादिना तावत् नेतव्यं यावत् अधःप्रवृत्तकरणस्य चरमसमय-

समाधान — यह कोई दोष नहीं, क्योंकि असि (तलवार) और वासि (वसूला) के समान साधकतम भाव की विवक्षा में परिणामों में करणपना पाया जाता है।

श्री पूज्यपादस्वामी विरचित जैनेन्द्र व्याकरण में कहा है —

जो साधकतम है वह ‘करण’ है। इस सूत्र से जो साधकतम — पूर्णरूप से कार्य को करने में समर्थ है वह ‘करण’ है, किन्तु जो साधक है अथवा साधनरूप से है उसकी ‘कारण’ यह संज्ञा है।

शंका — मिथ्यादृष्टि आदि जीवों के अधस्तन स्थितिबंधादि परिणाम उपरिम परिणामों में और उपरिम स्थितिबंधादि परिणाम अधस्तन परिणामों में अनुकरण करते हैं, अर्थात् परस्पर समानता को प्राप्त होते हैं, इसलिए उनके परिणामों की ‘अधःप्रवृत्त’ यह संज्ञा क्यों नहीं की ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं, क्योंकि यह बात इष्ट है अर्थात् मिथ्यादृष्टि आदिकों के अधस्तन और उपरिम समयवर्ती परिणामों की पायी जाने वाली समानता में अधःप्रवृत्तकरण का व्यवहार स्वीकार किया गया है।

शंका — यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान — क्योंकि अधःप्रवृत्त यह नाम अन्तदीपक है अर्थात् प्रथमोपशमसम्यक्त्व होने के पूर्व तक मिथ्यादृष्टि आदि के पूर्वोत्तर समयवर्ती परिणामों में जो सदृशता पाई जाती है उसकी अधःप्रवृत्त संज्ञा का सूचक है।

अब इन अधःप्रवृत्त लक्षण वाली विशुद्धियों की तीव्र-मंदता का अल्पबहुत्व कहते हैं — प्रथम समय की जघन्य विशुद्धि सबसे कम है। उससे द्वितीय समय की जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणित है। उससे तृतीय समय की जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणित है। इस प्रकार यह क्रम अन्तर्मुहूर्तमात्र निर्वर्गणाकांडक के अंतिम समयसम्बन्धी जघन्य विशुद्धि तक ले जाना चाहिये। वहाँ से लौटकर प्रथम समय की उत्कृष्ट विशुद्धि उससे अनन्तगुणित है। पूर्व प्ररूपित अर्थात् प्रथम निर्वर्गणाकांडक के अंतिम समय सम्बन्धी जघन्य विशुद्धि से

जघन्यविशुद्धिरिति। ततः निर्वर्गणाकांडकमात्रं अपसार्य स्थिताधस्तनसमयस्य उत्कृष्टा विशुद्धिः अनन्तगुणा। ततः उपरिमसमये उत्कृष्टा विशुद्धिः अनन्तगुणा। एवमुत्कृष्टाः चैव विशुद्धयः निरंतरं अनन्तगुणक्रमेण नेतव्याः यावत् अधःप्रवृत्तकरणस्य चरमसमयोत्कृष्टविशुद्धिरिति। एवमधःप्रवृत्तकरणस्य लक्षणं किञ्चिन्मात्रं प्ररूपितं। विशेषतस्तु निर्वर्गणाकांडकादीनां लक्षणं धवलाटीकायां दृष्टव्यं।

संप्रति अपूर्वकरणस्य लक्षणं मनाक् प्ररूप्यते — अपूर्वकरणकालः अंतर्मुहूर्तमात्रो भवति, इति अन्तर्मुहूर्तमात्रसमयानां प्रथमं रचना कर्तव्या। तत्र प्रथमसमये प्रायोग्यविशुद्धीनां प्रमाणमसंख्याताः लोकाः। द्वितीयसमयप्रायोग्यविशुद्धीनां प्रमाणमसंख्याताः लोकाः। एवं नेतव्यं यावत् चरमसमय इति।

प्रथमसमयविशुद्धिभ्यः द्वितीयसमयविशुद्धयः विशेषाधिकाः। एवं नेतव्यः यावत् चरमसमय इति। विशेषः पुनः अंतर्मुहूर्तप्रतिभागितः।

अपूर्वकरणस्य प्रथमसमयजघन्यविशुद्धिः स्तोकाः। तत्रैव उत्कृष्टाविशुद्धिरनन्तगुणा। द्वितीयसमयजघन्या विशुद्धिः अनन्तगुणा। तत्रैवोत्कृष्टा विशुद्धिरनन्तगुणा। एवं नेतव्यं यावदपूर्वकरणचरमसमय इति।

करणं परिणामः, अपूर्वाणि च तानि करणानि च अपूर्वकरणानि, असमानपरिणामा इति यदुक्तं भवति। एवमपूर्वकरणस्य लक्षणं कथितम्।

उपरिम समय की अर्थात् द्वितीय निर्वर्गणाकांडक के प्रथम समय की जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणित है। उससे दूसरे समय की उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणित है। पुनः पूर्वोक्त जघन्य विशुद्धि से उपरिम समय की जघन्य विशुद्धि अनन्त गुणित है। इस क्रम से यह अल्पबहुत्व अधःप्रवृत्तकरण के अंतिम समय सम्बन्धी जघन्य विशुद्धि प्राप्त होने तक ले जाना चाहिये। उससे निर्वर्गणाकांडक मात्र दूर जाकर स्थित अधस्तन समय की उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणित है। उससे उपरिम समय की उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणित है। इसी प्रकार उत्कृष्ट ही विशुद्धियों को निरन्तर अनन्त गुणित क्रम से अधःप्रवृत्तकरण के अंतिम समयसम्बन्धी उत्कृष्ट विशुद्धि प्राप्त होने तक ले जाना चाहिये। इस प्रकार अधःप्रवृत्तकरण का किञ्चित् लक्षण निरूपण किया। विशेषरूप से निर्वर्गणाकांडक आदि का लक्षण धवलाटीका में देखना चाहिये।

अब अपूर्वकरण का लक्षण कहेंगे। वह इस प्रकार है — अपूर्वकरण का काल अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है, इसलिए अन्तर्मुहूर्तप्रमाण समयों की पहले रचना करना चाहिये। उसमें प्रथम समय के योग्य विशुद्धियों का प्रमाण असंख्यात लोक है। दूसरे समय के योग्य विशुद्धियों का प्रमाण असंख्यात लोक है। इस प्रकार यह क्रम अपूर्वकरण के अंतिम समय तक ले जाना चाहिये। प्रथम समय की विशुद्धियों से दूसरे समय की विशुद्धियाँ विशेष अधिक होती हैं। इस प्रकार यह क्रम अपूर्वकरण के अंतिम समय तक ले जाना चाहिए। यहाँ पर विशेष अन्तर्मुहूर्त का प्रतिभागी है।

इन करणों से, अर्थात् अपूर्वकरणकाल के विभिन्न समयवर्ती परिणामों की, तीव्र-मंदता के अल्पबहुत्व कहते हैं। वह इस प्रकार है — अपूर्वकरण की प्रथम समय सम्बन्धी जघन्य विशुद्धि सबसे कम है। वहाँ पर ही उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणित है। प्रथम समय की उत्कृष्ट विशुद्धि से द्वितीय समय की जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणित है। वहाँ पर ही उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणित है अर्थात् द्वितीय समय की उत्कृष्ट विशुद्धि से तृतीय समय की जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणित है। वहाँ पर ही उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणित है। इस प्रकार यह क्रम अपूर्वकरण के अन्तिम समय तक ले जाना चाहिये। करण नाम परिणाम का है। अपूर्व जो करण होते हैं उन्हें

इदानीमनिवृत्तिकरणस्य लक्षणमुच्यते — अनिवृत्तिकरणकालः अन्तर्मुहूर्तमात्रो भवतीति तस्य कालस्य समयाः रचयितव्याः। अत्र समयं प्रति एकैकश्चैव परिणामो भवति। एकैकस्मिन् समये जघन्योत्कृष्ट-परिणामभेदाभावात्।

अस्मिन् करणे प्रथमविशुद्धिः स्तोका। द्वितीयसमयविशुद्धिरनन्तगुणा। ततः तृतीयसमयविशुद्धिर-जघन्योत्कृष्टा अनन्तगुणा। एवं नेतव्यं यावत् अनिवृत्तिकरणकालस्य चरमसमय इति।

एकसमये वर्तमानानां जीवानां परिणामैः न विद्यते निवृत्तिः विभिन्नता वा यत्र ते अनिवृत्तिपरिणामाः। एवं अनिवृत्तिकरणस्य लक्षणं गतम्। एताभिर्विशुद्धिभिः परिणतो जीवः यानि यानि कार्याणि करोति तेषां कथनं अग्रे करिष्यन्ति।

अधुना प्रथमसम्यक्त्वमुत्पादयितुकामस्य कार्यनिरूपणाय सूत्रमवतार्यते श्रीभूतबलिसूरिवर्येण —

एदेसिं चेव सव्वकम्माणं जावे अंतोकोडाकोडिट्ठिदिं ठवेदि संखेज्जेहि सागरोवमसहस्सेहि ऊणियं तावे पढमसम्मत्तमुप्पादेदि।।५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अधःप्रवृत्तकरणे तावत् स्थितिकांडकघातः अनुभागकांडकघातः गुणश्रेणिः

अपूर्वकरण कहते हैं, जिनका कि अर्थ असमान परिणाम कहा गया है। इस प्रकार अपूर्वकरण का लक्षण निरूपण किया।

अब अनिवृत्तिकरण का लक्षण कहते हैं। वह इस प्रकार है — अनिवृत्तिकरण का काल अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है, इसलिये उसके काल के समयों की रचना करना चाहिये। यहाँ पर अर्थात् अनिवृत्तिकरण में, एक-एक समय के प्रति एक-एक ही परिणाम होता है, क्योंकि यहाँ एक समय में जघन्य और उत्कृष्ट परिणामों के भेद का अभाव है।

अब अनिवृत्तिकरणसम्बन्धी विशुद्धियों की तीव्र-मन्दता का अल्पबहुत्व कहते हैं — प्रथम समय सम्बन्धी विशुद्धि सबसे कम है। उससे द्वितीय समय की विशुद्धि अनन्तगुणित है। उससे तृतीय समय की विशुद्धि अजघन्योत्कृष्ट अनन्तगुणित है। इस प्रकार यह क्रम अनिवृत्तिकरण काल के अंतिम समय तक ले जाना चाहिये।

एक समय में वर्तमान जीवों के परिणामों की अपेक्षा निवृत्ति या विभिन्नता जहाँ पर नहीं होती है वे परिणाम अनिवृत्तिकरण कहलाते हैं। इस प्रकार अनिवृत्तिकरण का लक्षण कहा।

इन उपर्युक्त तीन प्रकार की विशुद्धियों से परिणत जीव जिन-जिन कार्यों को करता है, उनका प्रतिपादन करने के लिए आचार्यदेव आगे कहेंगे।

अब प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करने के इच्छुकजन के कार्य का निरूपण करने के लिये श्री भूतबलिसूरिवर्य सूत्र अवतरित करते हैं —

सूत्रार्थ —

जिस समय इन ही सर्वकर्मों की संख्यात हजार सागरोपमों से हीन अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण स्थिति को स्थापित करता है, उस समय यह जीव प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करता है।।५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अधःप्रवृत्तकरण में स्थितिकांडक घात, अनुभागकांडक घात, गुणश्रेणी

गुणसंक्रमो वा नास्ति, एतेषां परिणामानां पूर्वोक्तचतुर्विधकार्योत्पादनशक्तेरभावात्। केवलमनन्तगुणविशुद्ध्या प्रतिसमयं विशुद्ध्यन् अप्रशस्तानां कर्मणां द्विःस्थानीयमनुभागं समयं प्रति अनन्तगुणहीनं बध्नाति, प्रशस्तानां कर्मणां अनुभागं चतुःस्थानीयं समयं प्रति अनन्तगुणं बध्नाति। अत्र स्थितिबंधकालः अन्तर्मुहूर्तमात्रः। पूर्णं पूर्णं स्थितिबंधे पल्योपमस्य संख्येयभागेनोनामन्यां स्थितिं बध्नाति। एवं संख्यातसहस्रवारं स्थितिबंधापसरेषु कृतेषु अधःप्रवृत्तकरणकालः समाप्यते।

अधःप्रवृत्तकरणप्रथमसमयस्थितिबंधात् चरमसमयस्थितिबंधः संख्यातगुणहीनः। अत्रैव प्रथमसम्यक्त्व-संयमासंयमाभिमुखस्य स्थितिबंधः संख्यातगुणहीनः संख्यातगुणहीनः, प्रथमसम्यक्त्व-संयमाभिमुखस्य अधःप्रवृत्तकरण-चरमसमयस्थितिबंधः संख्यातगुणहीनः।

सूत्रे संख्यातैः सागरोपमसहस्रैः ऊनां स्थितिं बध्नाति इति त्रिषु अपि करणेषु सामान्येन भणितं।

एष विशेषः अनिर्दिष्टः कथं ज्ञायते ?

आचार्यपरंपरागतोपदेशात्। एवमधःप्रवृत्तकरणस्य कार्यप्ररूपणं कृतं।

अपूर्वकरणस्य प्रथमः स्थितिखंडो जघन्यः पल्योपमस्य संख्यातभागः, उत्कृष्टकः सागरोपमपृथक्त्वमात्रः कथितः। अधःप्रवृत्तकरणचरमसमयस्थितिबंधात् पल्योपमस्य संख्यातभागेन ऊनः स्थितिबंधः अपूर्वकरणस्य प्रथमसमये एव आरब्धः। अयं आयुर्वर्जितानां सर्वकर्मणां स्थितिखंडको भवति। स्थितिबंधः पुनः

और गुणसंक्रमण नहीं होता है, क्योंकि, इन अधःप्रवृत्त परिणामों के पूर्वोक्त चतुर्विध कार्यों के उत्पादन करने की शक्ति का अभाव है। केवल अनन्तगुणी विशुद्धि के द्वारा प्रतिसमय विशुद्धि को प्राप्त होता हुआ यह जीव अप्रशस्त कर्मों के द्विस्थानीय अर्थात् निम्ब और कांजीरूप अनुभाग को समय-समय के प्रति अनन्तगुणित हीन बांधता है और प्रशस्त कर्मों के गुड़, खांड आदि रूप चतुःस्थानीय अनुभाग को प्रतिसमय अनन्तगुणित बांधता है।

यहाँ अर्थात् अधःप्रवृत्तकरण काल में स्थितिबंध का काल, अन्तर्मुहूर्तमात्र है। एक-एक स्थितिबंधकाल के पूर्ण होने पर पल्योपम के संख्यातवें भाग से हीन अन्य स्थिति को बांधता है। इस प्रकार संख्यात सहस्र बार स्थितिबंधापसरणों के करने पर अधःप्रवृत्तकरण का काल समाप्त हो जाता है।

अधःप्रवृत्तकरण के प्रथम समय सम्बन्धी स्थितिबंध से उसी का अन्तिम समयसम्बन्धी स्थितिबंध संख्यातगुणा हीन होता है। यहाँ पर ही, अर्थात् अधःप्रवृत्तकरण के चरम समय में, प्रथम सम्यक्त्व के अभिमुख जीव के जो स्थितिबंध होता है, उससे प्रथम सम्यक्त्व सहित संयमासंयम के अभिमुख जीव का स्थितिबंध संख्यातगुणहीन-संख्यातगुणहीन होता है। इससे प्रथम सम्यक्त्व सहित सकल संयम के अभिमुख जीव का अधःप्रवृत्तकरण के अन्तिम समय सम्बन्धी स्थितिबंध संख्यातगुणा हीन होता है।

शंका — सूत्र में, 'संख्यात हजार सागरोपमों से हीन स्थिति को बांधता है' यह वाक्य तीनों ही करणों में सामान्य से कहा है, फिर सूत्र में अनिर्दिष्ट यह उपर्युक्त विशेष कैसे जाना जाता है ?

समाधान — सूत्र में अनिर्दिष्ट वह उपर्युक्त कथन आचार्य-परम्परा के द्वारा आए हुए उपदेश से जाना जाता है। इस प्रकार अधःप्रवृत्तकरण के कार्यों का निरूपण किया।

अपूर्वकरण का प्रथम जघन्य स्थितिखंड पल्योपम का संख्यातवाँ भाग और उत्कृष्ट स्थितिखण्ड सागरोपम पृथक्त्व मात्र ग्रहण किया है। अधःप्रवृत्तकरण के अंतिम समय वाले स्थितिबंध से पल्योपम के

बध्यमानप्रकृतीनामेव। अपूर्वकरणप्रथमसमये चैव गुणश्रेणिरपि प्रारब्धा।

विशेषण तु — अपूर्वकरणस्य प्रथमसमयसंबंधिस्थितिसत्त्व-स्थितिबंधाभ्यां अपूर्वकरणस्य चरमसमय-स्थितिसत्त्व-स्थितिबंधयोः दीर्घत्वं संख्यातगुणहीनं भवति। अपूर्वकरणप्रथमसमयानुभागसत्त्वात् चरमसमये अप्रशस्तप्रकृतीनामनुभागसत्त्वकर्मानन्तगुणहीनं, प्राशस्तानामनन्तगुणं भवति। एवमपूर्वकरणपरिणामस्य अतिसंक्षिप्तकार्यप्ररूपणा कृता।

तदनंतरमुपरिमसमये अनिवृत्तिकरणं प्रारभते। तस्मिन्नेव समये अन्यं स्थितिखंडकं अन्यमनुभागखण्डकं अन्यं स्थितिबंधं च प्रारभते। पूर्वापकर्षितप्रदेशाग्रात् असंख्यातगुणितप्रदेशस्यापकर्षणं कृत्वा अपूर्वकरण इव गलितावशेषगुणश्रेणिं करोति।

सूत्रे स्थितिबंधापसरणमेव प्ररूपितं, स्थिति-अनुभाग-प्रदेशघाता न प्ररूपिताः, तेषां प्ररूपणा नात्र युज्यते इति चेत् ?

न, तालप्रलंबसूत्रमिव तस्य देशामर्षकत्वात्। एवं स्थितिबंध-स्थितिकांडकघात-अनुभागकांडक-घातसहस्रेषु गतेषु अनिवृत्तिकरणकालस्य चरमसमयं प्राप्नोति।

अत्र अपूर्वकरणे कार्ये निक्षेप-अतिस्थापना-उदयावली-अचलावली-अव्याघात-व्याघातादीनां लक्षणं स्थितिकांडक-अनुभागकांडकादिलक्षणं च धवलाटीकायां दृष्टव्यं।

संख्यातवें भाग से हीन स्थितबंध उस काल में, अर्थात् अपूर्वकरण के प्रथम समय में ही आरम्भ किया। यह स्थितिखंड आयुर्कर्म को छोड़कर शेष समस्त कर्मों का होता है। किन्तु स्थितिबंध बंधने वाली प्रकृतियों का ही होता है। अपूर्वकरण के प्रथम समय में ही गुणश्रेणी भी प्रारम्भ की।

विशेषतया — अपूर्वकरण के प्रथम समय सम्बन्धी स्थितिसत्त्व और स्थितिबंध के द्वारा अपूर्वकरण का चरम समय सम्बन्धी स्थितिसत्त्व और स्थितिबंध की दीर्घता संख्यातगुणे हीन होती है। अपूर्वकरण के प्रथम समय के अनुभाग सत्त्व से चरम समय में अप्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग सत्त्वकर्म अनंतगुणाहीन है और प्रशस्त प्रकृतियों का अनंतगुणा अधिक होता है। इस प्रकार अपूर्वकरण परिणाम की अतिसंक्षिप्त कार्य प्ररूपणा बतायी गई है।

इसके बाद ऊपर के समय में अनिवृत्तिकरण प्रारम्भ करता है। उसमें ही अन्य स्थितिखंडक, अन्य अनुभागखंडक और अन्य स्थितिबंध को करता है। पूर्व में अपकर्षित प्रदेशाग्र से असंख्यातगुणित प्रदेशों का अपकर्षण करके अपूर्वकरण के समान ही गलितावशेष गुणश्रेणी करता है।

शंका — सूत्र में केवल स्थितिबंधापसरण ही कहा है, स्थितिघात, अनुभाग और प्रदेशघात नहीं कहे हैं, इसलिये उनकी प्ररूपणा यहाँ युक्तिसंगत नहीं है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि तालप्रलंब सूत्र के समान यह सूत्र देशामर्षक है, अतएव स्थितिघात आदि की प्ररूपणा घटित हो जाती है।

इस प्रकार सहस्रों स्थितिबंध, स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघातों के व्यतीत हो जाने पर अनिवृत्तिकरण के काल का अंतिम समय प्राप्त होता है।

वहाँ अपूर्वकरण के कार्य में निक्षेप, अतिस्थापना, उदयावली, अचलावली, अव्याघात और व्याघात आदि के लक्षण तथा स्थितिकण्डक, अनुभागकांडक आदि के लक्षण धवलाटीका में देखना चाहिये।

एवं द्वितीयस्थले प्रथमोपशमसम्यक्त्वमुत्पादयितुकामः भव्यः कीदृशः इतिकथनमुख्यत्वेन द्वे सूत्रे गते।
अधुना अनिवृत्तिकरणपरिणामानां कार्यविशेषप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

पढमसम्मत्तमुप्पादेतो अंतोमुहुत्तमोहट्टेदि।।६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — प्रथमोपशमसम्यक्त्वमुत्पादयन् सातिशयमिथ्यादृष्टी जीवः अन्तर्मुहूर्तकालं
अन्तरकरणं करोति। इदं सूत्रं अन्तरकरणं प्ररूपयति। अथवा “केवचिरेण कालेण” इति पृच्छासूत्रस्यार्थं
प्ररूपयति।

विवक्षितकर्मणां अधस्तनोपरिमस्थितीः विहाय मध्यवर्ति-अन्तर्मुहूर्तमात्रस्थितिनिषेकानां परिणामविशेषेण
अभावकरणं अन्तरकरणमुच्यते।

प्रथमोपशमसम्यक्त्वाभिमुखः कस्यान्तरं करोति ?

मिथ्यात्वस्यान्तरं करोति, किंचात्र अनादिमिथ्यादृष्टिजीवस्याधिकारोऽस्ति, अन्यथा पुनः यदस्ति
दर्शनमोहनीयं तस्य सर्वस्यान्तरं करोति।

कुत्र, कस्य करणस्य काले वा अन्तरं क्रियते ?

अनिवृत्तिकरणकालस्य संख्यातबहुभागान् गत्वान्तरं क्रियते। अन्तरकरणस्य प्रथमसमये अन्यं
स्थितिकांडकं अनुभागकांडकं च प्रारभते, अन्य स्थितिबंधं च करोति। यावान् स्थितिबंधकालः तावता
कालेन अन्तरं क्रियमाणः गुणश्रेणिनिक्षेपस्य अग्रागात् संख्यातभागं खण्डयति। गुणश्रेणिशीर्षकात् उपरि

इस प्रकार द्वितीय स्थल में प्रथमोपशम सम्यक्त्व को उत्पन्न करने का इच्छुक भव्य कैसा हो ? इस
कथन की मुख्यता से दो सूत्र पूर्ण हुये।

अब अनिवृत्तिकरण परिणामों के कार्य विशेष का प्रतिपादन करने के लिये सूत्र का अवतार होता है —
सूत्रार्थ —

**प्रथमोपशमसम्यक्त्व को उत्पन्न करता हुआ सातिशय मिथ्यादृष्टि जीव
अन्तर्मुहूर्तकाल तक हटाता है अर्थात् अन्तरकरण करता है।।६।।**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — प्रथमोपशम सम्यक्त्व को उत्पन्न करता हुआ सातिशय मिथ्यादृष्टि
जीव अन्तर्मुहूर्तकाल तक अंतरकरण करता है। यह सूत्र अन्तरकरण का निरूपण करता है अथवा कितने
काल से सम्यक्त्व उत्पन्न करता है ? ऐसी पृच्छा होने पर पृच्छा सूत्र का अर्थ कहता है।

विवक्षित कर्मों की अधस्तन और उपरिम स्थितियों को छोड़कर मध्यवर्ती अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थितियों के
निषेकों का परिणामविशेष के द्वारा अभाव करने को अन्तरकरण कहते हैं।

शंका — प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख हुआ जीव किसका अन्तर करता है ?

समाधान — मिथ्यात्व का अंतर करता है, क्योंकि यहाँ पर अनादि मिथ्यादृष्टि जीव का अधिकार है।
अन्यथा पुनः जो दर्शनमोहनीय कर्म तीन भेदरूप है, उस सबका अंतर करता है।

शंका — किसमें अर्थात् कहाँ पर या किस करण के काल में अन्तर रहता है ?

समाधान — अनिवृत्तिकरण के काल का संख्यात बहुभाग व्यतीत होने पर अन्तर करता है। अन्तरकरण
के प्रथम समय में अन्य स्थितिकांडक और अन्य अनुभागकांडक का आरम्भ करता है तथा अन्य स्थितिबंध
आरम्भ करता है। जितना स्थितिबंध का काल है, उतने काल के द्वारा अन्तर को करता हुआ गुणश्रेणी निक्षेप
के अग्राग से अर्थात् गुणश्रेणी शीर्ष से लेकर नीचे संख्यातवें भाग प्रदेशाग को खण्डित करता है। गुणश्रेणी

संख्यातगुणा उपरिमस्थितीः खण्डयति, अन्तरार्थं तत्रोत्कीर्णप्रदेशाग्रं आबाधाहीनायां द्वितीयस्थितौ बंधे स्थापयति, प्रथमस्थितौ च ददाति, किंतु अन्तरस्थितिषु नियमात् न ददाति। एवं अन्तरमुत्कीर्यमाणमुत्कीर्ण-अन्तरकरणकार्यं संपन्नमिति। ततः प्रभृति 'उपशामकः' इति भण्यते।

यदि एवं, तर्हि पूर्वमुपशामकत्वस्य अभावो भवति इति चेत् ?

पूर्वमपि उपशामकश्चैव, किंतु मध्यदीपकं कृत्वा शिष्यप्रतिबोधनार्थं एषः दर्शनमोहनीयोपशामकः इति यतिवृषभाचार्येण भणितं कषायप्राभृतचूर्णि-उपशमनाधिकारे, अतः नेदं वचनं अतीतभागस्य उपशामकत्वप्रतिषेधकं।

प्रथमस्थितेः द्वितीयस्थितेश्च तावत् आगालप्रत्यागालौ यावत् आवलिकाप्रत्यावलिके च शेषे इति। ततः प्रभृति मिथ्यात्वस्य गुणश्रेणिर्नास्ति, उदयावलिबाह्ये निक्षेपाभावात्। शेषाणां आयुर्वर्जितानां गुणश्रेणिरस्ति। तदा प्रत्यावलिकायाश्चैव मिथ्यात्वस्य उदीरणा भवति, किंतु एकावलिकायां शेषायां मिथ्यात्वकर्मणः उदीरणा नास्ति। तदानीमयं जीवः चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिर्जातः।

शीर्ष से ऊपर संख्यातगुणी उपरिम स्थितियों को खण्डित करता है तथा अन्तर के लिये वहाँ पर उत्कीर्ण किये गये प्रदेशाग्र को (लेकर) बंध में अर्थात् उस समय बंधने वाले मिथ्यात्व कर्म में, उसकी आबाधाकाल हीन द्वितीय स्थिति में स्थापित करता है और प्रथमस्थिति में देता है किन्तु अन्तरकालसम्बन्धी स्थितियों में निश्चयतः नहीं देता है। इस प्रकार किया जाने वाला अन्तर किया गया अर्थात् अन्तरकरण का कार्य सम्पन्न हुआ। अन्तरकरण समाप्त होने के समय से लेकर वह जीव 'उपशामक' कहलाता है।

शंका—यदि ऐसा है अर्थात् अन्तरकरण समाप्त होने के पश्चात् वह जीव 'उपशामक' कहलाता है तो इससे पूर्व अर्थात् अधःप्रवृत्तकरणादि परिणामों के प्रारम्भ होने से लेकर अन्तरकरण होने तक, उस जीव के उपशामकपने का अभाव प्राप्त होता है ?

समाधान—अन्तरकरण समाप्त होने के पूर्व भी वह जीव उपशामक ही था किन्तु मध्यदीपक करके शिष्यों के प्रतिबोधनार्थ 'यह दर्शनमोहनीयकर्म का उपशामक है' इस प्रकार यतिवृषभाचार्य ने अपनी कसायपाहुडचूर्णि के उपशमना अधिकार में कहा है। इसलिये यह वचन अतीत भाग के उपशामकता का प्रतिषेध नहीं करता है।

प्रथमस्थिति से और द्वितीयस्थिति से तब तक आगाल और प्रत्यागाल होते रहते हैं जब तक कि आवली और प्रत्यावलीमात्र काल शेष रह जाता है।

विशेषार्थ—प्रथमस्थिति और द्वितीयस्थिति की परिभाषा पहले दी जा चुकी है। अपकर्षण के निमित्त से द्वितीयस्थिति के कर्मप्रदेशों का प्रथमस्थिति में आना आगाल कहलाता है। उत्कर्षण के निमित्त से प्रथमस्थिति के कर्मप्रदेशों का द्वितीयस्थिति में जाना प्रत्यागाल कहलाता है। 'आवली' ऐसा सामान्य से कहने पर भी प्रकरणवश उसका अर्थ उदयावली लेना चाहिये तथा उदयावली से ऊपर के आवलीप्रमाण काल को द्वितीयाली या प्रत्यावली कहते हैं। जब अन्तरकरण करने के पश्चात् मिथ्यात्व की स्थिति आवलि-प्रत्यावलीमात्र रह जाती है, तब आगाल-प्रत्यागालरूप कार्य बन्द हो जाते हैं।

इसके पश्चात् अर्थात् आवलि-प्रत्यावलीमात्र काल शेष रहने के समय से लेकर मिथ्यात्व की गुणश्रेणी नहीं होती है, क्योंकि उस समय से उदयावली से बाहर कर्मप्रदेशों का निक्षेप नहीं होता है किन्तु आयुर्कर्म को छोड़कर शेष समस्त कर्मों की गुणश्रेणी होती रहती है। उस समय प्रत्यावली से ही मिथ्यात्वकर्म की उदीरणा

अथवा नैतेन सूत्रेण अन्तरघातः एव प्ररूपितः, किन्तु स्थितिघातः अनुभागघातः गुणश्रेणिक्रमेण प्रदेशघातः अन्तरस्थितीनां घातश्च प्ररूपितः। तथा पूर्वोक्त सूत्रमपि न देशामर्षकं, स्थितिबंधापसरणस्य एकस्य चैव प्ररूपणात्। अत्र ‘लभ्यते’ इति यत्पदं तस्यार्थः समाप्तः।

“कदि भाए वा करेदि मिच्छत्तं” एतस्याः पृच्छायाः अर्थप्ररूपणार्थं अग्रे सूत्रं भण्यते।

अधुना मिथ्यात्वस्य त्रिभागसूचनाय सूत्रमवतरति —

ओहट्टेदूण मिच्छत्तं तिण्णि भागं करेदि सम्मत्तं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं।।७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — एतेन सूत्रेण मिथ्यात्वप्रथमस्थितिं गालयित्वा सम्यक्त्वं प्रतिपन्नप्रथमसमयप्रभृति उपरिमकाले यो व्यापारः सः प्ररूपितः। ‘ओहट्टेदूण’ मिथ्यात्वस्य प्रथमस्थितिं गालयित्वा इति पदस्य पूर्व स्थिति-अनुभाग-प्रदेशैः प्राप्तघातं मिथ्यात्वं अनुभागेन पुनरपि घातयित्वा तस्य त्रीन् भागान् करोति। अस्य कारणमेतत् — ‘मिथ्यात्वानुभागात् सम्यग्मिथ्यानुभागः अनन्तगुणहीनः, तस्मात् सम्यक्त्वानुभागः अनन्तगुणहीनः, इति कषायप्राभृतसूत्रे निर्दिष्टत्वात्। न च उपशमसम्यक्त्वकालाभ्यन्तरे अनन्तानुबन्धिवि-संयोजनक्रियया विना मिथ्यात्वस्य स्थितिघातो वा अनुभागघातो वा अस्ति, तथोपदेशाभावात्।

तेन ‘ओहट्टेदूण’ इति उक्ते कांडकघातेन विना मिथ्यात्वानुभागं घातयित्वा सम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्वानु-भागाकारेण परिणाम्य प्रथमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नप्रथमसमये चैव मिथ्यात्वरूपैककर्मणः त्रीन् कर्मांशान् भेदान्

होती रहती है किन्तु एक आवली के शेष रह जाने पर मिथ्यात्वकर्म की उदीरणा नहीं होती है तब यह जीव चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टि हो जाता है।

अथवा इस सूत्र के द्वारा केवल अन्तरघात ही नहीं प्ररूपण किया गया है किन्तु स्थितिघात, अनुभागघात, गुणश्रेणी के क्रम से प्रदेशघात और अन्तर-स्थितियों का घात भी प्ररूपण किया गया है तथा इससे पहले का सूत्र भी देशामर्षक नहीं है क्योंकि वह केवल एक स्थितिबन्धापसरण का ही प्ररूपण करता है।

इस प्रकार ‘सम्यक्त्व को प्राप्त करता है’ यह जो पद है, उसका अर्थ समाप्त हुआ।

अब ‘मिथ्यात्वकर्म को कितने भागरूप करता है’ इस प्रश्न का अर्थ प्ररूपण करने के लिए आगे कहते हैं।

अब मिथ्यात्व के तीन भाग को सूचित करने के लिये सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

मिथ्यात्व की प्रथमस्थिति बतलाकर मिथ्यात्वकर्म के तीन भाग करता है —

सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व।।७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इस सूत्र के द्वारा मिथ्यात्व की प्रथमस्थिति को गलाकर सम्यक्त्व को प्राप्त होने के प्रथम समय से लेकर उपरिम काल में जो व्यापार अर्थात् कार्यविशेष होता है, वह प्ररूपण किया गया है। यहाँ “ओहट्टेदूण” इस कथन से मिथ्यात्व की प्रथम स्थिति गलाकर इस पद के पहले से ही स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों की अपेक्षा घात को प्राप्त मिथ्यात्वकर्म को अनुभाग के द्वारा पुनरपि घात कर उसके तीन भाग करता है, यह प्ररूपित किया गया है। इसका कारण यह है कि ‘मिथ्यात्वकर्म के अनुभाग से सम्यग्मिथ्यात्वकर्म का अनुभाग अनन्तगुणा हीन होता है, इससे सम्यक्त्व प्रकृति का अनुभाग अनन्तगुणाहीन है। ऐसा प्राभृतसूत्र अर्थात् कषायप्राभृत के चूर्णिसूत्रों में निर्देश किया गया है तथा उपशमसम्यक्त्वसम्बन्धी काल के भीतर अनन्तानुबन्धी कषाय की विसंयोजनरूप क्रिया के बिना मिथ्यात्वकर्म का स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात नहीं होता है क्योंकि उस प्रकार का उपदेश नहीं पाया जाता है इसलिए ‘ओहट्टेदूण’

वा उत्पादयति।

प्रथमसमयोपशमसम्यग्दृष्टिः मिथ्यात्वात् प्रदेशाग्रं गृहीत्वा सम्यग्मिथ्यात्वे बहुकं ददाति, तस्मात् असंख्यातगुणहीनं सम्यक्त्वे ददाति। प्रथमसमये सम्यग्मिथ्यात्वे दत्तप्रदेशेभ्यः द्वितीयसमये सम्यक्त्वप्रकृतौ असंख्यातगुणप्रदेशान् ददाति। तस्मिंश्चैव समये सम्यक्त्वप्रकृतौ दत्तप्रदेशेभ्यः सम्यग्मिथ्यात्वे असंख्यातगुणं ददाति। एवमन्तर्मुहूर्तकालं गुणसंक्रमेण सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वे आपूरयति यावत् गुणसंक्रमचरमसमयः इति। तेन परं सूच्यंगुलस्य असंख्यातभागप्रतिभागिकः विध्यातसंक्रमो भवति। यावत् गुणसंक्रमस्तावद् आयुर्वर्जितानां कर्मणां स्थितिघातः अनुभागघातः गुणश्रेणिश्चास्ति।

अस्मिन् विषये पंचविंशतिप्रतिकः अल्पबहुत्वदंडकः भवति, सः धवलाटीकायां दृष्टव्यः।

तात्पर्यमेतत् — प्रथमोपशमसम्यक्त्वेन मिथ्यात्वं त्रिविधं भवति।

उक्तं च — जंतेण कोद्वं वा पढमुवसमसम्मभावजंतेण।

मिच्छं दव्वं तु तिधा असंखगुणहीणदव्वकमा^१।।

एवं तृतीयस्थले मिथ्यात्वकर्मणः त्रिभागं करोति इति निरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतं।

संप्रति दर्शनमोहनीयोपशमनप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

ऐसा कहने पर कांडकघात के बिना मिथ्यात्वकर्म के अनुभाग को घात कर और उसे सम्यक्त्व प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति के अनुभागरूप आकार से परिणमाकर प्रथमोपशमसम्यक्त्व को प्राप्त होने के समय में ही मिथ्यात्वरूप एक कर्म के तीन कर्मांश अर्थात् भेद या खण्ड उत्पन्न करता है।

प्रथम समयवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्व से प्रदेशाग्र अर्थात् उदीरणा को प्राप्त कर्म-प्रदेशों को लेकर उनका बहुभाग सम्यग्मिथ्यात्व में देता है और उससे असंख्यातगुणा हीन कर्म प्रदेशाग्र सम्यक्त्व प्रकृति में देता है। प्रथम समय में सम्यग्मिथ्यात्व में दिए गए प्रदेशों से अर्थात् उनकी अपेक्षा द्वितीय समय में सम्यक्त्व प्रकृति में असंख्यातगुणित प्रदेशों को देता है और उसी ही समय में अर्थात् दूसरे ही समय में सम्यक्त्वप्रकृति में दिए गए प्रदेशों की अपेक्षा सम्यग्मिथ्यात्व में असंख्यातगुणित प्रदेशों को देता है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल तक गुणसंक्रम के (गुणश्रेणी के मु.) द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकर्म को पूरित करता है जब तक कि गुणसंक्रमणकाल का अंतिम समय प्राप्त होता है। इस गुणसंक्रमण के पश्चात् सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग का प्रतिभागी अर्थात् सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण वाला, विध्यात संक्रमण होता है। जब तक गुणसंक्रमण होता है तब तक आयुर्कर्म को छोड़कर शेष कर्मों का स्थितिघात, अनुभागघात और गुणश्रेणीघात होता है।

इस विषय में पच्चीस प्रतिक या पदवाला अल्पबहुत्व दण्डक कहने योग्य है, उसे धवलाटीका से जानना चाहिये।

तात्पर्य यह है कि प्रथमोपशमसम्यक्त्व के द्वारा मिथ्यात्व तीनरूप हो जाता है। कहा भी है —

जैसे यंत्र के द्वारा कोदों के तीन भाग हो जाते हैं, वैसे ही प्रथमोपशम सम्यक्त्व रूपी मंत्र के द्वारा मिथ्यात्व के भी तीन भाग हो जाते हैं, वे असंख्यातगुणित हीन द्रव्य वाले होते हैं।

इस प्रकार तृतीय स्थल में मिथ्यात्वकर्म के विभाग करता है ऐसा प्रतिपादन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुये।

अब दर्शनमोहनीय के उपशमन का प्रतिपादन करने के लिये तीन सूत्रों का अवतार होता है —

दंसणमोहणायं कम्मं उवसामेदि।।८।।

उवसामेंतो कम्हि उवसामेदि ? चदुसु वि गदीसु उवसामेदि। चदुसु वि गदीसु उवसामेंतो पंचिंदिएसु उवसामेदि, णो एइंदिय-विगलिंदियेसु। पंचिंदिएसु उवसामेंतो सण्णीसु उवसामेदि, णो असण्णीसु। सण्णीसु उवसामेंतो गब्भोवक्कंतिएसु उवसामेदि, णो सम्मुच्छिमेसु। गब्भोवक्कंतिएसु उवसामेंतो पज्जत्तएसु उवसामेदि, णो अपज्जत्तएसु। पज्जत्तएसु उवसामेंतो संखेज्जवस्साउगेसु वि उवसामेदि, असंखेज्जवस्साउगेसु वि।।९।।

उवसामणा वा केसु व खेत्तेसु कस्स व मूले।।१०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। दर्शनमोहनीयस्य उपशामकः इन्द्रकश्रेणिबद्धादि-सर्वनरकेषु सर्वभवनवासिदेवेषु सर्वसमुद्र-द्वीपसंबन्धि-सर्वव्यन्तरदेवेषु समस्तज्योतिष्केषु सौधर्मकल्पादारभ्य नवग्रैवेयकविमानपर्यन्तदेवेषु आभियोग्येषु-वाहनादिकर्मनियुक्तवाहनजातीयदेवेषु किल्बिषकादि-अनुत्तमेषु देवेषु पारिषदादि उत्तमदेवेषु च भवति। अयं उपशामकः उपसर्गादिषु अपि विच्छेद-मरणरहितो भवति, सासादनगुणस्थानं च न प्राप्नोति। उपशमसम्यक्त्वसंजाते सति भजितव्यः-स्यात् सासादनं प्राप्नोति न वा

सूत्रार्थ —

इस प्रकार यह जीव दर्शनमोहनीय कर्म को उपशमाता है।।८।।

दर्शनमोहनीय कर्म को उपशमाता हुआ यह जीव कहाँ उपशमाता है ? चारों ही गतियों में उपशमाता है। चारों ही गतियों में उपशमाता हुआ पंचेन्द्रियों में उपशमाता है, एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों में नहीं उपशमाता है। पंचेन्द्रियों में उपशमाता हुआ संज्ञियों में उपशमाता है, असंज्ञियों में नहीं। संज्ञियों में उपशमाता हुआ, गर्भोपक्रान्तिकों में अर्थात् गर्भज जीवों में उपशमाता है, सम्मूर्च्छिओं में नहीं। गर्भोपक्रान्तिकों में उपशमाता हुआ पर्याप्तकों में उपशमाता है, अपर्याप्तकों में नहीं। पर्याप्तकों में उपशमाता हुआ संख्यात वर्ष की आयु वाले जीवों में उपशमाता है और असंख्यात वर्ष की आयु वाले जीवों में भी उपशमाता है।।९।।

दर्शनमोह की उपशामना किन-किन क्षेत्रों में और किसके पादमूल में होती है।।१०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रों का अर्थ सरल है।

दर्शनमोहनीय कर्म का उपशम करने वाला जीव चारों ही गतियों में जानना चाहिये। वह जीव नियम से पंचेन्द्रिय, संज्ञी और पर्याप्तक होता है।

इन्द्रक, श्रेणीबद्ध आदि सर्व नरकों में, सर्व प्रकार के भवनवासी देवों में, सर्व समुद्रों में और द्वीपों में, समस्त व्यन्तर देवों में, समस्त ज्योतिष्क देवों में, सौधर्मकल्प से लेकर नवग्रैवेयक विमान तक विमानवासी देवों में, आभियोग्य अर्थात् वाहनादि कर्म में नियुक्त वाहन देवों में, उससे भिन्न किल्बिषिक आदि अनुत्तम तथा

प्राप्नोति। उपशमसम्यक्त्वस्य काले क्षीणे सति मिथ्यात्वादित्रिभ्यः एकस्य कतमस्य उदये आगते मिथ्यात्वादिभावं प्राप्नोति। अथवा दर्शनमोहनीयकर्मणः क्षीणे सति सासादनपरिणामस्य सर्वथा रहितो भवति।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिः वेदकसम्यग्दृष्टिः क्षायिकसम्यग्दृष्टिः उपशमसम्यग्दृष्टिश्च दर्शनमोहनीयकर्मणोऽबंधको भवति। अनादिमिथ्यादृष्टेः सम्यक्त्वस्य प्रथमवारं लाभः सर्वोपशमेन भवति। तथा विप्रकृष्टसादिमिथ्यादृष्टेः जीवस्यापि प्रथमोपशमसम्यक्त्वस्य लाभः सर्वोपशमेनैव। किन्तु यो जीवः सम्यक्त्वात् प्रच्युत्य पुनः सत्त्वरं सम्यक्त्वं गृण्हाति, सः सर्वोपशमेन देशोपशमेन वा भजितव्यः।

मिथ्यात्वादित्रिकर्मणां उदयाभावः सर्वोपशमः कथ्यते। तथा सम्यक्त्वप्रकृतिसंबन्धिदेशघातिस्पर्धकानां देशोपशमः उच्यते।

अनादिमिथ्यादृष्टेः प्रथमोपशमसम्यक्त्वस्यानंतरं मिथ्यात्वोदयो भवति, किन्तु सादिमिथ्यादृष्टेः मिथ्यात्वं भजितव्यं।

पारिषद आदि उत्तम देवों में दर्शनमोहनीय कर्म का उपशम होता है।

दर्शनमोह का उपशमक सर्व ही जीव निर्व्याघात अर्थात् उपसर्गादिक के आने पर भी विच्छेद और मरण से रहित होता है। सासादनगुणस्थान को नहीं प्राप्त होता है। उपशमसम्यक्त्व होने के पश्चात् भजितव्य है अर्थात् सासादनपरिणाम को कदाचित् प्राप्त होता भी है और कदाचित् नहीं भी प्राप्त होता है। उपशमसम्यक्त्व का काल क्षीण अर्थात् समाप्त हो जाने पर मिथ्यात्व आदि किसी एक दर्शनमोहनीय प्रकृति का उदय आने से मिथ्यात्व आदि भावों को प्राप्त होता है अथवा दर्शनमोहनीय कर्म के क्षीण हो जाने पर सासादनपरिणाम से सर्वथा रहित होता है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव दर्शनमोहनीय कर्म का अबंधक अर्थात् बंध नहीं करने वाला कहा गया है। इसी प्रकार वेदकसम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि तथा 'च' शब्द से उपशमसम्यग्दृष्टि जीव भी दर्शनमोहनीय कर्म का अबंधक होता है।

अनादि मिथ्यादृष्टि जीव के सम्यक्त्व का प्रथम बार लाभ सर्वोपशम से होता है। इसी प्रकार विप्रकृष्ट जीव के अर्थात् जिसने पहले कभी सम्यक्त्वप्रकृति एवं सम्यग्मिथ्यात्व कर्म की उद्वेलना कर बहुत काल तक मिथ्यात्व सहित परिभ्रमण कर पुनः सम्यक्त्व को प्राप्त किया है, ऐसे जीव के प्रथमोपशमसम्यक्त्व का लाभ भी सर्वोपशम से होता है किन्तु जो जीव सम्यक्त्व से गिरकर अभीक्ष्ण अर्थात् जल्दी ही पुनः-पुनः सम्यक्त्व को ग्रहण करता है वह सर्वोपशम और देशोपशम से भजनीय है। मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति, इन तीनों कर्मों के उदयाभाव को सर्वोपशम कहते हैं तथा सम्यक्त्वप्रकृतिसम्बन्धी देशघाती स्पर्धकों के उदय को देशोपशम कहते हैं। अनादि मिथ्यादृष्टि के प्रथमोपशमसम्यक्त्व के अनन्तर मिथ्यात्व का उदय होता है, किन्तु सादि मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्व भजितव्य है। कहा भी है—

अनादि मिथ्यादृष्टि जीव के जो सम्यक्त्व का प्रथम बार लाभ होता है उसके अनन्तर पूर्व मिथ्यात्व का उदय होता है किन्तु सादि मिथ्यादृष्टि जीव के जो सम्यक्त्व का अप्रथम अर्थात् दूसरी, तीसरी आदि बार लाभ होता है, उसके अनन्तर पश्चात् समय में मिथ्यात्व भजितव्य है अर्थात् वह कदाचित् मिथ्यादृष्टि होकर वेदक अथवा उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होता है और कदाचित् सम्यग्मिथ्यादृष्टि होकर वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त होता है।

उक्तं च — सम्मत्तपढमलंभस्सणंतरंतरं पच्छदो य मिच्छत्तं।
लंभस्स अपढमस्स दु भजितव्यं पच्छदो होदि।।

सम्यग्दृष्टिजीवस्य विशेषलक्षणं कथ्यते —

सम्माइट्ठी सदहदि पवयणं णियमसा दु उवइट्ठं।
सदहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा।

पुनश्च मिथ्यादृष्टेरपि लक्षणं ज्ञातव्यं भवति —

मिच्छाइट्ठी णियमा उवइट्ठं पवयणं ण सदहदि।
सदहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं।।

अत्र “कदि भागे वा करेदि मिच्छत्तं” अस्य सूत्रस्यार्थो निगदितः।

पुनरपि — दर्शनमोहस्य उपशामना केषु वा क्षेत्रेषु कस्य वा पादमूले भवतीति पृच्छासूत्रं कथितं, तस्य पूर्वं विभाषा प्ररूपिता, किंच अस्मिन् सम्यक्त्वे क्षेत्रनियमो नास्ति। ‘कस्य पादमूले’ अत्रापि नियमो नास्ति, सर्वत्र सम्यक्त्वग्रहणसंभवात्।

एवं चतुर्थस्थले प्रथमोपशमसम्यक्त्वं कः कुत्र चोत्पादयतीति कथनमुख्यत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

संप्रति क्षायिकसम्यक्त्वं क्व प्राप्नोतीति प्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

**दंसणमोहणीयं कम्मं खवेदुमाढवेंतो कम्हि आढवेदि, अट्ठाइज्जेसु दीवसमुद्देसु
पण्णारसकम्मभूमीसु जम्हि जिणा केवली तित्थयरा तम्हि आढवेदि।।११।।**

अब सम्यग्दृष्टि का विशेष लक्षण कहते हैं —

सम्यग्दृष्टि जीव सर्वज्ञ के द्वारा उपदिष्ट प्रवचन को तो नियम से श्रद्धान करता ही है किन्तु कदाचित् अज्ञानवश सदभूत अर्थ को स्वयं नहीं जानता हुआ गुरु के नियोग से असदभूत अर्थ का श्री श्रद्धान कर लेता है।।

पुनरपि मिथ्यादृष्टि का लक्षण जानना चाहिये —

मिथ्यादृष्टि जीव नियम से सर्वज्ञ द्वारा उपदिष्ट प्रवचन का तो श्रद्धान नहीं करता है किन्तु असर्वज्ञों के द्वारा उपदिष्ट या अनुपदिष्ट असद्भाव का अर्थात् पदार्थ के विपरीत स्वरूप का श्रद्धान करता है।।

यहाँ पर ‘मिथ्यात्वकर्म को कितने भागरूप करता है’ इस सूत्र का अर्थ पूर्ण हुआ।

पुनश्च ‘दर्शनमोहनीय की उपशामना किन जीवों में अथवा किनके पादमूल में होती है’ इस पृच्छासूत्र को कहा है। उसके पूर्व में विभाषा कही गई है, क्योंकि इस सम्यक्त्व में क्षेत्र का नियम नहीं है और किनके पादमूल में होता है, यहाँ पर भी नियम नहीं है, क्योंकि सर्वत्र सम्यक्त्व ग्रहण संभव है।

इस प्रकार चौथे स्थल में ‘प्रथमोपशमसम्यक्त्व कौन कहाँ उत्पन्न करता है’ इस कथन की मुख्यता से तीन सूत्र पूर्ण हुये हैं।

अब क्षायिक सम्यक्त्व कहाँ प्राप्त होता है, इसका प्रतिपादन करने के लिए सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

दर्शनमोहनीय कर्म का क्षपण करने के लिए आरंभ करता हुआ यह जीव कहाँ पर आरंभ करता है ? अट्ठाई द्वीप समुद्रों में स्थित पन्द्रह कर्मभूमियों में जहाँ जिस काल में जिन, केवली और तीर्थंकर होते हैं वहाँ उस काल में आरंभ करता है।।११।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — दर्शनमोहनीयस्य कर्मणः क्षपणप्रदेशं पृच्छितस्य शिष्यस्य तत्प्रदेशप्ररूपणार्थमिदं सूत्रमागतं। 'सार्धद्वयद्वीपेषु द्वीपसमुद्रेषु' इति भणिते जंबूद्वीपः धातकीखण्डः पुष्करार्धमिति सार्धद्वयाः द्वीपाः गृहीतव्याः। एतेषु चैव द्वीपेषु दर्शनमोहनीयकर्मणः क्षपणमारभते इति नो शेषद्वीपेषु, शेषद्वीपस्थितजीवानां तत्क्षपणशक्तेरभावात्। लवण-कालोदधिसंज्ञितयोः द्वयोः समुद्रयोः दर्शनमोहनीयं कर्म क्षपयति, नो शेष समुद्रेषु, तत्र सहकारिकारणाभावात्।

सार्धद्वयशब्देषु समुद्रः किन्न विशेषितः ?

नैष दोषः, यथासंभवं विशेषण-विशेषितभावः 'इति न्यायात् संभवाभावात् सार्धद्वयसंख्यया न समुद्रः विशेष्यते। न च सार्धद्वयद्वीपानां मध्ये सार्धद्वयसमुद्राः सन्ति विरोधात्। न च सार्धद्वयद्वीपेभ्यः बाह्यसमुद्रे दर्शनमोहनीयक्षपणं संभवति, उपरि उच्यमानस्य 'जम्हि जिणा तित्थयरा' इति विशेषणेन प्रतिषिद्धत्वात्। न मानुषोत्तरगिरिपरभागे जिनाः तीर्थकराः सन्ति, विरोधात्। सार्धद्वयद्वीप-समुद्रस्थितजीवेषु दर्शनमोहनीयक्षपणे प्रसंगे तत्प्रतिषेधार्थं 'पण्णारसकम्मभूमीसु' इति भणितं। पंचदशकर्मभूमिषु इति भणिते भोगभूमयः प्रतिषिद्धाः।

कर्मभूमिषु स्थितदेव-मनुष्य-तिरश्चां सर्वेषां अपि ग्रहणं किन्न प्राप्नोतीति चेत् ? न प्राप्नोति, कर्मभूमिषूत्पन्नमनुष्याणां उपचारेण कर्मभूमिव्यपदेशात्।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — दर्शनमोहनीय कर्म के क्षपण करने के प्रदेश को पूछने वाले शिष्य के क्षपण-प्रदेश बतलाने के लिए यह सूत्र आया है 'अढ़ाई-द्वीप समुद्र में' ऐसा कहने पर 'जम्बूद्वीप, धातकीखंड और पुष्करार्ध ये अढ़ाई द्वीप ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि इन अढ़ाई द्वीपों में ही दर्शनमोहनीय कर्म के क्षपण को आरंभ करता है, शेष द्वीपों में नहीं। इसका कारण यह है कि शेष द्वीपों में स्थित जीवों के दर्शनमोहनीय कर्म के क्षपण करने की शक्ति का अभाव है। लवण और कालोदधि संज्ञा वाले दो समुद्रों में जीव दर्शनमोहनीय कर्म का क्षपण करते हैं, शेष समुद्रों में नहीं, क्योंकि उनमें दर्शनमोह के क्षपण करने के सहकारी कारणों का अभाव है।

शंका — 'अढ़ाई' इस विशेषणरूप के द्वारा समुद्र को विशिष्ट क्यों नहीं किया ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, 'यथासंभव विशेषण-विशेष्यभाव होता है' इस न्याय के अनुसार तीसरे अर्ध समुद्र की संभावना का अभाव होने से 'अढ़ाई' इस संख्या के द्वारा समुद्र विशिष्ट नहीं किया गया है और न अढ़ाई द्वीपों के मध्य में अढ़ाई समुद्र हैं, वैसा मानने पर विरोध आता है तथा अढ़ाई द्वीपों से बाहरी आधे समुद्र में दर्शनमोहनीय कर्म का क्षपण संभव भी नहीं है, क्योंकि आगे कहे जाने वाले 'जहाँ जिन, तीर्थकर संभव हैं' इन विशेषण के द्वारा वह प्रतिषिद्ध हो जाता है। मानुषोत्तर पर्वत के पर भाग में जिन और तीर्थकर नहीं होते हैं, क्योंकि वहाँ उनका अस्तित्व मानने में विरोध आता है।

अढ़ाई द्वीप और समुद्रों में स्थित सर्व जीवों में दर्शनमोह के क्षपण का प्रसंग प्राप्त होने पर उसका प्रतिषेध करने के लिए 'पन्द्रह कर्मभूमियों में' यह पद कहा है और पन्द्रह कर्मभूमियों में ऐसा कहने पर भोगभूमियों का प्रतिषेध हो जाता है।

शंका — 'पन्द्रह कर्मभूमियों में' ऐसा सामान्य से कहने पर कर्मभूमियों में स्थित देव, मनुष्य और तिर्यच, इन सभी का ग्रहण क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान — नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि कर्मभूमियों में उत्पन्न हुए मनुष्यों की उपचार से 'कर्मभूमि'

तर्ह्यपि तिरश्चां ग्रहणं प्राप्नोति, तेषां तत्रापि उत्पत्तिप्रसंगात् ?

न, येषां तत्रैवोत्पत्तिः, नान्यत्र संभवोऽस्ति, तेषां चैव मनुष्याणां पंचदशकर्मभूमिव्यपदेशः, न तिरश्चां स्वयंप्रभपर्वतपरभागे उत्पन्नेन व्यभिचारप्राप्ततिरश्चातिमिति।

उक्तं च —

दंसणमोहक्खवणापट्ठवओ कम्मभूमिजादो दु।

णियमा मणुसगदीए णिट्ठवओ चावि सब्बत्थ^१।।

कश्चिदाह — मनुष्येषूत्पन्नाः कथं समुद्रेषु दर्शनमोह क्षपणं प्रस्थापयन्ति ? नैतद् वक्तव्यं, विद्यादिवशेन तत्रागतानां दर्शनमोहक्षपणसंभवात्।

दुःषमा-अतिदुःषमा-सुषमासुषमा-सुषमा-सुषमादुःषमाकालोत्पन्नमनुष्याणां क्षपणनिवारणार्थं “जम्हि जिणा” इति वचनं। यस्मिन् काले जिनाः संभवन्ति तस्मिंश्चैव दर्शनमोहक्षपणायाः प्रस्थापकः भवति, न अन्यकालेषु। देशजिनानां प्रतिषेधार्थं ‘केवली’ पदस्य ग्रहणं। यस्मिन् क्षेत्रे केवलज्ञानिनः सन्ति, तत्रैव क्षपणा भवति, नान्यत्र। तीर्थकरकर्मोदयविरहितकेवलप्रतिषेधार्थं “तित्थयरगहणं”। तीर्थकरपादमूले दर्शनमोहनीयक्षपणं प्रस्थापयन्ति, नान्यत्रेति।

यह संज्ञा की गई है।

शंका — यदि कर्मभूमियों में उत्पन्न हुए जीवों की ‘कर्मभूमि’ यह संज्ञा है, तो भी तिर्यचों का ग्रहण प्राप्त होता है, क्योंकि उनकी भी कर्मभूमियों में उत्पत्ति संभव है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि जिनकी वहीं पर उत्पत्ति होती है और अन्यत्र उत्पत्ति संभव नहीं है, उन ही मनुष्यों के पन्द्रह कर्मभूमियों का व्यपदेश किया गया है न कि स्वयंप्रभ पर्वत के परभाग में उत्पन्न होने से व्यभिचार को प्राप्त तिर्यचों का।

कहा भी है —

कर्मभूमि में उत्पन्न हुआ और मनुष्यगति में वर्तमान जीव ही नियम से दर्शनमोह की क्षपणा का प्रस्थापक, अर्थात् प्रारंभ करने वाला होता है। किन्तु उसका निष्ठापक अर्थात् पूर्ण करने वाला सर्वत्र अर्थात् चारों गतियों में होता है।।

शंका — मनुष्यों में उत्पन्न हुए जीव समुद्रों में दर्शनमोहनीय की क्षपणा का प्रस्थापन कैसे करते हैं ?

समाधान — नहीं, क्योंकि विद्या आदि के वश से समुद्रों में आये हुए जीवों के दर्शनमोह का क्षपण होना संभव है।

दुःषमा, अतिदुःषमा, सुषमासुषमा, सुषमा और सुषमादुःषमा काल में उत्पन्न हुए मनुष्यों के दर्शनमोह का क्षपण निषेध करने के लिए ‘जहाँ जिन होते हैं’ यह वचन कहा है। जिस काल में जिन संभव हैं, उस ही काल में दर्शनमोह के क्षपण का प्रस्थापक होता है, अन्य कालों में नहीं।

विशेषार्थ — अधःप्रवृत्तकरण के प्रथम समय से लेकर जब तक जीव मिथ्यात्व और मिश्र मोहनीय प्रकृतियों के द्रव्य का अपवर्त्य करके सम्यक्त्व प्रकृति में संक्रमण कराता है तब अन्तर्मुहूर्तकाल तक वह जीव दर्शनमोहनीय का क्षपण का प्रस्थापक कहलाता है।

देशजिनों का अर्थात् श्रुतकेवली, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानियों का प्रतिषेध करने के लिए सूत्र में ‘केवली’ इस पद का ग्रहण किया है। अर्थात् जिस काल में केवलज्ञानी होते हैं, उसी काल में दर्शनमोह की क्षपणा होती है, अन्य कालों में नहीं। तीर्थकर नामकर्म के उदय से रहित सामान्य केवलियों के प्रतिषेध के

अथवा 'जिणा' इति उक्ते 'चोहसपुव्वहरा' गृहीतव्याः। केवली इति भणिते केवलज्ञानिनः तीर्थकर-कर्मोदयविरहिताः गृहीतव्याः, 'तित्थयरा' इति उक्ते तीर्थकरनामकर्मोदयजनिताष्टमहा-प्रातिहार्य-चतुस्त्रिंशदतिशयसहितानां ग्रहणं। एतेषां त्रयाणामपि पादमूले दर्शनमोहक्षपणं प्रस्थापयन्ति इति। अत्र जिनशब्दस्य आवर्त्तिं कृत्वा जिनाः दर्शनमोहक्षपणं प्रस्थापयन्ति इति वक्तव्यं, अन्यथा तृतीयपृथिवीतः विनिर्गतानां कृष्णादीनां^१ तीर्थकरत्वानुपपत्तेः इति केषांचित् आचार्याणां व्याख्यानं। एतेन व्याख्यानाभिप्रायेण दुःषमा-अतिदुःषमा-सुषमासुषमा-सुषमाकालेषु उत्पन्नानां एव दर्शनमोहनीयक्षपणा नास्ति, अवशेषद्वयोरपि कालयोः उत्पन्नानामस्ति, एकेन्द्रियात् आगत्य तृतीयकालोत्पन्नवर्द्धनकुमारादीनां^२ दर्शनक्षपणदर्शनात्। इदं चैवात्र व्याख्यानं प्रधानं कर्तव्यं।

तात्पर्यमेतत्—सामान्येन तु जीवाः केवलं पूर्वोक्तदुःषमसुषमानामचतुर्थकालेषु तीर्थकर-केवलि-चतुर्दशपूर्विजिनभगवतां पादमूले एव दर्शनमोहनीयक्षपणां प्रारभन्ते, किन्तु ये केचित् तस्मिन्नेव भवे तीर्थकराः जिनाः वा भविष्यन्ति ते तीर्थकरादि-अनुपस्थितौ अपि दर्शनमोहक्षपणां कुर्वन्ति तथा सुषमादुःषमानामतृतीयकालेऽपि दर्शनमोहनीयं क्षपयन्ति वर्द्धनकुमारादीनामिव इति ज्ञातव्यम्।

अधुना दर्शनमोहनीयक्षपणानिष्ठापकानां स्थानप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

लिए सूत्र में 'तीर्थकर' इस पद का ग्रहण किया है अर्थात् तीर्थकर के पादमूल में ही मनुष्य दर्शनमोहनीय कर्म का क्षपण प्रारंभ करते हैं, अन्यत्र नहीं। अथवा 'जिन' ऐसा कहने पर चतुर्दश पूर्वधारियों का ग्रहण करना चाहिए, 'केवली' ऐसा कहने पर तीर्थकर नामकर्म के उदय से रहित केवलज्ञानियों का ग्रहण करना चाहिए और 'तीर्थकर' ऐसा कहने पर तीर्थकर नामकर्म के उदय से उत्पन्न हुए आठ महाप्रातिहार्य और चौंतीस अतिशयों से सहित तीर्थकर केवलियों का ग्रहण करना चाहिए। इन तीनों के पादमूल में कर्मभूमिज मनुष्य दर्शनमोह का क्षपण प्रारंभ करते हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

यहाँ पर 'जिन' शब्द की आवृत्ति करके अर्थात् दुबारा ग्रहण करके, जिन दर्शनमोहनीयकर्म का क्षपण प्रारंभ करते हैं, ऐसा कहना चाहिए, अन्यथा तीसरी पृथिवी से निकले हुए कृष्ण आदिकों के तीर्थकरत्व नहीं बन सकता है, ऐसा किन्हीं आचार्यों का व्याख्यान है। इस व्याख्यान के अभिप्राय से दुःषमा, अतिदुःषमा, सुषमा-सुषमा और सुषमा कालों में उत्पन्न हुए जीवों के ही दर्शनमोहनीय की क्षपणा नहीं होती है, अवशिष्ट दोनों कालों में उत्पन्न हुए जीवों के दर्शनमोह की क्षपणा होती है। इसका कारण यह है कि एकेन्द्रिय पर्याय से आकर (इस अवसरिणी के) तीसरे काल में उत्पन्न हुए वर्द्धनकुमार आदिकों के दर्शनमोह की क्षपणा देखी जाती है। यहाँ पर हय व्याख्यान ही प्रधानतया ग्रहण करना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि —

तात्पर्य यह है कि सामान्यतः तो जीव केवल पूर्वोक्त दुषम-सुषमा काल में तीर्थकर, केवली या चतुर्दशपूर्वी जिन भगवान के पादमूल में ही दर्शनमोहनीय की क्षपणा का प्रारंभ करते हैं, किन्तु जो उसी भव में तीर्थकर या जिन होने वाले हैं वे तीर्थकरादि की अनुपस्थिति में तथा सुषम-दुषमा काल में भी दर्शनमोह का क्षपण करते हैं, उदाहरणार्थ वर्द्धनकुमार आदि, ऐसा जानना चाहिए।

अब दर्शनमोहनीय की क्षपणा के निष्ठापकों का स्थान प्रतिपादित करने के लिए सूत्र अवतार लेता है —

णिट्ठवओ पुण चदुसु वि गदीसु णिट्ठवेदि।।१२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — कृतकृत्यवेदकस्य प्रथमसमयादारभ्य उपरितनसमयेषु दर्शनमोहस्य क्षपको जीवः निष्ठापकः उच्यते। स आयुर्बन्धवशेन चतुःष्वपि गतिषु उत्पद्य दर्शनमोहनीयक्षपणां पूरयति, तासु गतिषु उत्पत्तेः कारणलेश्यापरिणामानां तत्र विरोधाभावात्।

दर्शनमोहक्षपणविधिरत्र किन्न प्ररूपिता ?

न, प्रथमोपशमसम्यक्त्वोत्पादनविधेः त्रिकरणादिक्रियाभिः दर्शनमोहक्षपणविधेः भेदाभावेण तत्तश्चैवावगमात्। तस्मात् प्ररूपिता एव भवति।

अथ अस्ति कश्चिद् विशेषः, सोऽपि व्याख्यानात् अवगम्यते।

अधुना दर्शनमोहक्षपणगतविशेषप्ररूपणा क्रियते —

तद्यथा — तत्र तावत् भव्यो जीवः दर्शनमोहनीयं क्षपयन् प्रथमं अनन्तानुबन्धिचतुष्कं विसंयोजयति अधःप्रवृत्त-अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरणानि कृत्वा। एतेषां करणानां लक्षणानि यथा प्रथमसम्यक्त्वोत्पत्तेः सन्ति तथैवात्र ज्ञातव्यानि। अधःप्रवृत्तकरणे स्थितिघातः अनुभागघातः गुणश्रेणिः गुणसंक्रमश्च नास्ति। केवलमनन्तगुणाविशुद्ध्या विशुद्ध्यन् गच्छति यावत् अधःप्रवृत्तकरणकालस्य चरमसमय इति। केवलं

सूत्रार्थ —

दर्शनमोह की क्षपणा का निष्ठापक तो चारों ही गतियों में उसका निष्ठापन करता है।।१२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — कृतकृत्यवेदक होने के प्रथम समय से लेकर ऊपर के समयों में दर्शनमोह की क्षपणा करने वाला जीव निष्ठापक कहलाता है। दर्शनमोह की क्षपणा का प्रारंभ करने वाला जीव कृतकृत्यवेदक होने के पश्चात् आयु-बन्ध के वश से चारों ही गतियों में उत्पन्न होकर दर्शनमोहनीय की क्षपणा को पूरा करता है, क्योंकि उन-उन गतियों में उत्पत्ति के कारणभूत लेश्या-परिणाम के वहाँ होने में कोई विरोध नहीं है।

विशेषार्थ — अनिवृत्तिकरण के अन्त समय में सम्यक्त्व मोहनीय की अंतिम फालि के द्रव्य को नीचे के निषेकों में साथ क्षेपण करने से अन्तर्मुहूर्तकाल तक जीव कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि होता है।

शंका — दर्शनमोह के क्षपण की विधि यहाँ पर क्यों नहीं कही ?

समाधान — नहीं, क्योंकि प्रथमोपशमसम्यक्त्व को उत्पादन करने वाली विधि से तीनों करण आदि क्रियाओं के साथ दर्शनमोह की क्षपण-विधि का कोई भेद नहीं है, इसलिए उससे ही दर्शनमोह की क्षपण-विधि का ज्ञान हो जाता है। अतएव वह प्ररूपित की ही गई है और जो कुछ विशेषता है वह भी व्याख्यान से जान ली जाती है। अब दर्शनमोह की क्षपणासंबन्धी विशेषता की प्ररूपणा की जाती है। वह इस प्रकार है —

दर्शनमोहनीय का क्षपण करता हुआ भव्य जीव सर्वप्रथम अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन तीन करणों को करके अनन्तानुबन्धिचतुष्क का विसंयोजन करता है। इन करणों के लक्षण, जिस प्रकार प्रथमोपशमसम्यक्त्व की उत्पत्ति में तीनों करणों के लक्षण कहे हैं, उसी प्रकार यहाँ प्ररूपण करना चाहिए। अधःप्रवृत्तकरण में स्थितिघात, अनुभागघात, गुणश्रेणी और गुणसंक्रम नहीं होता है। केवल अनन्तगुणी विशुद्धि से विशुद्ध होता हुआ अधःप्रवृत्तकरणकाल के अन्तिम समय तक चला जाता है। केवल विशेषता यह है कि अन्य स्थिति को बांधता हुआ पहले के स्थितिबन्ध की अपेक्षा पल्योपम के संख्यातवें भाग से हीन स्थिति

विशेषेण तु—अन्यं स्थितिं बध्नन् पूर्वस्थितिबंधात् पल्योपमस्य संख्यातभागेन ऊनां स्थितिं बध्नाति। एतस्य करणस्य प्रथमस्थितिबंधात् चरमस्थितिबंधः संख्यातगुणहीनः।

अपूर्वकरणप्रथमसमये पूर्वस्थितिबंधः पल्योपमस्य संख्यातभागेनोनः अन्यः स्थितिबंधः भवति। तस्मिन् चैव समये पल्योपमस्य संख्यातभागमात्रायाम् सागरोपमपृथक्त्वायाम् वा आयुर्वर्जितानां कर्मणां स्थितिखंडं आरभते। अप्रशस्तानां कर्मणां अनुभागस्यानंतभागमात्रकाण्डकं च तत्रैवारभते। तत्रैव अनंतानुबंधिनां गुणसंक्रमं अपि आरभते।

अनिवृत्तिकरणप्रथमसमये अन्यः स्थितिबंधः, अन्यः स्थितिखंडकः, अन्योऽनुभागखंडकः अन्या च गुणश्रेणिः सार्धं आरब्धा। एवमनिवृत्तिकरणकाले संख्यातेषु भागेषु गतेषु विशेषघातेन घातयन् अनंतानुबंधिचतुष्कस्थितिसत्त्वकर्मसंज्ञिस्थितिबंधसमानं जातं। ततः स्थितिकांडकसहस्रेषु चतुरिन्द्रियस्थितिबंधसमानं जातं, इत्यादिविधिना स्थितिकांडकादिकार्यं कुर्वन् अन्तर्मुहूर्तकाले अतिक्रान्ते दर्शनमोहनीयक्षपणं प्रस्थापयति।

दर्शनमोहनीयक्षपणपरिणामा अपि अधःप्रवृत्त-अपूर्व-अनिवृत्तिभेदेन त्रिविधाः भवन्ति।

दर्शनमोहनीयस्य अनिवृत्तिकरणप्रथमसमये प्रविष्टस्य स्थितिसत्त्वकर्म संख्यातगुणं। दर्शनमोहनीय-वर्जितानां कर्मणां जघन्यः स्थितिबंधः संख्यातगुणः। तेषां चैव स्थितिबंधः संख्यातगुणः। दर्शनमोहनीयवर्जितानां जघन्यस्थितिसत्त्वकर्म संख्यातगुणं। तेषां चैव उत्कृष्टस्थितिसत्त्वकर्मसंख्यातगुणमिति ज्ञातव्यं।

को बांधता है। इस अधःप्रवृत्तकरण के प्रथम समय में होने वाले स्थितिबंध से अंतिम समय में होने वाला स्थितिबंध संख्यातगुणा हीन होता है।

अपूर्वकरण के प्रथम समय में पूर्व स्थितिबंध से पल्योपम के संख्यातवें भाग से हीन अन्य स्थितिबंध होता है। उसी समय में आयुर्कर्म को छोड़कर शेष कर्मों के पल्योपम के संख्यातवें भाग मात्र आयाम वाले अथवा सागरोपमपृथक्त्व आयाम वाले स्थितिकांडक को आरंभ करता है तथा उसी समय में अप्रशस्त कर्मों के अनुभाग के अनन्त बहुभागमात्र अनुभागकांडक को आरंभ करता है। उसी समय में अनन्तानुबंधी कषायों का गुणसंक्रमण भी आरंभ करता है।

अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में अन्य स्थितिबंध, अन्य स्थितिकांडक, अन्य अनुभागकांडक और अन्य गुणश्रेणी एक साथ आरंभ की, इस प्रकार अनिवृत्तिकरणकाल के संख्यात बहुभाग व्यतीत होने पर विशेष घात से घात किया जाता हुआ अनन्तानुबंधी चतुष्क का स्थितिसत्त्व संज्ञी पंचेन्द्रिय के स्थितिबंध के समान हो गया। इसके पश्चात् सहस्रों स्थितिकांडकों के व्यतीत होने पर अनन्तानुबंधी-चतुष्क का स्थितिसत्त्व चतुरिन्द्रिय के स्थितिबंध के समान हो गया। इत्यादि विधि से स्थितिकाण्डक आदि कार्यों को करते हुए अन्तर्मुहूर्त काल के व्यतीत हो जाने पर दर्शनमोहनीय कर्म का क्षपण प्रारंभ करता है।

दर्शनमोहनीय के क्षपण करने वाले परिणाम भी अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण के भेद से तीन प्रकार के होते हैं। इससे अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में प्रविष्ट हुए जीव के दर्शनमोहनीय कर्म का स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित है। इससे दर्शनमोहनीय कर्म को छोड़कर शेष कर्मों का जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणित है। इससे उन्हीं कर्मों का उत्कृष्ट स्थितिबंध संख्यातगुणित है। इससे दर्शनमोहनीय कर्म को छोड़कर शेष कर्मों का जघन्य स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित है। इससे उन्हीं कर्मों का उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित है।

अयं सम्यक्त्वं प्रतिपद्यमानो जीवः अन्येषां कर्मणां स्थितिं कीदृशीं करोति इति पृच्छायां सूत्रमवतार्यते —

**सम्मत्तं पडिवज्जंतो तदो सत्त कम्माणमंतोकोडाकोडिं द्विदिं ठवेदि
णाणावरणीयं दंसणावरणीयं वेदणीयं मोहणीयं णामं गोदं अंतराइयं
चेदि।।१३।।**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सम्यक्त्वोत्पत्तिप्ररूप्यमाणायां सप्तानां कर्मणां स्थितिबंधस्थितिसत्त्वकर्मणोः प्रमाणं प्ररूप्यते।

एतत्प्रमाणं पूर्वं प्ररूपितं ततोऽत्र न वक्तव्यं, पुनरुक्तदोषप्रसंगात् ?

नैष दोषः, सम्यक्त्वं प्रतिपद्यमानस्य स्थितिबंधस्थितिसत्त्वकर्मणोः पूर्वं प्ररूपितप्रमाणं स्मारयित्वा चारित्रं प्रतिपद्यमानस्य स्थितिबंध-स्थितिसत्त्वकर्मणोः प्रमाणप्ररूपणार्थं पुनरपि एतस्य प्ररूपणं कृतं।

सूत्रे 'तदो' इत्युक्ते सर्वविशुद्धमिथ्यादृष्टिजीवेन स्थितिबंधापसरणस्थितिकांडकघाताभ्यां घातयित्वा स्थापितस्थितिबंध-स्थितिसत्त्वकर्मणां ग्रहणं कर्तव्यं। ततः सर्वविशुद्धमिथ्यादृष्टिजीवेन स्थापितस्थितिसत्त्वेन संख्यातगुणितहीनं अन्तःकोटाकोटिप्रमाणं सूत्रोक्तसप्तकर्मणां स्थितिसत्त्वं स्थापयति इति कथितं भवति।

अत्र सूत्रे अविद्यमानं संख्यातगुणहीनत्वं कुतो लभ्यते ?

अब सम्यक्त्व को प्राप्त करता हुआ जीव अन्य कर्मों की स्थिति को कैसी करता है, ऐसा प्रश्न होने पर सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

उस सर्वविशुद्ध मिथ्यादृष्टि के स्थितिसत्त्व की अपेक्षा सम्यक्त्व को प्राप्त होने वाला जीव ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, नाम, गोत्र और अन्तराय, इन सात कर्मों की अन्तःकोडाकोड़ीप्रमाण स्थिति को स्थापित करता है।।१३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सम्यक्त्व की उत्पत्ति की प्ररूपणा में सातों कर्मों की स्थितिबंधों और स्थितिसत्त्वों का प्रमाण प्ररूपित किया गया है।

शंका — सम्यक्त्वोत्पत्ति की प्ररूपणा करते समय सातों कर्मों के स्थितिबंधों और स्थितिसत्त्वों का प्रमाण पहले ही प्ररूपण कर दिया गया है इसलिए उसे यहाँ पर नहीं कहना चाहिए, क्योंकि पुनरुक्त दोष का प्रसंग आता है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि सम्यक्त्व को प्राप्त होने वाले जीव के कर्मों के स्थिति बंध और स्थितिसत्त्व का पूर्वप्ररूपित प्रमाण स्मरण कराकर चारित्र को प्राप्त करने वाले जीव के स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व का प्रमाण प्ररूपण करने के लिए पुनः इसका प्ररूपण किया गया है।

सूत्र में 'तदो' यह पद कहने पर सर्वविशुद्ध मिथ्यादृष्टि जीव के द्वारा स्थितिबंधापसरण और स्थितिकांडकघात से घातकर स्थापित कर्मों के स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व का ग्रहण करना चाहिए। उससे, अर्थात् विशुद्ध मिथ्यादृष्टि जीव के द्वारा स्थापित स्थितिसत्त्व से संख्यातगुणित हीन अन्तःकोडाकोड़ीप्रमाण इन सूत्रोक्त सात कर्मों का स्थितिसत्त्व स्थापित करता है, अर्थात् उत्पन्न करता है, यह अर्थ कहा गया है।

शंका — यहाँ सूत्र में अविद्यमान संख्यात गुणहीन भाव कहाँ से लब्ध होता है ?

अध्याहारात् लभ्यते। मिथ्यादृष्टिस्थितिबंधं स्थितिसत्त्वं च अपूर्वानिवृत्तिकरणाभ्यां घातयित्वा संख्यातगुणहीनं कृत्वा प्रथमसम्यक्त्वं प्रतिपद्यते, इत्येतेन ज्ञापितं भवति। अत्रतनस्थितिबंधात् स्थितिसत्त्वकर्म संख्यातगुणं, किंच — विशुद्ध्या सत्त्वात् स्थितिबंधस्य बहु घातोपदेशात्।

एवं पंचमस्थले क्षायिकसम्यक्त्वोत्पादनविधिकथनमुख्यत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

संप्रति चारित्रधारणाय कर्मणां स्थितिप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

**चारित्तं पडिवज्जंतो तदो सत्तकम्माणमंतोकोडाकोडिं द्विदिं ढुवेदि
णाणावरणीयं दंसणावरणीयं वेदणीयं मोहणीयं णामं गोदं अंतराइयं
चेदि।।१४।।**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — तस्य प्रथमोपशमसम्यक्त्वाभिमुखचरमसमयवर्तिमिथ्यादृष्टिजीवस्य स्थितिबंधस्थितिसत्त्वापेक्षया चारित्रं प्रतिपद्यमानजीवः आयुर्वर्जितज्ञानावरणादिसप्तकर्मणां स्थितिं अन्तःकोटाकोटिप्रमाणां स्थापयति।

तच्चारित्रं द्विविधं — देशचारित्रं सकलचारित्रं चेति। तत्र देशचारित्रं प्रतिपद्यमानौ-मिथ्यादृष्टि जीवौ द्विविधौ भवतः। वेदकसम्यक्त्वेन सहितसंयमासंयमाभिमुखा उपशमसम्यक्त्वेन सहितसंयमासंयमाभिमुखाश्चेति। संयमं प्रतिपद्यमानाः अपि एवमेव द्विविधाः भवन्ति। एतेषु संयमासंयमं प्रतिपद्यमानचरमसमयमिथ्यादृष्टिः

समाधान — सूत्र में अविद्यमान उक्त अर्थ अध्याहार से उपलब्ध होता है।

मिथ्यादृष्टि के स्थितिबंध को और स्थितिसत्त्व को अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण परिणामों के द्वारा घात करके संख्यातगुणित हीन कर प्रथमोपशमसम्यक्त्व को प्राप्त होता है, यह बात इस सूत्र-पद से ज्ञापित की गई है। यहाँ पर होने वाले स्थितिबंध से यहाँ पर होने वाला स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित होता है, क्योंकि विशुद्धि के द्वारा सत्त्व की अपेक्षा स्थितिबंध के बहुत घात का उपदेश पाया जाता है।

इस प्रकार पाँचवें स्थल में क्षायिक सम्यक्त्व के उत्पन्न करने की विधि की मुख्यता से तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब चारित्र को धारण करने के लिए कर्मों की स्थिति प्रतिपादन हेतु सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

उस प्रथमोपशमसम्यक्त्व के अभिमुख चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टि के स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व की अपेक्षा चारित्र को प्राप्त होने वाला जीव ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, नाम, गोत्र और अन्तराय, इन सात कर्मों की अन्तःकोडाकोड़ी प्रमाण स्थिति को स्थापित करता है।।१४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — प्रथमोपशमसम्यक्त्व के अभिमुख हुये अंतिम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि जीव के स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व की अपेक्षा से चारित्र को प्राप्त करने वाला जीव आयु को छोड़कर शेष सात कर्मों की स्थिति को अन्तःकोटाकोटी प्रमाण स्थापित करता है।

वह चारित्र दो प्रकार का है — देशचारित्र और सकलचारित्र। उनमें देशचारित्र को प्राप्त होने वाले मिथ्यादृष्टि जीव दो प्रकार के होते हैं — वेदकसम्यक्त्व से सहित संयमासंयम के अभिमुख और उशमसम्यक्त्व से सहित संयमासंयम के अभिमुख। इसी प्रकार संयम को प्राप्त होने वाले मिथ्यादृष्टि जीव भी दो प्रकार के होते हैं। इनमें संयमासंयम को प्राप्त होने वाला चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टि उससे अर्थात् प्रथमोपशमसम्यक्त्व के अभिमुख

ततः प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखचरमसमयमिथ्यादृष्टिबंधात् स्थितिसत्त्वकर्मणश्च सप्तानां कर्मणां अन्तःकोटा-कोटिस्थितिं स्थापयति।

अस्य भावार्थः — प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखचरमसमयमिथ्यादृष्टिजीवस्य स्थितिबंधात् स्थितिसत्त्वकर्मणश्च संयमासंयमाभिमुखचरमसमयमिथ्यादृष्टिस्थितिबंध-स्थितिसत्त्वकर्म संख्यातगुणहीनं अस्ति, प्रथमसम्यक्त्वत्रि-करणपरिणामेभ्यः अनन्तगुणैः प्रथमसम्यक्त्वानुविद्धसंयमासंयमप्रायोग्यत्रिकरणपरिणामैः प्राप्तघातत्वात्। वेदकसम्यक्त्वं संयमासंयमं च युगपत् प्रतिपद्यमानस्य द्वे चैव करणे भवतः, तत्र अनिवृत्तिकरणस्य अभावात्।

एतस्य अपूर्वकरणचरमसमये वर्तमानमिथ्यादृष्टेः स्थितिसत्त्वकर्म प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखानिवृत्ति-करणचरमसमयस्थितमिथ्यादृष्टिस्थितिसत्त्वकर्मणः कथं संख्यातगुणहीनं ?

न, स्थितिसत्त्वस्यापवर्तनं कृत्वा संयमासंयमं प्रतिपद्यमानस्य संयमासंयमचरममिथ्यादृष्टेः तदविरोधात्। अथवा तत्रतनानिवृत्तिकरण-स्थितिघातादपि अत्रतनापूर्वकरणस्थितिघातस्य बहुतरत्वात्, न चेदं अपूर्वकरणं प्रथमसम्यक्त्वाभिमुख-मिथ्यादृष्टि-अपूर्वकरणेन तुल्यं, सम्यक्त्व-संयमासंयम-संयमफलानां तुल्यत्वविरोधात्।

विशेषेण तु — प्रथमोपशमसम्यक्त्वं संयमासंयमं च युगपत् उत्पादयन् भव्यः त्रीण्यपि करणानि करोति, किन्तु असंयतसम्यग्दृष्टिः, अष्टाविंशतिमोहसत्त्वमिथ्यादृष्टिः वेदकसम्यक्त्वाभिमुखः मिथ्यादृष्टिर्वा यदि संयमासंयमं प्राप्नोति तर्हि तस्य द्वे एव करणे भवतः, न चानिवृत्तिकरणं।

चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टि के स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व की अपेक्षा आयुर्कर्म को छोड़कर शेष सातों कर्मों की अन्तःकोटाकोटी प्रमाण स्थिति को स्थापित करता है। इस पूर्वोक्त कथन का भावार्थ यह है — प्रथमोपशमसम्यक्त्व के अभिमुख चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टि के स्थितिबंध से और स्थितिसत्त्व से संयमासंयम के अभिमुख चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टि का स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित हीन होता है, क्योंकि प्रथमोपशमसम्यक्त्व को उत्पन्न करने वाले तीनों करण-परिणामों की अपेक्षा अनन्तगुणित ऐसे प्रथमोपशमसम्यक्त्व से संयुक्त संयमासंयम के योग्य तीनों करण — परिणामों से यह स्थितिघात प्राप्त हुआ है। वेदक सम्यक्त्व को और संयमासंयम को युगपत् प्राप्त होने वाले जीव के दो ही करण होते हैं, क्योंकि वहाँ पर अनिवृत्तिकरण नहीं होता है।

शंका — अपूर्वकरण के अंतिम समय में वर्तमान इस उपर्युक्त मिथ्यादृष्टि जीव का स्थितिसत्त्व, प्रथमोपशमसम्यक्त्व के अभिमुख अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में स्थित मिथ्यादृष्टि के स्थितिसत्त्व से संख्यातगुणित हीन कैसे है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि स्थितिसत्त्व का अपवर्तन करके संयमासंयम को प्राप्त होने वाले संयमासंयम के अभिमुख चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टि के संख्यातगुणित हीन स्थितिसत्त्व के होने में कोई विरोध नहीं है। अथवा वहाँ के अर्थात् प्रथमोपशमसम्यक्त्व के अभिमुख मिथ्यादृष्टि के, अनिवृत्तिकरण से होने वाले स्थितिघात की अपेक्षा यहाँ के अर्थात् संयमासंयम के अभिमुख मिथ्यादृष्टि के, अपूर्वकरण से होने वाला स्थितिघात बहुत अधिक होता है तथा यह अपूर्वकरण, प्रथमोपशमसम्यक्त्व के अभिमुख मिथ्यादृष्टि के अपूर्वकरण के साथ समान नहीं है, क्योंकि सम्यक्त्व, संयमासंयम और संयमरूप फल वाले विभिन्न परिणामों के समानता होने का विरोध है।

विशेष बात यह है कि कोई भव्य जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व और संयमासंयम को एक साथ उत्पन्न करते हुए तीनों करणों को करता है किन्तु अट्ठाईस मोहनीय कर्म की सत्त्व वाला असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा वेदक सम्यक्त्व के अभिमुख हुआ मिथ्यादृष्टि यदि संयमासंयम को प्राप्त करता है तो उसके दो ही करण

संयतासंयतस्य प्रथमसमयादारभ्य यत् प्रतिसमयं अनन्तगुणाविशुद्धिर्भवति सा एकान्तवृद्धिरिति कथ्यते। अस्याः कालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रमेव।

सकलचारित्रं त्रिविधं — क्षायोपशमिकं औपशमिकं क्षायिकं चेति। तत्र प्रथमोपशमसम्यक्त्वं संयमं च युगपत् प्रतिपद्यमानः त्रीण्यपि करणानि करोति। यदि पुनः अष्टाविंशतिमोहकर्मसत्ताकः मिथ्यादृष्टिः, असंयतसम्यग्दृष्टिः संयतासंयतो वा संयमं प्राप्नोति तस्य द्वे एव करणे भवतः, अनिवृत्तिकरणाभावात्।

यानि संयमलब्धिस्थानानि तानि त्रिविधानि भवन्ति — प्रतिपातस्थानानि उत्पादस्थानानि तदव्यतिरिक्तस्थानानि इति। यस्मिन् स्थाने मिथ्यात्वं वा असंयमसम्यक्त्वं वा संयमासंयमं वा गच्छति तत्प्रतिपातस्थानं। यस्मिन् स्थाने संयमं प्रतिपद्यते तदुत्पादस्थानं। शेषसर्वाणि चैव चारित्रस्थानानि तानि तदव्यतिरिक्तस्थानानि। एतेषां लब्धिस्थानानामल्पबहुत्वं कथ्यते — सर्वस्तोकानि प्रतिपातस्थानानि। मिथ्यात्वं वा असंयमसम्यक्त्वं वा संयमासंयमं वा गच्छतः चरमसमयसंयतस्य जघन्यपरिणाममादिं कृत्वा यावत् उत्कृष्टप्रतिपातस्थानं इति सर्वेषां ग्रहणात्। उत्पादस्थानानि असंख्यातगुणानि, प्रतिपातस्थानानि अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमानस्थानानि च मुक्त्वा शेषसर्वस्थानानां ग्रहणात्। तदव्यतिरिक्तस्थानानि असंख्यातगुणानि, प्रतिपातोत्पादस्थानानि मुक्त्वा शेषसर्वस्थानानां ग्रहणात्^१।

होते हैं, अनिवृत्तिकरण नहीं होता है।

संयतासंयत के प्रथम समय से प्रारंभ करके जो प्रतिसमय अनन्तगुणा विशुद्धि होती है, वह 'एकान्तवृद्धि' कहलाती है। इसका काल अन्तर्मुहूर्त मात्र ही है।

क्षायोपशमिक, औपशमिक और क्षायिक के भेद से सकल चारित्र तीन प्रकार का है। उनमें क्षायोपशमिक चारित्र को प्राप्त करने का विधान कहते हैं। वह इस प्रकार है — प्रथमोपशमसम्यक्त्व और संयम को एक साथ प्राप्त करने वाला जीव तीनों ही करणों को करके (संयम को) प्राप्त होता है। उन करणों का लक्षण किस प्रकार सम्यक्त्व की उत्पत्ति में कहा है उसी प्रकार कहना चाहिए। यदि पुनः मोहकर्म की अट्टाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा संयतासंयत जीव संयम को प्राप्त करता है, तो दो ही करण होते हैं क्योंकि उसके अनिवृत्तिकरण का अभाव होता है।

यहाँ पर जो संयमलब्धि के स्थान हैं, वे तीन प्रकार के होते हैं। वे इस प्रकार हैं — प्रतिपातस्थान, उत्पादस्थान और तदव्यतिरिक्तस्थान। उनमें पहले प्रतिपातस्थान को कहते हैं — जिस स्थान पर जीव मिथ्यात्व को अथवा असंयमसम्यक्त्व को अथवा संयमासंयम को प्राप्त होता है वह प्रतिपातस्थान है। अब उत्पादस्थान को कहते हैं — जिस स्थान पर जीव संयम को प्राप्त होता है वह उत्पादस्थान है। इनके अतिरिक्त शेष सर्व ही चारित्र स्थानों को तदव्यतिरिक्तस्थान कहते हैं। अब इन संयमलब्धि स्थानों का अल्पबहुत्वं कहते हैं। वह इस प्रकार है — प्रतिपातस्थान सबसे कम हैं, क्योंकि मिथ्यात्व को अथवा असंयमसम्यक्त्व को अथवा संयमासंयम को जाने वाले अन्तिमसमयवर्ती संयत के जघन्य परिणामों को आदि करके उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान तक के सभी स्थानों का ग्रहण किया गया है। प्रतिपातस्थानों से उत्पादस्थान असंख्यातगुणित हैं, क्योंकि प्रतिपातस्थानों को और अप्रतिपात — अप्रतिपद्यमानस्थानों को छोड़कर शेष सर्व स्थानों का ग्रहण किया गया है। उत्पादस्थानों से तदव्यतिरिक्त स्थान असंख्यातगुणित हैं, क्योंकि प्रतिपातस्थान और उत्पादस्थानों को छोड़कर शेष सर्व स्थानों का ग्रहण किया गया है।

अधुना संयमस्थानस्य अल्पबहुत्वं निरूप्यते —

सर्वमन्दानुभागं मिथ्यात्वं गच्छतः जीवस्य जघन्यं संयमस्थानं। तस्यैव उत्कृष्टं संयमस्थानमनन्तगुणं। असंयमसम्यक्त्वं गच्छतः जघन्यं संयमस्थानमनन्तगुणं। तस्यैवोत्कृष्टं संयमस्थानमनन्तगुणं। संयमासंयमं गच्छतः जघन्यं संयमस्थानमनन्तगुणं। तस्यैवोत्कृष्टं संयमस्थानमनन्तगुणं। कर्मभूमिजस्य संयमं प्रतिपद्यमानस्य जघन्यं संयमस्थानमनन्तगुणं। अकर्मभूमिजस्य-पञ्चम्लेच्छखंडनिवासिनां संयमं प्रतिपद्यमानस्य जघन्यं संयमस्थानमनन्तगुणं। तस्यैवोत्कृष्टं संयमं प्रतिपद्यमानस्य संयमस्थानमनन्तगुणं। कर्मभूमिजस्य संयमं प्रतिपद्यमानस्य उत्कृष्टं संयमस्थानमनन्तगुणं।

परिहारविशुद्धिसंयतस्य जघन्यं संयमस्थानं छेदोपस्थापनासंयमाभिमुखस्य साधोः अनंतगुणं। तस्यैवोत्कृष्टं संयमस्थानमनन्तगुणं। अस्योपरि सामायिकछेदोपस्थापनासंयतयोः उत्कृष्टं संयमस्थानं अनंतगुणं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानाभिमुखस्य सूक्ष्मसांपरायणशुद्धिसंयतस्य जघन्यं संयमस्थानमनन्तगुणं। तस्यैवोत्कृष्टं संयमस्थानमनन्तगुणं, अनन्तगुणविशुद्ध्या समुत्पत्तेः। वीतरागस्य अजघन्यमनुत्कृष्टं चारित्रलब्धिस्थानमनन्तगुणं^१ भवतीति।

संप्रति औपशमिकचारित्रप्राप्तेर्विधानं कथ्यते —

यः वेदकसम्यग्दृष्टिर्जीवः सः तावत् पूर्वमेव अनन्तानुबन्धिकषायान् विसंयोजयति। तस्य तानि त्रीण्येव करणानि प्ररूपयितव्यानि — अधःप्रवृत्तकरणं अपूर्वकरणं अनिवृत्तिकरणं च। अधःप्रवृत्तकरणे नास्ति स्थितिघातः अनुभागघातः गुणश्रेणिः वा। अपूर्वकरणे स्थितिघातोऽनुभागघातः गुणश्रेणिः गुणसंक्रमश्चास्ति।

अब संयमस्थान के अल्पबहुत्व को कहते हैं —

सर्वमन्दानुभागरूप मिथ्यात्व को प्राप्त करने वाले जीव के जघन्य संयमस्थान होता है। उसका ही उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है। अविरतसम्यक्त्व को प्राप्त करने वाले जीव का जघन्य संयमस्थान अनन्तगुणा है। उसका ही उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है। संयमासंयम को प्राप्त होने वाले का जघन्य संयमस्थान अनन्तगुणा है। उसका ही उत्कृष्ट संयमस्थान अनंतगुणा है। संयम को प्राप्त करने वाले कर्मभूमिज (आर्य) मनुष्य का जघन्य संयमस्थान अनंतगुणा है। संयम को प्राप्त करने वाले अकर्मभूमिज, अर्थात् पाँच म्लेच्छ खंडों में रहने वाले, मनुष्य का जघन्य संयमस्थान अनन्तगुणा है। संयम को प्राप्त करने वाले उसका ही उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है। संयम को प्राप्त करने वाले कर्मभूमिज (आर्य) मनुष्य का उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है। छेदोपस्थापनासंयम के अभिमुख हुए परिहारविशुद्धिसंयत का जघन्य संयमस्थान अनन्तगुणा है। उसका ही उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है। इसके ऊपर सामायिक छेदोपस्थापनसंयतों का उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है। अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के अभिमुख हुए सूक्ष्मसाम्परायिकविशुद्धिसंयत का जघन्य संयमस्थान अनंतगुणा है। उसी का उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है। क्योंकि उसकी उत्पत्ति अनन्तगुणी विशुद्धि से है। वीतराग का अजघन्यानुत्कृष्ट चरित्रलब्धिस्थान अनन्तगुणा है।

अब औपशमिक चारित्र की प्राप्ति के विधान को कहते हैं। वह इस प्रकार है — जो वेदकसम्यग्दृष्टि जीव है वह पूर्व में ही अनन्तानुबन्धिचतुष्टय का विसंयोजन करता है। उसके जो करण होते हैं उनका प्ररूपण करते हैं। वह इस प्रकार है — अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। अधःप्रवृत्तकरण में स्थितिघात, अनुभागघात अथवा गुणश्रेणी नहीं है। किन्तु अपूर्वकरण में स्थितिघात, अनुभागघात गुणश्रेणी और गुणसंक्रमण हैं। ये ही कार्य अनिवृत्तिकरण में भी हैं, अन्तरकरण नहीं है। जो अनन्तानुबन्धिचतुष्टय का

अनिवृत्तिकरणेऽपि एतानि कार्याणि चैव, अन्तरकरणं नास्ति। यः अनन्तानुबन्धिकषायान् विसंयोजयति तस्य एषा तावत्समासप्ररूपणा। ततः अनन्तानुबन्धिनं विसंयोज्य अन्तर्मुहूर्तं अधःप्रवृत्तो भूत्वा पुनः प्रमत्तगुणस्थानं प्रतिपद्य असाता-अरति-शोक-अयशःकीर्त्यादीनि अत्र बन्धयोग्यत्रिषष्टिकर्माणि अन्तर्मुहूर्तं बन्धयित्वा ततः दर्शनमोहनीयमुपशामयति। यानि अनन्तानुबन्धिविसंयोजनायां त्रीणि करणानि प्ररूपितानि तानि सर्वाणि अस्यौपशमिकचारित्रप्राप्तेरपि प्ररूपयितव्यानि^१।

यः कश्चिद् उपशमश्रेणीमारोहति, तस्य उपशमनविधानं धवलाटीकायां^२ पठितव्यम्। ततश्च स एव उपशामको महामुनिः दशमगुणस्थानं प्राप्नोति।

सूक्ष्मसांपरायिकचरमसमयस्य ज्ञानावरण-दर्शनावरण-अन्तरायाणां अन्तर्मुहूर्तिकः स्थितिबंधः। नामगोत्रयोः स्थितिबंधः षोडश मुहूर्ताः। वेदनीयस्य स्थितिबंधः चतुर्विंशतिमुहूर्ताः। अनंतरकाले सर्व मोहनीयमुपशान्तं।

ततः प्रभृति अन्तर्मुहूर्तमुपशान्तकषायवीतरागो जातः। सर्वस्मिन् उपशान्तकाले अवस्थितपरिणामः। गुणश्रेणिनिक्षेपः उपशान्तकालस्य संख्यातभागः। केवलज्ञानावरणकेवलदर्शनावरणयोरनुभागोदयेन सर्वोपशान्तकालस्य अवस्थितवेदकः। निद्राप्रचलयोः अपि यावद् वेदकः तावदवस्थितवेदकः। अन्तरायस्यावस्थितवेदकः। शेषाणां लब्धिकर्माशानाम् अनुभागोदयो वृद्धिर्वा हानिर्वा अवस्थानं वा। नामगोत्रौ यौ परिणामप्रत्ययौ तयोरवस्थितवेदकः अनुभागेन। एवमौपशमिकचारित्रप्राप्तेर्विधानं भणितम्।

विसंयोजन करता है उसकी यह संक्षेप से प्ररूपणा है। तत्पश्चात् अनन्तानुबन्धितचतुष्टय का विसंयोजन करके अन्तर्मुहूर्तकाल तक अधःप्रवृत्त अर्थात् स्वस्थानअप्रमत्त होकर पुनः प्रमत्तगुणस्थान को प्राप्त कर असाता, अरति, शोक और अयशःकीर्ति आदिक (प्रमत्तगुणस्थान में बंधने योग्य तिरेसठ) कर्मप्रकृतियों को अन्तर्मुहूर्त तक बांधकर पश्चात् दर्शनमोहनीय को उपशमाता है। अनन्तानुबन्धी के विसंयोजन में जिन तीनों करणों का प्ररूपण किया जा चुका है, वे सब इसके भी कहे जाने चाहिए।

जो कोई महामुनि उपशमश्रेणी पर आरोहण करते हैं। उनके उपशमन का विधान धवला टीका में पढ़ना चाहिए।

इसके पश्चात् वे उपशामक महामुनि दशवें गुणस्थान को प्राप्त कर लेते हैं।

चरमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक के ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इनका अन्तर्मुहूर्त मात्र स्थिति वाला बंध होता है। नाम व गोत्र कर्मों का स्थितिबंध सोलह मुहूर्तप्रमाण होता है। वेदनीय का स्थितिबंध चौबीस मुहूर्तमात्र होता है। अनन्तर काल में सब मोहनीय कर्म उपशान्त हो जाता है।

तब से लेकर अन्तर्मुहूर्त तक उपशान्तकषायवीतराग रहता है। समस्त उपशान्तकाल में अवस्थित परिणाम होता है तथा (ज्ञानावरणादि कर्मों का) गुणश्रेणी निक्षेप उपशान्तकाल के संख्यातवें भाग होता है। केवल ज्ञानावरण और केवलदर्शनावरण के सर्व उपशान्त काल में अवस्थित अनुभागोदय का वेदक है। निद्रा और प्रचला का भी जब तक वेदक है तब तक अवस्थित वेदक ही है। अन्तराय की पाँच प्रकृतियों का भी अवस्थित वेदक ही है। शेष लब्धिकर्मांशों का अर्थात् चार ज्ञानावरण और तीन दर्शनावरण कर्मों का, अनुभागोदय वृद्धि, हानि एवं अवस्थितिस्वरूप है। नाम, गोत्र जो परिणामप्रत्यय हैं उनका अनुभाग से अवस्थित वेदक होता है। इस प्रकार औपशमिक चारित्र की प्राप्ति का विधान कहा गया है। यह औपशमिक

इदमौपशमिकं चारित्रं न मोक्षकारणं, अन्तर्मुहूर्तकालादुपरि निश्चयेन मोहोदयनिबन्धनत्वात्।

अवस्थितपरिणामः वीतरागः उपशान्तकषायः कथं मोहे निपतति ?

स्वभावात्। स च उपशान्तकषाय प्रतिपातो द्विविधः — भवक्षयनिबन्धनः उपशमनकालक्षयनिबन्धनश्च। तत्र भवक्षयेण प्रतिपतितस्य सर्वाणि करणानि देवेषु उत्पन्नप्रथमसमये एव उद्घाटितानि। यानि उदीर्यमाणानि कर्माणि तानि उदयावलीं प्रवेशितानि। यानि न उदीर्यमाणानि तानि अपि अपकर्षणं कृत्वा आवलिकाबाह्ये गोपुच्छाकारश्रेणिरूपेण निक्षिप्तानि^१।

उपशान्तकालस्य क्षयेण प्रतिपतनं कथयिष्यते — उपशान्तः कालक्षयेण पतन् लोभे चैव प्रतिपतति। सूक्ष्मसांपरायिकगुणस्थानमागत्य गुणस्थानान्तरगमनाभावात्। अत्र यथा उपशमश्रेणिमारुह्य महामुनिः यानि यानि कार्याणि अकरोत् तानि तानि कार्याणि उद्घाट्य अधोऽधोऽवतरति इति ज्ञातव्यं।

विशेषजिज्ञासुभिः धवलाटीकायां दृष्टव्यः।

अत्र मनाक् विशेषः कथ्यते —

कश्चिदपि महायतिः उपशमश्रेणिमारुह्यमाणः क्रमेणारोहति, पतत्यपि क्रमेणैव।

उक्तं च — उवसामगा दु सेढिं आरोहंति य पडंति य कमेण।

उवसामगेसु मरिदो देवतमत्तं समल्लियइ^२।।

अस्यायमर्थः — उपशमश्रेणिमारुह्यमाणस्य अपूर्वानिवृत्तिसूक्ष्मसांपरायनामानि त्रीणि गुणस्थानानि

चारित्र मोक्ष का कारण नहीं है, क्योंकि अन्तर्मुहूर्त काल से ऊपर वह निश्चयतः मोह के उदय का कारण होता है।

शंका — अवस्थित परिणाम वाला उपशान्तकषाय वीतराग मोह में कैसे गिरता है ?

समाधान — स्वभाव से गिरता है।

उपशान्तकषाय का वह प्रतिपात दो प्रकार है, भवक्षयनिबन्धन और उपशमनकालक्षयनिबन्धन। इनमें भव क्षय से प्रतिपात को प्राप्त हुए जीव के देवों में उत्पन्न होने के प्रथम समय में ही बन्ध, उदीरणा एवं संक्रमणादिरूप सब कारण निज स्वरूप से प्रवृत्त हो जाते हैं। जो कर्म उदीरणा को प्राप्त हैं वे उदयावली में प्रवेशित हैं। जो उदीरणा को प्राप्त नहीं हैं, वे भी अपकर्षण करके उदयावली के बाहर गोपुच्छाकार श्रेणिरूप से निक्षिप्त होते हैं।

उपशान्तकाल के क्षय से होने वाले प्रतिपात को कहते हैं। वह इस प्रकार है — उपशान्तगुणस्थान काल के क्षय से प्रतिपात को प्राप्त होने वाला उपशान्तकषाय जीव लोभ में अर्थात् सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थान में गिरता है, क्योंकि उसके सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थान को छोड़कर अन्य गुणस्थान में जाने का अभाव है। यहाँ जिस प्रकार उपशमश्रेणी में चढ़कर महामुनि ने जिन-जिन क्रियाओं को किया था। स्थितिघात आदि की भी, उन्हीं-उन्हीं क्रियाओं का उद्घाटन करके नीचे-नीचे उतरते हैं, ऐसा समझना। विशेष जिज्ञासुओं को धवला टीका में देखना चाहिए।

यहाँ किंचित् विशेष कहते हैं —

कोई भी महायति उपशमश्रेणी पर चढ़ते हुए क्रम-क्रम से चढ़ते हैं और पुनः उसी क्रम से ही नीचे उतरते हैं।

गोम्मटसार कर्मकांड में कहा भी है —

उपशामक मुनि उपशमश्रेणी में क्रम से आरोहण करते हैं और उसी क्रम से नीचे गिरते हैं। उपशमश्रेणी

भवन्ति, अवतीर्यमाणोऽपि सूक्ष्मसांपराय-अनिवृत्ति-अपूर्वकरणनामानि त्रीण्येव लभन्ते। उपशमश्रेण्यां मृत्वा महाऋद्धिधारिणो देवा भवन्ति। उपशान्तकषायो वीतरागः महायतिः कालक्षयेण दशमगुणस्थानं, भवक्षयेण तत्क्षणमेव चतुर्थगुणस्थानं प्राप्नोति अतः उपशान्तकषायनामधेयस्य एकादशगुणस्थानवर्तिनो वीतरागछद्मस्थस्य द्वे एव गुणस्थाने भवतः।

उपशमश्रेणिं कतिवारां लब्धुं शक्नोति इति पृच्छायां कथ्यते—

चत्तारि वारमुवसमसेहिं समरुहदि खविदकम्मंसो।

बत्तीसं वाराइं, संजममुवलहिय णिव्वादि^१॥६१९॥

कश्चिदपि महामुनिः व्यवहार-निश्चयरत्नत्रयबलेन निर्विकल्पशुद्धात्मश्रद्धानज्ञानानुचरणरूपनिश्चय-धर्म्यध्यानेन शुक्लध्यानेन वा अधिकतमाः चतुर्वारानेव उपशमश्रेणीः समारोहति, न चाधिकवारान् पश्चात् नियमेन कर्माशान् क्षपयन् क्षपकश्रेणिमारुह्य केवलज्ञानी भगवान् अर्हन् परमेष्ठी भवति।

कश्चिदपि महासाधुः संयमं द्वात्रिंशद्वारान् एवं प्राप्तुं शक्नोति पुनश्च नियमेन निर्वाणं प्राप्नोति।

भगवान् ऋषभदेवः पूर्वभवे द्विवारं उपश्रेणिमारुरोह। तद्यथा—

अस्मिन् मध्यलोके प्रथमद्वीपस्य जंबूद्वीपस्य पूर्वविदेहे पुष्कलावतीदेशस्य पुण्डरीकिणीनगर्यां

में मरते हैं तो नियम से देवगति में उत्कृष्ट देवत्व-अहमिंद्रपद को प्राप्त करते हैं॥

इसका अभिप्राय यह है कि उपशमश्रेणी में चढ़ते समय अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसांपराय ये तीन गुणस्थान होते हैं और उतरने वाले के भी सूक्ष्मसाम्पराय, अनिवृत्तिकरण और अपूर्वकरण ये ही तीन गुणस्थान होते हैं। उपशम श्रेणी में मरण होने पर महाऋद्धिधारी देव अहमिंद्र ही होते हैं।

उपशम श्रेणी से चढ़कर उपशांतकषाय सहित वीतरागी महामुनि काल के क्षय से उपशांतकषाय नाम के ग्यारहवें गुणस्थान का काल पूर्ण हो जाने से वापस दशवें गुणस्थान में आते हैं और भव के क्षय से आयु के पूर्ण हो जाने से उसी क्षण चौथे गुणस्थान को प्राप्त कर लेते हैं। इसलिए उपशांतकषाय नाम वाले ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती वीतराग छद्मस्थ महामुनि के दो ही गुणस्थान होते हैं।

उपशमश्रेणी कितनी बार प्राप्त करना शक्य है ? ऐसा प्रश्न होने पर कहते हैं—

कर्मों के अंश का क्षपण करने वाले ऐसे क्षपितकर्मांश मुनि उपशम श्रेणी पर अधिक से अधिक चार बार ही चढ़ सकते हैं। सकल संयम को उत्कृष्टरूप से बत्तीस बार प्राप्त कर सकते हैं पुनः नियम से मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं॥६१९॥

कोई महामुनि व्यवहार-निश्चयरत्नत्रय के बल से निर्विकल्प शुद्ध आत्मा का श्रद्धान, ज्ञान और अनुचरणरूप निश्चयधर्मध्यान अथवा शुक्लध्यान के द्वारा अधिकतम चार बार ही उपशम श्रेणी पर चढ़ते हैं इससे अधिक बार नहीं, पश्चात् नियम से कर्मों के अंशों का क्षपण करते हुए क्षपक श्रेणी पर चढ़कर केवलज्ञानी भगवान् अर्हन् परमेष्ठी हो जाते हैं।

कोई भी महासाधु संयम को बत्तीस बार ही प्राप्त कर सकते हैं, पुनः नियम से मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं।

भगवान् ऋषभदेव पूर्व भव में दो बार उपशम श्रेणी में चढ़े हैं। उसी को कहते हैं—

इस मध्यलोके में प्रथम द्वीप जंबूद्वीप के पूर्व विदेह में पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणी नगरी में

तीर्थकरपदधारको राजा वज्रसेनः, तस्य श्रीकान्तामहाराज्यः पुत्रोऽभूद् वज्रनाभिः। एकदा लौकान्तिकामरैः पूजितः श्रीवज्रसेनतीर्थकरः दीक्षां जग्राह, पुत्रवज्रनाभये राज्याभिषेकं कृत्वा। तदनंतरं दुःसहतपश्चरणं कुर्वता भगवता वज्रसेनतीर्थकरेण ध्यानचक्रेण घातिकर्माणि निहत्य केवलज्ञानं लब्धं। इतः वज्रनाभि-महाराजस्य आयुधशालायां चक्ररत्नमाविर्बभूव। चक्रवर्तिना वज्रनाभिसम्राजा षट्खण्डान् विजित्य दिग्विजयी संजातः। बहुकालपर्यंतं चक्रवर्तित्वपदमनुभूय एकदा पित्रा तीर्थकरदेवेन दुर्लभं रत्नत्रयस्वरूपं ज्ञात्वा जैनैश्चरी दीक्षां जग्राह। नानाविधतपश्चरणं कुर्वता वज्रनाभिमहामुनिना स्वपितुः तीर्थकरस्य पादमूले दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणभावनां भावयता तीर्थकरप्रकृतिबंधः कृतः।

एकचर्याव्रतं पालयन् महासाधु एकदा विशुद्धात्मानं ध्यायन् सन् उपशमश्रेणिमारुह्य उपशान्तकषाय-गुणस्थानं संप्राप्य तत्रान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा गुणस्थानकालक्षयेणाधोऽवतीर्य पुनरपि षष्ठसप्तमगुणस्थानयोः कालं व्यतीत्य द्वितीयवारं उपश्रेणिमारुह्य उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थो महामुनिः तत्रान्तर्मुहूर्तमात्रं स्थित्वा भवक्षयेण तत्रैव मनुष्यायुः समाप्य-मृत्वा सर्वार्थसिद्धिविमाने अहमिंद्रो बभूव।

उक्तं च महापुराणे आर्षग्रन्थे —

विशुद्धभावनः सम्यग् विशुद्धयन् स्वविशुद्धिभिः। तदोपशमकश्रेणीमारुरोह मुनीश्वरः॥८९॥

अपूर्वकरणं श्रित्वाऽनिवृत्तिकरणोऽभवत्। स सूक्ष्मरागः संप्रापद् उपशान्तकषायताम्॥९०॥

तीर्थकर पद के धारक राजा वज्रसेन हुए हैं, उनकी महारानी श्रीकांता के पुत्र वज्रनाभि हुए हैं। एक समय लौकान्तिक देवों के द्वारा पूजा को प्राप्त श्री वज्रसेन तीर्थकर ने पुत्र वज्रनाभि का राज्याभिषेक करके स्वयं दीक्षा ग्रहण कर ली। अनंतर घोर तपश्चरण करते हुए भगवान वज्रसेन तीर्थकर ने ध्यानचक्र के द्वारा घातिकर्मों का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। इधर वज्रनाभि महाराज की आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हो गया। तब चक्रवर्ती वज्रनाभि सम्राट् छह खण्ड पृथिवी को जीतकर दिग्विजयी हुए। बहुत काल पर्यंत चक्रवर्ती पद का अनुभव करके एक समय पिता तीर्थकर वज्रसेन के समवसरण में दुर्लभ रत्नत्रय का स्वरूप सुनकर जैनैश्चरी दीक्षा ले ली, नाना प्रकार के तपश्चरण को करते हुए वज्रनाभि महामुनि ने अपने पिता तीर्थकर प्रभु के पादमूल में दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाओं को भाते हुए तीर्थकर प्रकृति का बंध कर लिया।

पुनः एक चर्या व्रत का पालन करते हुए महासाधु किसी समय विशुद्ध आत्मा का ध्यान करते हुए उपशम श्रेणी में चढ़कर उपशान्तकषाय नाम के ग्यारहवें गुणस्थान को प्राप्त करके वहाँ पर अंतर्मुहूर्त रहकर गुणस्थान का काल पूर्ण हो जाने से नीचे उतरकर पुनः छठे-सातवें गुणस्थान में आकर उसमें काल व्यतीत कर दूसरी बार उपशम श्रेणी में चढ़कर उपशान्तकषाय वीतराग छद्मस्थ महामुनि वहाँ पर अंतर्मुहूर्त काल रहकर भव के क्षय से वहीं पर मनुष्यायु को समाप्त करके मरण करके — उत्कृष्ट पंडितमरण करके सर्वार्थसिद्धि विमान में अहमिन्द्र हो गये।

महापुराण नाम के आर्षग्रंथ में कहा है —

विशुद्ध भावनाओं को धारण करने वाले वज्रनाभि मुनिराज जब अपने विशुद्ध परिणामों से उत्तरोत्तर विशुद्ध हो रहे थे तब वे उपशमश्रेणी पर आरूढ़ हुए॥८९॥ वे अधःकरण के बाद आठवें अपूर्वकरण का आश्रय कर नौवें अनिवृत्तिकरण गुणस्थान को प्राप्त हुए और उसके बाद जहाँ राग अत्यन्त सूक्ष्म रह जाता है ऐसे सूक्ष्मसाम्पराय नामक दसवें गुणस्थान को प्राप्तकर उपशान्तमोह नामक ग्यारहवें गुणस्थान को प्राप्त हुए। वहाँ उनका मोहनीय कर्म बिल्कुल ही उपशान्त हो गया था॥९०॥ सम्पूर्ण मोहनीय कर्म का उपशमन हो

कृत्स्नस्य मोहनीयस्य प्रशमादुपपादितं। तत्रौपशमिकं प्रापच्चारित्रं सुविशुद्धिकम्॥११॥
 सोऽन्तर्मुहूर्ताद् भूयोऽपि स्वस्थानस्थोऽभवद् यतिः। नोर्ध्वं मूहूर्तात् तत्रास्ति निसर्गात् स्थितिरात्मनः॥१२॥
 सोऽबुद्ध परमं मंत्रं सोऽबुद्ध परमं तपः। सोऽबुद्ध परमामिष्टिं सोऽबुद्ध परमं पदम्॥१३॥
 ततः कालात्यये धीमान् श्रीप्रभाद्रौ समुन्नते। प्रायोपवेशनं कृत्वा शरीराहारमत्यजत्॥१४॥
 रत्नत्रयमयीं शय्यां अधिशय्य तपोनिधिः। प्रायेणोपविशत्यस्मिन्नित्यन्वर्थमापिपत्॥१५॥

पुनश्च—

द्वितीयवारमारुह्य श्रेणीमुपशमादिकाम्। पृथक्त्वध्यानमापूर्य समाधिं परमं श्रितः॥११०॥
 उपशान्तगुणस्थाने कृतप्राणविसर्जनः। सर्वार्थसिद्धिमासाद्य संप्रापत् सोहमिन्द्रताम्॥१११॥
 द्विषट्कयोजनैर्लोकप्रान्तमप्राप्य यत्स्थितं। सर्वार्थसिद्धिनामाग्रयं विमानं तदनुत्तरम्॥११२॥
 जंबूद्वीपसमायामविस्तारपरिमण्डलम्। त्रिषष्टिपटलप्रान्ते चूडारत्नमिव स्थितम्॥११३॥
 यत्रोत्पन्नवतामर्थाः सर्वे सिद्ध्यन्त्ययत्नतः। इति सर्वार्थसिद्ध्याख्यां यद्विभर्त्यर्थयोगिनाम्॥११४॥
 ततश्च्युत्वा अयमहमिन्द्रः प्रथमतीर्थकरः श्रीऋषभदेवो बभूव।
 एवं षष्ठस्थले क्षायोपशमिक-औपशमिकचारित्रप्रतिपादनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।
 अधुना संपूर्णचारित्रप्रतिपद्यमानमहासाधोः स्वरूपनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

जाने से वहाँ उन्हें अतिशय विशुद्ध औपशमिक चारित्र प्राप्त हुआ॥११॥ अन्तर्मुहूर्त के बाद वे मुनि फिर भी स्वस्थानअप्रमत्त नामक सातवें गुणस्थान में स्थित हो गये अर्थात् ग्यारहवें गुणस्थान में अन्तर्मुहूर्त ठहरकर वहाँ से च्युत हो उसी गुणस्थान में आ पहुँचे जहाँ से कि आगे बढ़ना शुरू किया था। उसका खास कारण यह है कि ग्यारहवें गुणस्थान में आत्मा की स्वाभाविक स्थिति अन्तर्मुहूर्त से आगे है ही नहीं॥१२॥ मुनिराज वज्रनाभि उत्कृष्ट मंत्र को जानते थे, उत्कृष्ट तप को जानते थे, उत्कृष्ट पूजा को जानते थे और उत्कृष्ट पद (सिद्धपद) को जानते थे॥१३॥ तत्पश्चात् आयु के अंत समय में उन बुद्धिमान वज्रनाभि ने श्रीप्रभ नामक ऊँचे पर्वत पर प्रायोपवेशन (प्रायोपगमन नाम का सन्यास) धारण कर शरीर और आहार से ममत्व छोड़ दिया॥१४॥ चूँकि इस सन्यास में तपस्वी साधु रत्नत्रयरूपी शय्या पर उपविष्ट होता है, बैठता है, इसलिए इसका प्रायोपवेशन नाम सार्थक है॥१५॥ पुनः वे द्वितीय बार उपशम श्रेणी पर आरूढ़ हुए और पृथक्त्ववितर्क नामक शुक्लध्यान को पूर्ण कर उत्कृष्ट समाधि को प्राप्त हुए॥११०॥ अन्त में उपशान्तमोह नामक ग्यारहवें गुणस्थान में प्राण छोड़कर सर्वार्थसिद्धि पहुँचे और वहाँ अहमिन्द्र पद को प्राप्त हुए॥१११॥ यह सर्वार्थसिद्धि नामक विमान लोक के अंत भाग से बारह योजन नीचा है। सबसे अग्रभाग में स्थित और सबसे उत्कृष्ट है॥११२॥ इसकी लम्बाई, चौड़ाई और गोलाई जम्बूद्वीप के बराबर है। यह स्वर्ग के तिरेसठ पटलों के अंत में चूडामणि रत्न के समान स्थित है॥१३॥ चूँकि उस विमान में उत्पन्न होने वाले जीवों के सब मनोरथ अनायास ही सिद्ध हो जाते हैं इसलिए वह सर्वार्थसिद्धि इस सार्थक नाम को धारण करता है॥११४॥

ये अहमिन्द्र वहाँ से च्युत होकर प्रथम तीर्थकर श्री ऋषभदेव हुए हैं।

इस प्रकार छठे स्थल में क्षायोपशमिक और औपशमिक चारित्र का प्रतिपादन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब संपूर्ण चारित्र को प्राप्त करने वाले महासाधु के स्वरूप का प्रतिपादन करने के लिए सूत्र अवतार लेता है—

**संपुण्णं पुण चारित्तं पडिवज्जंतो तदो चत्तारि कम्माणि अंतोमुहुत्तट्ठिदिं
टुवेदि णाणावरणीयं दंसणावरणीयं मोहणीयमंतराइयं चेदि।।१५।।**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — ततः अन्तःकोटाकोटिप्रमाणात् स्थितिबंधात् विशुद्ध्या घातयन् चतुःकर्मणां अन्तर्मुहूर्तस्थितिं स्थापयति।

किमर्थमन्तर्मुहूर्तिकां स्थितिं करोति ?

उपशामकविशुद्धेः क्षपकविशुद्धीनामानन्त्यात्।

एवं सप्तमस्थले संपूर्णचारित्रप्रतिपद्यमानस्य कथनत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

अघातिकर्मणां जघन्यस्थितिप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

**वेदणीयं वारसमुहुत्तं ट्ठिदिं ठवेदि, णामागोदाणमट्टमुहुत्तट्ठिदिं ठवेदि,
सेसाणं कम्माणं भिण्णमुहुत्तट्ठिदिं ठवेदि।।१६।।**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इदं सूत्रं, पूर्वमपि सूत्रं, द्वे अपि देशामर्शके स्तः।

संपूर्णचारित्रं प्रतिपद्यमानस्य महायतेः अपूर्वकरणादिगुणस्थानेषु स्थितिकांडकानुभागकांडकादिक्रियाभिः कर्मक्षपणा जायते। तद्विशेषजिज्ञासाऽस्ति तर्हि धवलाटीका अभ्यसनीया लब्धिसारग्रन्थोऽपि पठितव्यः।

सूत्रार्थ —

**सम्पूर्ण चारित्र को प्राप्त करने वाला ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और
अन्तराय इन चार कर्मों की अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थिति को स्थापित करता है।।१५।।**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सम्पूर्ण चारित्र को प्राप्त करने वाला क्षपक विशुद्धि के निमित्त से घात को प्राप्त होने वाले ऐसे अन्तः कोड़ाकोड़ी प्रमाण स्थितिबंध से ज्ञानावरण आदि चार कर्मों की अन्तर्मुहूर्त मात्र स्थिति को स्थापित करता है।

शंका — यह क्षपक अन्तर्मुहूर्तमात्र ही स्थिति को क्यों स्थापित करता है ?

समाधान — उपशामक की विशुद्धि से क्षपक की विशुद्धियाँ अनन्तगुणी हैं, अतएव वह अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थिति को स्थापित करता है।

इस प्रकार सातवें स्थल में सम्पूर्ण चारित्र को प्राप्त करने वाले का कथन करते हुए एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब अघातिकर्मों की जघन्यस्थिति का प्रतिपादन करने के लिए सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

**सम्पूर्ण चारित्र को प्राप्त करने वाला क्षपक वेदनीय की बारह मुहूर्त, नाम व गोत्र
कर्मों की आठ मुहूर्त और शेष कर्मों की भिन्न मुहूर्त अर्थात् अन्तर्मुहूर्त मात्र स्थिति को
स्थापित करता है।।१६।।**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यह सूत्र एवं पूर्व का भी सूत्र, ये दोनों भी देशामर्शक हैं।

संपूर्ण चारित्र को प्राप्त करने वाले महायति के अपूर्वकरण आदि गुणस्थानों में स्थितिकाण्डक, अनुभागकाण्डक आदि क्रियाओं के द्वारा कर्मों का क्षपण होता है। इसको जानने की यदि विशेष इच्छा है तो धवला टीका का अभ्यास करना चाहिए एवं लब्धिसार ग्रंथ को भी पढ़ना चाहिए।

यदा सूक्ष्मसांपरायिको महामुनिः चरमसमयवर्ती भवति तदा तस्य नामगोत्रयोः स्थितिबंधोऽष्टमुहूर्ताः, वेदनीयस्य स्थितिबंधः द्वादश मुहूर्ताः, त्रयाणां घातिकर्मणां स्थितिबंधोऽन्तर्मुहूर्तः। तेषां चैव त्रयाणां स्थितिसत्त्वमपि अन्तर्मुहूर्तं नामगोत्रवेदनीयानां स्थितिसत्त्वमसंख्यातवर्षाणि। मोहनीयस्य स्थितिसत्त्वं तत्र नश्यति।

तदानीं चारित्रमोहनीयस्य क्षयानंतरं प्रथमसमयक्षीणकषायो जातः।

तस्मिन्नेव समये स्थिति-अनुभागयोरबंधकः। एवं यावत् एकसमयाधिकावलिमात्रछद्मस्थकालस्यावशेषः तावत् त्रयाणां घातिकर्मणामुदीरकोऽस्ति। ततः द्विचरमसमये निद्राप्रचलयोः उदयसत्त्वव्युच्छेदः। तत्पश्चात् ज्ञानावरण-दर्शनावरण-अन्तरायाणां एकसमयेन सत्त्वोदयव्युच्छेदः। अनंतरं —

अनन्तकेवलज्ञान-दर्शन-वीर्ययुक्तः जिनः केवली सर्वज्ञः सर्वदर्शी सयोगिजिनः असंख्यातगुणश्रेण्याः कर्मप्रदेशाग्रं निर्जरयन् विहरति इति।

केषु गुणस्थानेषु काः काः प्रकृतीः क्षपयति ?

उच्यते — कर्माभावो द्विविधः^१ — यत्नसाध्योऽयत्नसाध्यश्चेति। तत्र चरमदेहस्य नारकतिर्यग्देवायुषामभावो न यत्नसाध्यः, असत्त्वात्। यत्नसाध्यस्तु कथ्यते — असंयतसम्यग्दृष्ट्यादिषु चतुर्षु गुणस्थानेषु कस्मिंश्चित्सप्त-प्रकृतिक्षयः क्रियते। निद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचला-स्यानगृद्धिः-नरकगतितिर्यग्गत्येकद्वित्रिचतुरिन्द्रियजातिनरक-

जिस समय महामुनि अन्तिमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक होता है, उस समय में नाम व गोत्र कर्मों का स्थितिबंध आठ मुहूर्त वेदनीय का स्थितिबंध बारह मुहूर्त और तीन घातिया कर्मों का स्थितिबंध अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है। इन्हीं तीन घातिया कर्मों का स्थितिसत्त्व भी अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है। नाम, गोत्र व वेदनीय इनका स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्षप्रमाण होता है। मोहनीय का स्थितिसत्त्व वहाँ नष्ट हो जाता है।

चारित्रमोहनीय के क्षय के अनन्तर समय में प्रथम समयवर्ती क्षीणकषाय होता है। उसी समय में ही सब कर्मों की स्थिति और अनुभाग का अबंधक होता है।

विशेषार्थ — कर्मों की स्थिति और अनुभाग के बंध का कारण कषाय है। अतएव कषाय के क्षीण हो जाने पर कारण के अभाव में कार्याभाव के न्यायानुसार, उक्त दोनों बंधों का भी अभाव हो जाता है। किन्तु प्रकृतिबंध केवल योग के निमित्त से होता है और क्षीणकषाय हो जाने पर भी योग की प्रवृत्ति रहती ही है। अतएव यहाँ प्रकृतिबंध का निषेध नहीं किया गया। जयधवलानुसार प्रदेशबंध का भी व्युच्छेद स्थिति व अनुभाग के बंधव्युच्छेद के साथ ही हो जाता है।

इस प्रकार एक समय अधिक आवलिमात्र छद्मस्थ काल के शेष रहने पर तीन घातिया कर्मों का उदीरक होता है। इसके पश्चात् द्विचरम समय में निद्रा और प्रचला के उदय व सत्त्व की व्युच्छित्ति हो जाती है। तदनन्तर एक समय में ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इनके उदय व सत्त्व की व्युच्छित्ति होती है। पश्चात् अनन्तर समय में अनन्त केवलज्ञान, केवलदर्शन और अनन्त वीर्य से युक्त जिन, केवली, सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी होकर सयोगिजिन प्रतिसमय असंख्यातगुणित श्रेणी से कर्मप्रदेशाग्र की निर्जरा करते हुए धर्मप्रवर्तन के लिए विहार करते हैं।

शंका — किन-किन गुणस्थानों में कौन-कौन सी प्रकृतियों का क्षय होता है ?

समाधान — इसे बताते हैं — कर्म का अभाव दो प्रकार का है — यत्नसाध्य और अयत्नसाध्य। इनमें से चरम देह वाले के नरकायु, तिर्यचायु और देवायु का अभाव यत्नसाध्य नहीं होता, क्योंकि चरम देह वाले के उनका सत्त्व नहीं उपलब्ध होता। आगे यत्नसाध्य अभाव कहते हैं — असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार

गतितिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यातपोद्योतस्थावरसूक्ष्मसाधारणसंज्ञिकानां षोडशानां कर्मप्रकृतीनामनिवृत्तिबादर-
सांपरायस्थाने युगपत्क्षयः क्रियते। ततः परं तत्रैव कषायाष्टकं नष्टं क्रियते। नपुंसकवेदः स्त्रीवेदश्च क्रमेण
तत्रैव क्षयमुपयाति। नोकषायषट्कं च सहैकेनैव प्रहारेण विनिपातयति। ततः पुंवेदसंज्वलनक्रोधमानमायाः
क्रमेण तत्रैवात्यन्तिकं ध्वंसमास्कंदन्ति। लोभसंज्वलनः सूक्ष्मसांपरायान्ते यात्यन्तं। निद्राप्रचले क्षीणकषाय-
वीतरागच्छद्वास्थस्योपान्त्यसमये प्रलयमुपव्रजतः पंचानां ज्ञानावरणानां चतुर्णां दर्शनावरणानां पंचानामन्तरायाणां
च तस्यैवान्त्यसमये प्रक्षयो भवति^१। ” तदनंतरं ज्ञानदर्शनस्वभावं केवलपर्यायमप्रतर्क्यविभूति-विशेषमवाप्नोति।

इमे केवलभगवन्तः समवसरणमध्ये चतुरंगुलाधरविराजमानाः द्वादशगणान् अष्टदशमहाभाषाभिः
सप्तशतलघुभाषाभिश्च दिव्यध्वनिना उपदिशन्ति योगनिरोधात्पूर्वं आर्यखण्डे विहरन्ति असंख्यभव्यजीवान्
धर्मांमृतवृष्टिभिः परितर्पयन्ति।

ततोऽन्तर्मुहूर्ते आयुषि शेषे केवलिसमुद्घातं करोति। प्रथमसमये दण्डं करोति। तस्मिन् समुद्घाते
आयुर्वर्जितत्रि-अघातिकर्मणां स्थितेः असंख्यातबहुभागान् हन्ति। क्षीणकषायस्यान्त्यसमयशेषस्य चानुभागस्य
अप्रशस्तप्रकृतीनां अनन्तस्य बहुभागान् हन्ति।

द्वितीयसमये कपाटं करोति। तस्मिन्नेव शेषस्थितेः असंख्यातबहुभागान् नाशयति। तथा अप्रशस्तप्रकृतीनां

गुणस्थानों में से किसी एक गुणस्थान में सात प्रकृतियों का क्षय करता है। पुनः निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला,
स्थानगृद्धि, नरकगति, तिर्यचगति, एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजर्ज्ञी, चतुरिन्द्रियजाति, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी,
तिर्यचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण नाम वाली सोलह कर्मप्रकृतियों का
अनिवृत्तिबादरसाम्पराय गुणस्थान में एक साथ क्षय करता है। इसके बाद उसी गुणस्थान में आठ कषायों का नाश
करता है। पुनः वहीं पर नपुंसकवेद और स्त्रीवेद का क्रम से क्षय करता है तथा छह नोकषायों को एक ही प्रहार के
द्वारा गिरा देता है। तदनन्तर पुरुषवेद, संज्वलनक्रोध, संज्वलनमान और संज्वलनमाया का वहाँ पर क्रम से
अत्यन्त क्षय करता है तथा लोभसंज्वलन सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान के अंत में विनाश को प्राप्त होता है। निद्रा और
प्रचला क्षीणकषाय वीतरागच्छद्वास्थगुणस्थान के उपान्त्य समय में प्रलय को प्राप्त होते हैं। पाँच ज्ञानावरण, चार
दर्शनावरण और पाँच अन्तराय कर्मों का उसी गुणस्थान के अंतिम समय में क्षय होता है।

इसके अनंतर ज्ञान-दर्शन स्वभाव केवलपर्याय जो कि अकल्पित ऐसी विभूति विशेष है, उसे प्राप्त कर
लेता है।

ये केवली भगवान समवसरण के मध्य चार अंगुलि अधर विराजमान होते हैं। वे भगवान अठारह
महाभाषा और सात सौ लघु भाषाओं में दिव्यध्वनि के द्वारा द्वादशगणों को — द्वादशसभा में स्थित असंख्य
भव्यों को उपदेश देते हैं। योग निरोध से पूर्व ये भगवान आर्यखण्ड में श्रीविहार करते हैं और असंख्य
भव्यजीवों को धर्मरूपी अमृत की वृष्टि से संतर्पित करते हैं।

पश्चात् अन्तर्मुहूर्तमात्र आयु के शेष रहने पर केवलिसमुद्घात को करते हैं। इसमें प्रथम समय में
दण्डसमुद्घात को करते हैं। उस दण्डसमुद्घात में वर्तमान होते हुए आयु को छोड़कर शेष तीन अघातिया
कर्मों की स्थिति के असंख्यात बहुभाग को नष्ट करते हैं। इसके अतिरिक्त क्षीणकषाय के अंतिम समय में
घातने से शेष रहे अप्रशस्त प्रकृतिसंबन्धी अनुभाग के अनन्त बहुभाग को भी नष्ट करते हैं। द्वितीय समय में
कपाटसमुद्घात को करते हैं। उस कपाटसमुद्घात में वर्तमान रहकर शेष स्थिति के असंख्यात बहुभाग को

शेषानुभागस्य अनन्तबहुभागान् नाशयति। पश्चात् तृतीयसमये मंथसंज्ञितं अपरनामप्रतरसमुद्घातं करोति। अस्मिन् समुद्घाते स्थितिअनुभागान् पूर्ववत् हन्ति। अनन्तरं चतुर्थसमये लोकपूरणसमुद्घातं समाप्नोति। अस्मिन् लोकपूरणसमुद्घाते समयोजातसमये योगस्य एक वर्गणा भवति। पूर्ववत् अस्मिन्नपि स्थिति-अनुभागान् निर्जरयति। लोके पूरणे आयुषः संख्यातगुणितां अन्तर्मुहूर्तस्थितिं स्थापयति।

एतेषु चतुर्षु समयेषु अप्रशस्तकर्माशानामनुभागस्य प्रतिसमयमपवर्तना भवति, एकैकसमये एकैकस्य स्थितिकाण्डकस्य घातश्च।

समुद्घातसंकोचस्य — अवतरणस्य प्रथमसमयादारभ्य शेषस्थितेः संख्यातबहुभागं हन्ति। शेषस्य चानुभागस्य अनन्तबहुभागं नाशयति। लोकपूरणसमुद्घातस्यानन्तरसमयादारभ्य स्थितिकाण्डकस्यानुभाग-काण्डकस्य च अन्तर्मुहूर्तमात्रं उत्कीरणकालं प्रवर्तमानमस्ति।

इतः अन्तर्मुहूर्तं गत्वा बादरकाययोगेन बादरमनोयोगं निरुणद्धि। ततः अंतर्मुहूर्तेन बादरकाययोगेन बादरवचोयोगं निरुणद्धि। अनन्तरं अन्तर्मुहूर्तेन बादरकाययोगेन बादरोच्छ्वासनिःश्वासं निरुणद्धि। तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्तेन बादरकाययोगेन तमेव बादरकाययोगं निरुणद्धि। तदनु अन्तर्मुहूर्तं गत्वा सूक्ष्मकाययोगेन सूक्ष्ममनोयोगनिरोधं करोति। ततः परं अन्तर्मुहूर्तं गत्वा सूक्ष्मवचनयोगनिरोधं करोति। तदनन्तरं अन्तर्मुहूर्तं गत्वा सूक्ष्मकाययोगेन सूक्ष्मोच्छ्वासनिःश्वासनिरोधं करोति।

ततः अन्तर्मुहूर्तं गत्वा सूक्ष्मकाययोगेन सूक्ष्मकाययोगनिरोधं कुर्वन् इमानि करणानि करोति — प्रथमसमये

नष्ट करते हैं तथा अप्रशस्त प्रकृतियों के शेष अनुभाग के भी अनन्त बहुभाग को नष्ट करते हैं। पश्चात् तृतीय समय में प्रतर नाम वाले मंथसमुद्घात को करते हैं। इस समुद्घात में भी स्थिति व अनुभाग को पूर्व के समान ही नष्ट करते हैं तत्पश्चात् चतुर्थ समय में अपने सब आत्मप्रदेशों से सब लोक को पूर्ण करके लोकपूरणसमुद्घात को प्राप्त होते हैं। लोकपूरणसमुद्घात में समयोज हो जाने पर योग की एक वर्गणा हो जाती है।

विशेषार्थ — लोकपूरणसमुद्घात में वर्तमान केवली के लोकप्रमाण समस्त जीवप्रदेशों में योग के अविभागप्रतिच्छेद वृद्धि-हानि से रहित होकर सदृश हो जाते हैं। अतएव सब जीव प्रदेशों के परस्पर में समान होने से उन जीवप्रदेशों की एक वर्गणा हो जाती है।

इस अवस्था में भी स्थिति और अनुभाग को पूर्व के ही समान नष्ट करते हैं। लोकपूरणसमुद्घात में आयु से संख्यातगुणी अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थिति को स्थापित करता है। इन चार समयों में अप्रशस्त कर्मों के अनुभाग की प्रतिसमय अपवर्तना होती है। एक-एक समय में एक-एक स्थितिकाण्डक का घात होता है। पुनः समुद्घात संकोच के समय — उतरने के प्रथम समय से लेकर शेष स्थिति के संख्यात बहुभाग को तथा शेष अनुभाग के अनन्त बहुभाग को भी नष्ट करता है। लोकपूरणसमुद्घात के अनन्तर समय से लेकर स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डक का अन्तर्मुहूर्तमात्र उत्कीरणकाल प्रवर्तमान रहता है।

यहाँ से अन्तर्मुहूर्त जाकर बादर काययोग से बादर मनोयोग का निरोध करता है। तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त से बादर काययोग से बादर वचनयोग का निरोध करता है। पुनः अन्तर्मुहूर्त से बादर काययोग बादर उच्छ्वास-निःश्वास का निरोध करता है। पुनः अन्तर्मुहूर्त से बादर काययोग से उसी बादर काययोग का निरोध करता है। तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर सूक्ष्म काययोग से सूक्ष्म मनोयोग का निरोध करता है। पुनः अन्तर्मुहूर्त जाकर सूक्ष्म वचनयोग का निरोध करता है। पुनः अन्तर्मुहूर्त जाकर सूक्ष्म काययोग से सूक्ष्म उच्छ्वास-निःश्वास का निरोध करता है।

पुनः अन्तर्मुहूर्त जाकर सूक्ष्म काययोग से सूक्ष्म काययोग का निरोध करता हुआ इन कारणों को करता

पूर्वस्पर्धकानां अधः अपूर्वस्पर्धकानि करोति।

आदिवर्गणायाः अविभागप्रतिच्छेदानामसंख्यातभागमपकर्षयति, जीवप्रदेशानां चासंख्यातभागमपकर्षयति। एवमन्तर्मुहूर्तमपूर्वस्पर्धकानि करोति। इमानि अपूर्वस्पर्धकानि असंख्यातगुणहीनायाः श्रेण्याः क्रमेण करोति, परन्तु जीवप्रदेशानां अपकर्षणं असंख्यातगुणितश्रेण्याः क्रमेण भवति। एतानि सर्वाणि अपूर्वस्पर्धकानि जगत्श्रेण्याः असंख्यातभागः, श्रेणिवर्गमूलस्यापि असंख्यातभागः, पूर्वस्पर्धकानामपि चासंख्यातभाग इति।

एतेषां अपूर्वस्पर्धकानां करणानन्तरं अन्तर्मुहूर्तपर्यंतं कृष्टीः करोति। कृष्टिकरणसमाप्तौ तदनंतरसमये पूर्वस्पर्धकानि अपूर्वस्पर्धकानि च नाशयति। अन्तर्मुहूर्तकालं यावत् कृष्टिगतयोगो भवति। तदानीं केवली भगवान् सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यानं ध्यायति। सयोगिकेवल्लिगुणस्थानस्य चरमसमये च कृष्टीनां असंख्यातान् बहुभागान् नाशयति। योगस्य निरोधे सति नामगोत्रवेदनीयकर्माणि आयुःसमानि भवन्ति।

ततः अन्तर्मुहूर्तं योगाभावेन निरुद्धास्त्रवत्वात् शैलेश्यं प्रतिपद्यते — अष्टादशसहस्रशीलानां आधिपत्यं प्राप्नोति। तदानीं असौ अयोगिकेवली भगवान् समुच्छिन्नक्रियानिवृत्तिशुक्लध्यानं ध्यायति। अस्यायोगिकेवल्लिनः द्विचरमसमये त्रिसप्ततिप्रकृतीनां सत्त्वव्युच्छेदः क्षयः निर्मूलविनाशः भवति। तासां नामानि — देवगति-पंचशरीर-पंचबंधन-पंचसंघात-षट्संस्थान-षट्संहनन-त्र्यंगोपांग-पंचवर्ण-द्विगंध-पंचरस-अष्टस्पर्श-मनुष्य-देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वि-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगति-प्रत्येकशरीर-

है — प्रथम समय में पूर्वस्पर्द्धकों के नीचे अपूर्वस्पर्द्धकों को करता है। पूर्वस्पर्द्धकों से जीवप्रदेशों का अपकर्षण करके अपूर्वस्पर्द्धकों को करता हुआ पूर्वस्पर्द्धकों की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों के असंख्यातवें भाग का अपकर्षण करता है, जीवप्रदेशों के भी असंख्यातवें भाग का अपकर्षण करता है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्तकाल तक अपूर्वस्पर्द्धकों को करता है। इन अपूर्वस्पर्द्धकों को प्रतिसमय असंख्यातगुणी हीन श्रेणी के क्रम से करता है। परन्तु जीवप्रदेशों का अपकर्षण असंख्यातगुणित श्रेणी के क्रम से होता है। ये सब अपूर्वस्पर्द्धक जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग, श्रेणि वर्गमूल के भी असंख्यातवें भाग और पूर्वस्पर्द्धकों के भी असंख्यातवें भागमात्र होते हैं।

अपूर्वस्पर्द्धकों को करने के पश्चात् अन्तर्मुहूर्त काल तक कृष्टियों को करता है। कृष्टिकरण के समाप्त होने पर उसके अनन्तर समय में पूर्वस्पर्द्धकों और अपूर्वस्पर्द्धकों को नष्ट करता है। अन्तर्मुहूर्त काल तक कृष्टिगत योग वाला होता है। उस समय केवली भगवान् सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यान को ध्याते हैं। सयोगिकेवलीगुणस्थान के अंतिम समय में कृष्टियों के असंख्यात बहुभागों को नष्ट करते हैं। योग का निरोध हो जाने पर नाम, गोत्र व वेदनीय, ये तीन अघातिया कर्म आयु के सदृश हो जाते हैं।

इसके बाद अन्तर्मुहूर्त में योग का अभाव हो जाने से सम्पूर्ण आस्रवों का निरोध हो गया, तब वे शैलेश्य अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं — अठारह हजार शीलों के स्वामी हो जाते हैं। तब ये अयोगिकेवली भगवान् समुच्छिन्नक्रियानिवृत्ति नाम के शुक्लध्यान के ध्याता हो जाते हैं।

पुनः अयोगिकेवली के द्विचरम समय में तिहत्तर प्रकृतियों का सत्त्वविच्छेद क्षय अर्थात् निर्मूल विनाश हो जाता है। उनके नाम — देवगति, पाँच शरीर, पाँच शरीरबंधन, पाँच शरीरसंघात, छह संस्थान, छह संहनन, तीन आंगोपांग, पाँच वर्ण, दो गंध, पाँच रस, आठ स्पर्श, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, प्रत्येक शरीर, अपर्याप्त,

अपर्याप्त-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुस्वरदुःस्वर-दुर्भग-अनादेय-अयशःकीर्ति-निर्माण-नीचैर्गोत्राणि अन्यतरवेदनीयश्चैताः त्रिसप्ततिप्रकृतयो भवन्ति।

ततश्च एतस्यैवायोगिकेवलिनो भगवतः अन्त्यसमये शेषैकवेदनीय-मनुष्यगति-मनुष्यायुः-पंचेन्द्रियजाति-त्रस-बादर-पर्याप्त-सुभग-आदेय-यशःकीर्ति-तीर्थकर-उच्चैर्गोत्राणीति एताः द्वादशप्रकृतयः सत्त्वात् विनश्यन्ति। तत्समये एव अयं भगवान् सर्वकर्मविप्रमुक्तः सिद्धिं गच्छति।

एवं द्वाभ्यां सूत्राभ्यां सूचितस्यार्थस्य प्ररूपणायां कृतायां संपूर्णचारित्रप्राप्तेर्विधानं प्ररूपितं भवति।

कैः कैः तीर्थकरदेवैः कियत्कियत्दिवसानां योगनिरोधः कृतः ?

उच्यते —

आद्यश्चतुर्दशदिनैर्विनिवृत्तयोगः, षष्ठेन निष्ठितकृतिर्जिनवर्धमानः।

शेषा विधूतघनकर्मनिबद्धपाशाः मासेन ते यतिवरास्त्वभवन्वियोगाः^१।।

यद्यपि अत्र अधिकतमयोगनिरोधकालः एकमासपर्यंतं कथ्यते तथापि समवसरणविघटनकाल एव तावत्, किंच — बादरकाययोगनिरोधादिसूक्ष्मकाययोगनिरोधपर्यंतकालाः पृथक्पृथगन्तर्मुहूर्ताः, तथापि सर्वे मिलित्वा अन्तर्मुहूर्तमेवेति ज्ञातव्यम्।

एते तीर्थकरादयः येनासनेन योगनिरोधं कुर्वन्ति तेनैवासनेन मोक्षं गच्छन्ति।

उक्तं च —

वृषभो वासुपूज्यश्च, नेमिः पद्मासनात् शिवम्।

कायोत्सर्गस्थिताः प्रापुः, शेषाश्च जिनपुंगवाः।।

स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुस्वर-दुस्वर, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र और दोनों वेदनीयों में से अनुदयप्राप्त एक वेदनीय, इन तिहत्तर प्रकृतियों के सत्त्व की व्युच्छित्ति अयोगिकाल के द्विचरम समय में हो जाती है।

पुनः इन्हीं अयोगिकेवली भगवान के अंतिम समय में शेष एक वेदनीय, मनुष्यगति, मनुष्यायु, पंचेन्द्रियजाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थकर और उच्चगोत्र, ये बारह प्रकृतियाँ अयोगिकाल के अंतिम समय में व्युच्छिन्न हो जाती हैं। तब सर्व कर्मों से विमुक्त होकर आत्मा एक समय में सिद्धि को प्राप्त करता है।

इस प्रकार दो सूत्रों से सूचित अर्थ की प्ररूपणा करने पर सम्पूर्ण चारित्र की प्राप्ति का विधान प्ररूपित होता है।

शंका — किन-किन तीर्थकर भगवन्तों ने कितने-कितने दिनों का योग निरोध किया है ?

समाधान — इसे ही कहते हैं —

प्रथम तीर्थकर भगवान ऋषभदेव ने चौदह दिन का योग निरोध किया है। वर्धमान भगवान ने दो दिन का योग निरोध किया है एवं शेष बाईस तीर्थकर एक-एक मास का योग निरोध करके सम्पूर्ण कर्मबंधन से छूटकर योगरहित — अयोगी केवली हुए हैं।।

यद्यपि यहाँ पर यह अधिकतम योगनिरोधकाल एक मासपर्यंत कहा है फिर भी समवसरण के विघटन का काल ही वह योग निरोधकाल है। क्योंकि बादर काययोग के निरोधकाल से लेकर सूक्ष्मकाय निरोधकाल पर्यंत काल पृथक्-पृथक् अन्तर्मुहूर्त हैं फिर भी वे सब मिलकर अन्तर्मुहूर्त ही हैं, ऐसा जानना चाहिए।

ये तीर्थकर आदि केवली भगवान जिस आसन से योग निरोध करते हैं, उसी ही आसन से मोक्ष प्राप्त करते हैं।

कहा भी है — श्री ऋषभदेव, श्रीवासुपूज्य भगवान और श्री नेमिनाथ ये तीन तीर्थकर पद्मासन से मोक्ष गये हैं एवं शेष इक्कीस तीर्थकर भगवान कायोत्सर्ग आसन से मोक्ष गये हैं।।

दिगम्बरजैनशासने खड्गासनेन पद्मासनेन वा मोक्षं प्राप्नुवन्ति न चान्यासनेन।

‘संपुण्णं चारित्रं’ अनेन कतितमश्चारित्रं विवक्षितं अस्ति किं च षष्ठसप्तमगुणस्थानवर्तिनोरपि चारित्रं सकलमिति निगद्यते ?

सत्यमुक्तं भवता, यत् षष्ठादिगुणस्थानवर्तिनां सामायिक-छेदोपस्थापना-परिहारशुद्धि-सूक्ष्मसांपराय-चारित्राणि, तानि तु पंचपापानां पूर्णत्यागात् महाव्रतापेक्षयैव। चारित्रस्य पूर्णता तु यथाख्यातचारित्रे एव। इदमपि चारित्रं उपशान्तकषायगुणस्थानादारभ्य आ अयोगिनस्तत्रापि चतुर्दशगुणस्थानान्त्यसमये एव अस्य पूर्णत्वं कथितमस्ति अत्र धवलाटीकायां-श्लोकवार्तिकालंकारे च, तदेव दृश्यताम्—

“निश्चयनयादयोगकेवलचरमसमयवर्तिनो रत्नत्रयस्य मुक्तेर्हेतुत्वव्यवस्थितेः^१।”

इदं सकलचारित्रं सर्वसावद्ययोगनिवृत्तेरपेक्षया सामायिकचारित्रमेकं, छेदोपस्थापनापेक्षया भेदमाश्रित्य त्रयोदशविधं अष्टाविंशतिमूलगुणस्वरूपं भवति। एतत्कर्मभूमिजानां मनुष्यानामेव संभवति न च भोगभूमिजानां। आर्थिकाणामपि उपचारमहाव्रतैः श्रूयते अतोऽतीवदुर्लभं। अस्मिन् दुःषमकाले कथमपि एनमवाप्य सर्वप्रयत्नेन रक्षणीयं अस्माभिरिति। अस्य माहात्म्यं महर्षयोऽपि ब्रुवन्ति, इदं महत्फलदायीति ज्ञातव्यम्।

श्रीगौतमस्वामिना सकलचारित्रस्य वृक्षसंज्ञा कृता—

उक्तं च— व्रतसमुदयमूलः संयमस्कंधबंधो, यमनियमपयोभिर्वर्धितः शीलशाखः।

समितिकलिकभारो गुप्तिगुप्तप्रवालो, गुणकुसुमसुगंधिः सत्तपश्चित्रपत्रः।।

दिगम्बर जैनशासन में खड्गासन अथवा पद्मासन इन दो आसनों से ही मोक्ष प्राप्त करते हैं अन्य किसी भी आसन से नहीं, यह बात ध्यान रखना है।

शंका—“संपुण्णं चारित्रं” इस वाक्य से कौन सा चारित्र विवक्षित है, क्योंकि छठे-सातवें गुणस्थानवर्ती मुनियों के चारित्र को भी “सकल चारित्र” कहा गया है ?

समाधान—आपने ठीक कहा है, क्योंकि छठे आदि गुणस्थानवर्ती मुनियों के सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि और सूक्ष्मसांपराय चारित्र होते हैं और ये पाँच पापों के पूर्ण त्याग से महाव्रत की अपेक्षा से ही हैं किन्तु चारित्र की पूर्णता तो यथाख्यात चारित्र में ही है। ये यथाख्यात चारित्र भी उपशांतकषाय नाम के ग्यारहवें गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली नाम के गुणस्थान तक होता है और वहाँ भी इस चौदहवें गुणस्थान के अंतिम समय में ही इस चारित्र की पूर्णता कही गई है। यहाँ धवला टीका में और श्लोकवार्तिकालंकार ग्रंथ में ऐसा कथन है। इसे ही देखिए—

निश्चयनय से अयोगिकेवली का चरमसमयवर्ती रत्नत्रय मुक्ति का हेतु व्यवस्थित है।

यह सकलचारित्र सर्वसावद्य योग की निवृत्ति की अपेक्षा से “सामायिक चारित्र” नाम से एक है। छेदोपस्थापना की अपेक्षा भेद का आश्रय लेकर तेरह प्रकार का और अट्ठाईस मूलगुणरूप से अट्ठाईस भेदरूप हो जाता है। यह कर्मभूमि के मनुष्यों के ही संभव है न कि भोगभूमियों के। आर्थिकाओं के भी यह उपचार महाव्रत रूप से सुना जाता है—आचारसार आदि ग्रंथों में वर्णित है। यह चारित्र अतीव दुर्लभ है। इस दुःषमकाल में बड़े प्रयत्न से इस महाव्रतरूप चारित्र को प्राप्त करके हम सभी को सर्वप्रयत्नपूर्वक इसकी रक्षा करना चाहिए। इस चारित्र का माहात्म्य महर्षियों ने भी कहा है, यह महान फलदायी है, ऐसा जानना चाहिए।

श्री गौतम स्वामी ने सकल चारित्र को वृक्ष संज्ञा दी है—

वीरभक्ति में कहा है—

व्रतों का समुदाय मूल—जड़ है, संयम स्कंध—तना है, शील शाखाएँ हैं, जो कि यम और

शिवसुखफलदायी यो दयाछाययोदधः, शुभजनपथिकानां खेदनोदे समर्थः।

दुरितरविजतापं प्रापयन्नन्तभावं, स भवविभवहान्यै नोऽस्तु चारित्रवृक्षः^१॥

एतानि चारित्राणि पंचभेदयुक्तानि तानि सर्वाण्यपि वयं नमस्यामः। गणधरदेवा अपि तानि प्रणमन्ति तथा च पंचमचारित्रं याचन्ते।

तथैवोक्तं —

चारित्रं सर्वजिनैश्चरितं प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः।

प्रणमामि पंचभेदं, पंचमचारित्रलाभाय^२॥

सम्यग्दर्शनस्य पूर्णत्वं क्षायिकसम्यग्दर्शने परमावगाढसम्यक्त्वे वा। ज्ञानस्य पूर्णत्वं केवलज्ञाने, सम्यक्चारित्रस्य पूर्णत्वं अयोगिकेवलनामन्त्यसमये च। अतएव वयमपि रत्नत्रयस्य पूर्णत्वं प्रार्थ्यते श्रीजिनेन्द्रदेवस्य पादपद्ममूले।

श्रीपद्मनन्दि-आचार्येणापि ईदृशी प्रार्थना कृता पद्मनन्दिपंचविंशतिकाग्रन्थे —

इन्द्रत्वं च निगोदतां च बहुधा मध्ये तथा योनयः। संसारे भ्रमता चिरं यदखिलं प्राप्ता मयाऽनन्तशः॥

तत्रापूर्वमिहास्ति किंचिदपि मे हित्वा विकल्पावलिं। सम्यग्दर्शनबोधवृत्त पदवीं तां देव! पूर्णां कुरु॥

एवं सप्तमस्थले घाति-अघातिकर्मणां जघन्यस्थिति-कर्मनाशनविधिना सिद्धपदप्राप्तिपर्यंतसूचनपरत्वेन

नियमरूपी जल से बढ़ रही हैं, समितियाँ कलिया हैं, गुप्तियाँ प्रवाल-कोंपल हैं, गुणरूपी पुष्पों की सुगंध फैल रही है, समीचीन तपश्चरण — चित्र-विचित्र पते हैं, ये ऐसा उत्तम चारित्ररूपी वृक्ष मोक्षरूपी फल को देने वाला है। शुभ क्रियाओं में प्रवृत्त ऐसे भव्य मोक्ष पथिकों के खेद को — श्रम को दूर करने में यह समर्थ है चूँकि यह दयारूपी छाया से प्रशंसनीय है। पापरूपी सूर्य से उत्पन्न हुए ताप को समाप्त करने वाला है, ऐसा यह चारित्ररूपी वृक्ष हम सभी के भव-संसार की परम्परा को नष्ट करने वाला होवे॥

ये चारित्र पाँच भेदों से युक्त हैं — सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात ये पाँच भेद हैं, इन सभी पाँचों विध चारित्र को हम नमस्कार करते हैं। गणधरदेव भी इनको नमस्कार करते हैं एवं पाँचवें चारित्र की याचना करते हैं।

इसे ही कहते हैं — सभी जिनेन्द्र भगवन्तों ने इन चारित्र को पाला है और सभी शिष्यों के लिए इनका उपदेश दिया है। इनमें से पाँचवें चारित्र को प्राप्त करने के लिए हम इन पाँचों प्रकार के चारित्र को नमस्कार करते हैं॥

सम्यग्दर्शन की पूर्णता क्षायिक सम्यग्दर्शन में या परमावगाढ नाम के सम्यक्त्व में होती है। ज्ञान की पूर्णता केवलज्ञान में होती है और सम्यक् चारित्र की पूर्णता अयोगिकेवली भगवान के अंतिम समय में होती है, इसलिए हम भी श्रीजिनेन्द्रदेव के पादकमल के निकट अपने रत्नत्रय की पूर्णता के लिए प्रार्थना करते हैं।

श्री पद्मनन्दि आचार्यदेव ने भी अपने पद्मनन्दिपंचविंशतिका नाम के ग्रंथ में ऐसी ही प्रार्थना की है —

हे भगवन्! मैंने इस संसार में भ्रमण करते हुए बहुत बार तो इन्द्रपद पाया है और इस मध्य बहुत बार निगोद अवस्था को — पर्याय को प्राप्त किया है। इस मध्य इन्द्रपद और निगोद पर्याय के मध्य जितनी भी योनियाँ हैं — पर्याय हैं, उन सबको भी इस अनंत संसार में चिरकाल तक अनंत-अनंत बार प्राप्त किया है। हे नाथ! इस संसार में अब मेरे लिए कुछ भी अपूर्व — पूर्व में नहीं प्राप्त किया हो जिसे, ऐसी कोई भी पर्याय नहीं है, इसलिए अब मैं संपूर्ण विकल्पो को छोड़कर आपसे याचना करता हूँ कि —

हे देव! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की जो पदवी है, उसे ही पूर्ण करो॥

सूत्रद्वयं गतम्।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे षष्ठग्रन्थे गणिनीज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां सम्यक्त्वोत्पत्ति चूलिका नामाष्टमश्चूलिकाधिकारः समाप्तः।

येनादिब्रह्मणा श्रीऋषभदेवेन भगवता हुंदावसर्पिण्याः दोषेण त्रिवर्षाष्टमासैकपक्षाधिकं चतुरशीति-लक्षपूर्ववर्षं पुरा अयोध्यानगर्या जन्म गृहीत्वा सा पूतीकृता, तं भगवन्तं नमस्कृत्य तां च अनन्तानंततीर्थकर-जन्मभूमिं शाश्वतीमयोध्यापुरीमपि नमामः।

अनन्तानन्ततीर्थेणां, जन्मभूमिर्मतागमे। अयोध्याख्या पुरी पूता-ऽजन्मने तां नुमो वयम्॥१॥

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे षष्ठग्रन्थे श्रीमद्भूतबलिसूरि-विरचितजीवस्थानचूलिकायां श्रीवीरसेनाचार्यरचितधवलाटीकाप्रमुखनानाग्रन्थाधारेण विरचितायां विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यः चारित्रचक्रवर्तिश्रीशांतिसागरः तस्य प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागराचार्यः तस्य शिष्या जंबूद्वीपरचनाप्रेरिकागणिनी-ज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिंतामणिटीकायां सम्यक्त्वोत्पत्ति चूलिका-पर्यंताष्टचूलिका समन्वितोऽयं प्रथमो महाधिकारः समाप्तः।

इस प्रकार सातवें स्थल में घाती-अघाती कर्मों की जघन्य स्थिति और कर्मों के नाश की विधि से सिद्धपद की प्राप्तिपर्यंत को सूचित करते हुए दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में इस छोटे ग्रंथ में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्त-चिंतामणिटीका में 'सम्यक्त्वोत्पत्तिचूलिका' नाम का यह आठवाँ चूलिकाधिकार समाप्त हुआ।

जिन आदिब्रह्मा भगवान् श्री ऋषभदेव ने हुण्डावसर्पिणी काल के दोष से "तीन्वर्ष, आठ माह, एक पक्ष अधिक चौरासी लाख पूर्व वर्ष" पहले अयोध्या नगरी में जन्म लेकर उसे पवित्र किया है उन भगवान् श्री ऋषभदेव को नमस्कार करके अनंतानंत तीर्थकर भगवन्तों की जन्मभूमि शाश्वत तीर्थ अयोध्यापुरी को भी हम नमन करते हैं।

जो जैनागम में अनंतानंत तीर्थकरों की जन्मभूमि मानी है, ऐसी पावन अयोध्यापुरी को हम अजन्मा पद — पुनर्जन्मरहित पद प्राप्त करने के लिए नमस्कार करते हैं। केशरियाजी तीर्थ पर मैंने यह प्रकरण लिखा था। इसलिए 'श्री ऋषभदेव' नाम से प्रसिद्ध इस तीर्थ पर उनकी जन्मभूमि की भी वंदना की है।^१

इस प्रकार श्रीमान् भगवान् पुष्पदंत-भूतबली प्रणीत षट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथम खण्ड में छोटे ग्रंथ में श्रीमान् भूतबली सूरि विरचित जीवस्थान चूलिका में श्री वीरसेनाचार्य रचित धवला टीका प्रमुख अनेक ग्रंथों के आधार से विरचित, बीसवीं शताब्दी के प्रथमाचार्य चारित्र-चक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज, उनके प्रथम पट्टाधीश श्री वीरसागर आचार्य, उनकी शिष्या मैं जंबूद्वीप रचना की पावन प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती मेरे द्वारा कृत सिद्धान्तचिंतामणि टीका में सम्यक्त्वोत्पत्ति चूलिका पर्यंत आठ चूलिकाओं से समन्वित यह प्रथम महाधिकार पूर्ण हुआ।



द्वितीयो महाधिकारः गत्यागतिचूलिका नवम चूलिकाधिकारः

मंगलाचरणं

सिद्धानानाम्य संप्राप्य, सम्यक्त्वोत्पत्तिकारणम्।

गत्यागतिविनाशाय, जिनसूत्राणि संस्तुमः॥१॥

येनादिब्रह्मणा भगवता श्रीऋषभदेवेन राजसभायां नीलाञ्जनाप्सरानृत्यं अवलोकयता तस्याः आयुर्क्षीणे सति द्वितीयाप्सरसं विलोक्यावधिलोचनेन वस्तुस्थितिमवबुद्ध्य राज्येभ्यः विरज्य अयोध्यानगर्याः निष्क्रम्य यत्र गत्वा प्रकृष्टस्त्यागः कृतः स 'प्रयागः' इति कीर्तितः। असौ भगवान् तत्र वटवृक्षतले षण्मासं योगे तस्थौ, तं भगवन्तं मुहुर्मुहुर्नमस्कृत्य तदक्षयं वटवृक्षं तत्प्रयागतीर्थं चापि नमामो वयम्।

अथ षट्खंडागमस्य प्रथमखण्डे षष्ठग्रन्थे द्वितीयमहाधिकारे जीवस्थानचूलिकायां गत्यागति-नामनवमी चूलिका प्रारभ्यते। तत्र तावत् त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशतसूत्राणि सन्ति, तेषु चत्वारोऽन्तराधिकाराः कथ्यन्ते। अत्र प्रथमान्तराधिकारे चतुर्गतिषु सम्यक्त्वोत्पत्तिकारणप्रतिपादनपरत्वेन त्रिचत्वारिंशत्सूत्राणि। द्वितीयान्तराधिकारे चतुर्गतिषु प्रवेशः, ताभ्यः निर्गमनं, एतत्प्रवेशनिर्गमनकथनमुख्यत्वेन गुणस्थानापेक्षया द्वात्रिंशत्सूत्राणि। तृतीयान्तराधिकारे चातुर्गतिकानां गत्यागतिनिरूपणत्वेन सप्तविंशत्यधिकशतसूत्राणि।

दूसरा महाधिकार

गत्यागति चूलिका नाम की नवमी चूलिका

मंगलाचरण

सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार करके एवं सम्यक्त्व की उत्पत्ति के कारणों को प्राप्त कर अब हम अपनी गति और आगति को नष्ट करने के लिए इन षट्खण्डागम के जिनसूत्रों की स्तुति करते हैं॥१॥

जिन आदिब्रह्मा भगवान् श्री ऋषभदेव ने राजसभा में नीलाञ्जना नाम की देवअप्सरा के नृत्य को देखते हुए एवं उसकी आयु के क्षीण हो जाने पर तत्क्षण ही द्वितीय अप्सरा को देखकर अपने दिव्य अवधिज्ञान नेत्र से वस्तुस्थिति को समझकर राज्य से विरक्त होकर अयोध्या नगरी से निकलकर जहाँ पहुँचकर प्रकृष्ट — पूर्णरूप से त्याग किया था, वह स्थल 'प्रयाग' इस नाम से प्रसिद्ध हुआ है। ऐसे ये भगवान् वहाँ पर वटवृक्ष के नीचे छहमास तक योग में — ध्यान में स्थित हुए थे, उन भगवान् को पुनः-पुनः नमस्कार करके, उस अक्षयवटवृक्ष को एवं उस प्रयाग तीर्थ को भी हम नमस्कार करते हैं।

अब इस षट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथम खण्ड में इस छठे ग्रंथ में द्वितीय महाधिकार में 'जीवस्थान चूलिका' के अन्तर्गत 'गत्यागति' नाम की यह नवमी चूलिका प्रारंभ की जा रही है। इसमें दो सौ तेतालीस सूत्र हैं। उनमें चार अन्तराधिकार कहेंगे। प्रथम अन्तराधिकार में चारों गतियों में सम्यक्त्व की उत्पत्ति के कारणों का प्रतिपादन करते हुए तेतालीस सूत्र हैं। द्वितीय अन्तराधिकार में चारों गतियों में प्रवेश करना — जाना और उनसे निकलना, इस प्रवेश-निर्गमन के कथन की मुख्यता से गुणस्थानों की अपेक्षा रखते हुए बत्तीस सूत्र हैं। तीसरे अन्तराधिकार में चारों गतियों के जीवों के गत्यागती का निरूपण करते हुए एक सौ सत्ताईस सूत्र हैं।

चतुर्थान्तराधिकारे चतुर्गतिभ्यो निर्गत्य जीवाः काः काः गतीः कान् कांश्च गुणान् उत्पादयन्तीति प्रतिपादनत्वेन एकचत्वारिंशत्सूत्राणि वक्ष्यन्ते। इति समुदायपातनिका सूचिता भवति।

अस्मिन्नपि चतुर्भिः स्थलैः त्रिचत्वारिंशत्सूत्रैः सम्यक्त्वोत्पत्तिकारणप्रतिपादननामा प्रथमोऽन्तराधिकारः कथ्यते। तत्र प्रथमस्थले नरकगतौ प्रथमसम्यक्त्वोत्पत्तेः बाह्यनिमित्तकारणप्रतिपादनत्वेन “गेरइया मिच्छाइट्ठी” इत्यादिना द्वादशसूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले तिर्यग्गतौ प्रथमोपशमसम्यक्त्वोत्पत्तिकारणनिरूपणत्वेन “तिरिक्खा मिच्छाइट्ठी” इत्यादिसूत्रदशकं। ततः परं तृतीयस्थले मनुष्यगतौ सम्यक्त्वोत्पत्तिनिमित्तबाह्यकारणकथनमुख्यत्वेन “मणुस्सा” इत्यादिसूत्राष्टकं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले देवगतौ प्रथमसम्यक्त्वोत्पत्तेः बाह्यकारणनिरूपणत्वेन “देवा मिच्छाइट्ठी” इत्यादिना त्रयोदशसूत्राणि उच्यन्ते।

नारका मिथ्यादृष्टिजीवाः कस्यामवस्थायां सम्यक्त्वमुत्पादयन्तीति प्रतिपादनाय सूत्रपंचकमवतार्यते —

गेरइया मिच्छाइट्ठी पढमसम्मत्तमुप्पादेति॥१॥

उप्पादेता कम्हि उप्पादेति॥२॥

पज्जत्तएसु उप्पादेति, णो अपज्जत्तएसु॥३॥

पज्जत्तएसु उप्पादेता अंतोमुहुत्तप्पहुडि जाव उवरिममुप्पादेति, णो हेट्ठा॥४॥

चतुर्थ अंतराधिकार में चारों गतियों से निकलकर जीव किन-किन गतियों को और कौन-कौन से गुणों को उत्पन्न करते हैं, इस विषय का प्रतिपादन करते हुए इकतालीस सूत्र कहेंगे। इस प्रकार यह समुदायपातनिका कही गई है।

इनमें भी अब चार स्थलों द्वारा तेतालीस सूत्रों से ‘सम्यक्त्वोत्पत्तिकारण’ प्रतिपादन नाम का यह प्रथम अन्तराधिकार कहा जा रहा है। उसमें प्रथम स्थल में नरकगति में प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति के बाह्य निमित्त कारणों का प्रतिपादन करने वाले ‘गेरइया मिच्छाइट्ठी’ इत्यादि बारह सूत्र हैं। इसके बाद दूसरे स्थल में तिर्यग्गति में प्रथमोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति के कारणों का निरूपण करने वाले “तिरिक्खा मिच्छाइट्ठी” इत्यादि दश सूत्र हैं। इसके अनन्तर तीसरे स्थल में मनुष्यगति में सम्यक्त्व की उत्पत्ति के लिए निमित्तभूत बाह्य कारणों के कथन की मुख्यता से ‘मणुस्सा’ इत्यादि आठ सूत्र कहेंगे। इसके पश्चात् चौथे स्थल में देवगति में प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति के बाह्य कारणों का निरूपण करते हुए “देवा मिच्छाइट्ठी” इत्यादि तेरह सूत्र कहेंगे।

अब नारकी मिथ्यादृष्टि जीव किस अवस्था में सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हैं, इसका प्रतिपादन करने के लिए पाँच सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

नारकी मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हैं॥१॥

प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करने वाले नारकी जीव किस अवस्था में उसे उत्पन्न करते हैं॥२॥

नारकी जीव पर्याप्तकों में ही प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं, अपर्याप्तकों में नहीं॥३॥

पर्याप्तकों में उत्पन्न करते हुए अन्तर्मुहूर्त से लेकर आगे अन्त तक उत्पन्न करते हैं, पहले नहीं॥४॥

एवं जाव सत्तसु पुढवीसु णेरइया।।५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — संप्रति 'वा' शब्देन सूचितां नवमीं चूलिकां कथयिष्यति श्रीभूतबलिसूरिवर्यः। तत्र तावत्पूर्वप्ररूपितस्यार्थस्य स्मारणार्थं सूत्राणि कथितानि।

चतुर्गतिषु अपि प्रथमसम्यक्त्वमुत्पादयन्ति इति पूर्वं प्ररूपितं, अतोऽधुना प्रथमतः नरकेषु नारकमिथ्यादृष्टिजीवानां कस्यामवस्थायां सम्यक्त्वं उत्पद्यते ? प्रश्ने सत्येव पर्याप्तकावस्थायामेव न अपर्याप्तकेषु। अत्रापि निर्वृत्यपर्याप्तापेक्षया एव अपर्याप्ताः गृहीतव्याः न च लब्ध्यपर्याप्तकाः, किंच इमे नरकेषु नोत्पद्यन्ते। तथा पर्याप्तप्रथमसमयादारभ्य यावत्तत् प्रायोग्यान्तर्मुहूर्तं तावत् निश्चयेन प्रथमोपशमसम्यक्त्वं नोत्पादयन्ति, अन्तर्मुहूर्तेण विना प्रथमसम्यक्त्वयोग्यविशुद्धीनामुत्पत्तेरभावात्।

आयुषि अन्तर्मुहूर्तावशेषेऽपि नारकाः प्रथमसम्यक्त्वं न प्रतिपद्यन्ते, तेन तत्र प्रतिषेधः कथयितव्यः ? नैतद् वक्तव्यं, पर्यायार्थिकनयावलम्बनेन प्रतिसमयं पृथक्-पृथक् सम्यक्त्वभावे जीवितद्विचरमसमयः इति प्रतिपद्यमानस्य तदुपलंभात्। चरमसमयेऽपि न प्रतिषेधः वक्तव्यः, दर्शनमोहोदयेन विना उत्पन्नचरमसमयसासादनगुणस्थानभावस्यापि उपचारेण प्रथमसम्यक्त्वव्यपदेशात्। अथवा देशामर्षकमिदं सूत्रं, तेनान्तिसमयेऽपि प्रथमसम्यक्त्वग्रहणस्य प्रतिषेधः सिद्धः भवति।

इस प्रकार एक से लगाकर सातों पृथिवियों में नारकी जीव प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं।।५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अब श्री भूतबली आचार्यवर्य 'वा' शब्द से सूचित अर्थात् प्रथम चूलिकान्तर्गत प्रथम सूत्र में ही कथित 'गत्यागति' नाम की नवमी चूलिका कहेंगे। इस प्रकरण में पूर्व में कथित अर्थ का स्मरण कराने के लिए सूत्र कहे हैं। चारों गतियों में भी जीव प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हैं, ऐसा पूर्व में प्ररूपित किया है, इसलिए अब प्रथम ही नरकों में मिथ्यादृष्टि नारकी जीवों के किस-किस अवस्था में सम्यक्त्व होता है ? ऐसा प्रश्न होने पर ही पर्याप्तक अवस्था में ही होता है न कि अपर्याप्त अवस्था में। यहाँ पर भी निर्वृत्यपर्याप्तक की अपेक्षा से ही अपर्याप्तक लिये गये हैं न कि लब्ध्यपर्याप्तक, क्योंकि ये लब्ध्यपर्याप्तक नरकों में उत्पन्न ही नहीं होते हैं।

वह इस प्रकार है — पर्याप्त होने के प्रथम समय से लगाकर तत्प्रायोग्य अन्तर्मुहूर्त तक निश्चय से जीव प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं करते, क्योंकि अन्तर्मुहूर्तकाल के बिना प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करने के योग्य विशुद्धि की उत्पत्ति का अभाव है।

शंका — आयु के अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर भी नारकी जीव प्रथम सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं करते हैं, इसलिए उस काल में भी सम्यक्त्वोत्पत्ति का अभाव करना चाहिए ?

समाधान — नहीं, पर्यायार्थिक नय के अवलम्बन से प्रत्येक समय पृथक्-पृथक् सम्यक्त्व की उत्पत्ति होने पर जीवन के द्विचरम समय तक भी सम्यक्त्व की उत्पत्ति पायी जाती है। चरम समय में भी सम्यक्त्वोत्पत्ति का प्रतिषेध नहीं कहा जा सकता, क्योंकि दर्शनमोहनीय कर्म के उदय के बिना उत्पन्न होने वाले चरमसमयवर्ती सासादनभाव की भी उपचार से प्रथमसम्यक्त्व संज्ञा मानी जा सकती है। अथवा, यह सूत्र देशामर्षक है, जिससे जीवन के अवसान काल में भी प्रथम सम्यक्त्व के ग्रहण का प्रतिषेध सिद्ध हो जाता है।

किंतु सप्तमपृथिव्यां अस्ति कश्चिद् विशेषः — द्विचरमसमयपर्यंतं सम्यक्त्वस्य प्रादुर्भावोऽस्ति एतद्वचनं न सप्तमपृथिव्यां घटते, तत्र केवलं मिथ्यात्वगुणस्थानादेव मरणं भवतीति ज्ञातव्यं।

अधुना नरकगतौ सम्यक्त्वोत्पत्तेः कारणप्रतिपादनाय प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रचतुष्टयमवतारयति —

णेरइया मिच्छाइट्ठी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति॥६॥

तीहिं कारणेहिं पढमसम्मत्तमुप्पादेति॥७॥

केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं वेदणाहिभूदा॥८॥

एवं तिसु उवरिमासु पुढवीसु णेरइया॥९॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — उत्पद्यमानं सर्वं हि कार्यं कारणाच्चैवोत्पद्यते, कारणेन विना कार्योत्पत्तिविरोधात्। एवं निश्चितकारणस्य तत्संख्याविषयं पृच्छासूत्रमवतारितं आचार्यश्रीभूतबलिना।

कश्चिदाह — कथमेकं कार्यं त्रिभिः कारणैः समुत्पद्यते ?

तस्य समाधानं क्रियते — नैष दोषः, अविरोद्धैः मुद्गर-लकुट-दण्ड-स्तंभ-शिला-भूमिघटादिभिः उत्पद्यमानखर्पराणामुपलंभात्। जातिस्मरणादीनि त्रीणि कारणानि सूत्रे प्रोक्तानि सन्ति।

सर्वे नारकाः विभंगज्ञानेन एक-द्वि-त्रि-आदिभवग्रहणानि येन जानन्ति तेन सर्वेषां जातिस्मरणत्वमस्ति

किन्तु सातवीं पृथ्वी में कुछ विशेषता है — द्विचरम समय तक सम्यक्त्व का प्रादुर्भाव बतलाया है, वह सप्तम पृथिवी में लागू नहीं होता, क्योंकि वहाँ केवल एक मिथ्यात्व गुणस्थान के साथ ही मरण होता है, ऐसा जानना चाहिए।

अब नरकगति में सम्यक्त्व की उत्पत्ति के कारण का प्रतिपादन करने के लिए प्रश्नोत्तररूप से चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

नारकी मिथ्यादृष्टि जीव कितने कारणों से प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं॥६॥

तीन कारणों से नारकी मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हैं॥७॥

कितने ही नारकी जीव जातिस्मरण से, कितने ही धर्मोपदेश सुनकर और कितने ही वेदना से अभिभूत होकर सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हैं॥८॥

इस प्रकार ऊपर की तीन पृथिवियों में नारकी जीव सम्यक्त्व की उत्पत्ति करते हैं॥९॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — उत्पन्न होने वाला सभी कार्य कारण से ही उत्पन्न होता है, क्योंकि कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति का विरोध है। इस प्रकार निश्चित कारण का संख्याविषयक यह पृच्छासूत्र है। इसे श्री भूतबली आचार्य ने अवतरित किया है।

शंका — यह प्रथम सम्यक्त्वोत्पत्तिरूप कार्य तीन कारणों से किस प्रकार उत्पन्न होता है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि मुद्गर, लकड़ी, दंड, स्तंभ, शिला, भूमि व घट रूप अविरोद्ध कारणों के द्वारा खण्डों का उत्पन्न होना पाया जाता है। अतः नरकों में सम्यक्त्वोत्पत्ति के जातिस्मरण आदि वे तीन कारण कहे गये हैं।

अतः सर्वैः नारकैः सम्यग्दृष्टिभिः भवितव्यं ?

नैषदोषः, भवसामान्यस्मरणेन सम्यक्त्वोत्पत्तेरनभ्युपगमात्। किंतु धर्मबुद्ध्या पूर्वभवे कृतानुष्ठानानां विफलत्वदर्शनस्य प्रथमसम्यक्त्वोत्पत्तेः कारणत्वमिष्यते, तेन न पूर्वोक्तदोषः प्राप्नोति। न चैवंविधा बुद्धिः सर्वनारकाणां भवति, तीव्रमिथ्यात्वोदयेन अवष्टब्धनारकाणां पूर्वभवस्मरणसंजातानामपि एवंविधोपयोगाभावात्। तस्मात् जातिस्मरणं प्रथमसम्यक्त्वोत्पत्तेः कारणं।

कथं तेषां नारकाणां धर्मश्रवणकारणं संभवति, तत्र ऋषीणां गमनाभावात् ?

न, सम्यग्दृष्टीनां पूर्वभवसंबंधिनां धर्मोपदेशदाने व्यापृतानां सकलबाधारहितानां देवानां तत्र गमनदर्शनात्।

पुनरपि कश्चिदाशंकते — वेदनानुभवनं सम्यक्त्वोत्पत्तेः कारणं न भवति, सर्वं नारकाणां साधारणत्वात्।

यदि भवति, तर्हि सर्वे नारकाः सम्यग्दृष्टयो भवन्ति। न चैवं, तथानुपलंभात् ?

अस्य परिहारः उच्यते — न वेदनासामान्यं सम्यक्त्वोत्पत्तेः कारणं। किंतु येषां एषा वेदना एतस्मात् मिथ्यात्वात् अस्मात् असंयमात् वा उत्पन्ना इति उपयोगो जातः, तेषां चैव वेदना सम्यक्त्वोत्पत्तेः कारणं नापरजीवानां वेदना, तत्रैवंविधोपयोगाभावात्।

एषः नियमः प्रथमद्वितीयतृतीयनरकभूमिषु नारकाणां ज्ञातव्यः।

संप्रति चतुर्थादिपृथ्वीनां नारकाणां कारणनिरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

शंका — चूँकि सभी नारकी जीव विभंग ज्ञान के द्वारा एक, दो या तीन आदि भवों को जानते हैं, इसलिए सभी के जातिस्मरण होता है, अतएव सभी नारकी जीव सम्यग्दृष्टि होना चाहिए ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, सामान्यरूप से भवस्मरण के द्वारा सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं होती। किन्तु धर्मबुद्धि से पूर्वभव में किये गये अनुष्ठानों की विफलता के दर्शन से ही प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारणत्व इष्ट है, जिससे पूर्वोक्त दोष प्राप्त नहीं होता और इस प्रकार की बुद्धि सब नारकी जीवों के होती नहीं है, क्योंकि तीव्र मिथ्यात्व के उदय से वशीभूत नारकी जीवों के पूर्वभवों का स्मरण होते हुए भी उक्त प्रकार के उपयोग का अभाव है। इस प्रकार जातिस्मरण प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण है।

शंका — नारकी जीवों के धर्मश्रवण किस प्रकार संभव है, क्योंकि वहाँ तो ऋषियों के गमन का अभाव है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि अपने पूर्वभव के संबंधी जीवों के धर्म उत्पन्न करने में प्रवृत्त और समस्त बाधाओं से रहित सम्यग्दृष्टि देवों का नरकों में गमन देखा जाता है।

शंका — पुनः कोई आशंका करता है कि वेदना का अनुभवन सम्यक्त्वोत्पत्ति का कारण नहीं हो सकता, क्योंकि वह अनुभवन तो सब नारकियों के साधारण होता है। यदि वह अनुभवन सम्यक्त्वोत्पत्ति का कारण हो, तो सब नारकी जीव सम्यग्दृष्टि होंगे। किन्तु ऐसा है नहीं क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता ?

समाधान — आचार्यदेव पूर्वोक्त शंका का परिहार कहते हैं — वेदना सामान्य सम्यक्त्वोत्पत्ति का कारण नहीं है। किन्तु जिन जीवों के ऐसा उपयोग होता है कि अमुक वेदना अमुक मिथ्यात्व के कारण या अमुक असंयम से उत्पन्न हुई, उन्हीं जीवों की वेदना सम्यक्त्वोत्पत्ति का कारण होती है। अन्य जीवों की वेदना नरकों में सम्यक्त्वोत्पत्ति का कारण नहीं होती, क्योंकि उसमें उक्त प्रकार के उपयोग का अभाव होता है।

यह नियम प्रथम, द्वितीय, तृतीय नरकभूमियों में नारकियों के जानना चाहिए।

अब चतुर्थ आदि पृथ्वी के नारकियों के कारण का निरूपण करने के लिए तीन सूत्र अवतार लेते हैं —

**चदुसु हेडिमासु णेरइया मिच्छाइट्ठी कदिहि कारणोहि पढमसम्मत्तमुप्पा-
देति॥१०॥**

दोहि कारणोहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति॥११॥

केइं जाइस्सरा, केइं वेयणाहिभूदा॥१२॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — चतुर्थ्यादिपृथ्वीनां नारकाणां धर्मश्रवणात् प्रथमसम्यक्त्वस्य उत्पत्तिर्नास्ति, देवानां तत्र गमनाभावात्।

तत्रतनसम्यग्दृष्टिनारकैः धर्मश्रवणं कृत्वा प्रथमसम्यक्त्वं तत्र किन्नोत्पद्यते ?

नोत्पद्यते, किंच तेषां भवसंबंधेन पूर्ववैरसंबंधेन वा परस्परविरुद्धाणां अनुग्राह्यानुग्राहकभावानामसंभवात्।

सम्यक्त्वोत्पत्तिकारणेषु नरकेषु तृतीयपृथिव्यामधः देशनालब्धिः कथं संभवति ?

पूर्वभवे गुरुमुखात् श्रुतोपदेशः संस्कारवशात् तत्र देशनालब्धिर्भवति। जातिस्मरणनिमित्तं अपि नरकेषु एतादृशं भवितुमर्हति। यत् येन केन मनुष्येन कंचिदपि नियमं गृहीत्वा केनापि निमित्तेन भंगं कृतं, अनाचारं कृत्वा पुनर्न गृहीतं न च प्रायश्चित्तं कृतं तस्य पापदोषेण यदि नरकं गच्छति, तर्हि तत्र जातिस्मरणेन विभंगज्ञानेन वा स्मृत्वा मुहुर्मुहुः पापाद् विभ्यति नरकवेदनामनुभूयानुभूय अतः तस्य नारकस्य जातिस्मरणं

सूत्रार्थ —

नीचे की चार पृथिवियों में नारकी मिथ्यादृष्टि जीव कितने कारणों से प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हैं ?॥१०॥

नीचे की चार पृथिवियों में नारकी मिथ्यादृष्टि जीव दो कारणों से प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हैं॥११॥

कितने ही जीव जातिस्मरण से और कितने ही वेदना से अभिभूत होकर सम्यक्त्व की उत्पत्ति करते हैं॥१२॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — नीचे की चार पृथिवियों में धर्मश्रवण के द्वारा प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं होती क्योंकि वहाँ देवों के गमन का अभाव है।

शंका — नीचे की चार पृथिवियों में विद्यमान सम्यग्दृष्टियों से धर्मश्रवण के द्वारा प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति क्यों नहीं होती ?

समाधान — ऐसा पूछने पर उत्तर देते हैं कि नहीं होती, क्योंकि भव संबंध से या पूर्व बैर के संबंध से परस्पर विरोधी हुए नारकी जीवों के अनुग्रह-अनुग्राहक भाव उत्पन्न होना असंभव है।

शंका — सम्यक्त्व की उत्पत्ति के कारणों में नरकों में तीसरे नरक के नीचे देशनालब्धि कैसे संभव है ?

समाधान — इसे ही बताते हैं — पूर्व भव में गुरु के मुख से जो शास्त्र का उपदेश सुना है, उसके संस्कार के वश से वहाँ चौथी आदि पृथिवियों में 'देशनालब्धि' होती है। जातिस्मरण निमित्त भी नरकों में ऐसा ही होता है। जैसे कि जिस किसी मनुष्य ने कोई भी नियम लेकर किसी भी निमित्त से भंग कर दिया, ऐसा व्रतभंगरूप अनाचार करके पुनः व्रत को ग्रहण नहीं किया और न उस व्रतभंग का प्रायश्चित्त ही किया, उस पाप के दोष से यदि वह जीव नरक जाता है, तो वहाँ जातिस्मरण के निमित्त से या विभंगज्ञान से उस व्रतभंगादि

वेदनानुभवो वा तत्र सम्यक्त्वस्य निमित्तं भवति इति ज्ञात्वा नियमग्रहणे अत्यधिक ऊहापोहो न विधातव्यः
यदि परिपूर्णतया पाल्यते तर्हि देवगतिर्निश्चयेन यदि कदाचित् त्यज्यते तर्ह्यपि नरके सम्यक्त्वकारणं भवेदिति
चारित्रचक्रवर्ति-श्रीशांतिसागराचार्येण कथितमनेकवारं।

एवं प्रथमस्थले नारकाणां सम्यक्त्वोत्पत्तेर्बाह्यकारणनिरूपणत्वेन द्वादश सूत्राणि गतानि।
अधुना तिर्यञ्चः कस्यामवस्थायां प्रथमसम्यक्त्वमुत्पादयन्ति इति प्रतिपादनाय सूत्राष्टकमवतार्यते—

तिरिक्खा मिच्छाइट्ठी पढमसम्मत्तमुप्पादेति॥१३॥

उप्पादेता कम्हि उप्पादेति ?॥१४॥

पंचिंदिएसु उप्पादेति, णो एइंदिय-विगलिंदिएसु॥१५॥

पंचिंदिएसु उप्पादेता सण्णीसु उप्पादेति, णो असण्णीसु॥१६॥

सण्णीसु उप्पादेता गब्भोवक्कंतिएसु उप्पादेति, णो सम्मुच्छिमेसु॥१७॥

गब्भोवक्कंतिएसु उप्पादेता पज्जत्तएसु उप्पादेति, णो अपज्जत्तएसु॥१८॥

पाप का स्मरण कर-करके और वहाँ बार-बार वेदना का अनुभव कर-करके पापों से डरता है, अतएव उस
नारकी जीव के जातिस्मरण अथवा वेदना का अनुभव वहाँ सम्यक्त्व का निमित्त — कारण बन जाता है।

ऐसा जानकर नियम को ग्रहण करने में अत्यधिक ऊहापोह — विचार नहीं करना चाहिए। यदि ग्रहण
किया नियम पूर्णरूप से पाला जाता है, तो नियम से देवगति होती है। यदि कदाचित् छूट जाता है, तो भी नरक
में सम्यक्त्व का कारण हो जावेगा, ऐसा चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी आचार्यदेव बहुत बार कहा करते थे।

इस प्रकार प्रथम स्थल में नारकियों के सम्यक्त्वोत्पत्ति के बाह्य कारणों का निरूपण करते हुए बारह
सूत्र पूर्ण हुए।

अब तिर्यच जीव किस अवस्था में प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हैं, इसका प्रतिपादन करने के लिए
आठ सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं॥१३॥

प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करने वाले तिर्यच किस अवस्था में उत्पन्न करते हैं ?॥१४॥

**तिर्यच जीव पंचेन्द्रियों में ही प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हैं, एकेन्द्रियों और
विकलेन्द्रियों में नहीं॥१५॥**

**पंचेन्द्रियों में भी प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करने वाले तिर्यच जीव संज्ञी जीवों में ही
उत्पन्न करते हैं, असंज्ञियों में नहीं॥१६॥**

**संज्ञी तिर्यचों में भी प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करने वाले जीव गर्भोपक्रान्तिक जीवों
में ही उत्पन्न करते हैं, सम्मूच्छिर्मों में नहीं॥१७॥**

**गर्भोपक्रान्तिक तिर्यचों में भी प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करने वाले जीव पर्याप्तकों
में ही उत्पन्न करते हैं, अपर्याप्तकों में नहीं॥१८॥**

पज्जत्तएसु उप्पादेत्ता दिवसपुथत्तप्पहुडि जावमुवरिमुप्पादेत्ति, णो हेट्ठादो॥१९॥

एवं जाव सव्वदीवसमुद्देसु॥२०॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — तिर्यञ्चः प्रथमसम्यक्त्वमुत्पादयन्तः बादरसूक्ष्मैकेन्द्रियेषु द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियजीवेषु असंज्ञिपंचेन्द्रियेषु नोत्पादयितुं क्षमाः भवन्ति। अपर्याप्तकेषु-निर्वृत्त्यपर्याप्तकेषु न प्राप्नुवन्ति तत्र करणपरिणामाभावात्। दिवसपृथक्त्वमिति कथनेन अत्र सप्ताष्टौ वा दिवसाः न गृहीतव्याः। अत्र पृथक्त्वशब्दः विपुलवाचकोऽस्ति अतः बहुषु दिवसपृथक्त्वगतेषु गर्भोपपन्नाः पर्याप्ताः पंचेन्द्रियतिर्यञ्चः प्रथमसम्यक्त्व-मुत्पादयितुं योग्या भवन्ति। इमे च असंख्यातेषु अपि द्वीपेषु असंख्यातेषु समुद्रेष्वपि प्रथमसम्यक्त्वग्रहणयोग्या भवन्ति।

सार्धद्वयद्वीपेषु कर्मभूमिजा भोगभूमिजा तिर्यञ्चः संति। लवणोदधि-कालोदसमुद्रयोः तिर्यञ्चः सन्ति। शेषद्वीपेषु भोगभूमिजाः तिर्यञ्चः सन्ति। अन्तिमार्धापरद्वीपे अन्तिमसमुद्रे च कर्मभूमिजाः तिर्यञ्चः सन्ति।

भोगभूमिप्रतिभागिकेषु समुद्रेषु मत्स्या मकरा वा न सन्ति, आर्षेषु तत्र त्रसजीवप्रतिषेधः कृतः पुनस्तत्र प्रथमसम्यक्त्वोत्पत्तिर्न युज्यते ?

नैष दोषः, पूर्ववैरिदेवैः कर्मभूमिजतिरश्चः उत्थाप्य तत्र इमे मत्स्यमकरादयः प्रक्षिप्यन्ते कदाचित् अतस्तेषां क्षिप्तपंचेन्द्रियतिरश्चां तत्र संभवोऽस्ति इति ज्ञातव्यं।

पर्याप्तक तिर्यचों में भी प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करने वाले जीव दिवसपृथक्त्व से लगाकर उपरिम काल में उत्पन्न करते हैं, नीचे के काल में नहीं॥१९॥

इस प्रकार सब द्वीप-समुद्रों में तिर्यच प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं॥२०॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — तिर्यच जीव प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हुए बादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रियों में सम्यक्त्व उत्पन्न करने में सक्षम — समर्थ नहीं होते हैं। अपर्याप्तकों में — निर्वृत्ति अपर्याप्तकों में भी सम्यक्त्व प्राप्त नहीं कर पाते हैं क्योंकि इनमें सम्यक्त्व के योग्य करण परिणामों का अभाव है।

यहाँ पर 'दिवस पृथक्त्व' कहने से सात या आठ दिवस नहीं लेना। यहाँ यह पृथक्त्व शब्द विपुलता का वाचक है, इसलिए बहुत से दिवस पृथक्त्व के जाने पर गर्भ से उत्पन्न, पर्याप्तक, पंचेन्द्रिय तिर्यच प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करने के योग्य होते हैं। ये असंख्यातों भी द्वीपों में और असंख्यातों समुद्रों में भी प्रथम सम्यक्त्व के ग्रहण के योग्य होते हैं।

ढाई द्वीपों में कर्मभूमिज और भोगभूमिज दोनों प्रकार के तिर्यच हैं। लवणोदधि और कालोदधि समुद्रों में तिर्यच हैं। शेष द्वीपों में भोगभूमिज तिर्यच होते हैं। अन्तिम आधे उधर के द्वीप में और अन्तिम समुद्र में कर्मभूमिज तिर्यच होते हैं।

शंका — चूँकि 'भोगभूमि के प्रतिभागी समुद्रों में मत्स्य या मगर नहीं हैं', ऐसा वहाँ त्रस जीवों का प्रतिषेध किया गया है, इसलिए उन समुद्रों में प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति मानना उपयुक्त नहीं है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, पूर्वभव के बैरी देवों के द्वारा उन समुद्रों में डाले गये मछली, मगर आदि पंचेन्द्रिय तिर्यचों की संभावना है। कदाचित् उन डाले गये पंचेन्द्रिय तिर्यचों में सम्यक्त्व संभव है, ऐसा जानना चाहिए।

इमे तिर्यञ्चः कतिभिः कारणैः सम्यक्त्वमुत्पादयन्तीति प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तिरिक्खा मिच्छाइट्टी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तं उप्पादेति ?।।२१।।

तीहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति — केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं जिणबिंबं दट्ठण।।२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रयोरर्थः सुगमोऽस्ति। जिनबिंबदर्शनेन निधत्तनिकाचितस्यापि मिथ्यात्वादि-कर्मकलापस्य क्षयो भवति।

प्रोक्तं च श्रीवीरसेनाचार्येण धवलायां —

“जिणबिंबदंसणेण णिधत्तणिकाचिदस्स वि मिच्छत्तादिकम्मकलावस्स खयदंसणादो। तथा चोक्तं — दर्शनेन जिनेन्द्राणां पापसंघातकुंजरम्। शतधा भेदमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा^१।।

तात्पर्यमेतत् — ये कर्मभूमिजाः तिर्यञ्चः सार्धद्वयद्वीपवर्तिनस्ते जिनमंदिराणां मानस्तम्भेषु जिनबिंबानि दृष्ट्वा केचित्सम्यक्त्वं उत्पादयन्ति केचित्समवसरणे गत्वा तत्रस्थमानस्तम्भविराजमानजिनबिंबानां दर्शनेन, केचित् रथयात्रादिमहामहोत्सवावसरे जिनमूर्तीः अवलोक्य च। केचित् साक्षात् समवसरणस्थितगंधकुट्यां विराजमानजिनराजतीर्थकरदेवानां दर्शनेन सम्यक्त्वगुणं लभन्ते।

ये तिर्यच कितने कारणों से सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हैं ? ऐसे प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्रों का अवतार होता है — सूत्रार्थ —

तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीव कितने कारणों से प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हैं ?।।२१।।

पूर्वोक्त पंचेन्द्रिय तिर्यच तीन कारणों से प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हैं — कितने ही तिर्यच जातिस्मरण से, कितने ही धर्मोपदेश सुनकर, कितने ही जिनबिम्बों के दर्शन करके।।२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। जिनबिम्ब के दर्शन से निधत्त और निकाचित रूप भी मिथ्यात्वादि कर्मकलाप का क्षय देखा जाता है, जिससे जिनबिम्ब का दर्शन प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण होता है। श्री वीरसेन स्वामी ने धवला टीका में कहा भी है —

जिनबिम्बदर्शन से निधत्त निकाचित भी मिथ्यात्वादि कर्मों का क्षय देखा जाता है।

श्लोकार्थ — जिनेन्द्रों के दर्शन से पापसंघातरूपी कुंजर के सौ टुकड़े हो जाते हैं, जिस प्रकार कि वज्र के आघात से पर्वत के सौ टुकड़े हो जाते हैं।।

तात्पर्य यह है कि जो ढाईद्वीपवर्ती कर्मभूमिज तिर्यच हैं, वे जिनमंदिरों के मानस्तंभों में जिनप्रतिमाओं को देखकर कोई-कोई सम्यक्त्व को उत्पन्न कर लेते हैं, कोई समवसरण में जाकर वहाँ पर स्थित मानस्तंभ में विराजमान जिनबिम्बों के दर्शन से, कोई तिर्यच रथयात्रा आदि महोत्सव के अवसर पर जिनप्रतिमाओं का दर्शन करके सम्यक्त्व को प्राप्त कर लेते हैं।

कोई समवसरण में स्थित गंधकुटी में साक्षात् विराजमान जिनराज तीर्थकर भगवन्तों के दर्शन से सम्यक्त्वगुण को प्राप्त कर लेते हैं।

उक्तं च श्रीमद्गौतमस्वामिगणधरदेवेन —

जयति भगवान् हेमाम्भोजप्रचारविजृम्भिता-वमरमुकुटच्छायोद्गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ।

कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताः परस्परवैरिणो, विगतकलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विश्वसुः^१॥

शेषाः स्वयंभूरमणपर्वतापरभागवर्तिनो कर्मभूमिजाः भोगकुभोगभूमिजाः जिनबिम्बदर्शनमन्तरेण अन्यकारणाभ्यामेव सम्यक्त्वमुत्पादयन्ति।

कथितं चान्यत्रापि — केइ पडिवोहणेण य केइ सहावेण तासु भूमीसुं।

ददूणं सुहदुक्खं केइ तिरिक्खा बहुपयारं॥

जाइभरणेण केइ केइ जिणिंदस्स महिमदंसणेणो।

जिणबिम्बदंसणेण य पढममुवसमवेदगं च गेणहंति^२॥

तिरश्चां केषाञ्चिज्जातिस्मरणं केषाञ्चिद्धर्मश्रवणं केषाञ्चिज्जिनबिम्बदर्शनम्^३।

एवं द्वितीयस्थले तिर्यग्गतौ सम्यक्त्वोत्पत्तेर्बाह्यकारणप्रतिपादनत्वेन दश सूत्राणि गतानि।

मिथ्यादृष्टिमनुष्याः कस्यामवस्थायां सम्यक्त्वमुत्पादयन्तीति प्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

श्री गणधर देव गौतम स्वामी ने भी कहा है —

ये भगवान् — महावीर स्वामी जयशील हो रहे हैं कि जिनके चरणयुगल देवों द्वारा रचित स्वर्णमयी कमलों पर विहार करते हुए अति शोभायमान हैं एवं देवों के मुकुटों की किरणों से निकलती हुई प्रभा से स्पर्शित हैं। आपके ऐसे चरणयुगलों का आश्रय लेकर कलुषमना मान कषाय से ग्रसित और परस्पर में जन्मजात वैरी ऐसे पशुगण भी विश्वास को — परस्पर में प्रेमभाव को प्राप्त कर लेते हैं॥

शेष स्वयंभूरमण पर्वत के आगे के भाग में रहने वाले कर्मभूमियाँ तिर्यच, भोगभूमिया और कुभोगभूमिया तिर्यच जिनबिम्ब दर्शन के बिना अन्य दो कारणों से — जातिस्मरण एवं धर्मश्रवण से ही सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हैं।

तिलोयपण्णत्तिग्रंथ में भी कहा है —

उन भूमियों में कितने ही तिर्यच जीव प्रतिबोध और कितने ही स्वभाव से भी प्रथमोपशम एवं वेदक सम्यक्त्व को ग्रहण करते हैं। इसके अतिरिक्त बहुत प्रकार के तिर्यचों में से कितने ही सुख-दुख को देखकर, कितने ही जातिस्मरण से, कितने ही जिनेन्द्रमहिमा के दर्शन से और कितने ही जिनबिम्ब के दर्शन से प्रथमोपशम व वेदक सम्यक्त्व को ग्रहण करते हैं।

सर्वार्थसिद्धि ग्रंथ में भी कहा है —

किन्हीं तिर्यचों के जातिस्मरण से, किन्हीं के धर्मश्रवण से और किन्हीं के जिनबिम्ब दर्शन से सम्यग्दर्शन होता है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में तिर्यचगति में सम्यक्त्वोत्पत्ति के बाह्य कारणों का प्रतिपादन करने वाले दश सूत्र पूर्ण हुए।

अब मिथ्यादृष्टि मनुष्य किस अवस्था में सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हैं इस विषय का प्रतिपादन करने के लिए छह सूत्र अवतार लेते हैं —

मणुस्सा मिच्छादिट्ठी पढमसम्मत्तमुप्पादेति॥२३॥

उप्पादेता कम्हि उप्पादेति॥२४॥

गब्भोवक्कंतिएसु पढमसम्मत्तमुप्पादेति, णो सम्मुच्छिमेसु॥२५॥

गब्भोवक्कंतिएसु उप्पादेता पज्जत्तएसु उप्पादेता, णो अपज्जत्तएसु॥२६॥

पज्जत्तएसु उप्पादेता अट्ठवासप्पहुडि जाव उवरिमुप्पादेति, णो हेट्ठादो॥२७॥

एवं जाव अट्ठाइज्जदीव-समुद्देसु॥२८॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते। मिथ्यादृष्टिमनुष्याः प्रथमं सम्यक्त्वमुत्पादयन्ति अस्य निमित्तत्रिविधकरणपरिणामानां संभवात्। गर्भजानामेव एतत्सम्यक्त्वं न सम्मूर्च्छमानां, तत्र प्रथमसम्यक्त्वस्य अत्यन्ताभावात्। अपर्याप्तेष्वपि प्रथमसम्यक्त्वोत्पत्तेः अत्यन्ताभावात्। अत्र अष्टवर्षादुपरि सम्यक्त्वस्य नियमोऽपि गर्भादेव गृहीतव्यः। अस्यायमर्थः — गर्भागतजीवस्य गर्भे एव अन्तर्मुहूर्ते जीवः पर्याप्तो भवति, ततः प्रभृति अष्टवर्षो गृहीतव्यः।

सूत्रार्थ —

मिथ्यादृष्टि मनुष्य प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हैं॥२३॥

प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करने वाले मिथ्यादृष्टि मनुष्य किस अवस्था में उत्पन्न करते हैं ?॥२४॥

मिथ्यादृष्टि मनुष्य गर्भोपक्रान्तिकों में प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हैं, सम्मूर्च्छनों में नहीं॥२५॥

गर्भोपक्रान्तिकों में प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करने वाले मिथ्यादृष्टि मनुष्य पर्याप्तकों में ही उत्पन्न करते हैं, अपर्याप्तकों में नहीं॥२६॥

पर्याप्तकों में प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करने वाले गर्भोपक्रान्तिक मिथ्यादृष्टि मनुष्य आठ वर्ष से लेकर ऊपर किसी समय भी उत्पन्न करते हैं, उससे नीचे काल में नहीं॥२७॥

इस प्रकार अट्ठाई द्वीप-समुद्रों में मिथ्यादृष्टि मनुष्य प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हैं॥२८॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रों का अर्थ सुगम है। मिथ्यादृष्टि मनुष्य प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हैं, क्योंकि इनमें प्रथम सम्यक्त्व के लिए निमित्तभूत तीन प्रकार के करण परिणामों का होना संभव है। गर्भ जन्म वाले मनुष्यों में ही सम्यक्त्व उत्पन्न होता है, न कि सम्मूर्च्छन मनुष्यों में, क्योंकि वहाँ सम्मूर्च्छन मनुष्यों में प्रथम सम्यक्त्व का अत्यन्ताभाव है। अपर्याप्त मनुष्यों में भी प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का अत्यन्ताभाव है।

यहाँ जो सूत्र में आठ वर्ष के ऊपर सम्यक्त्वोत्पत्ति का नियम है, वह भी गर्भ से ही आठ वर्ष लेना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि गर्भ में आया हुआ जीव गर्भ में ही अन्तर्मुहूर्त में पर्याप्त हो जाता है। क्योंकि गर्भ से ही आठ वर्ष ग्रहण करने को कहा है।

उक्तं च — “पज्जत्तपढमसमयप्पहुडि जाव अट्ट वस्साणि त्ति ताव एदिस्से अवत्थाए पढमसम्मत्तुप्पत्तीए अच्चंताभावस्स अवट्ठाणादो^१।”

गर्भागतस्य जीवस्य शरीरयोग्यपुद्गलानां ग्रहणयोग्यशक्तेः पूर्णतैव पर्याप्तावस्था उच्यते न च शरीरावयवरचना इति ज्ञातव्यं।

अत्र ‘समुद्देसु’ पदेन सार्धद्वयद्वीपान्तर्गतद्वयोरेव समुद्रयोर्ग्रहणं कर्तव्यम्।

संप्रति सम्यक्त्वोत्पत्तिकारणानि प्रश्नोत्तररूपेण निरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

मणुसा मिच्छाइट्ठी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति॥२९॥

तीहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति — केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं जिणबिंबं दट्ठुण॥३०॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रयोः अर्थः सुगमः। कृत्रिमाकृत्रिमजिनबिंबानां दर्शनेन प्रथमोपशमसम्यक्त्वमपि प्रतिपद्यन्ते भव्यजीवाः एतत्सूत्रपदेन जिनदर्शनस्य महिमा ज्ञातव्या भवति।

कश्चिदाह — जिनमहिमां दृष्ट्वापि केचित् प्रथमसम्यक्त्वं प्रतिपद्यमानाः सन्ति तेन चतुर्भिः कारणैः प्रथमसम्यक्त्वं प्रतिपद्यन्ते इति वक्तव्यं ?

तस्योत्तरमाह — नैष दोषः, एतस्य कारणस्य जिनबिंबदर्शने अन्तर्भावात्। अथवा मनुष्यमिथ्यादृष्टीनां गगनगमनविरहितानां चतुर्विधदेवनिकायैः नंदीश्वरजिनगृहप्रतिमानां क्रियमाणमहामहिमावलोकने संभवाभावात्।

धवलाटीका में कहा है — पर्याप्तकाल के प्रथम समय से लेकर आठ वर्ष पर्यंत की अवस्था में प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति के अत्यन्ताभाव का नियम है।

गर्भ में आये हुए जीव के शरीर के योग्य पुद्गलों के ग्रहण योग्य शक्ति की पूर्णता ही पर्याप्तावस्था कही जाती है न कि शरीर के अवयवों की रचना, ऐसा जानना चाहिए।

यहाँ सूत्र में ‘समुद्देसु’ इस पद से ढाई द्वीप के अन्तर्गत दो ही समुद्रों को ग्रहण करना चाहिए।

अब सम्यक्त्वोत्पत्ति के कारणों को प्रश्नोत्तररूप से निरूपित करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

मिथ्यादृष्टि मनुष्य कितने कारणों से प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हैं ?॥२९॥

मिथ्यादृष्टि मनुष्य तीन कारणों से प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हैं — कितने ही मनुष्य जातिस्मरण से, कितने ही धर्मोपदेश सुनकर और कितने ही जिनबिम्ब के दर्शन करके॥३०॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। कृत्रिम-अकृत्रिम जिनबिम्बों के दर्शन से भव्य जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर लेते हैं। इस सूत्रपद से जिनदर्शन की महिमा को जानना चाहिए।

शंका — जिनमहिमा को देखकर भी कितने ही मनुष्य प्रथम सम्यक्त्व को प्राप्त करते हैं, इसलिए चार कारणों से मनुष्य प्रथम सम्यक्त्व को प्राप्त करते हैं, ऐसा कहना चाहिए ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं, क्योंकि जिनमहिमादर्शन का जिनबिम्बदर्शन में अन्तर्भाव हो जाता है।

मेरुजिनवरमहिमाः विद्याधरमिथ्यादृष्टयः पश्यन्ति, इत्येषोऽर्थः न वक्तव्यः इति केचिदाचार्या वदन्ति तेन पूर्वोक्तश्रैवार्थो गृहीतव्यः।

लब्धिसंपन्नर्षिदर्शनमपि प्रथमसम्यक्त्वोत्पत्तेः कारणं भवति तत् कारणमपि अत्र पृथक् किन्न भण्यते ? न वक्तव्यं, एतस्यापि कारणस्य जिनबिम्बदर्शने अन्तर्भावात्। ऊर्जयन्त-चंपा-पावानगरादिदर्शनमपि एतेन जिनबिम्बदर्शनेनैव गृहीतव्यं भवति, किंच — तत्रतनजिनबिम्बदर्शन-जिननिर्वृत्तिगमनकथनैः विना प्रथमसम्यक्त्वग्रहणाभावात्।

तत्त्वार्थमहाशास्त्रसूत्रग्रन्थे नैसर्गिकमपि प्रथमसम्यक्त्वं कथितं, तदपि अत्रैव दृष्टव्यं।

प्रोक्तं च श्रीवीरसेनाचार्येण धवलायां —

“जाइस्सरण-जिणबिम्बदं सणेहि विणा उप्पज्जमाणणइसगिय-पढमसम्मत्तस्स असंभवादो”।”

उत्पत्त्यपेक्षया सम्यग्दर्शनस्य द्वौ भेदौ अपि कथ्येते —

‘तन्निर्गजसर्गादधिगमाद्वा’ १। निसर्गात् स्वभावात् गुरुपदेशमन्तरेण यदुत्पद्यते तन्निर्गजसम्यग्दर्शनं, यद् गुरुपदेशेनोत्पद्यते तदधिगमजसम्यग्दर्शनमिति। अत्रापि तत्त्वार्थवृत्तिग्रन्थे श्रीश्रुतसागरसूरिणा कथितं यत्

अथवा, मिथ्यादृष्टि मनुष्यों के आकाश में गमन करने की शक्ति न होने से उनके चतुर्विध देवनिकायों के द्वारा किये जाने वाले नंदीश्वरद्वीपवर्ती जिनालयों में जिनेन्द्रप्रतिमाओं के महामहोत्सव देखना संभव नहीं है, इसलिए उनके जिनमहिमादर्शनरूप कारण का अभाव है।

मेरु पर्वत पर किये जाने वाले महोत्सवों को विद्याधर मिथ्यादृष्टि मनुष्य देखते हैं। इसलिए पूर्वोक्त अर्थ नहीं कहना चाहिए, ऐसा कितने ही आचार्य देव कहते हैं, अतः पूर्वोक्त अर्थ ही ग्रहण करना योग्य है।

शंका — लब्धिसम्पन्न ऋषियों का दर्शन भी तो प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण होता है, अतएव इस कारण को यहाँ पृथक् रूप से क्यों नहीं कहा ?

समाधान — नहीं कहा, क्योंकि लब्धिसम्पन्न ऋषियों के दर्शन का भी जिनबिम्बदर्शन में ही अन्तर्भाव हो जाता है।

ऊर्जयन्त पर्वत तथा चम्पापुर व पावापुर आदि के दर्शन का भी जिनबिम्ब दर्शन के भीतर ही ग्रहण कर लेना चाहिए, क्योंकि उक्त प्रदेशवर्ती जिनबिम्बों के दर्शन तथा जिनभगवान के मोक्षगमन कथन के बिना प्रथम सम्यक्त्व का ग्रहण नहीं हो सकता।

तत्त्वार्थसूत्र महाशास्त्र ग्रंथ में नैसर्गिक प्रथम सम्यक्त्व का भी कथन किया गया है, उसका भी पूर्वोक्त कारणों से उत्पन्न हुए सम्यक्त्व में ही अन्तर्भाव कर लेना चाहिए।

श्री वीरसेनाचार्य ने धवलाटीका में कहा भी है —

जातिस्मरण और जिनबिम्बदर्शन के बिना उत्पन्न होने वाला नैसर्गिक प्रथम सम्यक्त्व असंभव है।

उत्पत्ति की अपेक्षा सम्यग्दर्शन के दो भेद भी कहे गये हैं — वह सम्यग्दर्शन निसर्गज और अधिगम के भेद से दो प्रकार का है। निसर्गज — स्वभाव से गुरु के उपदेश के बिना जो सम्यक्त्व उत्पन्न होता है, वह निसर्गज सम्यग्दर्शन है और जो गुरु के उपदेश से उत्पन्न होता है, वह अधिगमज सम्यग्दर्शन है।

इस विषय में भी तत्त्वार्थवृत्ति ग्रंथ में श्री श्रुतसागरसूरि ने कहा है कि — जो किंचित् मात्र गुरु

किंचिद् गुरुपदेशादपि उत्पद्यते तदपि निसर्गजं “गुरोरक्लेशकारित्वात्” अतो ज्ञायते यत् निसर्गजमपि सम्यग्दर्शनं तदपि बाह्यकारणमपक्षेत एव न च बाह्यकारणमन्तरेण कदाचिदपि उत्पद्यते। ‘असंभवादो’ इति पदेन श्रीवीरसेनाचार्येण एतदेव दृढीकृतमत्र।

एवं तृतीयस्थले मनुष्यगतौ सम्यक्त्वोपत्तेर्बाह्यकारणप्रतिपादनत्वेन सूत्राष्टकं गतम्।

संप्रति मिथ्यादृष्टिदेवाः कस्यामवस्थायां सम्यग्दर्शनमुत्पादयन्तीति प्रतिपादनाय सूत्रपंचकमवतार्यते —

देवा मिच्छादृष्टी पढमसम्मत्तमुप्पादेति॥३१॥

उप्पादेता कम्हि उप्पादेति॥३२॥

पज्जत्तएसु उप्पादेति, णो अपज्जत्तएसु॥३३॥

पज्जत्तएसु उप्पाएता अंतोमुहुत्तप्पहुडि जाव उपरि उप्पाएति, णो हेट्ठदो॥३४॥

एवं जाव उवरिमउवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा त्ति॥३५॥

के उपदेश को प्राप्त कर भी उत्पन्न होता है, वह भी निसर्गज है क्योंकि उसमें गुरु को क्लेश — श्रमविशेष नहीं हुआ है। इससे यह जाना जाता है कि जो निसर्गज भी सम्यग्दर्शन है वह भी बाह्य कारणों की अपेक्षा रखता ही है, क्योंकि बाह्य कारणों के बिना कदाचित् भी सम्यग्दर्शन उत्पन्न नहीं होता है। यहाँ पर श्री वीरसेनाचार्य ने ‘असंभवादो’ इस पद से इसी बात को ही दृढ़ किया है, ऐसा जानना।

इस प्रकार तृतीय स्थल में मनुष्यगति में सम्यक्त्वोत्पत्ति के बाह्य कारणों के प्रतिपादन करने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

अब मिथ्यादृष्टि देव किस अवस्था में सम्यग्दर्शन उत्पन्न करते हैं ? इस विषय का प्रतिपादन करने के लिए पाँच सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

देव मिथ्यादृष्टि प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं॥३१॥

प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करने वाले मिथ्यादृष्टि देव किस अवस्था में उत्पन्न करते हैं ?॥३२॥

प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करने वाले मिथ्यादृष्टि देव पर्याप्तकों में उत्पन्न करते हैं, अपर्याप्तकों में नहीं॥३३॥

पर्याप्तकों में प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करने वाले मिथ्यादृष्टि देव अन्तर्मुहूर्तकाल से लेकर ऊपर उत्पन्न करते हैं, उससे नीचे के काल में नहीं॥३४॥

इस प्रकार ऊपर-ऊपर ग्रैवेयकविमानवासी देव तक प्रथम सम्यक्त्व ग्रहण करते हैं॥३५॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — तत्र प्रथमसम्यक्त्वयोग्यत्रिविधकरणपरिणामाः उपलभ्यन्ते देवानां मिथ्यादृष्टीनां, तेषां अपर्याप्तानां प्रथमसम्यक्त्वोत्पत्तेः अत्यन्ताभावात् तदुत्पत्तिविरोधोऽस्ति। पर्याप्तप्रथमसमयादारभ्य अन्तर्मुहूर्तकालपर्यन्तं त्रिविधकरणपरिणामाभावात् अन्तर्मुहूर्तानन्तरं प्रथमसम्यक्त्वग्रहणयोग्यता भवति। एष नियमः उपरिमोपरिमग्रैवेयकविमानवासिपर्यन्तः।

कतिकारणैः इमे देवाः सम्यक्त्वोत्पादनयोग्याः इति प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रत्रयमवतार्यते —

देवा मिच्छाङ्गुटी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति ?।।३६।।

चदुहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति — केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं जिणमहिमं दट्टूण, केइं देविद्धिं दट्टूण।।३७।।

एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सदरसहस्सार-कप्पवासियदेवा त्ति।।३८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — प्रथमोपशमसम्यक्त्वं कार्यं, अन्यथा तस्योत्पत्तिविरोधात्। कार्यं च कारणात् उत्पद्यते, निष्कारणस्य उत्पत्तिविरोधात्। तच्च प्रथमसम्यक्त्वं कारणात् उत्पद्यमानं कतिभिः कारणैः उत्पद्यते ? इति पृच्छासूत्रानन्तरं उत्तरसूत्रं कथितं आचार्यश्रीभूतबलिदेवेन चतुर्भिः कारणैरिति। तेषु कारणेषु जिनबिंबदर्शनं

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — मिथ्यादृष्टि देवों में प्रथम सम्यक्त्व के योग्य तीन प्रकार के कारण — परिणाम पाए जाते हैं। क्योंकि, अपर्याप्तकों में प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का अत्यन्ताभाव है और इसलिए उनमें उसकी उत्पत्ति मानने में विरोध आता है। क्योंकि पर्याप्तकाल के प्रथम समय से लेकर अन्तर्मुहूर्तकाल तक तीन प्रकार के कारण — परिणामों का अभाव पाया जाता है।

अन्तर्मुहूर्त के अनन्तर प्रथम सम्यक्त्व की योग्यता होती है। यह नियम उपरिमोपरिम — अन्तिम ग्रैवेयक विमानवासी अहमिन्द्रों तक है।

कितने कारणों से ये देव सम्यक्त्व को उत्पन्न करने के योग्य होते हैं ? इस प्रकार प्रश्नोत्तररूप से तीन सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

मिथ्यादृष्टि देव कितने कारणों से प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हैं ?।।३६।।

मिथ्यादृष्टि देव चार कारणों से प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं — कितने ही जातिस्मरण से, कितने ही धर्मोपदेश सुनकर, कितने ही जिनमहिमा देखकर और कितने ही देवों की ऋद्धि देखकर।।३७।।

इस प्रकार भवनवासी देवों से लेकर शतार-सहस्रार कल्पवासी देव प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हैं।।३८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — प्रथम सम्यक्त्व कार्य है, अन्यथा उसकी उत्पत्ति मानने में विरोध आता है और कार्य कारण से ही उत्पन्न होता है, क्योंकि कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति मानने में विरोध आता है। अतएव कारण से उत्पन्न होने वाला यह प्रथम सम्यक्त्व कितने कारणों से उत्पन्न होता है, ऐसा प्रश्न इस सूत्र में किया गया है।

पुनः श्री भूतबलि आचार्य ने उत्तर सूत्र कहा है कि चार कारणों से सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। इन कारणों

प्रथमसम्यक्त्वस्य कारणत्वेन अत्र न कथितं। अस्मिन् विषये श्रीवीरसेनाचार्यो वदति—

जिनमहिमादर्शने तस्यान्तर्भावात्, किंच जिनबिम्बेन विना जिनमहिमा अनुपपत्तेः।

स्वर्गावतरण-जन्माभिषेक-परिनिष्क्रमणजिनमहिमाः जिनबिम्बेन विना क्रियमाणाः दृश्यन्ते, अतः जिनमहिमादर्शने जिनबिम्बदर्शनस्य अविनाभावो नास्ति ?

एतन्नाशंकनीयं, तत्रापि भावि जिनबिम्बस्य दर्शनोपलंभात्। अथवा एतासु महिमासु उत्पद्यमान-प्रथमोपशमसम्यक्त्वं न जिनबिम्बदर्शननिमित्तं, किंतु जिनगुणश्रवणनिमित्तमिति।

देवर्द्धिदर्शनं जातिस्मरणे किञ्च प्रविशति ?

न प्रविशति, आत्मनः अणिमादिऋद्धीः दृष्ट्वा एताः ऋद्धयः जिनप्रज्ञप्तधर्मानुष्ठानात् जाताः इति प्रथमसम्यक्त्वप्राप्तिः जातिस्मरणनिमित्ता भवति। किंतु यदा सौधर्मैन्द्रादिदेवानां महर्द्धीः दृष्ट्वा एताः सम्यग्दर्शनसंयुक्तसंयमफलेन जाताः, अहं पुनः सम्यग्दर्शनविरहितद्रव्यसंयमफलेन वाहनादिनीचदेवेषु उत्पन्नः, इति ज्ञात्वा यत् प्रथमसम्यक्त्वग्रहणं जायते तत् देवर्द्धिदर्शननिमित्तकं। तत्र द्वयोरेकत्वमिति।

किं च जातिस्मरणं तु उत्पन्नप्रथमसमयप्रभृति अन्तर्मुहूर्तकालाभ्यन्तरे एव भवति। देवर्द्धिदर्शनं पुनः कालान्तरे चैव भवति—अन्तर्मुहूर्तानन्तरमेव, तेन न द्वयोरेकत्वं। एष एवार्थः नारकाणां जातिस्मरण-वेदनाभिभवयोरपि वक्तव्यः।

एवं भवनवासि-व्यन्तर-ज्योतिर्वासिदेवानां सौधर्मादिसहस्रारपर्यंतकल्पवासिनां पूर्वोक्तानि चत्वारि

में जिनबिम्बदर्शन को प्रथम सम्यक्त्व के कारणरूप से नहीं कहा है।

इस विषय में श्रीवीरसेनाचार्य कहते हैं—

जिनबिम्बदर्शन का जिनमहिमादर्शन में ही अन्तर्भाव हो जाता है, कारण कि जिनबिम्ब के बिना जिनमहिमा की उपपत्ति बनती नहीं है।

शंका—स्वर्गावतरण, जन्माभिषेक और परिनिष्क्रमणरूप जिनमहिमाएं जिनबिम्ब के बिना की जाने वाली देखी जाती हैं, इसलिए जिनमहिमादर्शन में जिनबिम्बदर्शन का अविनाभाव नहीं है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि स्वर्गावतरण, जन्माभिषेक और परिनिष्क्रमणरूप जिनमहिमाओं में भी भावी जिनबिम्ब का दर्शन पाया जाता है। अथवा, इन महिमाओं में उत्पन्न होने वाला प्रथम सम्यक्त्व जिनबिम्बदर्शननिमित्तक नहीं है, किन्तु जिनगुणश्रवणनिमित्तक है।

शंका—देवर्द्धिदर्शन का जातिस्मरण में समावेश क्यों नहीं होता ?

समाधान—नहीं होता, क्योंकि अपनी अणिमादिक ऋद्धियों को देखकर जब यह विचार उत्पन्न होता है कि ये ऋद्धियाँ जिन भगवान द्वारा उपदिष्ट धर्म के अनुष्ठान से उत्पन्न हुई हैं, तब प्रथम सम्यक्त्व की प्राप्ति जातिस्मरण निमित्तक होती है। किन्तु जब सौधर्मैन्द्रादिक देवों की महाऋद्धियों को देखकर यह ज्ञान उत्पन्न होता है कि ये ऋद्धियाँ सम्यग्दर्शन से संयुक्त संयम के फल से प्राप्त हुई हैं, किन्तु मैं सम्यक्त्व से रहित द्रव्यसंयम के फल से वाहनादिक नीच देवों में उत्पन्न हुआ हूँ तब प्रथम सम्यक्त्व का ग्रहण देवर्द्धिदर्शननिमित्तक होता है। इससे जातिस्मरण और देवर्द्धिदर्शन, ये प्रथम सम्यक्त्वोत्पत्ति के दोनों कारण एक नहीं हो सकते तथा जातिस्मरण उत्पन्न होने के प्रथम समय से लगाकर अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर ही होता है। किन्तु देवर्द्धिदर्शन उत्पन्न होने के समय से अन्तर्मुहूर्तकाल के पश्चात् ही होता है। इसलिए भी उन दोनों कारणों में एकत्व नहीं है। यही अर्थ नारकियों के जातिस्मरण और वेदनाभिभवन रूप कारणों में विवेक के लिए भी कहना चाहिए।

इस प्रकार भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिर्वासी देवों में और सौधर्म-ईशान आदि से सहस्रार स्वर्ग पर्यंत

कारणानि भवन्तीति।

आनतादिकल्पवासिनां सम्यक्त्वोत्पत्तिकारणप्रतिपादनाय प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते—

आणद-पाणद-आरण-अच्छुदकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिद्वी कदिहि कारणेहिं पढमसम्मत्तमुप्पादेति॥३९॥

तीहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति—केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं जिणमहिमं दट्ठण॥४०॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रयोरर्थः सुगमोऽस्ति।

देवर्द्धिदर्शनेन सह चत्वारि कारणानि किन्नोक्तानि ?

नोक्तानि, किंच—तत्र महर्द्धिसंयुक्तोपरिमदेवानामागमाभावोऽस्ति। न, तत्र स्थितदेवानां महर्द्धिदर्शनं प्रथमसम्यक्त्वोत्पत्तेः निमित्तं, भूयः दर्शनेन तत्र विस्मयाभावात्। अथवा शुक्ललेश्यायाः सद्भावेन महर्द्धिदर्शनेन संक्लेशाभावात् न तन्निमित्तं भवति।

धर्मोपदेशं श्रुत्वा यज्जातिस्मरणं, देवर्द्धिं दृष्ट्वा च यज्जातिस्मरणं, इमे द्वे अपि यद्यपि प्रथमसम्यक्त्वोत्पत्तेः निमित्ते भवतः, तर्ह्यपि तत् सम्यक्त्वं जातिस्मरणनिमित्तं इति अत्र न गृह्यते, देवर्द्धिदर्शन-धर्मोपदेशश्रवणानन्तरोत्पन्नजातिस्मरणनिमित्तत्वात्। अतएव धर्मोपदेशश्रवण-देवर्द्धिदर्शननिमित्तमिति

कल्पवासी देवों में ये ही चार कारण होते हैं।

अब आनत-प्राणतादि चार कल्पवासी देवों के सम्यक्त्वोत्पत्ति के कारण का प्रतिपादन करने के लिए प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतार लेते हैं—

सूत्रार्थ—

आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पों के निवासी देवों में मिथ्यादृष्टि कितने कारणों से प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हैं ?॥३९॥

पूर्वोक्त आनतादि चार कल्पों के देव तीन कारणों से प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हैं—कितने ही जातिस्मरण से, कितने ही धर्मोपदेश सुनकर और कितने ही जिनमहिमा को देखकर॥४०॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है।

शंका—यहाँ पर देवर्द्धिदर्शन सहित चार कारण क्यों नहीं कहे ?

समाधान—नहीं कहे, क्योंकि वहाँ आनतादि चार कल्पों में महर्द्धि से संयुक्त ऊपर के देवों का आगमन नहीं होता इसलिए वहाँ महर्द्धिदर्शनरूप प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण नहीं पाया जाता और उन्हीं कल्पों में स्थित देवों की महर्द्धि का दर्शन प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का निमित्त हो नहीं सकता, क्योंकि उसी ऋद्धि को बार-बार देखने से विस्मय नहीं होता। अथवा, उक्त कल्पों में शुक्ललेश्या के सद्भाव के कारण महर्द्धि के दर्शन से कोई संक्लेशभाव उत्पन्न नहीं होते। अतः वह निमित्त नहीं है।

धर्मोपदेश सुनकर जो जातिस्मरण होता है और देवर्द्धि को देखकर जो जातिस्मरण होता है ये दोनों ही जातिस्मरण यद्यपि प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति के निमित्त होते हैं, तथापि उनसे उत्पन्न सम्यक्त्व यहाँ जातिस्मरणनिमित्तक

गृहीतव्यम्। एवं विधानि त्रीण्येव कारणानि एषु चतुर्षु स्वर्गेषु ज्ञातव्यानि भवन्ति।

अधुना नवग्रैवेयकादिअहमिन्द्राणां सम्यक्त्वकारणप्रतिपादनाय प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रत्रयमवतार्यते —

**णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिद्वी कदिहि कारणेहि पढम-
सम्मत्तमुप्पादेति ?।।४१।।**

दोहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति — केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण।।४२।।

**अणुदिसजाव सब्बदुसिद्धिविमाणवासियदेवा सब्बे ते णियमा सम्माइद्वी
त्ति पण्णत्ता।।४३।।**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — नवग्रैवेयकवासिनामहमिन्द्राणां केषांचित् जातिस्मरणं, केषांचित् धर्मश्रवणं निमित्तं, अत्र महर्षिदर्शनं नास्ति उपरिमदेवानामागमाभावात्। जिनमहिमादर्शनमपि नास्ति, नन्दीश्वरादिमहिमानां तेषामागमनाभावात्।

अवधिज्ञानेन तत्रास्थिताश्चैव जिनमहिमाः पश्यन्ति इति जिनमहिमादर्शनं तेषां सम्यक्त्वोत्पत्तेर्निमित्तं किन्नोच्यते ?

न, तेषां अहमिन्द्रदेवानां वीतरागाणां जिनमहिमादर्शनेन विस्मयाभावान् तत्तृतीयनिमित्तं तत्र न कथ्यते।

नहीं माना गया है क्योंकि यहाँ देवर्द्धि के दर्शन व धर्मोपदेश के श्रवण के पश्चात् ही उत्पन्न हुए जातिस्मरण का निमित्त प्राप्त हुआ है। अतएव यहाँ धर्मोपदेशश्रवण और देवर्द्धिदर्शन को ही निमित्त मानना चाहिए।

इस प्रकार ये तीन ही कारण इन चार स्वर्गों में जानना चाहिए।

अब नवग्रैवेयक आदि के अहमिन्द्रों में सम्यक्त्वोत्पत्ति के कारणों का प्रतिपादन करने के लिए प्रश्नोत्तररूप से तीन सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

नौ ग्रैवेयक विमानवासी देवों में मिथ्यादृष्टि देव कितने कारणों से प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं ?।।४१।।

नौ ग्रैवेयक विमानवासी मिथ्यादृष्टि देव दो कारणों से प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं — कितने ही जातिस्मरण और कितने ही धर्मोपदेश सुनकर।।४२।।

अनुदिशों से लगाकर सर्वार्थसिद्धि तक के विमानवासी देव सभी नियम से सम्यग्दृष्टि ही होते हैं, ऐसा उपदेश पाया जाता है।।४३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — नव ग्रैवेयकवासी अहमिन्द्रों में किन्हीं के जातिस्मरण एवं किन्हीं के धर्मश्रवण निमित्त होते हैं क्योंकि नौ ग्रैवेयकों में महर्द्धिदर्शन नहीं है, क्योंकि यहाँ ऊपर के देवों के आगमन का अभाव है। यहाँ जिनमहिमादर्शन भी नहीं है, क्योंकि ग्रैवेयकविमानवासी देव नन्दीश्वरादि के महोत्सव देखने नहीं आते।

शंका — ग्रैवेयक देव अपने विमानों में रहते हुए अवधिज्ञान से जिनमहिमाओं को देखते हैं, अतएव जिनमहिमा का दर्शन उनके सम्यक्त्व की उत्पत्ति में निमित्त होता है, ऐसा क्यों नहीं कहते ?

समाधान — नहीं, क्योंकि ग्रैवेयकविमानवासी देव वीतराग होते हैं, अतएव जिनमहिमा के दर्शन से उन्हें विस्मय नहीं उत्पन्न होता। इसलिए तीसरा कारण उनके नहीं कहा गया है।

तेषामहमिन्द्राणां कथं धर्मश्रवणसंभवः ?

न, तेषां अन्योन्यसंलापे सति अहमिन्द्रत्वस्य विरोधाभावात्। न तत्र कश्चित् अहमिन्द्राः कमपि संबोधयति धर्म उपदिशति वा किन्तु तत्र तेषां परस्परधर्मचर्चा भवति, सैव चर्चा कस्यचित् मिथ्यादृष्टेः प्रथमसम्यक्त्वस्य निमित्तं भवति इति ज्ञातव्यं।

तदुपरि नवानुदिशवासिनोऽहमिन्द्राः पंचानुत्तरवासिनश्च सर्वेऽपि नियमात् सम्यग्दृष्टय एव इति अतः तत्र सम्यक्त्वोत्पत्तेर्निमित्तानि न सन्ति।

तात्पर्यमेतत् — प्रत्येककार्यस्योत्पत्तौ उपादानकारणं निमित्तकारणं च द्वे स्तः। यथा घटस्योत्पत्तौ मृत्तिका उपादानकारणं कुंभकारचक्रदण्डादिनिमित्तकारणं। तथैव सम्यक्त्वस्योत्पत्तौ आत्मा उपादानं आत्मानं मुक्त्वा अन्यत्र सम्यक्त्वं नोत्पद्यते। निमित्तकारणस्य द्वौ भेदौ — अन्तरंगबहिरंगौ च। तत्रापि करणलब्धिः अंतरंगकारणं, बहिरंगकारणानि इमानि जातिस्मरणादीनि। अत्रापि बाह्यकारणेषु सत्सु एव सम्यक्त्वमुत्पद्यते नासत्सु। अत्राप्येतज्ज्ञातव्यं — बाह्यकारणेषु सत्सु सम्यक्त्वमुत्पद्यते न वा उत्पद्यते किन्तु असत्सु नोत्पद्यते असंभवात्, किन्तु करणलब्धौ सत्यां नियमेन जायते अतएव अस्य करणसंज्ञा वर्तते। साधकतमः करणम्^१।। इति सूत्रात्।

करणलब्धेः अधःकरणापूर्वकरणानिवृत्तिकरणरूपेण त्रयो भेदाः सन्ति, येषु जातेषु नियमेन

शंका — प्रैवेयकविमानवासी देवों के धर्मश्रवण किस प्रकार संभव होता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि उनमें परस्पर संलाप होने पर अहमिन्द्रत्व से विरोध नहीं आता। (अतएव वह संलाप ही धर्मोपदेश रूप से सम्यक्त्वोत्पत्ति का कारण हो जाता है।)

वहाँ कोई भी अहमिन्द्र न तो किसी को संबोधन देते हैं और न धर्म का उपदेश ही देते हैं, किन्तु वहाँ उनके परस्पर में धर्मचर्चा होती है वही चर्चा किन्हीं मिथ्यादृष्टि के प्रथम सम्यक्त्व का निमित्त हो जाती है, ऐसा जानना चाहिए।

इनके ऊपर नव अनुदिशवासी सभी अहमिन्द्र और पाँच अनुत्तर के सभी अहमिन्द्र नियम से सम्यग्दृष्टी ही हैं अतः वहाँ सम्यक्त्वोत्पत्ति के कारणों की बात ही नहीं है।

यहाँ तात्पर्य यह है कि — प्रत्येक कार्य की उत्पत्ति में उपादानकारण और निमित्तकारण ये दो होते हैं। जैसे — घड़े की उत्पत्ति में मिट्टी उपादान कारण है और कुंभार, चाक, दण्ड आदि निमित्तकारण हैं। उसी प्रकार सम्यक्त्व की उत्पत्ति में आत्मा उपादान है क्योंकि आत्मा को छोड़कर अन्यत्र सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं है। निमित्त कारण के दो भेद हैं — अंतरंग और बहिरंग। उनमें से करण लब्धि अंतरंग कारण है और ये जातिस्मरण आदि बहिरंग कारण हैं। इन बाह्य कारणों के होने पर ही सम्यक्त्व की उत्पत्ति होती है नहीं होने पर नहीं। यहाँ पर यह भी जानना चाहिए कि बाह्य कारणों के होने पर सम्यक्त्व उत्पन्न होता है अथवा नहीं भी होता है किन्तु नहीं होने पर नहीं होता है, असंभव है, किन्तु करणलब्धि के होने पर नियम से सम्यक्त्व उत्पन्न होता है इसीलिए इसे 'करणसंज्ञा' है क्योंकि जैनेन्द्र व्याकरण का सूत्र है — जो साधकतम है वह करण है अर्थात् जिसके होने पर नियम से कार्य हो जावे वह 'साधकतम' कहलाता है।

करणलब्धि के अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण के भेद से तीन भेद हैं। जिनके होने पर

सम्यक्त्वमुत्पद्यते तानि करणानि। अतः इमानि साधकतमरूपेण करणानि सन्ति।

अतोऽस्माभिः बाह्यकारणस्योपेक्षा न कर्तव्या, प्रत्युत जिनबिम्बदर्शनगुरुपदेशश्रवणादिकारणानि मेलयितव्यानि कोटिप्रयत्नेन निरन्तरमिति।

एवं चतुर्थस्थले देवगतौ सम्यक्त्वोत्पत्तिबाह्यकारणनिरूपणत्वेन त्रयोदशसूत्राणि गतानि।

इति सम्यक्त्वोत्पत्तिबाह्यकारणप्ररूपकः नवमीचूलिकायां
प्रथमोऽन्तराधिकारः समाप्तः।

नियम से सम्यक्त्व उत्पन्न हो जाता है वे 'करण' हैं इसलिए ये 'साधकतमरूप' से करण कहलाते हैं।

इसलिए हमें बाह्य कारणों की उपेक्षा नहीं करना चाहिए प्रत्युत् करोड़ों प्रयास करके निरन्तर जिनबिम्बदर्शन, गुरुओं के उपदेश का श्रवण आदि कारणों को जुटाना चाहिए।

इस प्रकार चतुर्थस्थल में देवगति में सम्यक्त्वोत्पत्ति के बाह्य कारणों का निरूपण करने वाले तेरह सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम ग्रंथ में सम्यक्त्वोत्पत्ति के बाह्य
कारणों का प्ररूपण करने वाला नवमी चूलिका में
यह प्रथम अन्तराधिकार पूर्ण हुआ।



अथ चतुर्गतिप्रवेशनिर्गमनकथनं

अथ गत्यागतिनामनवमीचूलिकायां चतुर्भिः स्थलैः द्वात्रिंशत्सूत्रैः चतुर्गतिषु प्रवेशनिर्गमप्रतिपादकः द्वितीयोऽन्तराधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले नरकगतौ गुणस्थानापेक्षया प्रवेशनिर्गमनसूचकत्वेन “णेरइया मिच्छत्तेण” इत्यादिना नवसूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले तिर्यग्गतौ प्रवेशनिर्गमननिरूपणत्वेन “तिरिक्खा केइं” इत्यादिना अष्टौ सूत्राणि। ततः परं तृतीयस्थले तिरश्चीनां भवनत्रिकदेवदेवीत्यादीनां प्रवेशनिर्गमनसूचकत्वेन “पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीओ” इत्यादिना पंचसूत्राणि। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले मनुष्यदेवगतिषु गुणस्थानापेक्षया प्रवेशनिर्गमनप्रतिपादनपरत्वेन “मणुसा मणुसपज्जत्ता सोधम्मीसाण”- इत्यादिदशसूत्राणि इति समुदायपातनिका।

संप्रति नारकाः केन गुणस्थानेन नरकगतिं संप्राप्य केन च निर्यान्ति इति प्रतिपादनाय सूत्रनवकमवतार्यते —

णेरइया मिच्छत्तेण अधिगदा केइं मिच्छत्तेण णींति॥४४॥

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति॥४५॥

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति॥४६॥

चतुर्गति प्रवेश-निर्गमन का कथन

अब गत्यागती नामक नवमी चूलिका में चार स्थलों द्वारा बत्तीस सूत्रों से चारों गतियों में प्रवेश और निर्गमन का प्रतिपादन करने वाला दूसरा अन्तराधिकार प्रारंभ होता है। उसमें प्रथम स्थल में नरकगति में गुणस्थान की अपेक्षा से प्रवेश-निर्गमन को सूचित करने वाले ‘णेरइया मिच्छत्तेण’ इत्यादि नव सूत्र हैं। इसके बाद दूसरे स्थल में तिर्यग्गति में प्रवेश-निर्गमन को सूचित करते हुए ‘तिरिक्खा केइं’ इत्यादि आठ सूत्र हैं। पुनः तृतीय स्थल में तिर्यचिनी और भवनत्रिक देव-देवियों में प्रवेश-निर्गमन को कहने वाले ‘पंचिंदिय तिरिक्खजोणिणीओ’ इत्यादि पाँच सूत्र हैं। अनंतर चतुर्थ स्थल में मनुष्य और देवगति में गुणस्थान की अपेक्षा प्रवेश और निर्गमन को प्रतिपादित करने वाले ‘मणुसा मणुसपज्जत्ता सोधम्मीसाण-’ इत्यादि दस सूत्र कहेंगे, इस प्रकार यहाँ यह समुदायपातनिका हुई।

अब नारकी किन गुणस्थान से नरकगति को प्राप्त करके किन गुणस्थानों से निकलते हैं ? इस विषय का प्रतिपादन करने के लिए नव सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

नारकी जीव मिथ्यात्व सहित नरक में जाते हैं और उनमें से कितने मिथ्यात्व सहित ही नरक से निकलते हैं॥४४॥

कितने ही नारकी जीव मिथ्यात्व सहित नरक में जाकर सासादनसम्यक्त्व सहित वहाँ से निकलते हैं॥४५॥

कितने ही नारकी जीव मिथ्यात्व सहित नरक में जाकर सम्यक्त्व सहित वहाँ से निकलते हैं॥४६॥

सम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण चेव णीति॥४७॥

एवं पढमाए पुढवीए णेरइया॥४८॥

विदियाए जाव छट्टीए पुढवीए णेरइया मिच्छत्तेण अधिगदा केइं मिच्छत्तेण णीति॥४९॥

मिच्छत्तेण अधिगदा केइं सासणसम्मत्तेण णीति॥५०॥

मिच्छत्तेण अधिगदा केइं सम्मत्तेण णीति॥५१॥

सत्तमाए पुढवीए णेरइया मिच्छत्तेण चेव णीति॥५२॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अधिगदा — अधिगताः प्रविष्टाः गताः इति एकार्थवाचिनः सन्ति। णीति — निर्यान्ति निःसरन्ति निर्गच्छन्ति निष्फिडन्ति इति पर्यायवाचिनः। केइं — केचिदित्यर्थः। मिथ्यात्वेन सह नरकगतिं प्रविश्य पुनः तत्र मिथ्यात्वेन वा सम्यक्त्वेन वा स्थित्वा अवसाने मिथ्यात्वेन सह केचित् निर्गच्छन्ति। केचित् मिथ्यात्वेन नरकगतिं प्रविश्य स्वकस्थितिं अनुपाल्य पुनोऽवसाने प्रथमोपशमसम्यक्त्वं प्रतिपद्य सासादनगुणस्थानं गत्वा निःसरन्ति। केचित् मिथ्यात्वसहितां नरकगतिं गत्वा तत्र सम्यक्त्वं प्रतिपद्य सम्यक्त्वेनैव निर्गच्छन्ति।

सम्यक्त्व सहित नरक में जाने वाले जीव सम्यक्त्व सहित ही वहाँ से निकलते हैं॥४७॥

इस प्रकार प्रथम पृथिवी में नारकी जीव प्रवेश करते और वहाँ से निकलते हैं॥४८॥

दूसरी पृथिवी से लगाकर छठवीं पृथिवी तक के नारकी जीव मिथ्यात्व सहित जाकर कितने ही मिथ्यात्व सहित ही निकलते हैं॥४९॥

मिथ्यात्व सहित द्वितीयादि नरक में जाकर कितने ही नारकी जीव सासादन सम्यक्त्व के साथ वहाँ से निकलते हैं॥५०॥

मिथ्यात्व सहित द्वितीयादि नरक में जाकर कितने ही नारकी जीव सम्यक्त्व सहित वहाँ से निकलते हैं॥५१॥

सातवीं पृथिवी से नारकी जीव मिथ्यात्व सहित ही निकलते हैं॥५२॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अधिगद — अधिगत, प्रविष्ट और गत, ये शब्द एकार्थक ही हैं। णीति अर्थात् निस्सरण करते हैं, निर्गमन करते हैं, निकलते हैं, इन सबका एक ही अर्थ है। 'केइं' का अर्थ है केचित् अर्थात् कितने ही। मिथ्यात्व के साथ नरकगति में प्रवेश करके पुनः वहाँ मिथ्यात्व सहित अथवा सम्यक्त्व सहित रहकर अन्त में मिथ्यात्व सहित कितने ही जीव वहाँ से निकलते हैं, इस प्रकार का अर्थ यहाँ कहा गया है।

मिथ्यात्व के सहित नरकगति में प्रवेश करके और वहाँ अपनी स्थिति पूरी करके पुनः अन्त में प्रथम सम्यक्त्व को प्राप्त कर तथा सासादन गुणस्थान में जाकर नरक से निकलने वाले जीव पाये जाते हैं।

मिथ्यात्वसहित नरकगति में जाकर और वहाँ सम्यक्त्व प्राप्त करके उसी सम्यक्त्व के साथ वहाँ से निकलने वाले जीव पाये जाते हैं।

केचित् सम्यक्त्वेन सह गत्वा सम्यक्त्वेनैव निःसरन्ति, किंच — तत्रोत्पन्नक्षायिकसम्यग्दृष्टीनां कृतकरणीयवेदकसम्यग्दृष्टीनां वा गुणान्तरसंक्रमणाभावात्। सासादन सम्यग्दृष्टीनां च नरकगतौ प्रवेशो नास्ति, अत्र प्रवेशाप्रतिपादनस्य अन्यथानुपपत्तेः। एवं प्रथमपृथिवीगतनारकाणां व्यवस्था अस्ति।

द्वितीयपृथिव्यादिषष्ठपृथिवीपर्यंतं मिथ्यात्वेन प्रविश्य मिथ्यात्वेन निर्यान्ति, सासादनेन वा सम्यक्त्वेन वा निर्यान्ति। मिथ्यात्वेन नरकगतिं गतानां तत्र सम्यक्त्वं प्रतिपद्य तेन सम्यक्त्वेन सह निर्गमने द्वितीयादिपंचसु पृथिवीषु विरोधाभावात्।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः सम्यग्दृष्टीनामिव द्वितीयादिपंचपृथिवीषु प्रवेशो नास्ति, तयोरत्र अधिगमाप्रतिपादनात्।

सम्यक्त्वं सासादनं सम्यग्मिथ्यात्वं वा कतितमं गुणस्थानं गतानां अपि सप्तमपृथिवीगतनारकाणां नियमेन मरणकाले मिथ्यात्वोत्पन्नं भवति। अतस्ते मिथ्यात्वेनैव निर्गच्छन्ति। तत्र तेषां मरणकाले मिथ्यात्वविरहितान्य-गुणस्थानानां अत्यन्ताभावोऽस्ति।

एवं प्रथमस्थले नरकगतौ मिथ्यात्वादिगुणस्थानेन सह गमनागमनव्यवस्थाप्रतिपादकत्वेन सूत्रनवकं गतम्।

कोई सम्यक्त्व के साथ नरक में जाकर सम्यक्त्व के साथ ही वहाँ से निकलते हैं, क्योंकि नरक में उत्पन्न हुए क्षायिक सम्यग्दृष्टियों के अथवा कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टियों के अन्य गुणस्थान में संक्रमण नहीं होता और सासादनसम्यग्दृष्टियों का नरकगति में प्रवेश ही नहीं है, क्योंकि यहाँ प्रवेश के प्रतिपादन न करने की अन्यथा उपपत्ति नहीं बनती।

इस प्रकार प्रथम पृथ्वी के नारकियों की व्यवस्था है। द्वितीय आदि से छठे नरक पर्यंत जीव मिथ्यात्व के साथ प्रवेश करके मिथ्यात्व के साथ ही निकलते हैं, अथवा सासादन सम्यक्त्व के साथ भी निकलते हैं।

क्योंकि मिथ्यात्व के साथ द्वितीयादि पाँच पृथिवियों में जाकर अन्त में प्रथम सम्यक्त्व को प्राप्त कर और फिर आसादन अर्थात् सासादन गुणस्थान में जाकर नरक से निकलने में कोई विरोध नहीं आता। मिथ्यात्व के साथ नरकगति में जाने वाले जीवों का वहाँ सम्यक्त्व प्राप्त करके उसी सम्यक्त्व सहित निकलने में द्वितीयादि पाँच पृथिवियों में कोई विरोध नहीं आता। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सासादनगुणस्थानवर्ती जीवों का सम्यग्दृष्टि जीवों के समान द्वितीयादि पाँच पृथिवियों में प्रवेश नहीं होता, क्योंकि यहाँ उनके प्रवेश का प्रतिपादन नहीं किया गया है।

सातवीं पृथिवी के नारकी सम्यग्दर्शन, सासादन या सम्यग्मिथ्यात्व इन तीनों में किसी भी गुणस्थान को प्राप्त हुए भी नियम से मरण के समय मिथ्यात्व को प्राप्त हो जाते हैं, इसलिए वे मिथ्यात्व से ही सातवें नरक से निकलते हैं क्योंकि वहाँ उनके मरणकाल में मिथ्यात्व से रहित अन्य गुणस्थान का अत्यन्त अभाव है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में नरकगति में मिथ्यात्व आदि गुणस्थान के साथ गमनागमन का प्रतिपादन करते हुए नव सूत्र पूर्ण हुआ।

संप्रति तिरश्चां मिथ्यात्वादिगुणस्थानैः गमनागमनप्रतिपादनाय सूत्राष्टकमवतार्यते —

तिरिक्खा केइं मिच्छत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णींति॥५३॥

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति॥५४॥

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति॥५५॥

केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णींति॥५६॥

केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति॥५७॥

केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति॥५८॥

सम्मत्तेण अधिगदा णियमा सम्मत्तेण चेव णींति॥५९॥

(१एवं) पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता॥६०॥

अब तिर्यचों में मिथ्यात्व आदि गुणस्थानों से गमनागमन का प्रतिपादन करने के लिए आठ सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

तिर्यच जीव कितने ही मिथ्यात्व सहित तिर्यचगति में जाकर मिथ्यात्व सहित ही उस गति से निकलते हैं॥५३॥

कितने ही जीव मिथ्यात्व सहित तिर्यचगति में जाकर सासादनसम्यक्त्व के साथ वहाँ से निकलते हैं॥५४॥

कितने ही जीव मिथ्यात्व सहित तिर्यचगति में जाकर सम्यक्त्व के साथ वहाँ से निकलते हैं॥५५॥

कितने ही जीव सासादनसम्यक्त्व सहित तिर्यचगति में जाकर मिथ्यात्व के साथ वहाँ से निकलते हैं॥५६॥

कितने ही जीव सासादनसम्यक्त्व सहित तिर्यचगति में जाकर सासादनसम्यक्त्व के साथ वहाँ से निकलते हैं॥५७॥

कितने ही जीव सासादनसम्यक्त्व सहित तिर्यचगति में जाकर सम्यक्त्व के साथ वहाँ से निकलते हैं॥५८॥

सम्यक्त्व सहित तिर्यचगति में जाकर नियम से सम्यक्त्व के साथ ही वहाँ से निकलते हैं॥५९॥

इस प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यच और पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त जीव तिर्यचगति में प्रवेश और निष्क्रमण करते हैं॥६०॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते। ये केचित् तिर्यग्गतिं सम्यक्त्वेन प्रविशन्ति, ते मनुष्याः क्षायिकसम्यग्दृष्टयः कृतकरणीयवेदकसम्यग्दृष्टयो वा, तत्र तिर्यग्गतिगतानां गुणस्थानान्तर-संक्रमणाभावात्। मनुष्यगतिं मुक्त्वान्यत्र क्षायिकसम्यक्त्वस्य कृतकृत्यवेदकसम्यक्त्वस्य वा उत्पत्तरेभावात्। केचित् बद्धायुष्काः मनुष्याः क्षायिकसम्यक्त्वमुत्पाद्य यदि कदाचित् तिर्यग्गतौ भोगभूमिषु एव गच्छन्ति ते तत्रत्यात् सम्यक्त्वसहिताः एव निर्गच्छन्ति।

एवं द्वितीयस्थले तिरश्चां प्रवेशनिर्गमनप्रतिपादकत्वेन सूत्राष्टकं गतम्।

अधुना योनिमतीतिरश्चयादीनां गमनागमनप्रतिपादनाय सूत्रपंचकमवतार्यते —

**पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीयो मणुसिणीयो भवणवासिय-वाणविंतर-
जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवीओ च मिच्छत्तेण
अधिगदा केइं मिच्छत्तेण णींति॥६१॥**

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति॥६२॥

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति॥६३॥

केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णींति॥६४॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रों का अर्थ सुगम है। जो कोई तिर्यग्गति में सम्यक्त्व के साथ प्रवेश करते हैं, वे मनुष्य क्षायिकसम्यग्दृष्टि अथवा कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टी ही प्रवेश करते हैं पुनः वहाँ तिर्यग्गति को प्राप्त करने पर गुणस्थान का संक्रमण नहीं होता है। मनुष्यगति को छोड़कर अन्यत्र — अन्य गतियों में क्षायिक सम्यक्त्व या कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्व की उत्पत्ति का अभाव है।

जिन्होंने पहले तिर्यच आयु बांध ली है, ऐसे कोई बद्धायुष्क मनुष्य यदि कदाचित् क्षायिक सम्यक्त्व को उत्पन्न करके तिर्यचगति में जाते हैं, तो भोगभूमि में ही जाते हैं पुनः वे वहाँ से सम्यक्त्व सहित ही निकलते हैं।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में तिर्यचों के प्रवेश-निर्गमन के प्रतिपादक आठ सूत्र पूर्ण हुए।

अब तिर्यचिनी आदि के गमन-आगमन का प्रतिपादन करने के लिए छह सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

**पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिनी, मनुष्यिनी, भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देव
तथा देवियाँ एवं सौधर्म-ईशानकल्पवासिनी देवियाँ मिथ्यात्व सहित इन गतियों में
प्रवेश करके कितने ही मिथ्यात्व सहित वहाँ से निकलते हैं॥६१॥**

**कितने ही मिथ्यात्व सहित प्रवेश करके सासादन सम्यक्त्व के साथ वहाँ से
निकलते हैं॥६२॥**

कितने ही मिथ्यात्व सहित प्रवेश करके सम्यक्त्व के साथ उस गति से निकलते हैं॥६३॥

**कितने ही जीव सासादनसम्यक्त्व के साथ पूर्वोक्त गतियों में प्रवेश करके मिथ्यात्व
सहित वहाँ से निकलते हैं॥६४॥**

केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति।।६४।।^१ (अ)

केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति।।६५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिमित्यः मानुष्यः भवनत्रिकदेवाः देव्यश्च सौधर्मैशानकल्पवासि-
देव्यश्च इमाः स्त्रीवेदिन्यः भवनत्रिकदेवाश्च स्वस्वयोनौ मिथ्यात्वेन प्रविशन्ति, काश्चित् केचिच्च मिथ्यात्वेन
एव तत्रत्यात् निःसरन्ति। शेषसूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते। अत्र सर्वत्र सम्यग्मिथ्यात्वेन सह प्रवेशो निर्गमो
वा नास्ति, तस्य सम्यग्मिथ्यादृष्टेः मरणोत्पत्त्योरसंभवात्।

पूर्वोक्तकथितपर्यायेषु सम्यक्त्वेन प्रवेशो नास्तीति ज्ञातव्यं, सम्यक्त्वावस्थायां आसां गतीनां
प्राप्तेरत्यन्ताभावात्।

एवं तृतीयस्थले योनिमतीतिरश्चीमानुषीसर्वदेवी-भवनत्रिकदेवानां गमननिर्गमनकथनत्वेन गुणस्थानापेक्षया
सूत्रपंचकं गतम्।

अधुना मनुष्यानां सौधर्मादिनवग्रैवेयकवासिदेवानां च गुणस्थानापेक्षया गमननिर्गमनप्रतिपादनाय
सूत्रनवकमवतार्यते —

**कितने ही जीव सासादनसम्यक्त्व के साथ पूर्वोक्त गतियों में प्रवेश करके
सासादनसम्यक्त्व के साथ वहाँ से निकलते हैं।।६४ (अ)।।**

**कितने ही जीव सासादनसम्यक्त्व के साथ पूर्वोक्त गतियों में प्रवेश करके सम्यक्त्व
सहित वहाँ से निकलते हैं।।६५।।**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती — तिर्यचिनी, मनुष्यिनी, भवनत्रिक देव और
देवियाँ तथा सौधर्म-ईशान कल्पवासिनी देवियाँ, ये स्त्रीवेदी तथा भवनत्रिक देव ये अपनी-अपनी योनि में
मिथ्यात्व से ही प्रवेश करते हैं पुनः कोई-कोई देवियाँ और कोई-कोई देव मिथ्यात्व से ही वहाँ से निकलते
हैं। शेष सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है।

यहाँ सर्वत्र सम्यग्मिथ्यात्व के साथ प्रवेश अथवा निर्गमन नहीं है, क्योंकि सम्यग्मिथ्यादृष्टी तृतीयगुणस्थानवर्ती
जीव के मरण और उत्पत्ति असंभव है।

पूर्वोक्त कथित पर्यायों में सम्यक्त्व के साथ प्रवेश नहीं है ऐसा जानना चाहिए, क्योंकि सम्यक्त्व की
अवस्था में — सम्यक्त्व उत्पन्न होने के बाद इन उपर्युक्त योनिमती तिर्यचिनी आदि गतियों की प्राप्ति का
अत्यन्ताभाव है — इन गतियों में सम्यग्दृष्टी का जाना असंभव है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में योनिमती तिरश्ची-मानुषी और सर्वदेवी तथा भवनत्रिक देवों में
गमन-आगमन का कथन करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए। यहाँ ६४ नम्बर के दो सूत्र होने से पाँच सूत्र ही माने
गये हैं।

अब मनुष्यों और सौधर्म से लेकर नवग्रैवेयकवासी देवों में गुणस्थानापेक्षा से गमन-निर्गमन का
प्रतिपादन करने के लिए नव सूत्र अवतार लेते हैं —

मणुसा मणुसपज्जत्ता सोधम्मीसाणप्पहुडि जाव णवगेवज्जविमाण-
वासियदेवेसु केइं मिच्छत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णींति॥६६॥

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति॥६७॥

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति॥६८॥

केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णींति॥६९॥

केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति॥७०॥

केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति॥७१॥

केइं सम्मत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णींति॥७२॥

केइं सम्मत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति॥७३॥

केइं सम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति॥७४॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते।

कश्चिदाशंकते — संख्यातवर्षायुष्केषु मनुष्येषु पर्याप्तमनुष्येषु वा सासादनसम्यक्त्वेन सह प्रविष्टानां

सूत्रार्थ —

मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त तथा सौधर्म-ईशान से लगाकर नौ ग्रैवेयक विमानवासी देवों में कितने ही जीव मिथ्यात्व सहित जाकर मिथ्यात्व के साथ ही वहाँ से निकलते हैं॥६६॥

कितने ही जीव मिथ्यात्व सहित पूर्वोक्त गतियों में जाकर सासादनसम्यक्त्व के साथ वहाँ से निकलते हैं॥६७॥

कितने ही जीव मिथ्यात्व सहित पूर्वोक्त गतियों में जाकर सम्यक्त्व के साथ वहाँ से निकलते हैं॥६८॥

कितने ही जीव सासादनसम्यक्त्व सहित जाकर मिथ्यात्व सहित निकलते हैं॥६९॥

कितने ही जीव सासादनसम्यक्त्व सहित जाकर सासादनसम्यक्त्व के साथ ही निकलते हैं॥७०॥

कितने ही जीव सासादनसम्यक्त्व सहित जाकर सम्यक्त्व सहित निकलते हैं॥७१॥

कितने ही जीव सम्यक्त्व सहित जाकर मिथ्यात्व के साथ निकलते हैं॥७२॥

कितने ही जीव सम्यक्त्व सहित जाकर सासादनसम्यक्त्व के साथ निकलते हैं॥७३॥

कितने ही मनुष्य और मनुष्यपर्याप्तक एवं उक्त सौधर्मादिक स्वर्गों के जीव सम्यक्त्व सहित जाकर सम्यक्त्व के साथ ही वहाँ से निकलते हैं॥७४॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रों का अर्थ सुगम है।

शंका — संख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्य व मनुष्य पर्याप्तकों में सासादन सम्यक्त्व सहित प्रवेश

देवनारकाणां सासादनसम्यक्त्वेन सह निर्गमः कथं भवति ?

आचार्यः प्राह—देवानां नारकाणां वा सम्यग्दृष्टीनां मनुष्येषु उत्पद्य उपशमश्रेणिमारुह्य पुनोऽधः अवतीर्य सासादनं गत्वा मृतानां सासादनगुणस्थानेन निर्गमो भवति।

एवं सासादनसम्यक्त्वगुणस्थानेन मनुष्येषु प्रविश्य सासादनगुणस्थानेन निर्गमो वक्तव्यः। इदं कषायप्राभृतसूत्राभिप्रायेण भणितं।

जीवस्थान-षट्खण्डागमसूत्राभिप्रायेण पुनः संख्यातवर्षायुष्केषु न संभवति, उपशमश्रेण्याः अवतीर्यमाणस्य सासादनगुणस्थाने गमनाभावात्। अत्र पुनः संख्यातासंख्यातवर्षायुष्कान् मुक्त्वा येन भणितं तेनेदं घटते।

उक्तं च—

उवसमसेदीदो पुण ओदिण्णो सासणं ण पाउणदि।

भूदबलिणाहणिम्मलसुत्तस्स फुडोवदेसेण^१।।

करने वाले देव और नारकी जीवों का वहाँ से सासादनसम्यक्त्व के साथ किस प्रकार निर्गमन होता है ?

समाधान—आचार्यदेव द्वारा इस शंका का समाधान किया जाता है। वह इस प्रकार है—देव और नारकी सम्यग्दृष्टि जीवों का मनुष्यों में उत्पन्न होकर, उपशमश्रेणी का आरोहण करके और फिर नीचे उतरकर सासादन गुणस्थान में जाकर मरने पर सासादन गुणस्थान सहित निर्गमन होता है।

इसी प्रकार सासादन गुणस्थान सहित मनुष्यों में प्रवेश कर सासादन गुणस्थान के साथ ही निर्गमन भी कहना चाहिए। अन्यथा पल्योपम के असंख्यातवर्षे भागप्रमाण काल के बिना सासादन गुणस्थान की उपपत्ति बन नहीं सकती। यह बात कषायप्राभृत सूत्र के अभिप्रायानुसार कही गई है। परन्तु जीवस्थान षट्खण्डागम सूत्र के अभिप्राय से संख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्यों में सासादन गुणस्थान सहित निर्गमन संभव नहीं होता, क्योंकि उपशमश्रेणी से उतरे हुए मनुष्य का सासादन गुणस्थान में गमन नहीं माना गया। किन्तु यहाँ पर अर्थात् सूत्र में चूँकि संख्यात व असंख्यात वर्ष की आयु का उल्लेख न करके यह सूत्र रचा है इससे वह कथन घटित हो जाता है।

लब्धिसार ग्रंथ में कहा भी है—

उपशम श्रेणी से उतरकर सासादन गुणस्थान को नहीं प्राप्त करते हैं, ऐसा श्री भूतबलि आचार्यदेव के द्वारा कथित निर्मलसूत्र का स्पष्ट उपदेश है।।

विशेष—अन्तरप्ररूपणा के सूत्र ७ में बतलाया जा चुका है कि सासादन सम्यग्दृष्टि का जघन्य अन्तरकाल पल्योपम के असंख्यातवर्षे भाग प्रमाण होता है। इसका कारण धवलाकार ने यह बतलाया है कि सासादन से मिथ्यात्व में आये हुए जीव के जब तक सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियों की उद्वेलनघात द्वारा सागरोपम या सागरोपमपृथक्त्वमात्र स्थिति नहीं रह जाती तब तक वह जीव पुनः उपशम सम्यक्त्व प्राप्त नहीं कर सकता, जहाँ से कि सासादन भाव की पुनः उत्पत्ति हो सके और उद्वेलनघात द्वारा उक्त क्रिया के होने में कम से कम पल्योपम के असंख्यातवर्षे भागप्रमाण काल लगता ही है। अतएव यही कालप्रमाण सासादनसम्यक्त्व का जघन्य अन्तर होता है। प्रस्तुत प्रकरण में प्रश्न यह है कि जो जीव देव या नरकगति से मनुष्य भव में सासादन गुणस्थान सहित आया है वह सासादन गुणस्थान सहित ही मनुष्यगति से किस प्रकार निर्गमन कर सकता है। धवलाकार ने वह इस प्रकार बतलाया है कि देवगति से सासादन गुणस्थान

अनुदिशादिदेवानां गुणस्थानापेक्षया गमननिर्गमनप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

**अणुदिस जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु सम्मत्तेण अधिगदा
णियमा सम्मत्तेण चव णीति।।७५।।**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — नवानुदिशविमानवासिदेवाः पञ्चानुत्तरविमानवासिदेवाः च सम्यक्त्वेन नियमात् सम्यग्दृष्टयः एव। ये केचित् भावलिंगिनो महामुनयस्त एव सम्यक्त्वेन सह एषु विमानेषु उत्पद्यन्ते, अहमिन्द्राः भवन्ति ते सर्वेऽपि सम्यक्त्वसहिताः एव ततश्च्युत्वा नियमेन मोक्षमवाप्नुवन्ति, तस्मिन् भवेऽन्यस्मिन् भवे वा। सर्वार्थसिद्धिवासिनः एकभवावतारिण एव “विजयादिषु द्विचरमाः”।। इति सूत्रात् विजयवैजयन्त-जयन्तापराजितविमानवासिनो द्विचरमाः। नियमेन मनुष्यस्य द्वौ भवौ गृहीत्वा निर्वाण्ति।

सहित मनुष्यगति में आकर व पल्योपम के असंख्यातवें भाग का अन्तरकाल समाप्त कर उपशमसम्यक्त्वी हो सासादन गुणस्थान में आकर मरण करने वाले जीव के उक्त बात घटित हो जाती है। पर यह बनेगा केवल असंख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्यों में, क्योंकि सासादन गुणस्थान के साथ आकर संख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुए जीव के उक्त उद्देलनघात के लिए आवश्यक पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग काल प्राप्त ही नहीं हो सकेगा। यह व्यवस्था भूतबलि आचार्य के अभिप्रायानुसार है किन्तु कषायप्राभृत के चूर्णिसूत्रों के कर्ता यतिवृषभाचार्य के अभिप्रायानुसार सासादनसम्यक्त्व सहित मनुष्यगति में आया हुआ जीव मिथ्यादृष्टि होकर पुनः द्वितीयोपशमसम्यक्त्वी हो उपशमश्रेणी चढ़ पुनः सासादन होकर मर सकता है और इसलिए यह बात संख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्यों में भी घटित हो सकती है किन्तु उपशमश्रेणी से उतरकर सासादन गुणस्थान में जाना भूतबलि आचार्य नहीं मानते और इसलिए उनके अभिप्राय से सम्यक्त्व सहित आकर सासादन सहित व सासादन सहित आकर सासादन सहित मनुष्यगति से निर्गमन करना संख्यात वर्षायुष्कों में संभव नहीं। फिर भी यहाँ जो ८३वाँ सूत्र रचा है उसमें संख्यात और असंख्यात वर्ष की आयु वाले के इस विशेषता के बिना यहाँ सूत्र रचा है, इसलिए कोई बाधा नहीं आती।

अब अनुदिश आदि देवों के गुणस्थान की अपेक्षा गमन-निर्गमन का प्रतिपादन करने के लिए सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

अनुदिश विमानों से लेकर सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवों तक में सम्यक्त्व के साथ प्रवेश करने वाले जीव नियम से सम्यक्त्व सहित ही निकलते हैं।।७५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — नव अनुदिश विमानवासी देव — अहमिन्द्र और पाँच अनुत्तर विमानवासी देव — अहमिन्द्र सम्यक्त्व के साथ नियम से सम्यग्दृष्टि ही हैं। जो कोई भावलिंगी महामुनी हैं वे ही सम्यक्त्व के साथ इन विमानों में उत्पन्न होते हैं, वे अहमिन्द्र कहलाते हैं। वे सभी सम्यक्त्व सहित ही वहाँ से च्युत होकर नियम से मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं, कोई उसी भव से मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं और कोई अन्य भव से — दूसरे भव से मोक्ष प्राप्त करते हैं।

सर्वार्थसिद्धि विमान में जन्म लेने वाले अहमिन्द्र नियम से एक भवावतारी होते हैं तथा ‘विजयादिषु द्विचरमाः’ इस तत्त्वार्थसूत्र के सूत्र के अनुसार विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानों में उत्पन्न होने वाले अहमिन्द्र नियम से मनुष्य के दो भवों को लेकर निर्वाण प्राप्त करते हैं।

पंचेन्द्रियतिर्यग्लब्ध्यपर्याप्तानां मनुष्यलब्ध्यपर्याप्तानां च प्रवेशनिर्गमौ कथं नात्रोक्तौ ?

न, मिथ्यादृष्टिजीवान् मुक्त्वा अन्येषां तत्र निर्गम-प्रवेशाभावात्।

अतः तेषामपि उक्तमन्तरेण अवगमात्।

एवं चतुर्थस्थले मनुष्यदेवानां गमननिर्गमननिरूपणत्वेन गुणस्थानापेक्षया दश सूत्राणि गतानि।

इति चतुर्गतिषु प्रवेशनिर्गमनप्ररूपको

द्वितीयोऽन्तराधिकारः।

शंका—लब्ध्यपर्याप्तक पंचेन्द्रिय तिर्यच और लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों का प्रवेश और निर्गमन यहाँ क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं कहा, क्योंकि इन लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यचों और मनुष्यों में मिथ्यादृष्टि जीवों को छोड़कर अन्य किन्हीं का वहाँ निर्गमन और प्रवेश ही नहीं है इसलिए उन जीवों का भी यहाँ बिना कहे भी ज्ञान हो जाता है।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में मनुष्य और देवों के गमन-निर्गमन का निरूपण गुणस्थान की अपेक्षा से करते हुए दश सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम ग्रंथ में यह चारों गतियों में

प्रवेश और निर्गमन को कहने वाला दूसरा

अन्तराधिकार पूर्ण हुआ।



अथ चतुर्गतिगमनस्थानप्ररूपकः अन्तराधिकारः

अथ षट्खंडागमस्य जीवस्थानचूलिकायां नवमीचूलिकासु स्थलचतुष्टयेन सप्तविंशत्यधिकशतसूत्रैः गत्यागतीवर्णना क्रियते। तत्र प्रथमस्थले नरकगतेः निर्गत्य क्व क्व गच्छन्तीति प्रतिपादनत्वेन पंचविंशति सूत्राणि कथ्यन्ते। तदनु द्वितीयस्थले तिर्यग्गतेः निःसृत्य कां कामवस्थां लभन्ते इति कथनत्वेन चत्वारिंशत्सूत्राणि। ततः परं तृतीयस्थले मनुष्यगतेः निर्गत्य क्व क्व यान्तीति निरूपणत्वेन द्वात्रिंशत्सूत्राणि। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले देवगतेः च्युत्वा क्व क्व यान्तीति प्ररूपणत्वेन त्रिंशत्सूत्राणि इति समुदायपातनिका कथिता भवति।

अधुना मिथ्यादृष्टिसासादननारकाः नरकगतेः निर्गत्य क्व क्व गच्छन्तीति प्रतिपादनाय सूत्रदशकमवतार्यते—

गेरइयमिच्छाइट्टी सासणसम्माइट्टी णिरयादो उवट्टिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति?।।७६।।

दो गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं चेव मणुसगदिं चेव।।७७।।

तिरिक्खेसु आगच्छंता पंचिंदिएसु आगच्छंति, णो एइंदिय-विगलिं-दिएसु।।७८।।

अब चतुर्गतियों में गमन स्थान का प्ररूपक अन्तराधिकार प्रारंभ होता है

अब षट्खण्डागम के जीवस्थान चूलिका में नवमी चूलिका के अन्तर्गत चार स्थलों द्वारा एक सौ सत्ताईस सूत्रों से गत्यागती का वर्णन करते हैं। उसमें प्रथम स्थल में नरकगति से निकलकर जीव कहाँ-कहाँ जाते हैं ? इस प्रकार प्रतिपादन करते हुए पच्चीस सूत्र कहेंगे। अनंतर द्वितीय स्थल में तिर्यचगति से निकलकर जीव किस-किस गति को प्राप्त करते हैं ? इस विषय का कथन करते हुए चालीस सूत्र कहेंगे। पुनः तृतीय स्थल में मनुष्यगति से निकलकर जीव किस-किस गति में जाते हैं ? इस विषय का निरूपण करते हुए बत्तीस सूत्र हैं। अनंतर चौथे स्थल में देवगति से च्युत होकर कहाँ-कहाँ जाते हैं ? इस विषय का प्ररूपण करते हुए तीस सूत्र कहेंगे। इस प्रकार यह समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थानवर्ती नारकी नरकगति से निकलकर कहाँ-कहाँ जाते हैं ? इस विषय को बतलाते हुए दश सूत्र अवतार लेते हैं—

सूत्रार्थ—

नारकी मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीव नरक से निकलकर कितनी गतियों में आते हैं।।७६।

उक्त नारकी जीव दो गतियों में आते हैं—तिर्यचगति में भी और मनुष्यगति में भी।।७७।।

तिर्यचों में आने वाले नारकी जीव पंचेन्द्रियों में आते हैं, एकेन्द्रियों या विकलेन्द्रियों में नहीं आते।।७८।।

पंचिंदिएसु आगच्छंता सण्णीसु आगच्छंति, णो असण्णीसु ॥७९॥
 सण्णीसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥८०॥
 गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥८१॥
 पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवस्साउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्ज-
 वस्साउएसु ॥८२॥

मणुस्सेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥८३॥
 गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्त-एसु ॥८४॥
 पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवस्साउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्ज-
 वस्साउएसु ॥८५॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते। नारकाः नरकभूमिभ्यः निर्गत्य पुनः नरकगतिं देवगतिं वा न गच्छन्ति। किं कारणं ? स्वभावादेव।

पंचेन्द्रिय तिर्यचों में आने वाले नारकी जीव संज्ञियों में आते हैं, असंज्ञियों में नहीं ॥७९॥

पंचेन्द्रिय तिर्यच संज्ञियों में आने वाले नारकी जीव गर्भोपक्रान्तिकों में आते हैं, सम्मुच्छिर्मों में नहीं ॥८०॥

पंचेन्द्रिय संज्ञी गर्भोपक्रान्तिक तिर्यचों में आने वाले नारकी जीव पर्याप्तकों में ही आते हैं, अपर्याप्तकों में नहीं ॥८१॥

पंचेन्द्रिय संज्ञी गर्भोपक्रान्तिक पर्याप्त तिर्यचों में आने वाले नारकी जीव संख्यात वर्ष की आयु वाले जीवों में ही आते हैं, असंख्यात वर्ष की आयु वालों में नहीं ॥८२॥

मनुष्यों में आने वाले नारकी जीव गर्भोपक्रान्तिकों में आते हैं, सम्मुच्छिर्मों में नहीं ॥८३॥

गर्भोपक्रान्तिक मनुष्यों में आने वाले नारकी जीव पर्याप्तकों में आते हैं, अपर्याप्तकों में नहीं ॥८४॥

गर्भोपक्रान्तिक पर्याप्त मनुष्यों में आने वाले नारकी जीव संख्यात वर्ष की आयुष्य वालों में आते हैं, असंख्यात वर्ष की आयुष्य वालों में नहीं ॥८५॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रों का अर्थ सुगम है। नारकी नरक से निकलकर पुनः उसी भव से नरकगति को या देवगति को नहीं प्राप्त करते हैं।

शंका — क्या कारण है ?

नरकादागत्य जीवाः असंख्यातवर्षायुष्केषु भोगभूमिजेषु कथं नोत्पद्यन्ते ?

नारकेषु दान-दानानुमोदनयोरभावात्।

संप्रति नारकाः सम्यग्मिथ्यादृष्टि-सम्यग्दृष्टिजीवाः ततो निर्गत्य क्व क्व गच्छन्तीति प्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

णेरइया सम्मामिच्छाइट्टी सम्मामिच्छत्तगुणेण णिरयादो णो उव्वट्ठेति॥८६॥

णेरइया सम्माइट्टी णिरयादो उव्वट्ठिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति॥८७॥

एक्कं मणुसगदिं चेव आगच्छंति॥८८॥

मणुसेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु॥८९॥

गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्त-
एसु॥९०॥

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्ज-
वासाउएसु॥९१॥

समाधान — ऐसा स्वभाव ही है।

शंका — नरक से आने वाले जीव असंख्यात वर्ष की आयु वाले अर्थात् भोगभूमि के तिर्यचों में क्यों नहीं आते ?

समाधान — नारकी जीवों में दान और दान का अनुमोदन इन दोनों भोगभूमियों में उत्पन्न होने के कारणों के अभाव से वे जीव असंख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यचों में नहीं उत्पन्न होते।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि नारकी जीव वहाँ से निकलकर कहाँ-कहाँ जाते हैं, ऐसा प्रतिपादन करने के लिए छह सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकी जीव सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान सहित नरक से नहीं निकलते॥८६॥

सम्यग्दृष्टि नारकी जीव नरक से निकलकर कितनी गतियों में आते हैं ?॥८७॥

सम्यग्दृष्टि नारकी जीव नरक से निकलकर एक मनुष्यगति में ही आते हैं॥८८॥

मनुष्यों में आने वाले सम्यग्दृष्टि नारकी जीव गर्भोपक्रान्तिकों में आते हैं, सम्मूर्च्छिमें
में नहीं॥८९॥

गर्भोपक्रान्तिक मनुष्यों में आने वाले सम्यग्दृष्टि नारकी जीव पर्याप्तकों में आते
हैं, अपर्याप्तकों में नहीं॥९०॥

गर्भोपक्रान्तिक पर्याप्तक मनुष्यों में आने वाले सम्यग्दृष्टि नारकी जीव संख्यात
वर्ष की आयु वालों में आते हैं, असंख्यात वर्ष की आयु वालों में नहीं॥९१॥

एवं छसु उवरिमासु पुढवीसु णेरइया।।९२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सम्यग्मिथ्यादृष्टयो नारकाः नरकगतेः न निर्गच्छन्ति न चास्मात् गुणस्थानात् नरके प्रविशन्ति। नारकाः सम्यग्दृष्टयः ततो निर्गत्य मनुष्याः एव भविष्यन्ति। सम्यग्दृष्टिनारकाणां मनुष्यायुः मुक्त्वा अन्यायुःसत्कर्मिणां सम्यक्त्वेन सह नरकात् निर्गमनाभावात्। अस्यायमर्थः — सम्यग्दृष्टिनारकाः यदि बद्धतिर्यगायुष्काः, तर्हि सम्यक्त्वं त्यक्त्वा एव निर्गच्छन्ति, सम्यक्त्वसहिताः निर्गत्य मनुष्याः एव भवन्ति इति। एतन्नियमः षट्पृथिवीषु ज्ञातव्यः।

सप्तमपृथिव्याः निर्गत्य क्व क्व गच्छन्तीति प्रतिपादनाय सूत्राष्टकमवतार्यते —

अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइया मिच्छाइट्ठी णिरयादो उव्वट्टिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ?।।९३।।

एककं तिरिक्खगदिं चेव आगच्छंति।।९४।।

तिरिक्खेसु आगच्छंता पंचिंदिएसु आगच्छंति णो एइंदिय विगलिंदिएसु।।९५।।

पंचिंदिएसु आगच्छंता सण्णीसु आगच्छंति, णो असण्णीसु।।९६।।

इस प्रकार ऊपर की छह पृथिवियों के नारकी जीव निर्गमन करते हैं।।९२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — नारकी सम्यग्मिथ्यादृष्टि तृतीय गुणस्थान से नरक से नहीं निकलते हैं और न इस गुणस्थान से नरक में प्रवेश ही करते हैं। सम्यग्दृष्टि नारकी नरक से निकलकर मनुष्य ही होते हैं। सम्यक्त्व सहित नारकी मनुष्यायु को छोड़कर अन्यायु की सत्ता सहित सम्यक्त्व के साथ नहीं निकल सकते।

इसका यह अभिप्राय है कि किसी नारकी ने पहले तिर्यचायु बांध ली है पुनः सम्यक्त्व को प्राप्त करते हैं तो वे सम्यक्त्व को छोड़कर ही वहाँ से निकलते हैं, क्योंकि सम्यक्त्व सहित वहाँ से निकलकर मनुष्य ही होते हैं। यह नियम छह पृथिवी तक जानना चाहिए।

छठी पृथ्वी से निकलकर कहाँ-कहाँ जाते हैं, ऐसा प्रतिपादन करने के लिए आठ सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

नीचे सातवीं पृथिवी के मिथ्यादृष्टि नारकी जीव निकलकर कितनी गतियों में आते हैं ?।।९३।।

सातवीं पृथिवी से निकले हुए नारकी जीव केवल एक तिर्यचगति में ही आते हैं।।९४।।

तिर्यचों में आने वाले सातवीं पृथिवी के नारकी जीव पंचेन्द्रियों में ही आते हैं, एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों में नहीं।।९५।।

पंचेन्द्रिय तिर्यचों में आने वाले सातवीं पृथिवी के नारकी जीव संज्ञियों में आते हैं, असंज्ञियों में नहीं।।९६।।

सण्णीसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु।।९७।।
गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्त-
एसु।।९८।।

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवस्साउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्ज-
वासाउएसु।।९९।।

सत्तमाए पुढवीए णेरइया सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजद-
सम्मादिट्ठी अप्पप्पणो गुणेण णिरयादो णो उव्वट्ठेति।।१००।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते। तत्र तेषां नारकाणां सप्तमपृथिवीगतानां तिर्यगायुः
मुक्त्वा शेषायुषां बंधाभावात्।

एवं ज्ञात्वा प्रथमतस्तु नरकगमनयोग्यानि अशुभकार्याणि न कर्तव्यानि कदाचिदपि। प्रतिसमयं
शुभपरिणामाय प्रयत्नो विधेयः। राजाश्रेणिकवत् प्रतिशोधार्थं गुरवो नावमन्तव्याः, न च जिनधर्मबाह्यक्रियाः
आचरितव्याः। तथा च —

‘बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः।।’ इति सूत्रेण नरकायुःकारणानि ज्ञात्वा प्रत्यहं तेभ्यः भेतव्यं
सम्यग्दृष्टिभिरिति।

पंचेन्द्रिय संज्ञी तिर्यचों में आने वाले सातवीं पृथिवी के नारकी जीव गर्भोपक्रान्तिकों
में आते हैं, सम्मुच्छिर्मों में नहीं।।९७।।

पंचेन्द्रिय संज्ञी गर्भोपक्रान्तिक तिर्यचों में आने वाले सातवीं पृथिवी के नारकी
जीव पर्याप्तकों में आते हैं, अपर्याप्तकों में नहीं।।९८।।

पंचेन्द्रिय संज्ञी गर्भोपक्रान्तिक पर्याप्त तिर्यचों में आने वाले सातवीं पृथिवी के
नारकी जीव संख्यात वर्ष की आयु वालों में आते हैं, असंख्यात वर्ष की आयु वालों
में नहीं।।९९।।

सातवीं पृथिवी के सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि
नारकी जीव अपने-अपने गुणस्थान सहित नरक से नहीं निकलते।।१००।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रों का अर्थ सुगम है। नरक में सातवीं पृथ्वी को प्राप्त उन नारकियों
के तिर्यचायु को छोड़कर शेष — तीनों आयु के बंध का अभाव है।

ऐसा जानकर पहले तो नरक जाने के योग्य ऐसे अशुभ कार्यों को कदाचित भी नहीं करना चाहिए।
प्रत्युत् प्रतिसमय भी शुभ परिणाम के लिए ही प्रयत्न करना चाहिए। राजा श्रेणिक के समान प्रतिशोध लेने के
लिए गुरुओं का अपमान नहीं करना चाहिए न जिनधर्म से बहिर्भूत ऐसी क्रियाओं को ही करना चाहिए।

पुनश्च “बहुत आरंभ और परिग्रह नरक आयु के लिए कारण हैं” इस सूत्र से नरकायु के कारणों को
जानकर सभी सम्यग्दृष्टिजनों को प्रतिदिन उन नरक के कारणों से डरते रहना चाहिए।

एवं प्रथमस्थले गत्यागतिचूलिकायां नरकगतिनिर्गमनगतिप्रतिपादनत्वेन पंचविंशतिसूत्राणि गतानि।
पंचेन्द्रियतिर्यञ्चः तिर्यगगतेर्निगत्य क्व क्व गच्छन्ति इति प्रतिपादनाय एकादशसूत्राण्यवतार्यन्ते —

तिरिक्खा सण्णी मिच्छाइट्टी पंचिंदियपज्जत्ता संखेज्जवासाउआ
तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?।।१०१।।
चत्तारि गदीओ गच्छंति णिरयगदिं तिरिक्खगदिं मणुसगदिं देवगदिं
चेदि।।१०२।।

णिरएसु गच्छंता सव्वणिरएसु गच्छंति।।१०३।।

तिरिक्खेसु गच्छंता सव्वतिरिक्खेसु गच्छंति।।१०४।।

मणुसेसु गच्छंता सव्वमणुसेसु गच्छंति।।१०५।।

देवेसु गच्छंता भवणवासियप्पहुडि जाव सयार-सहस्सारक्कप्पवासिय-
देवेसु गच्छंति।।१०६।।

पंचिंदियतिरिक्खअसण्णिपज्जत्ता तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा
कदि गदीओ गच्छंति ?।।१०७।।

इस प्रकार प्रथम स्थल में गत्यागति चूलिका में नरकगति से निकलकर प्राप्त होने वाली गति का प्रतिपादन करने वाले पच्चीस सूत्र पूर्ण हुए।

अब पंचेन्द्रिय तिर्यच तिर्यचगति से निकलकर कहाँ-कहाँ जाते हैं, इस विषय का प्रतिपादन करने के लिए ग्यारह सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

तिर्यच संज्ञी मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय पर्याप्त संख्यातवर्षायु वाले तिर्यच जीव तिर्यचपर्यायों से मरण करके कितनी गतियों में जाते हैं ?।।१०१।।

उपर्युक्त तिर्यच जीव चारों गतियों में गमन करते हैं — नरकगति, तिर्यचगति, मनुष्यगति और देवगति।।१०२।।

नरकों में जाने वाले उपर्युक्त तिर्यच जीव सभी अर्थात् सातों नरकों में जाते हैं।।१०३।।

तिर्यचों में जाने वाले उपर्युक्त तिर्यच जीव सभी तिर्यचों में जाते हैं।।१०४।।

मनुष्यों में जाने वाले उपर्युक्त तिर्यच जीव सभी मनुष्यों में जाते हैं।।१०५।।

देवों में जाने वाले उपर्युक्त तिर्यच जीव भवनवासियों से लगाकर शतार-सहस्रार तक के कल्पवासी देवों में जाते हैं।।१०६।।

पंचेन्द्रिय तिर्यच असंज्ञी पर्याप्त तिर्यच जीव तिर्यच पर्यायों से मरणकर कितनी गतियों में जाते हैं ?।।१०७।।

चत्तारि गदीओ गच्छंति णिरयगदिं तिरिक्खगदिं मणुसगदिं देवगदिं
चेदि।।१०८।।

णिरएसु गच्छंता पढमाए पुढवीए णेरइएसु गच्छंति।।१०९।।

तिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छंता सव्वतिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छंति, णो
असंखेज्जवासाउएसु गच्छंति।।११०।।

देवेसु गच्छंता भवणवासिय-वाणवेंतरदेवेसु गच्छंति।।१११।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। संज्ञिनः पर्याप्ताः पंचेन्द्रियतिर्यञ्चः मिथ्यादृष्टयः
तिर्यक्पर्यायेभ्यः कालगतसमानाः विनष्टाः सन्तः, तत्पर्यायेभ्यः मृत्वा चतसृः अपि गतीः प्राप्नुवन्ति।
देवगतिषु भवनत्रिकेषु गच्छन्ति, सौधर्मादिसहस्रारकल्पपर्यन्तं गन्तुं शक्नुवन्ति नोपरि, सम्यक्त्वाणुव्रतैः
विना आनतादिषु कल्पेषु गमनाभावात्।

पंचेन्द्रियतिर्यञ्चः असंज्ञिनः पर्याप्ताः चतसृषु गतिषु गच्छन्ति, तत्रापि प्रथमनरकभूमिष्वेव, अधस्तननरकेषु
उत्पत्तिनिमित्तपरिणामाभावात्। इमे असंज्ञिनः असंख्यातवर्षायुष्कभोगभूमिषु न गच्छन्ति। असंज्ञिजीवाः न
च दानं दानानुमोदनं वा कुर्वन्ति। देवेषु भवनवासि-वानव्यन्तरदेवेषु गन्तुं क्षमाः सन्ति ततः उपरि देवपर्यायेषु

उपर्युक्त तिर्यच जीव चारों गतियों में जाते हैं — नरकगति, तिर्यचगति, मनुष्यगति
और देवगति।।१०८।।

नरकों में जाने वाले उपर्युक्त तिर्यच प्रथम पृथिवी के नारकी जीवों में जाते
हैं।।१०९।।

तिर्यच और मनुष्यों में जाने वाले उपर्युक्त तिर्यच सभी तिर्यच और मनुष्यों में जाते
हैं, किन्तु असंख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यच और मनुष्यों में नहीं जाते।।११०।।

देवों में जाने वाले उपर्युक्त तिर्यच जीव भवनवासी और वानव्यन्तर देवों में जाते
हैं।।१११।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रों का अर्थ सुगम है। संज्ञी, पर्याप्त, पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टी तिर्यच
तिर्यचपर्याय से काल — मरण करके चारों ही गतियों को प्राप्त करते हैं। देवगति में भवनत्रिकों में जाते हैं,
सौधर्म स्वर्ग से लेकर सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त जा सकते हैं। इसके ऊपर नहीं, क्योंकि आगे के आनत आदि
कल्पों में सम्यक्त्व सहित अणुव्रतों के बिना जाना संभव नहीं है।

असंज्ञी, पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यच चारों ही गतियों में जा सकते हैं, वहाँ भी नरकों में पहली पृथिवी में ही
जा सकते हैं आगे के द्वितीय आदि नरकों में नहीं जा सकते, क्योंकि नीचे के नरकों में उत्पन्न होने के योग्य
परिणामों का उनके अभाव है। ये असंज्ञी तिर्यच असंख्यात वर्ष की आयु वाले ऐसे भोगभूमियों में नहीं जा
सकते, क्योंकि वे असंज्ञी जीव दान और दान की अनुमोदना नहीं कर सकते हैं। देवों में भी भवनवासी और
व्यन्तर देवों में ही जाने में सक्षम हैं, उसके ऊपर की देवपर्याय में उत्पन्न होने योग्य परिणामों का अभाव है।

उत्पत्तिनिमित्तपरिणामाभावात्।

उक्तं च — सण्णि-असण्णी जीवा मिच्छाभावेण संजुदा केई।

जायंति भावणेसुं दंसणसुद्धा ण कइया विं॥

एवमेव श्रीअकलंकदेवेन कथितं —

तैर्यग्योनेषु असंज्ञिनः पर्याप्ताः पंचेन्द्रियाः संख्येयवर्षायुषु अल्पशुभपरिणामवशेन पुण्यबंधमनुभूय भवनवासिषु व्यन्तरेषु च उत्पद्यन्ते^१।

संप्रति पंचेन्द्रियापर्याप्तएकेन्द्रियविकलेन्द्रियतिरश्चां आगतिप्रतिपादनाय एकोनविंशतिसूत्राण्यवतार्यन्ते —

पंचिंदियतिरिक्खसण्णी-असण्णी अपज्जत्ता पुढवीकाइया आउकाइया वणप्फइकाइया णिगोदजीवा बादरा सुहुमा बादरवणप्फदिकाइया पत्तेयसरीरा पज्जत्ता अपज्जत्ता बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पज्जत्तापज्जत्ता तिरिक्खा तिरिक्खेहिं कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?॥११२॥

दुवे गदीओ गच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव॥११३॥

तिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छंता सव्वतिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छंति, णो असंखेज्जवस्सा-उएसु गच्छंति॥११४॥

तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में कहा भी है —

कोई संज्ञी और असंज्ञी जीव मिथ्यात्व भाव से सहित हुए भवनवासी देवों में उत्पन्न होते हैं किन्तु सम्यग्दर्शन से शुद्ध जीव कदाचित् भी भवनवासी देवों में उत्पन्न नहीं होते हैं।

तत्त्वार्थवार्तिक ग्रंथ में श्री अकलंकदेव ने भी कहा है —

तिर्यच योनि में रहने वाले असंज्ञी, पर्याप्त, पंचेन्द्रिय जीव अल्पशुभ परिणाम के वश से पुण्यबंध का अनुभव करके संख्यात वर्ष की आयु वाले भवनवासी और व्यंतर देवों में उत्पन्न हो जाते हैं।

अब पंचेन्द्रिय अपर्याप्त तथा एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय तिर्यचों की आगति का प्रतिपादन करने के लिए इक्कीस सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

पंचेन्द्रिय तिर्यच संज्ञी और असंज्ञी अपर्याप्त, पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक, निगोद जीव, बादर और सूक्ष्म, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, पर्याप्त और अपर्याप्त, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त तिर्यच तिर्यचपर्यायों से मरण करके कितनी गतियों में जाते हैं ?॥११२॥

पूर्वोक्त तिर्यच जीव दो गतियों में ही जाते हैं — तिर्यचगति और मनुष्यगति॥११३॥

तिर्यच और मनुष्यों में जाने वाले उपर्युक्त तिर्यच सभी तिर्यच और मनुष्यों में जाते हैं, किन्तु असंख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यचों और मनुष्यों में नहीं जाते॥११४॥

तेउक्काइया आउक्काइया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता तिरिक्खा
तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति॥११५॥

एक्कं चेव तिरिक्खगदिं गच्छंति॥११६॥

तिरिक्खेसु गच्छंता सव्वतिरिक्खेसु गच्छंति, णो असंखेज्जवस्साउएसु
गच्छंति॥११७॥

तिरिक्खसासणसम्माइट्ठी संखेज्जवस्साउआ तिरिक्खा तिरिक्खेहि
कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?॥११८॥

तिण्णि गदीओ गच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं देवगदिं चेदि॥११९॥

तिरिक्खेहि गच्छंता एइंदिय-पंचिंदिएसु गच्छंति, णो विगलिंदि-
एसु॥१२०॥

एइंदिएसु गच्छंता बादरपुढवीकाइय-बादरआउक्काइय-बादरवणप्फइ-
काइय-पत्तेयसरीरपज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तएसु॥१२१॥

अग्निकायिक और वायुकायिक बादर व सूक्ष्म पर्याप्तक व अपर्याप्तक तिर्यच
तिर्यचपर्यायों से मरण करके कितनी गतियों में जाते हैं ?॥११५॥

उपर्युक्त तिर्यच एकमात्र तिर्यचगति में ही जाते हैं॥११६॥

तिर्यचों में जाने वाले उपर्युक्त तिर्यच जीव सभी तिर्यचों में जाते हैं, किन्तु
असंख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यचों में नहीं जाते॥११७॥

तिर्यच सासादनसम्यग्दृष्टि संख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यच तिर्यचपर्यायों से
मरण करके कितनी गतियों में जाते हैं ?॥११८॥

पूर्वोक्त तिर्यच जीव तीन गतियों में जाते हैं अर्थात् तिर्यचगति, मनुष्यगति और
देवगति में जाते हैं।

तिर्यचों में जाने वाले संख्यात वर्ष की आयु वाले सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यच
एकेन्द्रिय और पंचेन्द्रियों में जाते हैं, विकलेन्द्रियों में नहीं जाते॥१२०॥

एकेन्द्रियों में जाने वाले संख्यातवर्षायुष्क सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यच बादर
पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, प्रत्येक शरीर पर्याप्तकों
में ही जाते हैं, अपर्याप्तकों में नहीं जाते॥१२१॥

पंचिंदिएसु गच्छंता सण्णीसु गच्छंति, णो असण्णीसु।।१२२।।

सण्णीसु गच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु।।१२३।।

गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंता पज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्त-
एसु।।१२४।।

पज्जत्तएसु गच्छंता संखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति, असंखेज्जवासाउवेसु
वि।।१२५।।

मणुसेसु गच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु।।१२६।।

गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंता पज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तएसु।।१२७।।

पज्जत्तएसु गच्छंता संखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति, असंखेज्जवासाउएसु
गच्छंति।।१२८।।

देवेसु गच्छंता भवणवासियप्पहुडि जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु
गच्छंति।।१२९।।

पंचेन्द्रिय तिर्यचों में जाने वाले संख्यातवर्षायुष्क सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यच संज्ञी
जीवों में जाते हैं, असंज्ञियों में नहीं।।१२२।।

संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यचों में जाने वाले पूर्वोक्त तिर्यच गर्भोपक्रान्तिकों में जाते हैं,
सम्मूर्च्छिमों में नहीं।।१२३।।

गर्भोपक्रान्तिक संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यचों में जाने वाले उक्त तिर्यच पर्याप्तकों में
जाते हैं, अपर्याप्तकों में नहीं।।१२४।।

पर्याप्तक गर्भोपक्रान्तिक संज्ञी पंचेन्द्रियों में जाने वाले उक्त तिर्यच संख्यात वर्ष
की आयु वाले जीवों में भी जाते हैं, असंख्यातवर्षायुष्कों में भी।।१२५।।

मनुष्यों में जाने वाले संख्यातवर्षायुष्क सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यच गर्भोपक्रान्तिक
मनुष्यों में ही जाते हैं, सम्मूर्च्छिमों में नहीं।।१२६।।

गर्भोपक्रान्तिक मनुष्यों में जाने वाले उक्त तिर्यच पर्याप्तकों में ही जाते हैं,
अपर्याप्तकों में नहीं।।१२७।।

पर्याप्तक गर्भोपक्रान्तिक मनुष्यों में जाने वाले उक्त तिर्यच संख्यात वर्ष की आयु वाले
मनुष्यों में भी जाते हैं और असंख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्यों में भी जाते हैं।।१२८।।

देवों में जाने वाले संख्यातवर्षायुष्क सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यच भवनवासी देवों से
लगाकर शतार-सहस्रार तक के कल्पवासी देवों में जाते हैं।।१२९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। तेजस्कायिकाः वायुकायिकाः बादराः सूक्ष्माः, इमे चतुर्विधाः पर्याप्ताः अपर्याप्ताश्च अष्टधा भवन्ति, एते सर्वेऽपि संक्लेशपरिणामयुक्ताः शेषगतियोग्य-परिणामाभावात् केवलं एकां तिर्यग्गतिमेव प्राप्नुवन्ति। कर्मभूमिजाः सासादनसम्यग्दृष्टितिर्यञ्चः नरकगतिं न गच्छन्ति, तिर्यग्मनुष्ययोः सासादनगुणस्थानवर्तिनोः नरकगतिगमनयोग्यपरिणामाभावात्। यदि एकेन्द्रियेषु सासादनगुणस्थानवर्तिनः उत्पद्यन्ते, तर्हि पृथ्वीकायादिषु द्वे गुणस्थाने भवतः इति चेत् ?

न, छिन्नायुः प्रथमसमये सासादनगुणस्थानं विनश्यति, अतः सासादनगुणस्थानं त्यक्त्वा एव एकेन्द्रियेषु गच्छन्ति।

अत्रायमर्थः ज्ञातव्यः — षट्खण्डागमसूत्राभिप्रायेण सासादनसम्यग्दृष्टयः तिर्यञ्चः यदि बादरपृथिवी-कायिकादिषु गच्छन्ति तर्हि ते तत्रोत्पन्नप्रथमसमये मिथ्यात्वं प्रतिपद्यन्ते इति।

इमे सासादनतिर्यञ्चः देवेषु भवनत्रिकेषु सौधर्मादिसहस्रारकल्पपर्यन्तेषु गच्छन्ति।

उक्तं च अन्यत्रापि — त एव संज्ञिनो मिथ्यादृष्टयः सासादनसम्यग्दृष्टयश्चाऽऽसहस्रारादुत्पद्यन्ते^१।

संखेज्जाउव-सण्णी सदरसहस्सारगो त्ति जायन्ति^२।''

तिरश्चां सम्यग्मिथ्यादृष्टिनां सम्यग्दृष्टीनां च गतिप्रतिपादनाय एकादशसूत्राण्यवतार्यन्ते —

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रों का अर्थ सुगम है। तेजस्कायिक और वायुकायिक ये दो प्रकार के जीव बादर और सूक्ष्म के भेद से चार भेदरूप हैं पुनः इन्हें पर्याप्त-अपर्याप्त से गुणा करने पर आठ भेदरूप हो जाते हैं, ये सभी संक्लेश परिणाम से युक्त हैं अतः इनके शेष गति के योग्य परिणामों का अभाव होने से ये केवल एक तिर्यचगति को ही प्राप्त करते हैं। कर्मभूमिया सासादनगुणस्थानवर्ती तिर्यच नरकगति को प्राप्त नहीं करते हैं, क्योंकि सासादन गुणस्थानवर्ती तिर्यच और मनुष्यों में नरकगति के गमन योग्य परिणामों का अभाव है।

शंका — यदि सासादन गुणस्थानवर्ती एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं तो पृथिवीकायिक आदि जीवों में मिथ्यात्व और सासादन ये दो गुणस्थान होना चाहिए ?

समाधान — ऐसा नहीं है, क्योंकि आयु के क्षीण होने पर प्रथम समय में ही सासादन गुणस्थान का विनाश हो जाता है अतः सासादन गुणस्थान को छोड़कर ही एकेन्द्रियों में जाते हैं। यहाँ अभिप्राय यह है कि —

षट्खण्डागम सूत्र के अभिप्रायानुसार जो सासादनसम्यग्दृष्टि जीव बादरपृथिवीकायिक पर्याप्त आदि जीवों में जाते हैं उनके इन जीवों में उत्पन्न होने के पहले समय में मिथ्यात्व गुणस्थान हो जाता है।

ये सासादन तिर्यच देवों में — भवनत्रिक देवों में और सौधर्म स्वर्ग से लेकर सहस्रार पर्यंत देवों में जाते हैं।

तत्त्वार्थराजवार्तिक में भी कहा है — ये संज्ञी मिथ्यादृष्टि तिर्यच और सासादनसम्यग्दृष्टी सहस्रार स्वर्गपर्यंत उत्पन्न होते हैं। यही बात तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में भी कही है —

संख्यातवर्षायुष्क संज्ञी शतार-सहस्रार स्वर्ग तक जा सकते हैं।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टी और सम्यग्दृष्टी तिर्यचों की गति का प्रतिपादन करने के लिए ग्यारह सूत्र अवतार लेते हैं —

तिरिक्खा सम्मामिच्छाइट्टी संखेज्जवस्साउआ सम्मामिच्छत्तगुणेण
तिरिक्खा तिरिक्खेसु णो कालं करेति॥१३०॥

तिरिक्खा असंजदसम्मादिट्टी संखेज्जवस्साउआ तिरिक्खा तिरिक्खेहि
कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?॥१३१॥

एककं चेव देवगदिं गच्छंति॥१३२॥

देवेसु गच्छंता सोहम्मीसाणप्पहुडि जाव आरणच्चुदकप्पवासियदेवेसु
गच्छंति॥१३३॥

तिरिक्खमिच्छाइट्टी सासणसम्माइट्टी असंखेज्जवासाउवा तिरिक्खा
तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति?॥१३४॥

एककं हि चेव देवगदिं गच्छंति॥१३५॥

देवेसु गच्छंता भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवेसु गच्छंति॥१३६॥

तिरिक्खा सम्मामिच्छाइट्टी असंखेज्जवासाउआ सम्मामिच्छत्तगुणेण
तिरिक्खा तिरिक्खेहि णो कालं करेति॥१३७॥

सूत्रार्थ —

तिर्यच सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यातवर्षायुष्क तिर्यच जीव तिर्यचों में सम्यग्मिथ्यात्व
गुणस्थान के साथ मरण नहीं करते॥१३०॥

तिर्यच असंयतसम्यग्दृष्टि संख्यातवर्षायुष्क तिर्यचपर्यायों से मरण कर कितनी
गतियों में जाते हैं ?॥१३१॥

पूर्वोक्त तिर्यच जीव मरकर एकमात्र देवगति को जाते हैं॥१३२॥

देवों में जाने वाले असंयतसम्यग्दृष्टि संख्यातवर्षायुष्क तिर्यच सौधर्म-ईशान स्वर्ग
से लगाकर आरण-अच्युत तक के कल्पवासी देवों में जाते हैं॥१३३॥

तिर्यच मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि असंख्यातवर्षायुष्क तिर्यच तिर्यचपर्यायों
से मरणकर कितनी गतियों में जाते हैं ?॥१३४॥

उपर्युक्त तिर्यच एकमात्र देवगति में ही जाते हैं॥१३५॥

देवों में जाने वाले पूर्वोक्त तिर्यच भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवों में
जाते हैं॥१३६॥

तिर्यच सम्यग्मिथ्यादृष्टि असंख्यातवर्षायुष्क तिर्यच जीव तिर्यचपर्यायों से
सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान के साथ मरण नहीं करते॥१३७॥

**तिरिक्खा असंजदसम्माइट्टी असंखेज्जवासाउआ तिरिक्खा तिरिक्खेहि
कालग-दसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?।।१३८।।**

एक्कं हि चेव देवगदिं गच्छंति।।१३९।।

देवेसु गच्छंता सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु गच्छंति।।१४०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थाने चतसृषु अपि गतिषु आयुर्कर्मणः सर्वत्र बंधाभावात्। यस्यां गत्यां यस्मिन् गुणस्थाने च आयुःकर्मबंधः नास्ति, न तेन गुणस्थानेन तस्याः गतेश्च निर्गमः कषायोपशामकान् मुक्त्वा इति ज्ञातव्यं।

सम्यग्दृष्टयः तिर्यञ्चः असंयताः अपि षोडशस्वर्गपर्यंतं गच्छन्ति।

उपरि किन्न गच्छन्ति इति चेत् ?

न, तिर्यक्सम्यग्दृष्टिषु संयमाभावात्। संयमेन विना न चोपरि गमनमस्ति। अनेन कथनेन ततः उपरि मिथ्यादृष्टयः उत्पद्यन्ते तर्हि एभिः व्यभिचारदोषो भवति ?

न भवति, तेषामपि मिथ्यादृष्टीनां मनुष्याणां भावसंयमेन विना द्रव्यसंयमः संभवति।

द्रव्यसंयममाहात्म्यमपि कथयन्ति आचार्यदेवाः —

धृत्वा निर्ग्रन्थलिङ्गं ये प्रकृष्टं कुर्वते तपः।

अन्त्यग्रैवेयकं यावदभव्याः खलु यान्ति ते^१।।

**तिर्यच असंयतसम्यग्दृष्टि असंख्यातवर्षायुष्क तिर्यच जीव तिर्यचपर्यायो से मरण
करके कितनी गतियों में जाते हैं ?।।१३८।।**

**असंख्यातवर्षायुष्क असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यच मरकर एकमात्र देवगति को ही
जाते हैं।।१३९।।**

**देवों में जाने वाले असंख्यातवर्षायुष्क असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यच सौधर्म-ईशान
कल्पवासी देवों में जाते हैं।।१४०।।**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान में चारों भी गतियों में आयुर्कर्म के बंध का सर्वत्र अभाव है। जिस गति में और जिस गुणस्थान में आयु कर्म का बंध नहीं है, उस गुणस्थान से उस गति से निकलना कषायोपशमकों को छोड़कर अन्यो का नहीं होता है, ऐसा जानना चाहिए।

सम्यग्दृष्टी तिर्यच असंयत भी सोलह स्वर्ग पर्यंत जाते हैं।

शंका — संख्यातवर्षायुष्क असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यच मरकर आरण-अच्युत कल्प से ऊपर क्यों नहीं जाते ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, तिर्यच सम्यग्दृष्टि जीवों में संयम का अभाव पाया जाता है और संयम के बिना आरण-अच्युत कल्प से ऊपर गमन होता नहीं है।

शंका — इस कथन से आरण-अच्युत कल्प से ऊपर उत्पन्न होने वाले मिथ्यादृष्टि जीवों के साथ व्यभिचार दोष हो जावेगा ?

समाधान — यह दोष नहीं आता है, क्योंकि उन मिथ्यादृष्टियों के भी भावसंयम रहित द्रव्यसंयम होना संभव है।

किंतु तिर्यञ्चः महाव्रतस्वरूपं द्रव्यसंयमं न गृहीतुं क्षमाः अतस्ते अच्युतस्वर्गादुपरि न गच्छन्ति।

ये तिर्यञ्चः असंख्यातवर्षायुष्काः भोगभूमिजाः ते देवगतिं प्राप्नुवन्ति, मंदकषायत्वात्, तत्र देवायुर्मुक्त्वा अन्येषामायुषां बंधाभावात् वा। इमे मिथ्यादृष्टयः सासादनसम्यग्दृष्टयश्च भवनत्रिकदेवेष्वेव गच्छन्ति, सौधर्मैशानादिउपरिमदेवेषु गमनयोग्यपरिणामाभावात्।

उक्तं चान्यत्रापि — संख्यातीतायुषां नूनं देवेष्वेवास्ति संक्रमः।

निसर्गेण भवेत्तेषां यतो मंदकषायता^१॥

तथा च — “असंख्येयवर्षायुषः तिर्यङ्मनुष्याः मिथ्यादृष्टयः सासादनसम्यग्दृष्टयश्च आ ज्योतिष्केभ्यः उपजायन्ते^२।”

असंयतसम्यग्दृष्टयस्तिर्यञ्चः देवगतिं गच्छन्तः सौधर्मैशानस्वर्गयोः एव गच्छन्ति, नोऽधः, नोपरि, तद्योग्योत्पन्नपरिणामाभावात्।

एवं द्वितीयस्थले तिर्यग्गतिभ्यः निर्गमनकथनत्वेन गुणस्थानापेक्षया चत्वारिंशत्सूत्राणि गतानि।

संप्रति मिथ्यादृष्टिमनुष्याणां आगतिप्रतिपादनाय सूत्रनवकमवतार्यते —

मणुसा मणुसपज्जत्ता मिच्छाइट्ठी संखेज्जवासाउआ मणुसा मणुसेहि कालगदसमाणा कदि कदीओ गच्छंति ?॥१४१॥

द्रव्य संयम का माहात्म्य भी तत्त्वार्थसार में आचार्यदेवों ने कहा है —

जो निर्ग्रन्थ वेष को धारण कर प्रकृष्ट तप करते हैं, ऐसे अभव्यजीव भी अंतिम ग्रैवेयक पर्यंत चले जाते हैं॥

किन्तु तिर्यच महाव्रतस्वरूप द्रव्यसंयम को ग्रहण करने में समर्थ नहीं हैं अतः वे अच्युत स्वर्ग से ऊपर नहीं जाते हैं।

जो असंख्यात वर्ष की आयु वाले भोगभूमिया तिर्यच हैं, वे देवगति को ही प्राप्त करते हैं, क्योंकि वे मंद कषाय वाले हैं अथवा वहाँ भोगभूमि में देवायु को छोड़कर अन्य आयु के बंध का अभाव है।

ये मिथ्यादृष्टी और सासादन सम्यग्दृष्टी तिर्यच भवनत्रिक देवों में ही जाते हैं, क्योंकि सौधर्म आदि ऊपर के स्वर्गों के देवों में गमन योग्य परिणामों का उनके अभाव है।

अन्यत्र — तत्त्वार्थसार में भी कहा है —

असंख्यात वर्षायु वाले जीवों का देवों में ही गमन होता है क्योंकि निसर्गतः वहाँ उनके कषायों की मंदता है॥

यही बात तत्त्वार्थराजवार्तिक में भी कही है —

“असंख्यात वर्षों की आयु वाले मिथ्यादृष्टी और सासादनसम्यग्दृष्टी तिर्यच या मनुष्य ज्योतिष्क देवपर्यंत उत्पन्न होते हैं।” असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यच देवगति को प्राप्त करते हुए सौधर्म-ईशान स्वर्गों में ही जाते हैं, न इसके नीचे और न इसके ऊपर, क्योंकि उस योग्य उत्पन्न होने के परिणामों का उनके अभाव है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में तिर्यचगति से निर्गमन के कथन रूप से गुणस्थानों की अपेक्षा चालीस सूत्र पूर्ण हुए।

अब मिथ्यादृष्टि मनुष्यों की आगति का प्रतिपादन करने के लिए नव सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

मनुष्य मनुष्यपर्याप्त मिथ्यादृष्टि संख्यातवर्षायुष्क मनुष्य मनुष्यपर्यायों से मरणकर

चत्तारि गदीओ गच्छंति णिरयगई तिरिक्खगई मणुसगई देवगई
चेदि॥१४२॥

णिरएसु गच्छंता सव्वणिरएसु गच्छंति॥१४३॥

तिरिक्खेसु गच्छंता सव्वतिरिक्खेसु गच्छंति॥१४४॥

मणुसेसु गच्छंता सव्वमणुस्सेसु गच्छंति॥१४५॥

देवेसु गच्छंता भवणवासियप्पहुडि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु
गच्छंति॥१४६॥

मणुसा अपज्जत्ता मणुसा मणुसेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ
गच्छंति ?॥१४७॥

दुवे गदीओ गच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव॥१४८॥

तिरिक्ख-मणुसेसु गच्छंता सव्वतिरिक्ख-मणुसेसु गच्छंति, णो
असंखेज्जवासाउएसु गच्छंति॥१४९॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते। सामान्यमनुष्याः पार्यप्तमनुष्याश्च संख्यातवर्षायुष्काः-
कर्मभूमिजाः यद्यपि मिथ्यादृष्टयः तर्ह्यपि चतुर्गतिषु गच्छन्ति, विशेषेण तु — नवग्रैवेयकानामुपरि न गच्छन्ति

कितनी गतियों को जाते हैं ?॥१४१॥

उपर्युक्त मनुष्य चारों गतियों में जाते हैं — नरकगति, तिर्यचगति, मनुष्यगति और
देवगति॥१४२॥

नरकों में जाने वाले उपर्युक्त मनुष्य सभी नरकों में जाते हैं॥१४३॥

तिर्यचों में जाने वाले उपर्युक्त मनुष्य सभी तिर्यचों में जाते हैं॥१४४॥

मनुष्यों में जाने वाले उपर्युक्त मनुष्य सभी मनुष्यों में जाते हैं॥१४५॥

देवों में जाने वाले उपर्युक्त मनुष्य भवनवासी देवों से लगाकर नौ ग्रैवेयक विमानवासी
देवों तक में जाते हैं॥१४६॥

मनुष्य अपर्याप्तक मनुष्य मनुष्यपर्यायों से मरण करके कितनी गतियों में जाते
हैं ?॥१४७॥

उपर्युक्त मनुष्य दो गतियों में जाते हैं — तिर्यचगति और मनुष्यगति॥१४८॥

तिर्यच और मनुष्यों में जाने वाले उपर्युक्त मनुष्य सभी तिर्यच और सभी मनुष्यों
में जाते हैं, किन्तु असंख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यच और मनुष्यों में नहीं जाते॥१४९॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रों का अर्थ सुगम है। सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य संख्यात वर्षायु

सम्यक्त्वाभावात्।

मिथ्यादृष्टयो भव्या अपि द्रव्यसंयमबलेन नवग्रैवेयकं यावत् यान्तीति।

ये केचिन्मनुष्याः लब्ध्यपर्याप्तकाः तिर्यग्मनुष्यायुषी मुक्त्वा नरकदेवायुषी न बध्नन्ति। तथा च असंख्यातवर्षायुष्केषु भोगभूमिजतिर्यङ्मनुष्येष्वपि न गच्छन्ति, दान-दानानुमोदनयोरभावात्।

संप्रति सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टिमनुष्याणां आगतिप्रतिपादनाय त्रयोदशसूत्राण्यवतार्यन्ते —

**मणुस्ससासणसम्माइट्ठी संखेज्जवासाउआ मणुसा मणुसेहि कालगद-
समाणा कदि कदीओ गच्छंति ?।।१५०।।**

तिण्णि गदीओ गच्छंति तिरिक्खगदिं माणुसगदिं देवगदिं चेदि।।१५१।।

तिरिक्खेसु गच्छंता एइंदिय-पंचिंदिएसु गच्छंति, णो विगलिंदिएसु
गच्छंति।।१५२।।

एइंदिएसु गच्छंता बादरपुढवी-बादरआउ-बादरवणप्फदिकाइय-
पत्तेयसरीरपज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तएसु।।१५३।।

वाले कर्मभूमिज, यद्यपि ये मिथ्यादृष्टी हैं, तो भी चारों गतियों में जाते हैं, विशेषता यह है कि वे नवग्रैवेयक के ऊपर नहीं जाते हैं, क्योंकि इनके सम्यक्त्व का अभाव है। मिथ्यादृष्टी भव्य भी द्रव्यसंयम के बल से नव ग्रैवेयक पर्यंत जा सकते हैं।

जो कोई लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य हैं, वे तिर्यचायु और मनुष्यायु को छोड़कर नरकायु और देवायु का बंध नहीं करते हैं। उसी प्रकार असंख्यात वर्ष की आयु वालों में भी — भोगभूमिज तिर्यच-मनुष्यों में भी नहीं जाते हैं, क्योंकि उनके दान और दान की अनुमोदना का अभाव है।

अब सासादन और सम्यग्मिथ्यादृष्टी मनुष्यों की आगति का प्रतिपादन करने के लिए तेरह सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

मनुष्य सासादनसम्यग्दृष्टि संख्यातवर्षायुष्क मनुष्य मनुष्यपर्यायों से मरण करके कितनी गतियों को जाते हैं ?।।१५०।।

उपर्युक्त मनुष्य तीन गतियों में जाते हैं — तिर्यचगति, मनुष्यगति और देवगति।।१५१।।

तिर्यचों में जाने वाले उपर्युक्त मनुष्य एकेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों में जाते हैं, विकलेन्द्रिय जीवों में नहीं जाते।।१५२।।

एकेन्द्रियों में जाने वाले उपर्युक्त मनुष्य बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्तकों में जाते हैं, अपर्याप्तकों में नहीं।।१५३।।

पंचिंदिएसु गच्छंता सण्णीसु गच्छंति, णो असण्णीसु।।१५४।।

सण्णीसु गच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु।।१५५।।

गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंता पज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्त-
एसु।।१५६।।

पज्जत्तएसु गच्छंता संखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति, असंखेज्जवासाउएसु
वि गच्छंति।।१५७।।

मणुसेसु गच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु।।१५८।।

गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंता पज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्त-
एसु।।१५९।।

पज्जत्तएसु गच्छंता संखेज्जवासाउएसु गच्छंति, असंखेज्जवासाउएसु
वि गच्छंति।।१६०।।

देवेसु गच्छंता भवणवासियप्पहुडि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु
गच्छंति।।१६१।।

पंचेन्द्रियों में जाने वाले उपर्युक्त मनुष्य संज्ञियों में जाते हैं, असंज्ञियों में नहीं।।१५४।।

संज्ञियों में जाने वाले उपर्युक्त मनुष्य गर्भोपक्रान्तिकों में जाते हैं, सम्मूर्च्छिमां में
नहीं।।१५५।।

गर्भोपक्रान्तिकों में जाने वाले उपर्युक्त मनुष्य पर्याप्तकों में जाते हैं, अपर्याप्तकों
में नहीं।।१५६।।

पर्याप्तकों में जाने वाले उपर्युक्त मनुष्य संख्यात वर्ष की आयु वालों में भी जाते
हैं और असंख्यात वर्ष की आयु वालों में भी जाते हैं।।१५७।।

मनुष्यों में जाने वाले उपर्युक्त मनुष्य गर्भोपक्रान्तिकों में जाते हैं, सम्मूर्च्छिमां में
नहीं।।१५८।।

गर्भोपक्रान्तिकों में जाने वाले उपर्युक्त मनुष्य पर्याप्तकों में जाते हैं, अपर्याप्तकों
में नहीं।।१५९।।

पर्याप्तकों में जाने वाले उपर्युक्त मनुष्य संख्यातवर्षायुष्क मनुष्यों में भी जाते हैं
और असंख्यातवर्षायुष्क मनुष्यों में भी जाते हैं।।१६०।।

देवों में जाने वाले उपर्युक्त मनुष्य भवनवासी देवों से लगाकर नौ ग्रैवेयक विमानवासी
देवों तक जाते हैं।।१६१।।

मणुसा सम्मामिच्छादृष्टी संखेज्जवासाउआ सम्मामिच्छत्तगुणेण मणुसा मणुसेहि णो कालं करेति॥१६२॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते।

कश्चिदाह — यदि एकेन्द्रियेषु सासादनसम्यग्दृष्टयः उत्पद्यन्ते तर्हि एकेन्द्रियेषु द्वे गुणस्थाने भवितव्ये ? भवतु चेत्, न एकेन्द्रियसासादनद्रव्यस्य द्रव्यानियोगद्वारे प्रमाणप्ररूपणाभावात् ?

अत्र परिहारः उच्यते — सासादनसम्यग्दृष्टयः एकेन्द्रियेषु उत्पद्यमाना येन आत्मनः आयुषः चरमसमये सासादनगुणस्थानपरिणामेन सहिताः भूत्वा ततः उपरिमसमये मिथ्यात्वं प्रतिपद्यन्ते तेन एकेन्द्रियेषु न द्वे गुणस्थाने स्तः, मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमेकमेव।

मनुष्याः संज्ञिनः एव सन्ति न चासंज्ञिनः।

मनुष्याः सासादनसम्यग्दृष्टयः सम्यक्त्वसंयमरहिताः अपि नवग्रैवेयकपर्यंतं उत्पद्यन्ते।

कथं एते नवग्रैवेयकपर्यंतं गन्तुं शक्नुवन्ति ?

नैष दोषः, द्रव्यसंयमस्यापि तत्फलत्वोपलंभात्।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिमनुष्याणां सर्वायुःबंधाभावात् न ते म्रियन्ते।

सम्यग्दृष्टिमनुष्याणामागतिप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

संख्यात वर्ष की आयु वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्य सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान सहित मनुष्य होते हुए मनुष्य पर्यायों से मरण नहीं करते॥१६२॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रों का अर्थ सुगम है। यहाँ कोई प्रश्न करता है —

शंका — यदि एकेन्द्रियों में सासादनसम्यग्दृष्टी जीव उत्पन्न होते हैं, तो एकेन्द्रियों में दो गुणस्थान होना चाहिए ? यदि कहा जाये कि एकेन्द्रियों में दो ही गुणस्थान होने दो, सो यह कहना भी नहीं बन सकता, क्योंकि द्रव्यानियोगद्वारे में एकेन्द्रिय सासादनगुणस्थानवर्ती जीवों के द्रव्य का प्रमाण नहीं बतलाया गया है ?

समाधान — यहाँ पूर्वोक्त शंका का परिहार कहा जाता है। वह इस प्रकार है — चूँकि एकेन्द्रियों में उत्पन्न होने वाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीव अपनी आयु के अंतिम समय में सासादनपरिणाम सहित होकर उनसे अगले समय में मिथ्यात्व को प्राप्त हो जाते हैं, इसलिए एकेन्द्रियों में दो गुणस्थान नहीं होते, केवल एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है।

मनुष्य संज्ञी ही होते हैं असंज्ञी नहीं होते। सम्यक्त्व और संयम से रहित भी सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्य नवग्रैवेयक पर्यंत उत्पन्न होते हैं।

शंका — सम्यक्त्व और संयम से रहित सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्यों की नौ ग्रैवेयकों में उत्पत्ति किस प्रकार होती है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं, क्योंकि द्रव्यसंयम के भी नौ ग्रैवेयकों में उत्पन्न होने रूप फल की प्राप्ति पाई जाती है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टी जीवों के सभी आयु के बंध का अभाव है अतः वे उस गुणस्थान में मरण नहीं करते हैं।

अब सम्यग्दृष्टी मनुष्यों की आगति का प्रतिपादन करने के लिए तीन सूत्र अवतार लेते हैं —

मणुससम्माइट्टी संखेज्जवासाउआ मणुस्सा मणुस्सेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?॥१६३॥

एक्कं हि चेव देवगदिं गच्छंति॥१६४॥

देवेसु गच्छंता सोहम्मीसाणप्पहुडि जाव सव्वट्टसिद्धिविमाणवासियदेवेसु गच्छंति॥१६५॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते। कर्मभूमिजाः सम्यग्दृष्टिमनुष्याः देवायुरेव बध्नन्ति। सम्यक्त्वसहिताः अणुव्रतिनः आर्थिकाः वा अच्युतस्वर्गपर्यंतं गच्छन्ति। महाव्रतिनः द्रव्यसंयमिनः भावसंयमिनो वा नवग्रैवेयकपर्यंतं गच्छन्ति किंतु केवलं भावसंयमिन एव नवानुदिशपंचानुत्तरविमानपर्यंतं गच्छन्ति इति ज्ञातव्यं।

अत्र कश्चिदाह — सम्यग्दृष्टिमनुष्याः कर्मभूमिजाः चतुर्गतिष्वपि गच्छन्ति एतद्वक्तव्यं। देवगतिं तावद् गच्छन्ति एव, अत्रैव सूत्रे प्रोक्तत्वात्। नरकगतिमपि गच्छन्ति। 'णेरइया सम्मत्तेण अधिगदा णियमा सम्मत्तेण चेव णीति'। इति सूत्रवचनात्। तिर्यक्सम्यग्दृष्टयः नरकगतिं नाधिगच्छन्ति, तत्र दर्शनमोहनीयस्य क्षपणाभावात् क्षायिकसम्यक्त्वाभावोऽस्ति। न च तत्रतनवेदकसम्यग्दृष्टयो नरकगतिं प्राप्नुवन्ति, तेषां मरणकाले

सूत्रार्थ —

मनुष्य सम्यग्दृष्टि संख्यातवर्षायुष्क मनुष्य मनुष्यपर्यायों से मरण कर कितनी गतियों में जाते हैं ?॥१६३॥

संख्यातवर्षायुष्क सम्यग्दृष्टि मनुष्य एकमात्र देवगति को ही जाते हैं॥१६४॥

देवों में जाने वाले संख्यातवर्षायुष्क सम्यग्दृष्टि मनुष्य सौधर्म-ईशान से लगाकर सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवों तक में जाते हैं॥१६५॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रों का अर्थ सुगम है। कर्मभूमिया सम्यग्दृष्टी मनुष्य देवायु ही बांधते हैं। सम्यक्त्व सहित अणुव्रती श्रावक और आर्थिकाएँ अच्युत स्वर्ग पर्यंत जाते हैं। महाव्रती द्रव्यसंयमी या भावसंयमी मुनि नवग्रैवेयक पर्यंत जाते हैं, किन्तु केवल भावसंयमी ही नव अनुदिश और पाँच अनुत्तरों में जाते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

शंका — यहाँ पर कोई कहता है कि 'संख्यातवर्षायुष्क सम्यग्दृष्टि मनुष्य चारों गतियों को जाते हैं,' ऐसा कहना चाहिए, क्योंकि सम्यग्दृष्टि मनुष्यों का चारों गतियों में गमन पाया जाता है। वह इस प्रकार है — सम्यग्दृष्टि मनुष्य देवगति को तो जाते ही हैं, क्योंकि यह बात प्रस्तुत सूत्र में ही कही गई है और सम्यग्दृष्टि मनुष्य नरकगति को भी जाते हैं, क्योंकि 'नारकी सम्यक्त्व से नरक में प्रवेश करके नियम से सम्यक्त्व सहित ही वहाँ से निकलते हैं,' ऐसा सूत्र का वचन है। तिर्यच सम्यग्दृष्टि जीव तो नरकगति को जाते नहीं हैं, क्योंकि उनमें दर्शनमोहनीय के क्षपण का अभाव होने से क्षायिक सम्यक्त्व का अभाव है और न तिर्यचगतिसंबंधी वेदकसम्यग्दृष्टि नरकगति को जाते हैं, क्योंकि उनके मरणकाल में नरकायु कर्म की सत्ता का अभाव होता है। देव और नारकी सम्यग्दृष्टि नरकगति को जाते नहीं हैं, क्योंकि ऐसा जिनभगवान् का उपदेश नहीं है। इसलिए

नरकायुःसत्त्वाभावात्। न देवाः नारका वा सम्यग्दृष्टयः नरकगतिमधिगच्छन्ति, जिनाज्ञाभावात्। तस्मात् पारिशेषन्यायात् सम्यग्दृष्टयो मनुष्याश्चैव नरकगतिमधिगच्छन्ति इति सिद्धम्।

तिर्यग्गतिमपि गच्छन्ति। 'तिरिक्खगदिं सम्मत्तेण अधिगदा णियमा सम्मत्तेण चेव णीति'॥ इति जिनाज्ञासूत्रात्। अत्र-तिर्यक्षु देवाः नारकाः तिर्यञ्चो वा सम्यग्दृष्टयो नोत्पद्यन्ते, एतेषामत्रोत्पत्तेः प्रतिपादनजिनाज्ञाभावात्। तस्मात् तिर्यक्षु सम्यग्दृष्टयो मनुष्याश्चैवोत्पद्यन्ते। एवं मनुष्येषु मनुष्यसम्यग्दृष्टीनां उत्पत्तिः कथयितव्या इति ?

अत्र परिहारः उच्यते — तद्यथा — यैः मिथ्यादृष्टिभिः मनुष्यैः देवायुः मुक्त्वा अन्यायुर्बद्ध्वा पश्चात् सम्यक्त्वं गृहीतं, तेऽत्र न परिगृहीताः। 'तेन एकां चैव देवगतिं गच्छन्ति मनुष्यसम्यग्दृष्टयः' इति भणितं।

देवगतिं मुक्त्वान्यगत्यायुर्बद्ध्वा यैः सम्यक्त्वं पश्चात् प्रतिपन्नं तेऽत्र किन्न गृहीताः ?

न, तेषां मिथ्यात्वं गत्वात्मनः बंधायुष्कवशेन उत्पद्यमानानां सम्यक्त्वाभावात्।

सम्यक्त्वं गृहीत्वा दर्शनमोहनीयं क्षपयित्वा नरकादिषु उत्पद्यमानाः अपि मनुष्यसम्यग्दृष्टयः सन्ति, ते किन्न गृहीताः ?

अत्र सम्यक्त्वमाहात्म्यप्रतिपादनार्थं पूर्वबद्धायुःकर्ममाहात्म्यप्रतिपादनार्थं च ते न गृहीताः इति ज्ञातव्यं।

अन्यलिङ्गिनोऽपि देवगतौ गच्छन्तः क्व क्व गच्छन्ति इति प्रतिपाद्यते श्रीभट्टाकलंकदेवेन — “परित्राजकानां देवेषूपपादः आ ब्रह्मलोकात्, आजीविकानां आ सहस्रारात्। तत ऊर्ध्वमन्यलिङ्गिनां नास्त्युपपादः,

पारिशेष न्याय से सम्यग्दृष्टि मनुष्य ही नरकगति को जाते हैं यह बात सिद्ध हुई। सम्यग्दृष्टि मनुष्य तिर्यचगति को भी जाते हैं, क्योंकि तिर्यचगति को सम्यक्त्व सहित जाने वाले जीव नियम से सम्यक्त्व सहित ही वहाँ से निकलते हैं' ऐसा जिनभगवान् का उपदेश है। यहाँ तिर्यचों में देव, नारकी और तिर्यच सम्यग्दृष्टि जीव तो उत्पन्न होते नहीं, क्योंकि इन जीवों के यहाँ उत्पन्न होने का प्रतिपादन करने वाला जिनभगवान् का उपदेश पाया नहीं जाता। इसलिए तिर्यचों में सम्यग्दृष्टि मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार मनुष्यों में मनुष्य सम्यग्दृष्टि जीवों के उत्पत्ति साध लेना चाहिए — कहना चाहिए ?

समाधान — यहाँ उक्त शंका का परिहार कहते हैं। वह इस प्रकार है — जिन मिथ्यादृष्टियों ने देवायु को छोड़ अन्य आयु बांधकर पश्चात् सम्यक्त्व ग्रहण किया है, उनका यहाँ ग्रहण नहीं किया गया। इसीलिए ऐसा कहा गया है कि सम्यग्दृष्टि मनुष्य एकमात्र देवगति को ही जाते हैं।

शंका — देवगति को छोड़ अन्य गतियों की आयु बांधकर जिन मनुष्यों ने पश्चात् सम्यक्त्व ग्रहण किया है, उनका यहाँ ग्रहण क्यों नहीं किया गया ?

समाधान — नहीं, क्योंकि पुनः मिथ्यात्व में जाकर अपनी बांधी हुई आयु के वश से उत्पन्न होने वाले उन जीवों के सम्यक्त्व का अभाव पाया जाता है।

शंका — सम्यक्त्व को ग्रहण करके और दर्शनमोहनीय का क्षपण करके नरकादिक में उत्पन्न होने वाले भी सम्यग्दृष्टि मनुष्य होते हैं, उनका यहाँ क्यों नहीं ग्रहण किया गया ?

समाधान — सम्यक्त्व का माहात्म्य दिखलाने और पूर्व में बांधे हुए आयु कर्म का माहात्म्य उत्पन्न करने के लिए उक्त जीवों का यहाँ ग्रहण नहीं किया गया, ऐसा जानना चाहिए।

अन्य लिङ्गी भी देवगति में जाते हुए कहाँ-कहाँ जाते हैं, इस विषय को श्रीमान् भट्टाकलंक देव तत्त्वार्थराजवार्तिक ग्रंथ में कहते हैं —

निर्ग्रन्थलिंगधारिणामेव उत्कृष्टतपोऽनुष्ठानोपचितपुण्यबंधानाम् असम्यग्दर्शनानामुपरिमग्नैवेयकान्तेषु उपपादः, तत ऊर्ध्वं सम्यग्दर्शनज्ञानचरणप्रकर्षोपेतानामेव जन्म नेतरेषाम्। श्रावकाणां सौधर्मादिष्वच्युतान्तेषु जन्म नाधो नोपरीति परिणामविशुद्धिप्रकर्षयोगादेव कल्पस्थानातिशये योगोऽवसेयः^१।”

श्रीमदमृतचन्द्रसूरिणापि प्रोक्तं —

उत्पद्यन्ते सहस्रारे तिर्यञ्चो व्रतसंयुताः।

अत्रैव हि प्रजायन्ते सम्यक्त्वाधका नराः॥१६५॥

न विद्यते परं ह्यस्मादुपपादोऽन्यलिंगिनाम्।

निर्ग्रन्थश्रावका ये ते जायन्ते यावदच्युतम् ॥१६६॥

यावत्सर्वार्थसिद्धिं तु निर्ग्रन्थाः हि ततः परं।

उत्पद्यन्ते तपोयुक्ता रत्नत्रयपवित्रिताः^२॥१६८॥

तथैव च^३ —

णरतिरियदेसअयदा उक्कस्सेण च्चुदो त्ति णिगंथा।

णरअयददेसमिच्छा गेवज्जंतो त्ति गच्छंति॥५४५॥

परिव्राजक ब्रह्म स्वर्ग तक और आजीवक सहस्रार स्वर्ग तक उत्पन्न होते हैं। बारहवें स्वर्ग के ऊपर अन्य लिङ्गियों की उत्पत्ति नहीं होती। उत्कृष्ट तपो अनुष्ठान के द्वारा पुण्यबंध करने वाले निर्ग्रन्थलिंगधारी, मिथ्यादृष्टि मुनियों का अंतिम ग्रैवेयक तक उत्पाद होता है। नौ ग्रैवेयकों के ऊपर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और उत्कृष्ट चारित्र के धारी महामुनियों का ही उत्पाद होता है अन्य मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी मुनि नौ ग्रैवेयक के ऊपर जन्म नहीं ले सकते। सम्यग्दृष्टि व्रतधारी श्रावक-श्राविका और आर्यिका का उत्पाद सौधर्म स्वर्ग से लेकर अच्युत स्वर्ग तक है। परिणामविशुद्धि के उत्कृष्ट योग एवं सम्यग्दर्शन सहित होने से नीचे भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवों में भी उनका उत्पाद नहीं है और वस्त्रधारी होने से सोलहवें स्वर्ग के ऊपर भी जन्म नहीं ले सकते। इनका जन्म परिणामों की विशुद्धि की प्रकर्षता से ही कल्पवासी देवों तक होता है, ऐसा जानना।

श्रीमान् अमृतचंद्रसूरि ने भी तत्त्वार्थसार में कहा है —

व्रतयुक्त पंचमगुणस्थानवर्ती तिर्यच मरकर बारहवें स्वर्ग तक उत्पन्न होते हैं। सम्यक्त्व के धारी चतुर्थगुणस्थानवर्ती मनुष्य भी मरकर बारहवें स्वर्ग तक जाते हैं। निर्ग्रन्थ दिगम्बर वेष के अतिरिक्त वेषधारी कोई भी साधु मरकर बारहवें स्वर्ग से ऊपर जन्म नहीं ले सकते हैं, यह नियम है। आर्यिका तथा निष्परिग्रह श्रावक मरकर अच्युत नाम के सोलहवें स्वर्ग तक उपजते हैं। ग्रैवेयक के भी ऊपर सर्वार्थसिद्धि अन्तिम विमान पर्यन्त वे ही जीव उपजते हैं जो भव्य हैं और रत्नत्रय धारण कर निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि होकर उत्कृष्ट तप करते हैं।

अन्यत्र भी कहा है — असंयत और देशसंयत मनुष्य, तिर्यच अधिक से अधिक अच्युत कल्प तक तथा निर्ग्रन्थ देशसंयत, असंयत एवं मिथ्यादृष्टि मुनि अंतिम ग्रैवेयक पर्यन्त जाते हैं।

विशेषार्थ — असंयतसम्यग्दृष्टि और देशसंयमी मनुष्य एवं तिर्यच उत्कृष्टता से अच्युत कल्प अर्थात् १६ स्वर्ग पर्यन्त ही उत्पन्न होते हैं, इससे ऊपर नहीं। जो द्रव्य से निर्ग्रन्थ और भाव से मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि एवं देशसंयमी हैं, वे अंतिम ग्रैवेयक पर्यन्त उत्पन्न होते हैं, इससे ऊपर नहीं।

सम्यग्दृष्टि महाव्रती सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त, सम्यग्दृष्टि भोगभूमिज मनुष्य, तिर्यच सौधर्मेशान पर्यन्त और मिथ्यादृष्टि भोगभूमिज मनुष्य, तिर्यच एवं तापसी साधु उत्कृष्टता से भवनत्रय पर्यन्त ही उत्पन्न होते हैं। चरक

सव्वट्ठो ति सुदिट्ठी महव्वई भोगभूमिजा सम्मा।
 सोहम्मदुगं मिच्छा भवणतियं तावसा य वरं॥५४६॥
 चरया य परिव्वाजा बहोत्तर चुदपदो ति आजीवां।

संप्रति भोगभूमिजमनुष्याणामागतिप्रतिपादनाय सूत्रसप्तकमवतार्यते —

मणुसा मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंखेज्जवासाउआ मणुसा मणुसेहि
 कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?॥१६६॥

एक्कं हि चेव देवगदिं गच्छंति॥१६७॥

देवेसु गच्छंता भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवेसु गच्छंति॥१६८॥

मणुसा सम्मामिच्छाइट्ठी असंखेज्जवासाउआ सम्मामिच्छत्तगुणेण मणुसा
 मणुसेहि णो कालं करेति॥१६९॥

मणुसा सम्माइट्ठी असंखेज्जवासाउआ मणुसा मणुसेहि कालगदसमाणा
 कदि गदीओ गच्छंति?॥१७०॥

एक्कं हि चेव देवगदिं गच्छंति॥१७१॥

देवेसु गच्छंता सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु गच्छंति॥१७२॥

और परिव्राजक सन्यासी ब्रह्मकल्प पर्यन्त और आजीवक साधु अच्युतकल्प पर्यन्त उत्पन्न होते हैं॥

अब भोगभूमिज मनुष्यों की आगति का प्रतिपादन करने के लिए सात सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

मनुष्य मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि असंख्यातवर्षायुष्क मनुष्य मनुष्यपर्यायों
 से मरण करके कितनी गतियों में जाते हैं ?॥१६६॥

उपर्युक्त मनुष्य एकमात्र देवगति को ही जाते हैं॥१६७॥

देवों में जाने वाले उपर्युक्त मनुष्य भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवों में
 जाते हैं॥१६८॥

मनुष्य सम्यग्मिथ्यादृष्टि असंख्यातवर्षायुष्क मनुष्य सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान सहित
 मनुष्यपर्यायों से मरण नहीं करते॥१६९॥

मनुष्य सम्यग्दृष्टि असंख्यातवर्षायुष्क मनुष्यपर्यायों से मरण कर कितनी गतियों
 में जाते हैं ?॥१७०॥

उपर्युक्त मनुष्य मरण कर एकमात्र देवगति को जाते हैं॥१७१॥

देवों में जाने वाले उपर्युक्त मनुष्य सौधर्म और ईशान कल्पवासी देवों में जाते हैं॥१७२॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। असंख्यातवर्षायुष्काः भोगभूमिजाः मनुष्याः, तत्रत्येभ्यो मृत्वा नियमेन देवाः भवन्ति।

उक्तं चान्यत्रापि —

संख्यातीतायुषो मर्त्याः तिर्यञ्चश्चाप्यसदृशः।

उत्कृष्टास्तापसाश्चैव यान्ति ज्योतिष्कदेवताम्^१॥१६३॥

इमे च सम्यग्दृष्टयो भोगभूमिजाः सौधर्मैशानयोः देवाः भवन्ति। न चोपरि नाधः गच्छन्ति।

एवं तृतीयस्थले मनुष्याणामागतिनिरूपणत्वेन द्वात्रिंशत्सूत्राणि गतानि।

अधुना देवानामागतिप्ररूपणाय मिथ्यात्वादितुर्गुणस्थानापेक्षया सप्तदशसूत्राण्यवतार्यन्ते —

देवा मिच्छाद्दृष्टी सासणसम्माद्दृष्टी देवा देवेहि उवट्टिद-चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छन्ति ?॥१७३॥

दुवे गदीओ आगच्छन्ति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव॥१७४॥

तिरिक्खेसु आगच्छन्ता एइंदिय-पंचिंदिएसु आगच्छन्ति, णो विगल्लिंदि-एसु॥१७५॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रों का अर्थ सुगम है। असंख्यात वर्षायु वाले भोगभूमिया मनुष्य वहाँ से मरकर नियम से देव होते हैं।

तत्त्वार्थसार में कहा है — असंख्यात वर्षायु वाले मनुष्य और तिर्यच भी सम्यग्दर्शनरहित तथा उत्कृष्ट तापसी ये मरकर ज्योतिषी देव पर्यंत उत्पन्न होते हैं॥

ये ही सम्यग्दृष्टी भोगभूमिया सौधर्म और ईशान स्वर्ग में देव होते हैं, न इससे ऊपर जाते हैं और न इनसे नीचे के देवों में उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार तृतीय स्थल में मनुष्यों की आगति का प्रतिपादन करने वाले बत्तीस सूत्र पूर्ण हुए।

अब देवों की आगति की प्ररूपणा करने के लिए मिथ्यात्व आदि चार गुणस्थानों की अपेक्षा से सत्रह सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

देव मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देव देवपर्यायों से उद्धर्तित व च्युत होकर कितनी गतियों में आते हैं ?॥१७३॥

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देव मरणकर तिर्यचगति और मनुष्यगति इन दो गतियों में आते हैं॥१७४॥

तिर्यचों में आने वाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देव एकेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों में आते हैं, विकलेन्द्रियों में नहीं आते॥१७५॥

एइंदिएसु आगच्छंता बादरपुढवीकाइय-बादरआउकाइय-बादरवणप्फ-
दिकाइयपत्तेय-सरीरपज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु॥१७६॥

पंचिंदिएसु आगच्छंता सण्णीसु आगच्छंति, णो असण्णीसु॥१७७॥
सण्णीसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छि-
मेसु॥१७८॥

गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्त-
एसु॥१७९॥

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्ज-
वासाउएसु॥१८०॥

मणुसेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु॥१८१॥
गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्त-
एसु॥१८२॥

एकेन्द्रियों में आने वाले उपर्युक्त देव बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक
और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्तक जीवों में आते हैं, अपर्याप्तकों में
नहीं॥१७६॥

पंचेन्द्रियों में आने वाले उपर्युक्त देव संज्ञी तिर्यचों में आते हैं, असंज्ञियों में
नहीं॥१७७॥

संज्ञी तिर्यचों में आने वाले उपर्युक्त देव गर्भोपक्रान्तिकों में आते हैं, सम्मूर्च्छि-
मों में नहीं आते॥१७८॥

गर्भोपक्रान्तिकों में आने वाले उपर्युक्त देव पर्याप्तकों में आते हैं, अपर्याप्तकों में
नहीं आते॥१७९॥

पर्याप्तकों में आने वाले उपर्युक्त देव संख्यातवर्षायुष्कों में आते हैं, असंख्यात-
वर्षायुष्कों में नहीं आते॥१८०॥

मनुष्यों में आने वाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देव गर्भोपक्रान्तिकों में
आते हैं, सम्मूर्च्छिमों में नहीं आते॥१८१॥

गर्भोपक्रान्तिक मनुष्यों में आने वाले उपर्युक्त देव पर्याप्तकों में आते हैं, अपर्याप्तकों
में नहीं आते॥१८२॥

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्ज-
वासाउएसु॥१८३॥

देवा सम्मामिच्छाइट्ठी सम्मामिच्छत्तगुणेण देवा देवेहि णो उव्वट्ठंति,
णो चयंति॥१८४॥

देवा सम्माइट्ठी देवा देवेहि उव्वट्ठिद-चुदसमाणा कदि गदीओ
आगच्छंति॥१८५॥

एक्कं हि चेव मणुसगदिमागच्छंति॥१८६॥

मणुसेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छि-
मेसु॥१८७॥

गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्त-
एसु॥१८८॥

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्ज-
वासाउएसु॥१८९॥

पर्याप्तक मनुष्यों में आने वाले उपर्युक्त देव संख्यातवर्षायुष्कों में आते हैं,
असंख्यातवर्षायुष्कों में नहीं आते॥१८३॥

देव सम्यग्मिथ्यादृष्टि सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान सहित देवपर्यायों से न उद्धर्तित होते
हैं और न च्युत होते हैं॥१८४॥

देव सम्यग्दृष्टि देव देवपर्यायों से उद्धर्तित व च्युत होकर कितनी गतियों में आते
हैं?॥१८५॥

सम्यग्दृष्टि देव मरणकर केवल एक मनुष्यगति में ही आते हैं॥१८६॥

मनुष्यों में आने वाले सम्यग्दृष्टि देव गर्भोपक्रान्तिकों में आते हैं, सम्मुच्छि-
मों में नहीं आते॥१८७॥

गर्भोपक्रान्तिक मनुष्यों में आने वाले सम्यग्दृष्टि देव पर्याप्तकों में आते हैं, अपर्याप्तकों
में नहीं आते॥१८८॥

पर्याप्तक गर्भोपक्रान्तिक मनुष्यों में आने वाले सम्यग्दृष्टि देव संख्यातवर्षायुष्कों
में आते हैं, असंख्यातवर्षायुष्कों में नहीं आते॥१८९॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — देवाः देवायुनरकायुषी न बध्नन्ति, कदाचित् तिर्यक्षु एकेन्द्रियेषु आगच्छन्ति किंतु विकलत्रयाः न भवन्ति, स्वभावात्। इमे देवा भोगभूमिषु न आयान्ति दान-दानानुमोदनयोरभावात् स्वभावाद्वा।

अन्यत्रापि उक्तं — भाज्या एकेन्द्रियत्वेन देवा ऐशानतश्च्युताः।

तिर्यक्त्वमानुषत्वाभ्यामासहस्रारतः पुनः^१॥१६९॥

सम्यग्दृष्टयो देवाः मनुष्यायुर्मुक्त्वा अन्यायूषि न बध्नन्ति। पुनश्च ते देवाः भोगभूमिजाः न भवन्तीति। भवनत्रिकदेवाः सौधर्मैशानकल्पवासिनश्च क्व क्व आगच्छन्तीति प्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसिय-सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु देवगदिभंगो॥१९०॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इमे देवाः द्वे गती लभन्ते। विषयेष्वासक्ताः सन्तः कदाचिदन्यसमये षण्मासावशेषे मंदारमालाम्लाने सति वा संक्लेशपरिणामेन देवगतिपर्यायात् च्युत्वा एकेन्द्रियाः अपि भवन्ति। तथापि ते तेजस्काधिकवायुकायिकौ न भवतः। कदाचित् पंचेन्द्रियतिर्यञ्चः भवन्ति तत्रापि अपर्याप्तकाः समूच्छन्नजाः भोगभूमिजाः वा न भवितुं शक्नुवन्ति।

तृतीयस्वर्गादासहस्रारदेवानां आगतिप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — देव, देवायु और नरकायु को नहीं बांधते हैं। कदाचित् वे तिर्यचों में एकेन्द्रिय जीवों में जन्म ले सकते हैं किन्तु देव विकलत्रय नहीं हो सकते हैं क्योंकि वैसा स्वभाव है। ये देव भोगभूमियों में भी जन्म नहीं ले सकते हैं क्योंकि उनके दान और दान की अनुमोदना का अभाव है। अथवा ऐसा स्वभाव ही है।

तत्त्वार्थसार में भी कहा है —

ईशान स्वर्ग तक के देव मरकर एकेन्द्रिय तक होते हैं और बारहवें सहस्रार स्वर्ग तक के देव मरकर तिर्यच भी हो सकते हैं तथा मनुष्य भी हो सकते हैं॥१६९॥

सम्यग्दृष्टी मनुष्य देवायु को छोड़कर अन्यायु नहीं बांधते हैं और ये देव भोगभूमि में भी नहीं जाते हैं।

भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिषी तथा सौधर्म-ईशान कल्पवासी देव कहाँ-कहाँ आते हैं — जन्म लेते हैं, ऐसा प्रतिपादन करने के लिए सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

भवनवासी, वानव्यंतर, ज्योतिषी तथा सौधर्म और ईशान कल्पवासी देवों की गति उपर्युक्त देवगति के समान है॥१९०॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — ये देव दो गति को प्राप्त करते हैं। विषयों में आसक्त हुए कदाचित् अन्त समय में, छह मास शेष रहने पर अथवा मंदार माला के मुरझाने पर संक्लेश परिणाम से देवगति पर्याय से च्युत होकर एकेन्द्रिय भी हो जाते हैं, फिर भी उनमें अग्निकायिक और वायुकायिक नहीं होते हैं। कदाचित् कोई देव पंचेन्द्रिय तिर्यच हो जाते हैं, वहाँ पर भी अपर्याप्तक, समूच्छन्न या भोगभूमिज नहीं हो सकते हैं।

अब तृतीय स्वर्ग से लेकर बारहवें सहस्रार स्वर्ग के देवों की आगति का प्रतिपादन करने के लिए सूत्र अवतार लेता है —

**सणक्कुमारप्पहुडि जाव सदरसहस्सारकप्पवासियदेवेसु पढमपुढवीभंगो।
णवरि चुदा त्ति भाणिदव्वं॥१९१॥**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — तृतीयस्वर्गादारभ्य द्वादशस्वर्गपर्यन्ताः देवाः द्वे गती प्राप्नुवन्ति। तिर्यग्गतिं मनुष्यगतिं च। इमे देवाः पंचेन्द्रियतिर्यञ्चः एव भवन्ति न चैकेन्द्रियाः, गर्भजाः पर्याप्ताः कर्मभूमिजाश्चैव। मनुष्यगत्यामपि न च लब्ध्यपर्याप्ताः भोगभूमिजाः कुभोगभूमिजा वा भवन्तीति ज्ञातव्यं।

अधुना आनतादिसर्वार्थसिद्धिदेवानामागतिप्रतिपादनाय एकादशसूत्राण्यवतार्यन्ते —

**आणदादि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छाइट्ठी
सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी देवा देवेहि चुदसमाणा कदि गदीओ
आगच्छंति?॥१९२॥**

एक्कं हि चेव मणुसगदिमागच्छंति॥१९३॥

**मणुसेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छि-
मेसु॥१९४॥**

सूत्रार्थ —

सनत्कुमार से लगाकर शतार-सहस्रार कल्पवासी देवों की गति प्रथम पृथिवी के नारकी जीवों की गति के समान है। केवल यहाँ 'उद्धर्तित होते हैं' के स्थान पर 'च्युत होते हैं' ऐसा कहना चाहिए॥१९१॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — तृतीय स्वर्ग से लेकर बारहवें स्वर्ग तक के देव दो गति को प्राप्त करते हैं, तिर्यग्गति और मनुष्यगति को। ये देव पंचेन्द्रिय तिर्यच ही होते हैं, एकेन्द्रिय नहीं होते हैं, उनमें भी गर्भज, पर्याप्तक और कर्मभूमिज ही होते हैं। मनुष्यगति में भी लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, भोगभूमिया या कुभोगभूमिया नहीं होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

अब आनत स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धि के देवों की आगति का प्रतिपादन करने के लिए ग्यारह सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

आनत से लगाकर नव ग्रैवेयकविमानवासी देवों में मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देव देवपर्यायों से च्युत होकर कितनी गतियों में आते हैं?॥१९२॥

उपर्युक्त देव केवल एक मनुष्यगति में ही आते हैं॥१९३॥

मनुष्यों में आने वाले उपर्युक्त देव गर्भोपक्रान्तिकों में आते हैं, सम्मुच्छिर्मों में नहीं आते॥१९४॥

गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्त-
एसु॥१९५॥

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्ज-
वासाउएसु॥१९६॥

आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवा सम्मामिच्छाइट्ठी
सम्मामिच्छत्तगुणेण देवा देवेहि णो चयंति॥१९७॥

अणुदिस जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा असंजदसम्माइट्ठी देवा
देवेहि चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ?॥१९८॥

एक्कं हि मणुसगदिमागच्छंति॥१९९॥

मणुसेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु॥२००॥

गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्त-
एसु॥२०१॥

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्ज-
वासाउएसु॥२०२॥

गर्भोपक्रान्तिक मनुष्यों में आने वाले उपर्युक्त देव पर्याप्तकों में आते हैं, अपर्याप्तकों
में नहीं आते॥१९५॥

गर्भोपक्रान्तिक पर्याप्त मनुष्यों में आने वाले उपर्युक्त देव संख्यातवर्षायुष्कों में
आते हैं, असंख्यातवर्षायुष्कों में नहीं आते॥१९६॥

आनत से लगाकर नव ग्रैवेयक तक के विमानवासी सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव
सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान सहित देवपर्यायों से च्युत नहीं होते॥१९७॥

अनुदिश से लगाकर सर्वार्थसिद्धि तक के विमानवासी असंयतसम्यग्दृष्टि देव
देवपर्यायों से च्युत होकर कितनी गतियों में आते हैं ?॥१९८॥

उपर्युक्त देव केवल एक मनुष्यगति में ही आते हैं॥१९९॥

मनुष्यों में आने वाले उपर्युक्त देव गर्भोपक्रान्तिकों में आते हैं, सम्मूर्च्छिमां में नहीं
आते॥२००॥

गर्भोपक्रान्तिक मनुष्यों में आने वाले उपर्युक्त देव पर्याप्तकों में आते हैं, अपर्याप्तकों
में नहीं आते॥२०१॥

गर्भोपक्रान्तिक पर्याप्त मनुष्यों में आने वाले उपर्युक्त देव संख्यातवर्षायुष्कों में
आते हैं, असंख्यातवर्षायुष्कों में नहीं आते॥२०२॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते। आनतादिदेवानां नवग्रैवेयकवासिनामहमिन्द्राणां च शुक्ललेश्यासहितानां मनुष्यायुर्विना अन्यायुषां बंधाभावात्।

अन्यत्रापि कथितं —

ततो उवरिमदेवा सव्वा सुक्काभिधानलेस्साए।

उप्पज्जंति मणुस्से णत्थि तिरिक्खेसु उववादो^१॥६८१॥

तथा च —

ततः परं तु ये देवास्ते सर्वेऽनन्तरे भवे।

उत्पद्यन्ते मनुष्येषु न हि तिर्यक्षु जातुचित्^२॥१७०॥

अनुदिशाविमानादारभ्य सर्वार्थसिद्धिपर्यन्ताः सर्वेऽपि देवाः सम्यग्दृष्ट्य एव। ते मनुष्यभवे आगत्य नियमात् स्वर्गगाः मोक्षगाः वा भवन्तीति ज्ञातव्यं।

एवं चतुर्थस्थले देवगतेरागतिकथनमुख्यत्वेन त्रिंशत्सूत्राणि गतानि।

अथ चतुर्गतीनामागतिप्रकरणमुपसंहियते —

नारकाः नरकेभ्यः उद्वर्त्य-निर्गत्य केचित् पंचेन्द्रियपर्याप्तसंज्ञिगर्भजतिर्यञ्चः भवन्ति, केचित् पर्याप्तमनुष्याः भवन्ति। सप्तमपृथिव्याः निर्गताः तु नियमेन तिर्यञ्चः क्रूराः एव।

तिर्यञ्चः चतुर्गतिं गच्छन्ति, केवलं षोडशस्वर्गादुपरि न गच्छन्ति। मनुष्याः चतुर्गतिषु सर्वत्रापि गच्छन्ति, सिद्धिगतिं चापि। द्रव्यस्त्रियस्तु अधस्तात् षष्ठीभूमिपर्यन्तं उपरि षोडशस्वर्गपर्यन्तमेव।

देवाः ईशानस्वर्गपर्यन्ताः एकेन्द्रियाः अपि भवन्ति। सहस्रारपर्यन्ताः कदाचित् पंचेन्द्रियतिर्यञ्चो भवन्ति

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रों का अर्थ सुगम है। आनत आदि स्वर्ग के देवों के और नवग्रैवेयकों के अहमिन्द्रों के — इन शुक्ललेश्या सहित वाले देवों के मनुष्यायु के बिना अन्य आयु का बंध नहीं होता है। तिलोयपण्णत्तिग्रंथ में कहा भी है —

इससे ऊपर के सब देव शुक्ललेश्या के साथ मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं, इनकी उत्पत्ति तिर्यचों में नहीं है॥

उसी प्रकार तत्त्वार्थसार में भी कहा है —

ईशान स्वर्ग तक के देव मरकर एकेन्द्रिय तक होते हैं और बारहवें सहस्रार स्वर्ग तक के देव मरकर तिर्यच भी हो सकते हैं तथा मनुष्य भी हो सकते हैं॥१७०॥

नव अनुदिश विमानों से लेकर अंतिम सर्वार्थसिद्धि पर्यंत सभी देव सम्यग्दृष्टि ही हैं। वे वहाँ से च्युत होकर मनुष्य भव में आकर नियम से स्वर्ग को या मोक्ष को प्राप्त करते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में देवगति की आगति का कथन करने वाले तीस सूत्र पूर्ण हुए।

अब यहाँ चारों गतियों की आगति के प्रकरण का उपसंहार करते हैं —

नारकी नरक से निकलकर कोई पंचेन्द्रिय, पर्याप्त, संज्ञी और गर्भज तिर्यच होते हैं, कोई पर्याप्त मनुष्य होते हैं। सातवीं पृथ्वी से निकलकर नारकी नियम से क्रूर तिर्यच ही होते हैं।

तिर्यच मरकर चारों गतियों में जाते हैं, केवल सोलह स्वर्ग के ऊपर नहीं जाते हैं। मनुष्य मरकर चारों गतियों में सर्वत्र भी जाते हैं और सिद्धगति को भी प्राप्त करते हैं। द्रव्य स्त्रियाँ मरकर नरक में छठी भूमि तक ही जाती हैं और ऊपर में सोलह स्वर्ग तक ही जाती हैं।

ईशान स्वर्गपर्यंत के देव च्युत होकर एकेन्द्रिय भी हो सकते हैं। सहस्रार स्वर्ग तक के देव कदाचित्

उपरितनात् च्युताः नियमेन मनुष्याः एव भवन्ति।

अतो मनुष्यगतिरेव सर्वोत्तमा वर्तते यत्र गन्तुमिच्छति मानवस्तत्र गन्तुं शक्नोति सिद्धान्तं चापि गन्तुं शक्यते। एतज्ज्ञात्वा मनुष्यपर्यायस्य फलं संयमं गृहीत्वा लक्षोपायेनापि अन्त्यसमाधिः साधनीया।

तिर्यग्गतिस्त्वशुभा तिर्यगायुः शुभप्रकृतिः कथिता सिद्धान्ते, कथमेतद् वैषम्यं ?

उक्तं च —

सादं तिण्णेवाऊ उच्चं णरसुरदुगं च पंचिंदी।

देहा बंधणसंघादंगोवंगाइं वण्णचओ॥४१॥

समचउरवज्जरिसहं उवघादूणगुरुछक्क सग्गमणं।

तसबारसट्टुसट्टी बादालमभेददो सत्था॥४२॥

घादी णीचमसादं णिरयाऊ णिरयतिरियदुगं जादी-

संठाणसंहदीणं चदुपणपणगं च वण्णचओ॥४३॥

उवघादमसग्गमणं थावरदसयं च अप्पसत्था हु।

बंधुदयं पडि भेदे अडणउदि सयं दुचदुरसीदिदरे१॥४४॥

पंचेन्द्रिय तिर्यच भी हो सकते हैं। इनसे ऊपर के स्वर्ग के देव वहाँ से च्युत होकर नियम से मनुष्य ही होते हैं। इसलिए मनुष्यगति ही सर्वोत्तम है। मनुष्य जहाँ जाना चाहता है, वहाँ जा सकता है, सिद्धान्त को भी प्राप्त कर सकता है, ऐसा जानकर मनुष्य पर्याय का फल संयम है, अतः उसे ग्रहण कर लाखों उपाय करके भी अन्त में समाधि की सिद्धि करनी चाहिए।

शंका — तिर्यचगति अशुभ है और तिर्यचायु शुभ है, ऐसा सिद्धान्तग्रंथ में कहा है, ऐसी विषमता क्यों है ? गोम्मतसार कर्मकाण्ड में कहा भी है —

सातावेदनीय, तीन आयु, उच्च गोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, पञ्चेन्द्रियजाति, पाँच शरीर, पाँच बंधन, पाँच सङ्घात, तीन अङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, उपघात बिना अगुरुलघुषट्क, प्रशस्तविहायोगति, त्रस आदि बारह ये अडसठ प्रकृतियाँ भेदविवक्षा से हैं तथा अभेदविवक्षा से पुण्यप्रकृतियाँ ४२ ही हैं॥४१-४२॥

विशेषार्थ — उपर्युक्त गाथा में कथित पुण्यप्रकृतियों में जो तीन आयु कही हैं, वे तिर्यच, मनुष्य और देवायु जानना। वर्णचतुष्क में — वर्ण-गंध-रस और स्पर्श है, किन्तु यहाँ शुभरूप वर्णादि चतुष्क को ही ग्रहण करना। इनके भेद करने पर वर्ण ५, गंध २, रस ५ और स्पर्श ८, इस प्रकार २० भेद होते हैं, सो यह कथन भेदविवक्षा से है, किन्तु अभेदविवक्षा में शुभरूप वर्णादि चार ही ग्रहण के योग्य हैं। उपघात के बिना अगुरुलघुषट्क अर्थात् अगुरुलघु-परघात-उच्छ्वास-आतप और उद्योत ये ५ प्रकृतियाँ जानना। त्रस आदि १२ प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं — त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति, निर्माण और तीर्थकर। भेदविवक्षा से तो ६८ प्रकृतियाँ कहीं और अभेदविवक्षा से ४२ प्रकृतियाँ कहीं सो इसका अभिप्राय यह है कि पाँच बंधन और ५ सङ्घात, पाँच शरीरों के अविनाभावी हैं अतः इनको पृथक् नहीं गिनने से १० प्रकृति तो ये एवं वर्णादि की २० में से सामान्य से वर्णचतुष्क कहने पर १६ प्रकृतियाँ वे कम हो गई हैं। इस प्रकार इन २६ प्रकृतियों को कम कर देने पर अभेदविवक्षा से ४२ ही प्रकृतियाँ रहती हैं एवं भेदविवक्षा से इन १६ का भी कथन होने से ६८ प्रकृतियाँ हो जाती हैं। यहाँ पृथक्-

अस्योत्तरं दीयते —

नरकगतिरशुभा तत्र गन्तुं कश्चिदपि न इच्छति तथा च तत्र गत्वा कश्चिदपि तत्र स्थातुमपि नेच्छति सत्त्वरं निर्गन्तुमिच्छति अतः तत्रावस्थानकारणं नरकायुरपि अशुभमेव। तिर्यग्गतौ गन्तुं कश्चिदपि नेच्छति किंतु तत्र गत्वा मर्तुमपि नेच्छति तत्रैव स्थातुं वाञ्छति शुभ नाम्नो नृपतिवत् अतः तिर्यग्गतिस्त्वशुभा, किंतु आयुः शुभमेव।

एतच्छ्रुतं मया महाव्रतदीक्षागुरुवर्यश्रीवीरसागराचार्यप्रवरमुखारविन्देन।

अधुनात्र शुभनृपतेः कथा निरूप्यते —

शुभनृपतेराख्यानम्

प्रणम्य परमानंदं श्रीजिनेन्द्रजगद्धितम्। शुभाख्यभूपतेर्वचमि चरित्रं विरतिप्रदम्॥१॥

मिथिलानगरे राजा शुभो राज्ञी मनोरमा। तयोर्देवरतिः पुत्रः संजातः सुगुणाकरः॥२॥

पृथक् रूप से नाम गिनाकर पुण्य (प्रशस्त) प्रकृतियों का कथन किया गया है। इसी बात को एक संक्षिप्त सूत्र द्वारा तत्त्वार्थसूत्र में उमास्वामी आचार्य ने कहा है “सातावेदनीय, शुभ आयु, नामकर्म की शुभ प्रकृतियाँ तथा शुभगोत्र (उच्चगोत्र) ये पुण्यरूप हैं।”

घातियाकर्म की ४७ प्रकृति तथा नीचगोत्र, असातावेदनीय, नरकायु, नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यगगति-तिर्यगगत्यानुपूर्वी, जाति ४, संस्थान ५, संहनन ५, (अशुभ) वर्णचतुष्क, उपघात, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावरादि १० ये अप्रशस्त (पाप) प्रकृतियाँ हैं। भेदविवक्षा से बंधरूप ९८ प्रकृतियाँ एवं उदयरूप १०० प्रकृतियाँ हैं। अभेदविवक्षा से वर्णादि की १६ प्रकृति घटाने पर बंधरूप ८२ और उदयरूप ८४ प्रकृतियाँ हैं, ऐसा जाना। ॥४३-४४॥

विशेषार्थ — यहाँ अप्रशस्तप्रकृतियों में घातिया कर्मों की प्रकृतियाँ कही गई हैं, सो घातियाकर्म तो अप्रशस्तरूप ही है। उनकी ४७ प्रकृतियाँ — ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ९, मोहनीय २८ और अन्तराय की ५ हैं तथा नीचगोत्र, असातावेदनीय, नरकायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यगगति, तिर्यगगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि ४ जाति, समचतुरस्रसंस्थान बिना न्यग्रोधमण्डलादि ५ संस्थान, वज्रर्षभनाराच बिना वज्रनाराचादिक ५ संहनन, अशुभवर्ण-गंध-रस-स्पर्श, उपघात, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और अयशस्कीर्ति इस प्रकार वर्णादि की १६ कम करने पर उदयापेक्षा ८४ प्रकृतियाँ तथा घातियाकर्म की ४७ में से सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति कम कर देने से बंधापेक्षा ८२ प्रकृतियाँ अप्रशस्त रूप से कहीं हैं। भेद विवक्षा से वर्णादि की १६ मिलने पर बंधापेक्षा ९८ एवं उदयापेक्षा सम्यग्मिथ्यात्व व सम्यक्त्वप्रकृति मिलने से १०० प्रकृतियाँ पापरूप (अप्रशस्त) कही हैं।

समाधान — इसका उत्तर देते हैं — नरकगति अशुभ है क्योंकि वहाँ कोई भी जाना नहीं चाहता है और वहाँ जाकर कोई भी वहाँ रहना नहीं चाहता है शीघ्र ही वहाँ से निकलना चाहता है, इसलिए वहाँ रहने के लिए कारणभूत ऐसी नरकायु भी अशुभ ही है तथा तिर्यगगति में कोई भी जाना नहीं चाहता है किन्तु वहाँ जाने के बाद कोई मरना भी नहीं चाहता है, वहीं पर रहना चाहता है ‘शुभ नाम’ के राजा के समान, इसलिए तिर्यगगति तो अशुभ है, किन्तु आयु तो शुभ ही है।

मैंने यह महाव्रतदीक्षाप्रदाता गुरुवर्य श्री वीरसागर आचार्यदेव के मुखारविन्द से सुना है।

अब यहाँ उन शुभ राजा की कथा निरूपित करते हैं —

जगत के हितकर्ता, परमानंदस्वरूप श्री जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार करके मैं विरतिप्रद ऐसे शुभ राजा का चरित्र कहता हूँ।

एकदा नगरे तत्र मुनीन्द्रो ज्ञानसंयुतः। नाम्ना देवगुरुर्धोमान्समायातः सुसंघभाक्॥३॥
 तदा महीपतिः सोपि शुभो भव्यजनैः सह। नत्वा मुनिं जगत्पूज्यं धर्ममाकर्ण्य पृष्ठवान्॥४॥
 अहो मुन क्व मे जन्म भविष्यति विचक्षण। तच्छ्रुत्वा स मुनिः प्राह सुधीर्देवगुरुः स्फुटम्॥५॥
 निजवर्चो गृहे राजं-स्त्वं भविष्यसि पापतः। महाक्रमिर्मुनीन्द्राणां मानसे न भयं क्वचित्॥६॥
 नगर्याश्च प्रवेशे ते विट्प्रवेशो मुखे ध्रुवम्। छत्रभंगस्तथा विद्धि साभिज्ञानमिति स्फुटम्॥७॥
 सप्तमे च दिने भूष विद्युत्पातेन ते क्षयः। भविष्यति भवेदत्र प्राणिनां पापतो न किम्॥८॥
 पुरं प्रविशतश्चापि ततस्तस्य महीपतेः। रथाश्चरणोद्घातान्मुखे गूथः प्रविष्टवान्॥९॥
 महावायुप्रवेगेन छत्रभंगोभवत्तदा। दुष्टपापोदये जन्तोः किं किं न स्याद्विरूपकम्॥१०॥
 सुतं प्राह ततो भूषः पुत्र वर्चोगृहेऽहकम्। पञ्चवर्णः कृमिः पापाद्भविष्यामि तदा त्वया॥११॥
 स हन्तव्य इति प्रोक्ता भीत्वा विद्युत्पाततः। कारयित्वा महालोह-मंजूषां तां प्रविश च॥१२॥
 तस्थौ गंगाहृदे यावत्तावत्सप्तमवासरे। सा मंजूषा स्वपापेन मत्स्येनोच्छादिता द्रुतम्॥१३॥
 तस्मिन्नेव क्षणे कष्टं विद्युत्पातेन स प्रभुः। मृत्वा वर्चोगृहे जातः कृमिजन्तुः स्वपापतः॥१४॥

मिथिला नगर के राजा शुभ की रानी मनोरमा के देवरति नाम का एक पुत्र था। देवरति गुणवान और बुद्धिमान था। किसी प्रकार का दोष या व्यसन उसे छू तक न गया था।

एक दिन देवगुरु नाम के अवधिज्ञानी मुनिराज अपने संघ को साथ लिये मिथिला में आये। शुभ राजा तब बहुत से भव्यजनों के साथ मुनि पूजा के लिए गया। मुनिसंघ की सेवा पूजा कर उसने धर्मोपदेश सुना। अन्त में उसने अपने भविष्य के संबंध का मुनिराज से प्रश्न किया — योगीराज, कृपाकर बतलाइये कि आगे मेरा जन्म कहाँ होगा ? उत्तर में मुनि ने कहा — राजन्, सुनिए! पापकर्मों के उदय से तुम्हें आगे के जन्म में तुम्हारे ही पाखाने में एक बड़े कीड़े की देह प्राप्त होगी, शहर में घुसते समय तुम्हारे मुँह में विष्टा प्रवेश करेगा, तुम्हारा छत्रभंग होगा और आज के सातवें दिन बिजली गिरने से तुम्हारी मौत होगी। सच है, जीवों के पाप के उदय से सभी कुछ होता है। मुनिराज ने ये सब बातें राजा से बड़े निडर होकर कहीं और यह ठीक भी है कि योगियों के मन में किसी प्रकार का भय नहीं रहता।

मुनि का शुभ के संबंध का भविष्य कथन सच होने लगा। एक दिन बाहर से लौटकर जब वे शहर में घुसने लगे तब घोड़े के पाँवों की ठोकर से उड़े हुए थोड़े से विष्टा का अंश उनके मुँह में आ गिरा और यहाँ से वे थोड़े ही आगे बढ़े होंगे कि एक जोर की आँधी ने उनके छत्र को तोड़ डाला। सच है, पापकर्मों के उदय से क्या नहीं होता ? उन्होंने तब अपने पुत्र देवरति को बुलाकर कहा — बेटा, मेरे कोई ऐसा पापकर्म का उदय आवेगा, उससे मैं मरकर अपने पाखाने में पाँच रंग का कीड़ा होऊँगा, सो तुम उस समय मुझे मार डालना। इसलिए कि फिर मैं कोई अच्छी गति प्राप्त कर सकूँ। उक्त घटना को देखकर शुभ को यद्यपि यह एक तरह से निश्चय सा हो गया था कि मुनिराज की कही बातें सच्ची हैं और वे अवश्य होंगी पर तब भी उनके मन में कुछ-कुछ संदेह बना रहा और इसी कारण बिजली गिरने के भय से डरकर उन्होंने एक लोहे की बड़ी मजबूत संदूक मंगवाई और उसमें बैठकर गंगा के गहरे जल में उसे रख आने को नौकरों को आज्ञा की। इसलिए कि जल में बिजली का असर नहीं होता। उन्हें आशा थी कि मैं इस उपाय से रक्षा पा जाऊँगा। पर उनकी यह बेसमझी थी। कारण प्रत्यक्षज्ञानियों की कोई बात कभी झूठी नहीं होती। जो हो, सातवाँ दिन आया। आकाश में बिजलियाँ चमकने लगीं। उसी समय दुर्भाग्य से

स देवरतिपुत्रेण मार्यमाणोऽपि विट्चयम्। प्रणश्य गतवानित्थं भुंक्ते जन्तुः स्वकर्मकम्॥१५॥
 तदा देवरतेर्वाक्या-च्छ्रुत्वा तद्वृत्तकं जनाः। भीत्वा संसारचेष्टायां जिनधर्मे तरां रताः॥१६॥
 सोऽपि देवरतिर्धीमान्महावैराग्यभावतः। विधासय संसृतेर्निन्दां मुनिजातो विचक्षणः॥१७॥
 सकलभुवनसारं दत्तसंसारपारं, दुरितशतनिवारं यस्य वाक्यं सुतारम्।
 स सृजतु जिनदेवो देवदेवेन्द्रबन्धो, निजचरणसुसेवां मुक्तिपर्यन्तमुच्चैः॥१८॥
 इति ज्ञात्वा शुभाशुभप्रकृतिभ्यो विरज्य सिद्धपदप्राप्त्यर्थं प्रयत्नो विधेयः।

एक बड़े मच्छ ने राजा के उस सन्दूक को एक ऐसा जोर का उथेला दिया कि सन्दूक जल से बाहर दो हाथ ऊँचे तक उछल आई। सन्दूक का बाहर होना था कि इतने में बड़े जोर से कड़क कर उस पर बिजली आ गिरी। खेद है कि उस बिजली के गिरने से राजा अपने यत्न में कामयाब न हुए और आखिर वे मौत के मुँह में पड़ ही गये। मरकर वह मुनिराज के कहे अनुसार पाखाने में कीड़ा हुए। पिता के कहे अनुसार जब देवरति ने जाकर देखा तो सचमुच एक पाँच रंग का कीड़ा उसे देख पड़ा और तब उसने उसे मार डालना चाहा। पर जैसे ही देवरति ने हाथ का हथियार उसके मारने को उठाया, वह कीड़ा उस विष्टा के ढेर में घुस गया। देवरति को इससे बड़ा ही अचम्भा हुआ। उसने जिन-जिनसे इस घटना का हाल कहा, उन सबको संसार की इस भयंकर लीला को सुनकर बड़ा डर मालूम हुआ। उन्होंने तब संसार का बंधन काट देने के लिए जैनधर्म का आश्रय लिया, कितनों ने सब माया-ममता तोड़ जिनदीक्षा ग्रहण की और कितनों ने अभ्यास बढ़ाने को पहले श्रावकों के व्रत ही लिये।

देवरति को इस घटना से बड़ा अचम्भा हो रहा था, सो एक दिन उसने अवधिज्ञानी मुनिराज से इसका कारण पूछा — भगवन्, क्यों तो मेरे पिता ने मुझसे कहा कि मैं विष्टा में कीड़ा होऊँगा सो मुझे तू मार डालना और जब मैं उस कीड़े को मारने जाता हूँ तब वह भीतर ही भीतर घुसने लगता है। मुनि ने इसके उत्तर में देवरति से कहा — भाई, जीव गतिसुखी होता है। फिर चाहे वह कितनी ही बुरी से बुरी जगह भी क्यों न पैदा हो। वह उसी में अपने को सुखी मानेगा, वहाँ से कभी मरना पसंद न करेगा। यही कारण है कि जब तक तुम्हारे पिता जीते थे, तब तक उन्हें मनुष्य जीवन से प्रेम था, उन्होंने न मरने के लिए यत्न भी किया, पर उन्हें सफलता न मिली और ऐसी उच्च मनुष्यगति से वे मरकर कीड़ा होंगे, सो भी विष्टा में, इसका उन्हें बहुत खेद था। पर अब उन्हें वही जगह अत्यन्त प्यारी है, वे मरना पसन्द नहीं करते, इसलिए जब तुम इस कीड़े को मारने जाते हो, तब वह भीतर घुस जाता है। इसमें आश्चर्य और खेद करने की कोई बात नहीं। संसार की स्थिति ही ऐसी है। मुनिराज द्वारा यह मार्मिक उपदेश सुनकर देवरति को बड़ा वैराग्य हुआ। वह संसार को छोड़कर इसलिए कि उसमें कुछ सार नहीं है, मुनिपद स्वीकार कर आत्महित साधक योगी हो गया।

जिनके वचन पापों के नाश करने वाले हैं, सर्वोत्तम है और संसार का भ्रमण मिटाने वाले हैं, वे देवों द्वारा पूजे जाने वाले जिन भगवान् मुझे तब तक अपने चरणों की सेवा का अधिकार दें, जब तक कि मैं कर्मों का नाश कर मुक्ति प्राप्त न कर लूँ।

यहाँ ऐसा जानकर शुभ-अशुभ प्रकृतियों से विरक्त होकर सिद्धपद की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

अथ गुणोत्पादननाम चतुर्थोऽन्तराधिकारः

अथ त्रिभिः स्थलैः एकचत्वारिंशत्सूत्रैः नवमीचूलिकायां चतुर्गतिषु गुणोत्पादननामा चतुर्थोऽन्तराधिकारः कथ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले नरकगतेः निर्गत्य कानि कानि गुणोत्पादनानि कुर्वन्ति इति प्रतिपादनपरत्वेन “अधो सत्तमाए” इत्यादि अष्टादशसूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले तिर्यग्मनुष्यौ कानि कानि गुणोत्पादनानि कुर्वन्तीति निरूपणत्वेन “तिरिक्खा मणुस्सा” इत्यादिसूत्रपंचकं। ततः परं तृतीयस्थले देवाः तत्रगतेः च्युताः कानि कानि स्थानानि प्राप्नुवन्ति इति कथनमुख्यत्वेन “देवगदीए देवा” इत्यादिसूत्राष्टादश इति समुदायपातनिका सूचिता भवति।

अधुना सप्तमपृथिवीगतनारकाणां अनुत्पादनगुणप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइया णिरयादो णेरइया उवट्टिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ?।।२०३।।

एककं हि चेव तिरिक्खगदिमागच्छंति।।२०४।।

तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा छण्णो उप्पाएन्ति — आभिणि-
बोहियणाणं णो उप्पाएन्ति, सुदणाणं णो उप्पाएन्ति, ओहिणाणं णो उप्पाएन्ति,
सम्मामिच्छत्तं णो उप्पाएन्ति, सम्मत्तं णो उप्पाएन्ति, संजमासंजमं णो
उप्पाएन्ति।।२०५।।

अब यहाँ गुणोत्पादन नाम का चौथा अन्तराधिकार कहते हैं —

अब यहाँ तीन स्थलों द्वारा इकतालीस सूत्रों से नवमी चूलिका में चारों गतियों में ‘गुणोत्पादन’ नाम का चौथा अन्तराधिकार कहते हैं — उसमें प्रथम स्थल में नरकगति से निकलकर किन-किन गुणों को उत्पन्न करते हैं, ऐसा प्रतिपादन करने वाले “अधोसत्तमाए” इत्यादि अठारह सूत्र कहेंगे। इसके बाद दूसरे स्थल में तिर्यच और मनुष्य किन-किन गुणों को उत्पन्न करते हैं, ऐसा निरूपण करने वाले ‘तिरिक्खामणुस्सा’ इत्यादि पाँच सूत्र कहेंगे। इसके अनंतर तृतीय स्थल में देव देवगति से च्युत होकर किन-किन स्थानों को प्राप्त करते हैं, ऐसे कथन की मुख्यता से ‘देवगदीए देवा’ इत्यादि अठारह सूत्र कहेंगे। इस प्रकार यह समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब सातवीं भूमि के नारकियों के अनुत्पादन गुणों का प्रतिपादन करने के लिए तीन सूत्र अवतार लेते हैं —
सूत्रार्थ —

नीचे सातवीं पृथिवी के नारकी नरक से निकलकर कितनी गतियों में आते हैं ?।।२०३।।

सातवीं पृथिवी से निकले हुए नारकी जीव केवल एक तिर्यचगति में आते हैं।।२०४।।

तिर्यचों में उत्पन्न होने वाले तिर्यच इन छह की उत्पत्ति नहीं करते — आभिनिबोधिक ज्ञान को उत्पन्न नहीं करते, श्रुतज्ञान को उत्पन्न नहीं करते, अवधिज्ञान को उत्पन्न नहीं करते, सम्यग्मिथ्यात्व गुण को उत्पन्न नहीं करते, सम्यक्त्व को उत्पन्न नहीं करते और संयमासंयम को उत्पन्न नहीं करते।।२०५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति।

कश्चिदाह — द्वे सूत्रे पूर्वोक्तत्वा कृतात् न वक्तव्ये स्तः ?

परिहरति आचार्यदेवः — नैष दोषः, जडमतिशिष्यानुग्रहहेतुत्वात्।

सप्तमपृथिवीतः निर्गताः नारकाः नियमेन तिर्यञ्चो भवन्ति, ते च तस्मिन् पर्याये षट्गुणान् नोत्पादयन्ति, मति-श्रुत-अवधिज्ञानानि, सम्यग्मिथ्यात्वं, सम्यक्त्वं संयमासंयमं च।

तीर्थकरादीनां प्रतिषेधोऽत्र किन्न कृतः ?

न, तिर्यक्षु तेषां संभवाभावात्। सर्वस्य प्रतिषेधस्य पूर्वं प्रतिषेध्यवस्तुनः उपलंभात्।

सासादनगुणस्थानस्य प्रतिषेधः किन्न कृतः ?

न, सम्यक्त्वे प्रतिषिद्धे तत्तः सम्यक्त्वात् उत्पद्यमानसासादनसम्यक्त्वगुणस्थानप्रतिषेधस्य अनुक्तसिद्धेः।

षष्ठीपृथिव्याः निर्गता जीवा के गती कान् गुणांश्चोत्पादयन्तीति प्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

छट्ठीए पुढवीए णेरइया णिरयादो णेरइया उवट्टिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति॥२०६॥

दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव॥२०७॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रों का अर्थ सुगम है।

शंका — कोई कहता है — दोनों सूत्र पूर्वकथित हैं, अतः उन्हें यहाँ नहीं कहना चाहिए ?

समाधान — आचार्यदेव परिहार करते हैं — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि यहाँ पुनरुक्ति का हेतु जडमति शिष्यों पर अनुग्रह करना है।

सातवीं पृथिवी से निकले हुए नारकी नियम से तिर्यच ही होते हैं और वे अप्रियाय में छह गुणों को उत्पन्न नहीं कर पाते हैं — १. मतिज्ञान, २. श्रुतज्ञान, ३. अवधिज्ञान, ४. सम्यग्मिथ्यात्व, ५. सम्यक्त्व और ६. संयमासंयम।

शंका — तीर्थकरादि का यहाँ प्रतिषेध क्यों नहीं किया ?

समाधान — नहीं, क्योंकि तीर्थकरादिकों का तिर्यचों में होना संभव नहीं है। सर्व प्रतिषेध में पहले प्रतिषेध्य वस्तु की उपलब्धि पाई जाती है।

शंका — तिर्यचों में सासादन गुणस्थान की प्राप्ति का प्रतिषेध क्यों नहीं किया ?

समाधान — नहीं, क्योंकि सम्यक्त्व का प्रतिषेध कर देने पर सम्यक्त्व से उत्पन्न होने वाले सासादनसम्यक्त्व गुण के प्रतिषेध की सिद्धि बिना कहे ही हो जाती है।

अब छठी पृथिवी से निकले हुए जीव किन गतियों को और किन-किन गुणों को उत्पन्न करते हैं, ऐसा प्रतिपादन करने के लिए तीन सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

छठवीं पृथिवी के नारकी नरक से नारकी होते हुए निकलकर कितनी गतियों में आते हैं ?॥२०६॥

छठवीं पृथिवी से निकलने वाले नारकी जीव दो गतियों में आते हैं — तिर्यचगति और मनुष्यगति॥२०७॥

तिरिक्ख-मणुस्सेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा मणुसा केइं छ उप्पाएन्ति—
केइं आभिणिबोहियणाणमुप्पाएन्ति, केइं सुदणाणमुप्पाएन्ति, केइमोहिणाण-
मुप्पाएन्ति, केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएन्ति, केइं सम्मत्तं उप्पाएन्ति, केइं
संजमासंजममुप्पाएन्ति॥२०८॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमः।

सासादनसम्यक्त्वं सम्यक्त्वे प्रविशति इति पृथग्नोक्तं।

शेषं संयमादिकं नोत्पादयन्ति इति कथं ज्ञायते ?

विधेरभावात्। ये गुणाः यस्मिन् स्थाने संभवन्ति, तीर्थकरदेवाः तान् प्रतिपादयन्त्येव इति ज्ञातव्यं।

पंचमीचतुर्थीपृथ्वीतः निर्गतनारकाः के गती कान् गुणांश्चोत्पादयन्तीति प्रतिपादनाय सूत्राष्टकमवतार्यते—

पंचमीए पुढवीए णेरइया णेरइयादो णेरइया उव्वट्टिदसमाणा कदि
गदीओ आगच्छंति ?॥२०९॥

दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं चेव मणुसगदिं चेव॥२१०॥

तिर्यच और मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले तिर्यच व मनुष्य कोई छह उत्पन्न करते हैं—कोई आभिनिबोधिक ज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई श्रुतज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई अवधिज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यग्मिथ्यात्व उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं और कोई संयमासंयम उत्पन्न करते हैं॥२०८॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — सूत्रों का अर्थ सुगम है। सासादन सम्यक्त्व सम्यक्त्व में ही गर्भित है अतः उसे पृथक् नहीं कहा है।

शंका — छठी पृथिवी से आकर तिर्यच और मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले तथा उक्त जीव संयम आदि को उत्पन्न नहीं करते अर्थात् ये तिर्यच और मनुष्य संयमादि शेष गुणों को उत्पन्न नहीं करते, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान — क्योंकि उनके संयमादि उत्पन्न करने का विधान नहीं किया गया।

जो गुण जिस स्थान में संभव हैं, तीर्थकर भगवान् उनका प्रतिपादन करते ही हैं, ऐसा जानना चाहिए।

अब पाँचवीं और चौथी नरकभूमि से निकलकर जीव किन गतियों को और किन गुणों को उत्पन्न करते हैं, ऐसा प्रतिपादन करने के लिए आठ सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

पाँचवीं पृथिवी के नारकी जीव नरक से नारकी होते हुए निकलकर कितनी गतियों में आते हैं ?॥२०९॥

पाँचवीं पृथिवी से निकलकर नारकी जीव दो गतियों में आते हैं—तिर्यचगति और मनुष्यगति॥२१०॥

तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा केइं छ उप्पाएंति।।२११।।

मणुस्सेसु उववण्णल्लया मणुसा केइमट्टमुप्पाएंति — केइमाभिणि-
बोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइमोहिणाणमुप्पाएंति, केइं
मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति,
केइं संजमासंजममुप्पाएंति, केइं संजममुप्पाएंति।।२१२।।

चउत्थी पुढवीए णेरइया णिरयादो णेरइया उव्वट्टिदसमाणा कदि गदीओ
आगच्छंति ?।।२१३।।

दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगइं चेव मणुसगइं चेव।।२१४।।

तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा केइं छ उप्पाएंति।।२१५।।

मणुस्सेसु उववण्णल्लया मणुसा केइं दस उप्पाएंति — केइमाभिणि-
बोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइमोहिणाणमुप्पाएंति, केइं
मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केइं केवलणाणमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्त-
मुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति, केइं संजमासंजममुप्पाएंति, केइं संजम-

तिर्य्यचों में उत्पन्न होने वाले तिर्य्यच कोई छह उत्पन्न करते हैं।।२११।।

मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले मनुष्य कोई आठ को उत्पन्न करते हैं — कोई
आभिनिबोधिक ज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई श्रुतज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई अवधिज्ञान
उत्पन्न करते हैं, कोई मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यग्मिथ्यात्व उत्पन्न करते
हैं, कोई सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं, कोई संयमासंयम उत्पन्न करते हैं और कोई संयम
उत्पन्न करते हैं।।२१२।।

चौथी पृथिवी के नारकी जीव नरक से नारकी होते हुए निकलकर कितनी गतियों
में आते हैं ?।।२१३।।

चौथी पृथिवी से निकलने वाले नारकी जीव दो गतियों में आते हैं — तिर्य्यचगति
और मनुष्यगति।।२१४।।

तिर्य्यचों में उत्पन्न होने वाले तिर्य्यच कोई छह उत्पन्न करते हैं।।२१५।।

मनुष्यों में होने वाले मनुष्य कोई दश उत्पन्न करते हैं — कोई आभिनिबोधिक ज्ञान
उत्पन्न करते हैं, कोई श्रुतज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई अवधिज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई
मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई केवलज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यग्मिथ्यात्व

मुप्पाएन्ति। णो बलदेवत्तं वासुदेवत्तं णो चक्कवट्ठित्तं णो तित्थयरत्तं।
केइमंतयडा होदूण सिज्झन्ति बुज्झन्ति मुच्चन्ति परिणिव्वाणयन्ति सव्वदुक्खाण-
मंतं परिविजाणन्ति॥२१६॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते। पंचम्याः पृथिव्याः निर्गताः केचित् मनुष्याः मुनयो
भूत्वा मनःपर्ययज्ञानिनोऽपि भवन्ति तीव्रसंक्लेशपरिणामाभावात्, किन्तु न ते केवलज्ञानिनो भवितुमर्हन्ति।

उक्तं चान्यत्रापि — निर्गताः खलु पञ्चम्याः लभन्ते केचन व्रतम्।

प्रयान्ति न पुनर्मुक्तिं भावसंक्लेशयोगतः^१॥

चतुर्थ्याः उद्वर्तिताः केचित् तिर्यक्षु उत्पन्नाः षडेव उत्पादयन्ति, नाधिकान् — मतिश्रुतावधिसम्यक्त्व-
सम्यग्मिथ्यात्वसंयमासंयमान् चेति।

चतुर्भ्याः निर्गताः यदि मनुष्याः भवन्ति तर्हि केचित् दशगुणान् उत्पादयन्ति। अन्यत्र चापि कथितं —
लभन्ते निर्वृत्तिं केचिच्चतुर्थ्याः निर्गताः क्षितेः।

न पुनः प्राप्नुवन्त्येव पवित्रां तीर्थकर्तृताम्^२॥

इमे अन्तकृतकेवलिनोऽपि भवितुमर्हन्ति।

अष्टकर्मणामंतं विनाशं कुर्वन्तीति अन्तकृतः। अन्तकृतो भूत्वा, 'सिज्झन्ति' — सिद्ध्यन्ति निस्तिष्ठन्ति
निष्पद्यन्ते स्वरूपेणेत्यर्थः। 'बुज्झन्ति' — त्रिकालगोचरानन्तार्थ-व्यञ्जनपरिणामात्मकाशेषवस्तुतत्त्वं बुद्ध्यन्ति

उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं, कोई संयमासंयम उत्पन्न करते हैं और
कोई संयम उत्पन्न करते हैं। वे न बलदेवत्व उत्पन्न करते, न वासुदेवत्व, न चक्रवर्तित्व
और न तीर्थकरत्व। कोई अन्तकृत होकर सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं,
परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं, वे सर्व दुःखों के अन्त होने का अनुभव करते हैं॥२१६॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रों का अर्थ सुगम है। पाँचवीं पृथिवी से निकलकर मनुष्य हुए कोई
जीव मुनि होकर मनःपर्ययज्ञानी भी होते हैं क्योंकि उनके तीव्र संक्लेश परिणामों का अभाव है, किन्तु वे
केवलज्ञानी नहीं हो सकते हैं। तत्त्वार्थसार में भी कहा है —

पाँचवें नरक से निकलकर कोई मनुष्य होकर व्रतों को प्राप्त कर सकते हैं किन्तु मोक्ष नहीं प्राप्त कर
सकते हैं, क्योंकि उनके भावों में संक्लेश रहता है॥

चौथी पृथिवी से निकलकर कोई तिर्यचों में उत्पन्न होकर छह गुणों को उत्पन्न कर सकते हैं, अधिक
नहीं, वे छह हैं — मति, श्रुत, अवधिज्ञान, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और संयमासंयम।

चौथी पृथिवी से निकले हुए यदि मनुष्य होते हैं, तो कोई दशों गुणों को भी उत्पन्न कर लेते हैं।

तत्त्वार्थसार में भी कहा है —

चौथी पृथिवी से निकलकर मनुष्य होकर ये मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु तीर्थकर नहीं हो सकते हैं॥

ये अन्तकृत केवली भी हो सकते हैं।

जो आठ कर्मों का अन्त अर्थात् विनाश करते हैं, वे अन्तकृत कहलाते हैं। अन्तकृत होकर सिद्ध होते हैं,
निष्ठित होते हैं वे अपने स्वरूप से निष्पन्न होते हैं, ऐसा अर्थ जानना चाहिए। 'जानते हैं' अर्थात् त्रिकालगोचर

अवगच्छन्तीत्यर्थः।

केवलज्ञाने समुत्पन्नेऽपि सर्वं न जानातीति कपिलो ब्रूते तन्मतनिराकरणार्थं बुद्ध्यन्ते इत्युच्यते। मोक्षो हि नाम बन्धपूर्वकः, बन्धश्च न जीवस्यास्ति, अमूर्तत्वान्नित्यत्वाच्चेति। तस्माज्जीवस्य न मोक्षः इति नैयायिक-वैशेषिक-सांख्य-मीमांसकमतम्। एतन्निराकरणार्थं 'मुच्चंति' इति प्रतिपादितम्।

परिणिव्वाणयंति — अशेषबन्धमोक्षे सत्यपि न परिनिर्वान्ति, सुखदुःखहेतुशुभाशुभकर्मणां तत्रासत्त्वादिति तार्किकयोर्मतम्। तन्निराकरणार्थं परिनिर्वान्ति अनन्तसुखा भवन्तीत्युच्यते। यत्र सुखं तत्र निश्चयेन दुःखमप्यस्ति दुःखाविनाभावित्वासुखस्येति तार्किकयोर्मतं, तन्निराकरणार्थं सर्वदुःखानामन्तं परिविजाणंति इति उच्यते। सर्वदुःखानामन्तं पर्यवसानं परिविजानन्ति गच्छन्तीत्यर्थः। कुतः? दुःखहेतुकर्मणां विनष्टत्वात्, स्वास्थ्यलक्षणस्य सुखस्य जीवस्य स्वाभाविकत्वात् इति।

स्वेषु तिष्ठन्तीति स्वस्थाः सिद्धपरमेष्ठिनः, तेषां सुखं स्वास्थ्यलक्षणं। श्रीसमन्तभद्रस्वामिनापि कथितं —

स्वास्थ्यं यदात्यन्तिकमेष पुंसां, स्वार्थो न भोगः परिभंगुरात्मा।

तृषोऽनुषङ्गाच्च तापशान्ति-रितीदमाख्यद् भगवान् सुपार्श्वः^१॥

अन्यत्रापि उक्तं — आत्मोत्थमात्मना साध्यमव्याबाधमनुत्तरम्।

अनंतस्वास्थ्यमानंदमतृष्णमपवर्गजम्^२॥

अनन्त अर्थ और व्यंजन पर्यायात्मक अशेष वस्तु तत्त्व को जानते हैं व समझते हैं।

कपिल का कहना है कि केवलज्ञान उत्पन्न होने पर भी सब वस्तु स्वरूप का ज्ञान नहीं होता। अतः उनके मत का निराकरण करने के लिए 'बुद्ध होते हैं' यह पद कहा गया है। मोक्ष बन्धपूर्वक ही होता है, किन्तु जीव के तो बंध ही नहीं है, क्योंकि जीव अमूर्त है और नित्य है। अतएव जीव का मोक्ष नहीं होता। ऐसा नैयायिक, वैशेषिक, सांख्य और मीमांसकों का मत है। इसी मत के निराकरणार्थ 'मुक्त होते हैं' ऐसा प्रतिपादित किया गया है। परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं, इस पद की सार्थकता इस प्रकार है— अशेष बंध का मोक्ष हो जाने पर भी जीव परिनिर्वाण को प्राप्त नहीं होते, क्योंकि उस मुक्त अवस्था में सुख के हेतु शुभ कर्म और दुःख के हेतु अशुभ कर्मों का अभाव पाया जाता है, ऐसा दोनों तार्किकों का मत है। इसी तार्किकमत के निराकरणार्थ 'परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं' अर्थात् अनन्त सुख का उपभोग करने वाले होते हैं, ऐसा कहा गया है। जहाँ सुख है वहाँ निश्चय से दुःख भी है क्योंकि सुख का दुःख के साथ अविनाभावी संबंध है, ऐसा दोनों ही तार्किकों का मत है। उसी मत के निराकरणार्थ 'सर्व दुःखों के अन्त होने का अनुभव करते हैं' ऐसा कहा गया है। इसका अर्थ यह है कि वे जीव समस्त दुःखों के अन्त अर्थात् अवसान को पहुँच जाते हैं, क्योंकि उनके दुःख के हेतुभूत कर्मों का विनाश हो जाता है और स्वास्थ्यलक्षण सुख जो जीव का स्वाभाविक गुण है, वह प्रकट हो जाता है।

जो अपनी आत्मा में स्थित होते हैं, वे स्वस्थ कहलाते हैं, वे सिद्ध परमेष्ठी ही हैं, उनका सुख 'स्वास्थ्य लक्षण' से सहित है।

श्री समन्तभद्रस्वामी ने भी कहा है—

पुरुषों का आत्यंतिक स्वास्थ्य है वही स्वार्थ है, वह भोग नहीं है क्योंकि भोग क्षणभंगुर है। इनसे तृष्णा की वृद्धि होती है और तृष्णा से ताप की शांति नहीं होती। श्री सुपार्श्वनाथ भगवान ने ऐसा कहा है॥

क्षत्रचूड़ामणि में भी कहा है—

आत्मा से उत्पन्न हुआ आत्मा के द्वारा साध्य, अव्याबाध, अनुत्तर जो सुख है, वह अनंत स्वास्थ्य

तथैव च —

आत्मज्ञातृतया ज्ञानं, सम्यक्त्वं चरितं हि सः।

स्वस्थो दर्शनचारित्रमोहाभ्यामनुपप्लुतः^१॥

संप्रति तृतीयद्वितीयप्रथमपृथिवीभ्यः निर्गताः कान् कान् गुणानुत्पादयन्तीति प्रतिपादनाय सूत्रचतुष्कमवतार्यते —

तिसु उवरिमासु पुढवीसु णेरइया णिरयादो णेरइया उव्वट्टिदसमाणा
कदि गदीओ आगच्छंति ?॥२१७॥

दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव॥२१८॥

तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा केइं छ उप्पाएंति॥२१९॥

मणुसेसु उववण्णल्लया मणुस्सा केइमेक्कारस उप्पाएंति — केइमाभिणि-
बोहिय-णाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइं मणपज्ज-वणाणमुप्पा-
एंति, केइमोहिणाण-मुप्पाएंति, केइं केवलणाणमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्त-

कहलाता है, वह आनंदस्वरूप है, तृष्णा से रहित है और मोक्ष में ही होता है।

उसी प्रकार तत्त्वार्थसार में श्री अमृतचंद्रसूरि ने कहा है —

जो जानता है वह आत्मा है। जानता है ज्ञान, इसलिए ज्ञान ही आत्मा है। इसी प्रकार जो सम्यक् श्रद्धान करता है, वह श्रद्धानी या आत्मा कहलाता है। श्रद्धान करता है सम्यग्दर्शन, इसलिए वही श्रद्धानी है, वही आत्मा है। जो उपेक्षित होता है वह आत्मा है। उपेक्षित होता है उपेक्षागुण, इसलिए वही आत्मा है अथवा वह आत्मा ही है। यह अभेदरूप रत्नत्रय का स्वरूप है। ऐसी अभेदरूप स्वस्थ दशा उसी तपस्वी की हो सकती है, जो दर्शनमोहनीय तथा चारित्रमोहनीय के उदयाधीन नहीं रहता है।

अब तीसरी, दूसरी और पहली पृथिवी से निकलकर जीव किन-किन गुणों को उत्पन्न करते हैं, ऐसा प्रतिपादन करने के लिए नव सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

ऊपर की तीन पृथिवियों के नारकी जीव नरक से नारकी होते हुए निकलकर
कितनी गतियों में आते हैं ?॥२१७॥

ऊपर की तीन पृथिवियों से निकलने वाले नारकी जीव दो गतियों में आते हैं —
तिर्य्यचगति और मनुष्यगति॥२१८॥

ऊपर की तीन पृथिवियों से निकलकर तिर्य्यचों में उत्पन्न होने वाले तिर्य्यच कोई छह
उत्पन्न करते हैं॥२१९॥

ऊपर की तीन पृथिवियों से निकलकर मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले मनुष्य कोई
ग्यारह उत्पन्न करते हैं — कोई आभिनिबोधिक ज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई श्रुतज्ञान

मुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति, केइं संजमासंजममुप्पाएंति, केइं संजममुप्पाएंति। णो बलदेवत्तं णो वासुदेवत्तमुप्पाएंति, णो चक्कवट्ठि-मुप्पाएंति। केइं तित्थयरत्तमुप्पाएंति, केइमंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुक्खाणमंतं परिविजाणंति।।२२०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। उपरि तिसृभ्यः उद्वर्तिताः तिर्यक्षु उत्पन्नाः केचित् मतिश्रुतावधिज्ञानानि सम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वसंयमासंयमांश्चोत्पादयन्ति। मनुष्येषु उत्पन्नाः केचित् एकादशगुणान् उत्पादयन्ति। मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानानि, सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वं संयमासंयमं संयमं च तीर्थकरत्वं मोक्षं चापि, किंतु नरकेभ्यः निर्गत्य केचिदपि बलदेववासुदेव चक्रधरत्वानि नोत्पादयन्ति।

एवं प्रथमस्थले नरकेभ्यः निर्गत्य कान् कान् गुणान् उत्पादयन्ति ? इति निरूपणत्वेन अष्टादशसूत्राणि गतानि।

अधुना तिर्यग्मनुष्याभ्यां आगत्य कान् कान् गुणान् उत्पादयन्तीतिप्रतिपादनाय सूत्रपंचकमवतार्यते—

तिरिक्खा मणुसा तिरिक्ख-मणुसेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ?।।२२१।।

उत्पन्न करते हैं, कोई मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई अवधिज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई केवलज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यग्मिथ्यात्व उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं, कोई संयमासंयम उत्पन्न करते हैं और कोई संयम उत्पन्न करते हैं। किन्तु वे जीव न बलदेवत्व उत्पन्न करते, न वासुदेवत्व उत्पन्न करते, और न चक्रवर्तित्व उत्पन्न करते हैं। कोई तीर्थकरत्व उत्पन्न करते हैं, कोई अन्तकृत् होकर सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं, वे सर्व दुःखों के अन्त होने का अनुभव करते हैं।।२२०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रों का अर्थ सुगम है। ऊपर की तीन पृथिवियों से निकलकर तिर्यचों में उत्पन्न हुए कोई जीव मति, श्रुत, अवधिज्ञान, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और संयमासंयम को उत्पन्न करते हैं। मनुष्यों में उत्पन्न हुए कोई जीव ग्यारहों गुणों को उत्पन्न कर लेते हैं — मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञान, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, संयमासंयम, संयम, तीर्थकरत्व और मोक्ष, इन ग्यारह स्थानों को भी प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु नरक से निकलकर कोई भी बलभद्र, नारायण और चक्रवर्ती नहीं हो सकते हैं।

इस प्रकार प्रथम स्थल में नरक से निकलकर किन-किन गुणों को उत्पन्न करते हैं, ऐसा निरूपण करते हुए अठारह सूत्र पूर्ण हुए।

अब तिर्यच और मनुष्यों से आकर किन-किन गुणों को उत्पन्न करते हैं, ऐसा प्रतिपादन करने के लिए पाँच सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

तिर्यच व मनुष्य, तिर्यच व मनुष्यपर्यायों से मरण करके, कितनी गतियों में जाते हैं ?।।२२१।।

चत्तारि गदीओ गच्छंति णिरयगदिं तिरिक्खगदिं मणुसगदिं देवगदिं
चेदि।।२२२।।

णिरय-देवेसु उववण्णल्लया णिरय-देवा केइं पंचमुप्पाएंति,
केइमाभिणिबोहिय-णाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइमोहिणा-
णमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति।।२२३।।

तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा मणुसा केइं छ उप्पाएंति।।२२४।।

मणुसेसु उववण्णल्लया तिरिक्ख-मणुस्सा जहा चउत्थपुढवीए भंगो।।२२५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति।

अन्यत्रापि उक्तं — संखेज्जाउवमाणा मणुवा णरतिरियदेवणिरएसुं।

सब्बेसुं जायंते सिद्धगदीओ वि पावंति^१।।२९४४।।

ते संखातीदाऊ जायंते केइ जाव ईसाणं।

ण हु होंति सलायणरा जम्मम्मि अणंतरे केइं।।२९४५।।

यदि कदाचित् तिर्यञ्चः मनुष्या वा नरकेषु स्वर्गेषु वा गच्छन्ति तर्हि तत्र पंचगुणानेवोत्पादयन्ति, न च
संयमासंयमं संयमं वा। तत्र चतुर्थगुणस्थानान्त्यमेव।

तिर्यच व मनुष्य मरण करके चारों गतियों में जाते हैं — नरकगति, तिर्यचगति,
मनुष्यगति और देवगति।।२२२।।

तिर्यच व मनुष्य मरण करके नरक व देवों में उत्पन्न होने वाले नारकी व देव कोई
पाँच उत्पन्न करते हैं — कोई आभिनिबोधिक ज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई श्रुतज्ञान उत्पन्न
करते हैं, कोई अवधिज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यग्मिथ्यात्व उत्पन्न करते हैं और
कोई सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं।।२२३।।

तिर्यचों में उत्पन्न होने वाले तिर्यच मनुष्य कोई छह उत्पन्न करते हैं।।२२४।।

मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले तिर्यच व मनुष्य चतुर्थ पृथिवी से निकलकर मनुष्यों
में उत्पन्न होने वाले जीवों के समान गुण उत्पन्न करते हैं।।२२५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रों का अर्थ सुगम है।

तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में भी कहा है —

संख्यात आयुप्रमाण वाले मनुष्य मनुष्य, तिर्यच, देव और नारकियों से सबमें उत्पन्न होते हैं तथा
सिद्धगति को भी प्राप्त करते हैं।।

असंख्यातयुष्क मनुष्यों में से कितने ही ईशान स्वर्ग तक उत्पन्न होते हैं। किन्तु अनन्तर जन्म में
शलाकापुरुष कोई भी मनुष्य नहीं होते हैं।।

यदि कदाचित् ये तिर्यच या मनुष्य नरकों में अथवा स्वर्गों में जाते हैं, तो वहाँ पाँच गुणों को ही उत्पन्न

इमे तिर्यचः मनुष्याः वा मनुष्येषु उत्पद्य चतुर्थपृथिवीभंगवत् केचित् दश उत्पादयन्ति — मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानानि, सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वं संयमासंयमं संयमं परिनिर्वाणं चापि। तीर्थकरत्वादिशलाकाः पुरुषाः न भवन्ति इति ज्ञातव्यं।

एवं द्वितीयस्थले तिर्यग्मनुष्यगतिभ्यां निर्गत्य कान् कान् गुणान् उत्पादयन्तीतिसूचकत्वेन पंच सूत्राणि गतानि।

अधुना सामान्येन देवगतेऽप्युताः जीवाः के गती कान् गुणांश्चोत्पादयन्ति इति कथनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

देवगदीए देवा देवेहि उव्वट्टिदचुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति?।।२२६।

दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेदि।।२२७।।

तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा केइं छ उप्पाएंति।।२२८।।

मणुसेसु उववण्णल्लया मणुसा केइं सव्वं उप्पाएंति — केइमाभिणि-
बोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइमोहिणाणमुप्पाएंति, केइं
मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केइं केवलणाणमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्त-

करते हैं, संयमासंयम अथवा संयम को प्राप्त नहीं कर सकते हैं क्योंकि वहाँ नरक में और स्वर्ग में चौथे गुणस्थान तक होते हैं। ये तिर्यच अथवा मनुष्य मनुष्यों में उत्पन्न होकर चौथी पृथ्वी के भेद के समान कोई दश गुणों को उत्पन्न कर लेते हैं — मति, श्रुत, अर्वाधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, संयमासंयम, संयम और निर्वाण को भी प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु ये तीर्थकर आदि शलाका पुरुष नहीं होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में तिर्यच और मनुष्यगति से आकर किन-किन गुणों को उत्पन्न करते हैं, इस विषय के प्रतिपादन करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब सामान्य से देवगति से च्युत होकर जीव किन गतियों को और किन-किन गुणों को उत्पन्न करते हैं, ऐसा कथन करने के लिए चार सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

देवगति में देव देवपर्यायों सहित उद्धर्तित और च्युत होकर कितनी गतियों में आते हैं?।।२२६।।

देवगति से निकले हुए जीव दो गतियों में आते हैं — तिर्यचगति और मनुष्यगति।।२२७।।

देवगति से निकलकर तिर्यचों में उत्पन्न होने वाले तिर्यच कोई छह उत्पन्न करते हैं।।२२८।।

देवगति से निकलकर मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले मनुष्य कोई सर्वगुणों को उत्पन्न करते हैं, कोई आभिनिबोधिक ज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई श्रुतज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई अवधिज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई केवलज्ञान उत्पन्न

मुप्पाएन्ति, केइं सम्मत्तमुप्पाएन्ति, केइं संजमासंजममुप्पाएन्ति, केइं संजमं उप्पाएन्ति, केइं बलदेवत्तमुप्पाएन्ति, केइं वासुदेवत्तमुप्पाएन्ति, केइं चक्कवट्ठित्तमुप्पाएन्ति, केइमंतयडा होदूण सिज्झन्ति बुज्झन्ति मुच्चन्ति परिणिव्वाणयन्ति सव्वदुक्खाणमंतं परिविजाणन्ति॥२२९॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। अत्र सामान्येन चतुर्णिकायदेवाः विवक्षिताः सन्ति। ये केचन भवनत्रिकाः सौधर्मैशानदेवाः वा ते कदाचित् एकेन्द्रियेषु अपि गच्छन्ति तत्रापि वायुकायिक-तेजस्कायिक-साधारणवनस्पतिकायिकाः न भवन्ति। विकलत्रयाः न भवन्ति। पंचेन्द्रियगर्भजपर्याप्ततिर्यञ्चः भवन्ति कदाचित्। अतः पंचेन्द्रियेष्वेव षडुत्पादयन्ति— त्रीणि ज्ञानानि, सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वं संयमासंयमं च।

मनुष्येषु सर्वगुणांश्च प्राप्नुवन्ति इति ज्ञातव्यं।

भवनत्रिकदेवदेव्यः सौधर्मैशानदेव्यश्च च्युत्वा के गती कान् गुणांश्च प्राप्नुवन्तीति प्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणक्कप्प-वासियदेवीओ च देवा देवेहि उवट्ठिद-चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छन्ति ?॥२३०॥

करते हैं, कोई सम्यग्मिथ्यात्व उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं, कोई संयमासंयम उत्पन्न करते हैं, कोई संयम उत्पन्न करते हैं, कोई बलदेवत्व उत्पन्न करते हैं, कोई वासुदेवत्व उत्पन्न करते हैं, कोई चक्रवर्तित्व उत्पन्न करते हैं, कोई तीर्थकरत्व उत्पन्न करते हैं, कोई अन्तकृत् होकर सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं, सर्व दुखों के अन्त का अनुभव करते हैं॥२२९॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूत्रों का अर्थ सरल है। यहाँ 'सामान्य' शब्द से चारों प्रकार के देव विवक्षित हैं। जो कोई भवनत्रिक या सौधर्म स्वर्ग-ईशान स्वर्ग के देव हैं, वे कदाचित् देवगति से निकलकर एकेन्द्रियों में भी उत्पन्न हो सकते हैं, वहाँ भी ये वायुकायिक, अग्निकायिक और साधारण वनस्पतिकायिक नहीं हो सकते हैं। विकलत्रय भी नहीं होते हैं। ये तिर्यच हुए तो कदाचित् पंचेन्द्रिय, गर्भज, पर्याप्त तिर्यच ही होते हैं, इसलिए पंचेन्द्रियों में भी छह गुणों को ही उत्पन्न करते हैं, तीन ज्ञान, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और संयमासंयम इनको ही प्राप्त कर सकते हैं और मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं तो सभी गुणों को प्राप्त कर सकते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

भवनत्रिक देव-देवियाँ और सौधर्म-ईशान स्वर्ग की देवियाँ वहाँ से च्युत होकर किन गतियों को और कौन-कौन से गुणों को उत्पन्न करते हैं, इस विषय का प्रतिपादन करने के लिए चार सूत्र अवतार लेते हैं—

सूत्रार्थ—

भवनवासी, वानव्यन्तर व ज्योतिषी देव और देवियाँ, सौधर्म और ईशान कल्पवासी देवियाँ, ये देव देवपर्यायों से उद्धर्तित और च्युत होकर कितनी गतियों में आते हैं ?॥२३०॥

दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव।।२३१।।

तिरिक्खेसु उववण्णल्लया केइं छ उप्पाएन्ति।।२३२।।

मणुसेसु उववण्णल्लया मणुसा केइं दस उप्पाएन्ति — केइमाभिणिबोहिय-
णाणमुप्पाएन्ति, केइं सुदणाणमुप्पाएन्ति, केइमोहिणाणमुप्पाएन्ति, केइं
मणपज्जवणाणमुप्पाएन्ति, केइं केवलणाणमुप्पाएन्ति, केइं सम्मामिच्छत्त-
मुप्पाएन्ति, केइं सम्मत्तमुप्पाएन्ति, केइं संजमासंजममुप्पाएन्ति, केइं संजमं
मुप्पाएन्ति। णो बलदेवत्तमुप्पाएन्ति, णो वासुदेवत्तमुप्पाएन्ति, णो चक्कवट्ठित्त-
मुप्पाएन्ति, णो तित्थयरत्तमुप्पाएन्ति। केइमंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति
मुच्चंति परिणिव्वाणयन्ति सव्वदुक्खाणमंतं परिविजाणन्ति।।२३३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः स्पष्टोऽस्ति। भवनवासिनः वानव्यन्तराः ज्योतिर्वासिनो देवाः
एषामेव देवानां देव्यः, सौधर्मैशानदेव्यश्च स्व-स्वपर्यायेभ्यश्च्युताः यदि तिर्यक्षु आगच्छन्ति तर्हि
मतिश्रुतावधिज्ञानानि सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वं संयमासंयमंचोत्पादयितुं क्षमाः भवन्ति केचिदेव न च सर्वे।
यदि मनुष्येषु उत्पद्यन्ते, तर्हि दशगुणानपि प्राप्तुं योग्याः भवन्ति, शलाकापुरुषावस्थाः न प्राप्नुवन्ति।

उक्त भवनवासी आदि देव और देवियाँ दो गतियों में आते हैं — तिर्यचगति और
मनुष्यगति।।२३१।।

उक्त भवनवासी आदि देव-देवियाँ तिर्यचों में उत्पन्न होने वाले तिर्यच होकर कोई
छह उत्पन्न करते हैं।।२३२।।

उक्त भवनवासी आदि देव-देवियाँ मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले तिर्यच होकर दश
उत्पन्न करते हैं — कोई आभिनिबोधिक ज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई श्रुतज्ञान उत्पन्न करते
हैं, कोई अवधिज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई केवलज्ञान
उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यग्मिथ्यात्वं उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यक्त्वं उत्पन्न करते हैं,
कोई संयमासंयम उत्पन्न करते हैं और कोई संयम उत्पन्न करते हैं। किन्तु वे न बलदेवत्व
उत्पन्न करते, न वासुदेवत्व उत्पन्न करते, न चक्रवर्तित्व उत्पन्न करते और न तीर्थकरत्व
उत्पन्न करते हैं। कोई अन्तकृत होकर सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं,
परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं, सर्व दुःखों के अन्त होने का अनुभव करते हैं।।२३३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रों का अर्थ स्पष्ट है। भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिर्वासी देव और
इनकी देवियाँ तथा सौधर्म-ईशान स्वर्ग की देवियाँ ये अपनी-अपनी पर्यायों से च्युत होकर यदि तिर्यचों में
आते हैं, तो उनमें से कोई-कोई जीव मति, श्रुत, अवधिज्ञान, सम्यग्मिथ्यात्वं, सम्यक्त्वं और संयमासंयम को
भी उत्पन्न करने में समर्थ हो सकते हैं, सभी जीव नहीं। यदि मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं, तो दशों गुणों को भी
प्राप्त करने योग्य होते हैं, किन्तु शलाका पुरुषों के पद को नहीं प्राप्त कर सकते हैं।

अन्यत्रापि चोक्तं —

शलाकापुरुषा न स्युर्भौमज्योतिष्कभावनाः।

अनन्तरभवे तेषां भाज्या भवति निर्वृतिः॥१७१॥

ततः परं विकल्प्यन्ते यावद् ग्रैवेयकं सुराः।

शलाकापुरुषत्वेन निर्वाणगमनेन च^१॥१७२॥

बौद्धाः मोक्षस्य लक्षणं स्वरूपविनाशः इति भण्यन्ते — तथाहि —

दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो, नैवावनिं गच्छति नान्तरीक्षम्।

दिशन्न कांचिद् विदिशन्न कांचित्, स्नेहक्षयात्केवलमेति शान्तिम्॥१॥

जीवस्तथा निर्वृतिमभ्युपेतो, नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।

दिशं न कांचिद् विदिशं न कांचित्, क्लेशक्षयात्केवलमेति शान्तिम्॥२॥

एतन्मतनिराकरणार्थं सूत्रे सिज्झन्ति-सिद्धयन्तीति कथितं श्रीभूतबलिसूरिवर्येण।

सौधर्मैशानादि-अपराजितानुत्तरपर्यन्तदेवानामागति-गुणोत्पादनव्यवस्थासूचनाय सूत्रसप्तकमवतार्यते —

सोहम्मीसाण जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवा जधा देवगदिभंगो॥२३४॥

आणदादि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवा देवेहि चुदसमाणा कदि

गदीओ आगच्छन्ति ?॥२३५॥

अन्यत्र — तत्त्वार्थसार में भी कहा है —

व्यन्तर, ज्योतिष्क तथा भवनवासी देवों में से मरकर आने वाले जीव शलाकापुरुष नहीं हो सकते हैं, परन्तु तद्भव मुक्त हो सकते हैं। इसके ऊपर जितने ग्रैवेयकपर्यंत के देव हैं वे शलाकापुरुष भी हो सकते हैं तथा निर्वाण भी प्राप्त कर सकते हैं॥१७१-१७२॥

बौद्ध मोक्ष का लक्षण स्वरूप का विनाश कहते हैं। देखिए —

“जिस प्रकार दीपक जब बुझता है, तब वह न तो पृथिवी की ओर जाता है न आकाश की ओर, न किसी दिशा को जाता है, न विदिशा को, किन्तु तैल के क्षय होने से केवल शान्त हो जाता है, उसी प्रकार निर्वृति को प्राप्त जीव न पृथिवी की ओर जाता है न आकाश की ओर, न किसी दिशा को जाता है न विदिशा को, किन्तु क्लेश के क्षय हो जाने से केवल शान्ति को प्राप्त होता है॥१-२॥

इस मत का निराकरण करने के लिए सूत्र में “सिज्झन्ति” — सिद्ध होते हैं, ऐसा कथन श्री भूतबलि आचार्यदेव ने किया है।

अब सौधर्म-ईशान आदि से अपराजित नाम के अनुत्तर पर्यंत के देवों की आगति और गुणों के उत्पादन की व्यवस्था को सूचित करने के लिए सात सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

सौधर्म-ईशान से लेकर शतार-सहस्रार तक के देवों की गति सामान्य देवगति के समान है॥२३४॥

आनत आदि से लगाकर नव ग्रैवेयकविमानवासी देव देवपर्यायों से च्युत होकर कितनी गतियों में आते हैं ?॥२३५॥

एककं हि चेव मणुसगदिमागच्छंति॥२३६॥

मणुस्सेसु उववण्णल्लया मणुस्सा केइं सव्वे उप्पाएंति॥२३६॥

अणुदिस जाव अवराइद विमाणवासियदेवा देवेहि चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति?॥२३८॥

एककं हि चेव मणुसगदिमागच्छंति॥२३९॥

मणुसेसु उववण्णल्लया मणुस्सा तेसिमाभिणिबोहियणाणं सुदणाणं णियमा अत्थि, ओहिणाणं सिया अत्थि, सिया णत्थि। केइं मणपज्ज-वणाणमुप्पाएंति, केवलणाणमुप्पाएंति। सम्मामिच्छत्तं णत्थि, सम्मत्तं णियमा अत्थि। केइं संजमासंजममुप्पाएंति, संजमं णियमा उप्पाएंति। केइं बलदेवत्तमुप्पाएंति, णो वासुदेवत्तमुप्पाएंति। केइं चक्कवट्ठित्तमुप्पाएंति, केइं तित्थयरत्तमुप्पाएंति, केइमंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुक्खाणमंतं परिविजाणंति॥२४०॥

उपर्युक्त आनतादि नव ग्रैवेयकविमानवासी देव केवल एक मनुष्यगति में ही आते हैं॥२३६॥

आनतादि नव ग्रैवेयकविमानवासी उपर्युक्त देव च्युत होकर मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले मनुष्य कोई सर्वगुण उत्पन्न करते हैं॥२३७॥

अनुदिश से लेकर अपराजित विमानवासी देव देवपर्यायों से च्युत होकर कितनी गतियों में आते हैं?॥२३८॥

अनुदिशादि उपर्युक्त विमानवासी देव च्युत होकर केवल एक मनुष्यगति में ही आते हैं॥२३९॥

अनुदिशादि विमानों के देव च्युत होकर मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों के आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान नियम से होता है। अवधिज्ञान होता भी है और नहीं भी होता है। कोई मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई केवलज्ञान उत्पन्न करते हैं। उनके सम्यग्मिथ्यात्व नहीं होता, किन्तु सम्यक्त्व नियम से होता है। कोई संयमासंयम को उत्पन्न करते हैं, संयम को नियम से उत्पन्न करते हैं। कोई बलदेवत्व उत्पन्न करते हैं, किन्तु वासुदेवत्व उत्पन्न नहीं करते। कोई चक्रवर्तित्व उत्पन्न करते हैं, कोई तीर्थकरत्व उत्पन्न करते हैं, कोई अन्तकृत् होकर सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं, सर्व दुःखों के अंत होने का अनुभव करते हैं॥२४०॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सौधर्मैशानकल्पयोः देवा देवपर्यायेभ्यः च्युत्वा केचित् एकेन्द्रियेषु बादर पृथिवीजलप्रत्येकवनस्पतिकायिकेषु उत्पद्यन्ते, केचित् पंचेन्द्रियतिर्यक्षु गर्भजपर्याप्तकर्मभूमिजेषु उत्पद्यन्ते, केचित् मनुष्याः भवन्ति। तिर्यक्षु उत्पद्य केचित् मतिश्रुतावधिज्ञानानि, सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वं संयमासंयमं च षडपि उत्पादयन्ति। मनुष्येषु उत्पद्य सर्वानपि उत्पादयन्ति।

उक्तं चान्यत्रापि — सोहम्मादी देवा भज्जा हु सलागपुरिसणिवहेसुं।

णिस्सेयसगमणेसुं सव्वे वि अणंतरे जम्मे^१॥६८३॥

आनतादि नवग्रैवेयकपर्यंताः विमानवासिदेवाः देवपर्यायेभ्यः च्युत्वा मनुष्याः एव भवन्ति। केचित् सर्वान् गुणानपि उत्पादयन्ति।

अनुदिशविमानादारभ्य अपराजितानुत्तरवासिदेवाः मनुष्यपर्यायं एव प्राप्नुवन्ति ते नियमेन सम्यग्दृष्टयः सन्ति।

कश्चिदाह — मतिश्रुतज्ञाने इव अवधिज्ञानं एषां अनुदिशादिभ्यः च्युतानां मनुष्यपर्यायेषु आगतानां कथं न भवति ?

परिहरति आचार्यवर्यः — नैष दोषः, अननुगामिनोऽवधिज्ञानस्य अनुगमाभावात्। न च तत्र सर्वेषामवधि-ज्ञानमनुगामी चैव अननुगामिनोऽपि अवधिज्ञानस्य तत्र संभवात्। सूत्रे 'देवा' पदेन देवभावात् अर्थः गृहीतव्यः 'देवेहितो' पदेन देवनिकायात् च ज्ञातव्यः।

इमे अहमिन्द्राः देवपर्यायेभ्यः च्युताः वासुदेवपदं न लभन्ते शेषपदानि लब्धुमर्हन्ति।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सौधर्म-ईशान कल्प के देव देवपर्याय से च्युत होकर कोई-कोई एकेन्द्रिय बादर पृथ्वी, जल और वनस्पतिकायिकों में उत्पन्न होते हैं। कोई पंचेन्द्रिय तिर्यचों में, कर्मभूमियों में, गर्भज, पर्याप्तक होते हैं। कोई मनुष्य होते हैं। इनमें तिर्यचों में उत्पन्न होकर कोई मति, श्रुत, अवधिज्ञान, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और संयमासंयम इन छह गुणों को उत्पन्न कर लेते हैं। मनुष्यों में उत्पन्न होकर सभी गुणों को उत्पन्न कर सकते हैं।

तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में भी कहा है —

सब सौधर्मादिक देव अगले जन्म में शलाकापुरुषों के समूह में और मुक्तिगमन के विषय में विकल्पनीय हैं॥

आनत आदि नव ग्रैवेयक तक के वैमानिक देव देवपर्याय से च्युत होकर मनुष्य ही होते हैं। इनमें से कोई सभी गुणों को उत्पन्न कर सकते हैं। अनुदिश विमान से लेकर अपराजित नाम के अनुत्तर तक के अहमिन्द्र देव मनुष्य पर्याय ही प्राप्त करते हैं, वे नियम से सम्यग्दृष्टि होते हैं।

शंका — कोई कहता है — अनुदिशादि विमानों से च्युत होकर मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले जीवों के मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के समान अवधिज्ञान भी नियम से क्यों नहीं होता ?

समाधान — आचार्य देव परिहार करते हैं — यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, अननुगामी अवधिज्ञान के अनुगम का अभाव है और अनुदिशादि विमानों में सभी का अवधिज्ञान अनुगामी ही होता है ऐसा नहीं है, क्योंकि वहाँ अननुगामी अवधिज्ञान का भी होना संभव है।

सूत्र में जो 'देवा' शब्द आया है, उसका अभिप्राय है 'देवभाव से' और जो 'देवेहितो' शब्द आया है, उसका अभिप्राय है 'देवनिकाय से'। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

ये अहमिन्द्र देवपर्यायों से च्युत होकर वासुदेवपद को — नारायण पद को नहीं प्राप्त करते हैं, शेष

उक्तं च —

तीर्थेशरामचक्रित्वे निर्वाणगमनेन च।

च्युताः सन्तो विकल्प्यन्तेऽनुदिशानुत्तरामराः^१॥१७३॥

संप्रति सर्वार्थसिद्धिदेवानामागति-गुणोत्पादनव्यवस्थासूचनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

सर्व्वदृशसिद्धिविमाणवासियदेवा देवेहि चुदसमाणा कदि गदीओ
आगच्छंति ?॥२४१॥

एक्कं हि चेव मणुसगदिमागच्छंति॥२४२॥

मणुसेसु उववणल्लया मणुसा तेसिमाभिणिबोहियणाणं सुदणाणं
ओहिणाणं च णियमा अत्थि, केइं मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केवलणाणं
णियमा उप्पाएंति। सम्मामिच्छत्तं णत्थि सम्मत्तं णियमा अत्थि। केइं
संजमासंजममुप्पाएंति। संजमं णियमा उप्पाएंति। केइं बलदेवत्तमुप्पाएंति,
णो वासुदेवत्तमुप्पाएंति। केइं चक्कवट्ठित्तमुप्पाएंति, केइं तित्थयरत्तमुप्पाएंति।

पदों को प्राप्त करने के योग्य हो सकते हैं।

कहा भी है तत्त्वार्थसार ग्रंथ में —

ग्रैवेयक के ऊपर अनुदिश एवं अनुत्तर विमानवासी जो देव हैं, वे जब मरकर मनुष्य हो जाते हैं,
तब उसी भव से निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं और तीर्थकर, राम (बलभद्र) तथा चक्रवर्ती तक भी हो
सकते हैं॥

अब सर्वार्थसिद्धि के अहमिन्द्रों की आगति और गुणों के उत्पादन की व्यवस्था को सूचित करने के लिए
तीन सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव देवपर्यायों से च्युत होकर कितनी गतियों में आते
हैं ?॥२४१॥

सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव च्युत होकर केवल एक मनुष्यगति में ही आते
हैं॥२४२॥

सर्वार्थसिद्धि विमान से च्युत होकर मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों के
आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान नियम से होता है। कोई मनःपर्ययज्ञान
उत्पन्न करते हैं। केवलज्ञान वे नियम से उत्पन्न करते हैं। उनके सम्यग्मिथ्यात्व नहीं
होता, किन्तु सम्यक्त्व नियम से होता है। कोई संयमासंयम उत्पन्न करते हैं, किन्तु
संयम नियम से उत्पन्न करते हैं। कोई बलदेवत्व उत्पन्न करते हैं, किन्तु वासुदेवत्व उत्पन्न
नहीं करते। कोई चक्रवर्तित्व उत्पन्न करते हैं, कोई तीर्थकरत्व उत्पन्न करते हैं। वे सब

**सव्वे ते णियमा अंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति
सव्वदुक्खाणमंतं परिविजाणंति।।२४३।।**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते। सर्वार्थसिद्धिविमानात् च्युताः अहमिन्द्रचराः शलाकापुरुषेषु नारायणाः प्रतिनारायणाश्च न भवन्ति।

किमर्थं तेषां नारायणत्वं प्रतिनारायणत्वं वा पदं न भवेत् ?

न भवति, तयोः मिथ्यात्वाविनाभावि-निदानावश्यंभावित्वात्।

एषां सर्वार्थसिद्धिविमानच्युतानामहमिन्द्रचरमानवानां अवधिज्ञानं नियमात् अस्तीति कथम् ?

नैष दोषः, तेषामननुगामि-हीयमान-प्रतिपात्यवधिज्ञानानामभावात्।

अवधिज्ञानस्य कतिभेदाः सन्ति ?

वर्धमानो हीयमानः अवस्थितः अनवस्थितः अनुगामी अननुगामी अप्रतिपाती प्रतिपातीत्येतेऽष्टौ भेदाः देशावधेर्भवन्ति^१।

इमे सर्वार्थसिद्धिविमानवासिनो देवाः नियमात् एकभवावतारिणः।

उक्तं चान्यत्रापि — भाज्यास्तीर्थेशचक्रित्वे च्युताः सर्वार्थसिद्धितः।

विकल्पा रामभावेऽपि सिद्ध्यन्ति नियमात्पुनः^२।।१७४।।

नियम से अन्तकृत होकर सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं और सर्व दुःखों के अन्त होने का अनुभव करते हैं।।२४३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्रों का अर्थ सरल है। सर्वार्थसिद्धि विमान से च्युत हुए अहमिन्द्रचर शलाका पुरुषों में नारायण और प्रतिनारायण नहीं होते हैं।

शंका — सर्वार्थसिद्धि विमान से च्युत होकर मनुष्य होने वाले जीवों के वासुदेवत्व क्यों नहीं होते ?

समाधान — नहीं होते, क्योंकि वासुदेवत्व की उत्पत्ति में उससे पूर्व मिथ्यात्व के अविनाभावी निदान का होना अवश्यंभावी है।

शंका — इन सर्वार्थसिद्धि विमान से च्युत हुए अहमिन्द्र मनुष्यों में उनके अवधिज्ञान नियम से होता है, सो कैसे ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं, क्योंकि उनके अननुगामी, हीयमान व प्रतिपाती अवधिज्ञानों का अभाव है।

शंका — अवधिज्ञान के कितने भेद हैं ?

समाधान — वर्धमान, हीयमान, अवस्थित, अनवस्थित, अनुगामी, अननुगामी, अप्रतिपाती और प्रतिपाती ये आठ भेद देशावधिज्ञान के होते हैं।

ये सर्वार्थसिद्धि विमानवासी अहमिन्द्रदेव नियम से एक भवावतारी हैं।

तत्त्वार्थसार में भी कहा है —

सर्वार्थसिद्धि से आये हुए देव तीर्थंकर एवं चक्रवर्ती हो सकते हैं, बलराम भी हो सकते हैं, परन्तु उसी मनुष्य भव से वे मोक्ष को अवश्य पाते हैं।।१७४।।

अन्येऽपि च केचिदिन्द्रादयः एकभवावतारिणः प्रोक्ता जिनागमे।

त एवोच्यन्ते — दक्षिणेन्द्रास्तथा लोकपाला लौकान्तिकाः शची।

शक्रश्च नियमाच्च्युत्वा सर्वे ते यान्ति निर्वृतिम्^१॥१७५॥

तीर्थकरऋषभदेव-चक्रवर्तिभरत-कामदेवबाहुबलि-गणधरवृषभसेन-अनन्तवीर्य-अनन्तविजयादयः
पुराणपुरुषाः सर्वार्थसिद्धिविमानाच्च्युत्वा तीर्थकरादिपदं संप्राप्य निर्वाणपदं संप्राप्ताः।

श्री वज्रनाभिचक्रवर्तिना स्वपितुः श्रीवज्रसेनतीर्थकरपादमूले जैनैश्वरीदीक्षां गृहीत्वा तस्यैव भगवतः
समीपे षोडशकारणभावनां भावयित्वा उपशमश्रेणिमारुह्य सर्वार्थसिद्धिमवाप।

उक्तं च महापुराणे श्रीजिनसेनाचार्यदेवेन —

ततोऽसौ भावयामास भावितात्मा सुधीरधीः। स्वगुरोर्निकटे तीर्थकृत्वस्यांगानि षोडश॥६८॥

ततोऽमूर्ध्नावनाः सम्यग् भावयन् मुनिसत्तमः। स बबन्ध महत्पुण्यं त्रैलोक्यक्षोभकारणम्॥७९॥

अनन्तरं — विशुद्धभावनः सम्यग् विशुद्ध्यन् स्वविशुद्धिभिः।

तदोपशमकश्रेणीमारूरोह मुनीश्वरः॥८९॥

कृत्स्नस्य मोहनीयस्य प्रशमादुपपादितम्।

तदौपशमिकं प्रापच्चारित्रं सुविशुद्धिकम्॥९१॥

अन्य भी कोई-कोई इन्द्र आदि जिनागम में एक भवावतारी कहे हैं।

इसे ही कहते हैं — दक्षिण दिशा के स्वर्गनिवासी इन्द्र, लोकपाल, सर्व लौकान्तिक देव, शची इन्द्राणी तथा सौधर्म इन्द्र — ये सभी मरकर मनुष्यभव धारण कर मुक्त ही होते हैं। उस मनुष्यभव से आगे उन्हें फिर भव धारण नहीं करना पड़ता है॥

तीर्थकर ऋषभदेव, चक्रवर्ती भरत, कामदेव बाहुबली, गणधर वृषभसेन, अनन्तवीर्य, अनन्तविजय आदि पुराणपुरुष सर्वार्थसिद्धि विमान से च्युत होकर तीर्थकर आदि पद को प्राप्त करके निर्वाणपद प्राप्त कर चुके हैं।

श्री वज्रनाभि चक्रवर्ती अपने पिता श्री वज्रसेन तीर्थकर के पादमूल में जैनैश्वरी दीक्षा लेकर उन्होंने तीर्थकर भगवान की सन्निधि में सोलहकारण भावनाओं को भाकर उपशम श्रेणी में आरोहण करके सर्वार्थसिद्धि विमान में अहमिन्द्र हुए हैं।

श्री जिनसेनाचार्यदेव ने महापुराण में कहा है —

तदनन्तर आत्मा के स्वरूप का चिन्तन करने वाले धीर-वीर वज्रनाभि मुनिराज ने अपने पिता वज्रसेन तीर्थकर के निकट उन सोलह भावनाओं का चिन्तन किया, जो कि तीर्थकर पद प्राप्त होने में कारण है। तदनन्तर इन भावनाओं का उत्तम रीति से चिन्तन करते हुए उन श्रेष्ठ मुनिराज ने तीन लोक में क्षोभ उत्पन्न करने वाली तीर्थकर नामक महापुण्य प्रकृति का बन्ध किया॥६८-६९॥

अनन्तर —

विशुद्ध भावनाओं को धारण करने वाले वज्रनाभि मुनिराज जब अपने विशुद्ध परिणामों से उत्तरोत्तर विशुद्ध हो रहे थे तब वे उपशम श्रेणी पर आरूढ़ हुए। सम्पूर्ण मोहनीय कर्म का उपशम हो जाने से वहाँ उन्हें अतिशय विशुद्ध औपशमिक चारित्र प्राप्त हुआ। अन्तर्मुहूर्त के बाद वे मुनि फिर भी स्वस्थानअप्रमत्त नामक सातवें गुणस्थान में स्थित हो गये अर्थात् ग्यारहवें गुणस्थान में अन्तर्मुहूर्त उठकर वहाँ से च्युत हो उसी गुणस्थान में आ पहुँचे जहाँ

पुनरपि —

सोऽन्तर्मुहूर्तात् भूयोऽपि स्वस्थानस्थोऽभवद् यतिः।
 नोर्ध्वं मुहूर्तात् तत्रास्ति निसर्गात् स्थितिरात्मनः॥१२॥
 द्वितीयवारमारुह्य श्रेणीमुपशमादिकाम्।
 पृथक्त्वध्यानमापूर्य समाधिं परमं श्रितः॥११०॥
 उपशान्तगुणस्थाने कृतप्राणविसर्जनः।
 सर्वार्थसिद्धिमासाद्य संप्रापत् सोऽहमिन्द्रताम्॥१११॥

अयमहमिन्द्रः कदा तीर्थकरो बभूव ?

तृतीयकालशेषेऽसावशीतिश्चतुरत्तरा।
 पूर्वलक्षास्त्रिवर्गाष्टमासपक्षयुतास्तदा॥
 अवतीर्य युगाद्यन्ते ह्यखिलार्थविमानतः।
 आषाढासितपक्षस्य द्वितीयायां सुरोत्तमः॥
 उत्तराषाढनक्षत्रे देव्या गर्भं समाश्रितः।
 स्थितो यथा विबाधोऽसौ मौक्तिकं शुक्तिसंपुटे॥
 ज्ञात्वा तदा स्वचिन्हेन सर्वेऽप्यागुः सुरेश्वराः।
 पुरुं (पुरं) प्रदक्षिणीकृत्य तद्गुरुंश्च ववन्दिरे^१॥

अनन्तरं भगवतः ऋषभदेवस्य राज्ञ्या यशस्वत्या भरतः प्रासूयत।

उक्तं च —

ततः सर्वार्थसिद्धिस्थो योऽसौ व्याघ्रचरः सुरः।
 सुबाहुरहमिन्द्रोऽतः च्युत्वा तद्गर्भमावसत्^२॥१२८॥

से कि आगे बढ़ना शुरू किया था। उसका खास कारण यह है कि ग्यारहवें गुणस्थान में आत्मा की स्वाभाविक स्थिति अन्तर्मुहूर्त से आगे है ही नहीं। वे द्वितीय बार उपशम श्रेणी पर आरूढ़ हुए और पृथक्त्ववर्तिक नामक शुक्लध्यान को पूर्णकर उत्कृष्ट समाधि को प्राप्त हुए। अन्त में उपशान्तमोह नामक ग्यारहवें गुणस्थान में प्राण छोड़कर सर्वार्थसिद्धि पहुँचे और वहाँ अहमिन्द्र पद को प्राप्त हुए॥८९-९१-९२-११०-१११॥

ये अहमिन्द्र कब तीर्थकर हुए ? सो ही दिखाते हैं —

जब अवसर्पिणी काल के तीसरे सुषमदुःषम नामक काल में चौरासी लाख पूर्व, तीन वर्ष, आठ माह और एक पक्ष बाकी रह गया था तब आषाढ़ कृष्णा द्वितीया के दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्र में वज्रनाभि अहमिन्द्र देवायु का अन्त होने पर सर्वार्थसिद्धि विमान से च्युत होकर मरुदेवी के गर्भ में अवतीर्ण हुआ और वहाँ सीप के सम्पुट में मोती की तरह सब बाधाओं से निर्मुक्त होकर स्थित हो गया। उस समय समस्त इन्द्र अपने-अपने यहाँ होने वाले चिन्हों से भगवान के गर्भावतार का समय जानकर वहाँ आये और सभी ने नगर की प्रदक्षिणा देकर भगवान के माता-पिता को नमस्कार किया॥

अनन्तर भगवान ऋषभदेव की रानी यशस्वती के भरतपुत्र का जन्म हुआ।

कहा भी है —

तदनन्तर राजा अतिगृद्ध का जीव जो पहले व्याघ्र था, फिर देव हुआ, फिर सुबाहु हुआ और फिर सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ था, वहाँ से च्युत होकर यशस्वती महादेवी के गर्भ में आकर निवास करने लगा॥१२८॥

अथ क्रमाद् यशस्वत्यां जाताः स्वस्तुरिमे सुताः।
 अवतीर्य दिवो मूर्ध्नः तेऽहमिन्द्राः पुरोहिताः॥१॥
 इत्येकान्नशतं पुत्रा बभूवुर्वृषभेशिनः।
 भरतस्यानुजन्मानश्चरमांगा महौजसः॥४॥
 सुनन्दायां महाबाहुः अहमिन्द्रो दिवोऽग्रतः।
 च्युत्वा बाहुबलीत्यासीत् कुमारोऽमरसन्निभः^१॥६॥

इमे पूर्वभवे सर्वार्थसिद्धिविमाने अहमिन्द्राः आसन्।

तथैव प्रोक्तं —

तेऽप्यष्टौ भ्रातरस्तस्य धनदेवोऽप्यनल्पधीः।
 जातास्तत्सदृशाः एव देवाः पुण्यानुभावतः॥१६०॥
 इति तत्राहमिन्द्रास्ते सुखं मोक्षसुखोपमम्।
 भुञ्जाना निष्प्रवीचाराः चिरमासन् प्रमोदिनः॥१६१॥
 पूर्वोक्तसप्रवीचारसुखानन्तगुणात्मकं।
 सुखमव्याहतं तेषां शुभकर्मोदयोद्भव^२॥१६२॥

संसारिणां जीवानां सर्वश्रेष्ठं सुखं सर्वार्थसिद्धौ सर्वाधिकं दुःखं च सप्तमीपृथिवीगतनारकाणां।

उक्तं श्रीजिनसेनाचार्येण —

सुकृतफलमुदारं विद्धि सर्वार्थसिद्धौ, दुरितफलमुदग्रं सप्तमीनारकाणाम्।
 शमदमयमयोगैरग्रिमं पुण्यभाजां, अशमदमयमानां कर्मणा दुष्कृतेन^३॥२२०॥

अथानन्तर पहले जिन का वर्णन किया जा चुका है, ऐसे वे सर्वार्थसिद्धि के अहमिन्द्र स्वर्ग से अवतीर्ण होकर क्रम से भगवान् वृषभदेव की यशस्वती देवी के विजय, वैजयन्त आदि पुत्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार भगवान् वृषभदेव की यशस्वती महादेवी से भरत के पीछे जन्म लेने वाले निन्यानवे पुत्र हुए, वे सभी पुत्र चरमशरीरी तथा बड़े प्रतापी थे। आनन्द पुरोहित का जीव जो पहले महाबाहु था और फिर सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ था, वह वहाँ से च्युत होकर भगवान् वृषभदेव की द्वितीय पत्नी सुनन्दा के देव के समान बाहुबली नाम का पुत्र हुआ॥१-४-६॥

ये सभी पूर्वभव में सर्वार्थसिद्धि विमान में अहमिन्द्र थे।

यही बात महापुराण में कही है —

वज्रनाभि के वे विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित, बाहु, सुबाहु, पीठ और महापीठ नाम के आठों भाई तथा विशाल बुद्धि का धारक धनदेव ये नौ जीव भी अपने पुण्य के प्रभाव से उसी सर्वार्थसिद्धि में वज्रनाभि के समान ही अहमिन्द्र हुए। इस प्रकार उस सर्वार्थसिद्धि में वे अहमिन्द्र मोक्षतुल्य सुख का अनुभव करते हुए प्रवीचार (मैथुन) के बिना ही चिरकाल तक सुखी रहते थे। उन अहमिन्द्रों के शुभ कर्म के उदय से जो निर्बाध सुख प्राप्त होता है, वह पहले कहे हुए प्रवीचारसहित सुख से अनन्त गुना होता है॥१६०-१६१-१६२॥

संसारी जीवों में सर्वश्रेष्ठ सुख सर्वार्थसिद्धि में है और सबसे अधिक दुःख सातवें नरक में रहने वाले नारकी जीवों में होता है।

श्री जिनसेनाचार्य देव ने कहा भी है —

पुण्यकर्मों का उत्कृष्ट फल सर्वार्थसिद्धि में और पापकर्मों का उत्कृष्ट फल सप्तम पृथिवी के नारकियों के जानना चाहिए। पुण्य का उत्कृष्ट फल परिणामों को शान्त रखने, इन्द्रियों का दमन करने और निर्दोष

सिद्धंति — समाप्तसकलकार्यत्वात् प्राप्तात्मस्वरूपाः भवन्ति, कृतकृत्या नित्याः निरंजनाः सन्ति।

उक्तं च — 'सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः' प्रगुणगुण गणाच्छादिदोषापहारात्।

योग्योपादानयुक्त्या दृषद इह यथा हेमभावोपलब्धिः^१।

अथवा सिद्धाः सेत्स्यन्ति सिद्ध्यन्ति इति सिद्धपरमेष्ठिनः ते ध्यानकाले एव कृतकृत्यतया तिष्ठन्ति। पद्भ्यां किञ्चित् क्वचिदपि चलनं गमनं शेषो नास्ति अतस्ते पादौ स्थिरीकृत्य तस्थुः, काराभ्यां किञ्चिदपि करणार्थं शेषो नास्ति ततस्ते वामहस्तस्योपरि दक्षिणहस्तं निक्षिप्य अथवा जिनमुद्रायां उद्भीभूय करौ लम्बयित्वा तस्थुः, सर्वस्मिन् लोकाकाशे विश्वे किमपि अवलोकयितुं शेषो नास्ति अतस्ते नासाग्रदृष्टयो बभूवुः।

उक्तं च पद्मनन्दिपंचविंशतिकायां —

कायोत्सर्गायतांगो जयति जिनपतिर्नाभिसूनुर्महात्मा, मध्यान्हे यस्य भास्वानुपरि परिगतो राजति स्मोग्रमूर्तिः।
चक्रं कर्मेन्धनानामतिबहु दहतो दूरमौदास्यवात-स्फूर्जत्सद्भ्यानवन्हेरिव रुचिततरः प्रोद्गतो विस्फुलिंगः॥१॥
नो किञ्चित्करकार्यमस्ति गमनप्राप्यं न किञ्चित् दृशो — ईश्यं यस्य न कर्णयोः किमपि हि श्रोतव्यमप्यस्ति न। तेनालम्बितपाणिरुज्झितगतितर्साग्रदृष्टी रहः, संप्राप्तोऽतिनिराकुलो विजयते ध्यानैकतानो जिनः^२॥२॥

चारित्र पालन करने से पुण्यात्मा जीवों को प्राप्त होता है और पाप का उत्कृष्ट फल परिणामों को शान्त नहीं रखने, इन्द्रियों का दमन नहीं करने तथा निर्दोष चारित्र पालन नहीं करने से पापी जीवों को प्राप्त होता है।

'सिद्धंति' — सकल कार्यों को समाप्त — पूर्ण कर लेने से जिन्होंने आत्मस्वरूप को प्राप्त कर लिया है, जो कृतकृत्य, नित्य, निरंजन हो चुके हैं।

श्री पूज्यपादस्वामी ने सिद्धभक्ति में कहा है — अपनी आत्मा की उपलब्धि — प्राप्ति हो जाना, इसी का नाम 'सिद्धि' है, जो कि प्रकृष्ट गुणसमूह को आच्छादित करने वाले जो दोष हैं, उनके नष्ट हो जाने से होती है। जैसे कि योग्य उपादान और युक्ति — निमित्त के मिल जाने से पाषाण — स्वर्ण पाषाण से स्वर्ण की उपलब्धि — प्राप्ति होती है।

अथवा जो अतीत काल में सिद्ध हुए हैं, भविष्यत्काल में होवेंगे और वर्तमानकाल में हो रहे हैं, वे सिद्ध परमेष्ठी कहलाते हैं, वे ध्यान के काल में ही कृतकृत्यरूप से रहते हैं। दोनों पैरों से कहीं पर भी कुछ भी चलना, गमन करना शेष नहीं रहा, इसलिए वे पैरों को स्थिर करके खड़े हैं, दोनों हाथों से किञ्चित् मात्र कार्य करना शेष नहीं रहा, इसलिए वे बायें हाथ के ऊपर दाहिना हाथ रखकर अथवा जिनमुद्रा से खड़े होकर दोनों हाथ लटकाकर खड़े हैं, सम्पूर्ण लोकाकाश में — विश्व में कुछ भी देखना शेष नहीं रहा, इसलिए वे नासा के अग्रभाग पर दृष्टि रखकर खड़े हुए हैं।

श्री पद्मनन्दि आचार्यदेव ने पद्मनन्दिपंचविंशतिका ग्रंथ में कहा है —

दोपहर के समय जिस आदीश्वर भगवान के ऊपर रहा हुआ तेजस्वी सूर्य ज्ञानावरणादि कर्मरूपी ईधन को पलभर में भस्म करने वाली तथा वैराग्यरूपी पवन से जलाई हुई, ध्यानरूपी अग्नि से उत्पन्न हुवे मनोहर फुलिंगा के समान जान पड़ता है, ऐसे कायोत्सर्गसहित विस्तीर्ण शरीर के धारी तथा अष्टकर्मों के जीतने वाले उत्तम पुरुषों के स्वामी महात्मा श्रीनाभिराजा के पुत्र श्रीऋषभदेव भगवान सदा जयवन्त हैं। भगवान को हाथ से करने योग्य कोई कार्य नहीं रहा है इसलिए तो उन्होंने हाथों को नीचे लटका दिया है तथा जाने के लायक

बुज्झंति — अनवगतार्थाभावात् अज्ञानकणस्यापि अभावाद् वा, सिद्धानां बुद्ध्यभावप्रतिपाद-
कदुर्णयनिवारणार्थं वा, आत्मानं चैव जानाति सिद्धो न बाह्यार्थमिति दुर्णयनिवारणार्थं वा बुध्यन्ति इति
उक्तम्।

अस्मिन् विषये किञ्चित् मीमांस्यते —

अस्य लोकाकाशस्य सदृशाः यदि अनन्ता अपि लोकाकाशाः भवेयुः तर्ह्यपि ते केवलिनः सिद्धपरमेष्ठिनः
सर्वानपि ज्ञातुं क्षमा सन्ति।

उक्तं च —

श्रीमते वर्धमानाय नमो नमितविद्विषे।

यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते^१॥

केचिद् वदन्ति — नवानामात्मगुणानां बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मसंस्काराणां निर्मूलोच्छेदोऽपवर्ग
इति।

तदपि न श्रेयः — ज्ञानावरणाभावे सति ज्ञानस्य परिपूर्णत्वात् केवलज्ञानत्वात् वा। ये केचित् कथयन्ति
केवलिनो भगवन्तः केवलमात्मानमेव जानन्ति, केचित् ब्रुवन्ति केवलं बाह्यार्थमेव तेषां समाधानं क्रियते
नयापेक्षया श्रीकुन्दकुन्ददेवेन नियमसारप्राभृतग्रंथे —

जाणदि पस्सदि सव्वं ववहारणयेण केवली भगवं।

केवलणाणी जाणदि पस्सदि णियमेण अप्पाणं^२॥१५९॥

सव्वं — अलोकाकाशसहितमधोमध्योर्ध्वलोकविभक्तलोकाकाशं त्रैलोक्यं भूतभाविवर्तमानरूपं त्रैकाल्यं
सर्वं चराचरवस्तुसमूहं च।

कोई स्थान नहीं रहा है इसलिए वे निश्चल खड़े हुवे हैं और देखने योग्य कोई पदार्थ नहीं रहा है इसलिए
भगवान ने नाक के ऊपर अपनी दृष्टि दे रखी है तथा एकान्तवास इसलिए किया है कि भगवान को पास में
रहकर कोई बात सुनने के लिए नहीं रही है इसलिए इस प्रकार अत्यंत निराकुल तथा ध्यानरस में लीन
भगवान सदा लोक में जयवन्त हैं॥१-२॥

बुज्झंति — अनवगत पदार्थों के अभाव से अथवा अज्ञान के कणमात्र के भी अभाव से, अथवा सिद्धों
के बुद्धि-अभाव को उत्पन्न करने वाले दुर्णय के निवारणार्थ, अथवा सिद्ध केवल आत्मा को जानता है बाह्यार्थ
को नहीं जानता, ऐसे दुर्णय के निवारणार्थ सूत्र में 'बुज्झंति' अर्थात् 'बुद्ध होते हैं' यह पद कहा गया है।

इस विषय में किञ्चित् मीमांसा — विचार करते हैं —

इस लोकाकाश के सदृश यदि अनन्त भी लोकाकाश हो जावें, तो भी केवलज्ञानी सिद्ध भगवान सभी को
जानने में सक्षम हैं।

कहा भी है — जिन्होंने विद्विष — शत्रुओं को भी नमित किया है, ऐसे श्रीअंतरंग, बहिरंगलक्ष्मी से
विभूषित श्री वर्धमान भगवान को नमस्कार होवे कि जिनके ज्ञान के अन्तर्गत होकर ये तीनों लोक गोष्पद —
गाय के खुर के स्थान के समान प्रतिभासित होते हैं॥

कोई कहते हैं — बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और संस्कार इन नव गुणों का
निर्मूल नाश हो जाना ही अपवर्ग — मोक्ष है।

उक्तं च श्रीगौतमस्वामिनापि —

यः सर्वाणि चराचराणि विधिवद् द्रव्याणि तेषां गुणान्।

पर्यायानपि भूतभाविभवतः सर्वान् सदा सर्वदा।।

जानीते युगपत्प्रतिक्षणमतः सर्वज्ञ इत्युच्यते।

सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः^१॥१॥

अथ गाथायां व्यवहारनयो भेदकारक एव गृहीतव्यो न च पराश्रितः। किंच, केवलानां ज्ञानं पराश्रितं नास्ति, प्रत्युत तज्ज्ञाने सर्वं प्रतिबिम्बीभवति दर्पणवत्। न ते भगवन्त ईहापूर्वकं जानन्ति, मोहाभावात्^२।

पुनरपि एकान्तवादिनां निराकरणं क्रियते श्रीकुंदकुंददेवेन —

अप्पसरूवं पेच्छदि, लोयालोयं ण केवली भगवं।

जइ कोइ भणइ एवं, तस्स य किं दूसणं होइ॥१६६॥

मुत्तममुत्तं दव्वं चेयणमियरं सगं च सव्वं च।

पेच्छंतस्स दु णाणं पच्चक्खमणिंदियं होइ॥१६७॥

यह भी श्रेयस्कर नहीं है, क्योंकि ज्ञानावरण का अभाव हो जाने पर ज्ञान की परिपूर्णता हो जाती है अथवा वह केवलज्ञान हो जाता है अतः ज्ञान गुण का विनाश नहीं होता है।

जो कोई कहते हैं कि केवली भगवान केवल आत्मा को ही जानते हैं, कोई कहते हैं कि वे केवल बाह्य पदार्थ को ही जानते हैं उनके समाधान के लिए श्री कुंदकुंददेव ने नियमसार प्राभृत ग्रंथ में नयों की अपेक्षा से कहा है —

व्यवहारनय से केवली भगवान् सर्वजगत् को जानते और देखते हैं, (केवलणाणी णियमेण अप्पाणं जाणदि पस्सदि) किन्तु केवलज्ञानी निश्चयनय से आत्मा को ही जानते देखते हैं।

टीका — सकल विमल केवलज्ञान दर्शनस्वरूप कार्य समयसार रूप से परिणत हुए सकल परमात्मा केवली भगवन् अधो, मध्य, ऊर्ध्वलोक इन तीन लोकरूप लोकाकाश को और अलोकाकाश को तथा भूत भविष्यत् वर्तमान इन तीनों कालों की सम्पूर्ण चर-अचर वस्तुओं को जानते और देखते हैं।

श्री गौतमस्वामी ने भी कहा है —

जो विधिवत् सम्पूर्ण चर-अचर द्रव्यों को उनके सम्पूर्ण गुणों को भूत-वर्तमान-भविष्यत्कालीन सभी पर्यायों को सदा सब प्रकार से एक साथ और प्रतिक्षण जानते हैं, इसीलिए वे 'सर्वज्ञ' कहलाते हैं, ऐसे महान वीर जिनेश्वर सर्वज्ञदेव के लिए मेरा नमस्कार होवे॥

इस उपर्युक्त नियमसार प्राभृत की गाथा में व्यवहारनय भेदकारक ही ग्रहण करना चाहिए, न कि पराश्रित, क्योंकि केवली भगवान का ज्ञान पराश्रित नहीं है, प्रत्युत उस ज्ञान में सम्पूर्ण विश्व दर्पण में प्रतिबिम्बित के समान ही झलकते हैं और वे भगवान इच्छापूर्वक भी नहीं जानते हैं, क्योंकि उनके मोहकर्म का अभाव हो गया है।

पुनरपि श्री कुंदकुंददेव एकांतवादियों का निराकरण करते हैं —

केवली भगवान् आत्मा के स्वरूप को ही देखते हैं, लोक-अलोक को नहीं। यदि कोई ऐसा कहता है, उसके कथन में क्या दूषण आता है ? सो ही कहते हैं — मूर्तिक, अमूर्तिक, चेतन और अचेतन तथा स्व और

पुव्वुत्तसयलदव्वं णाणागुणपज्जएण संजुत्तं।
 जो ण य पेच्छइ सम्मं परोक्खदिट्ठी हवे तस्स॥१६८॥
 लोयालोयं जाणइ अप्पाणं णेव केवली भगवं।
 जइ कोइ भणइ एवं तस्स य किं दूसणं होई॥१६९॥
 णाणं जीवसरूवं तम्हा जाणेइ अप्पगं अप्पा।
 अप्पाणं णवि जाणदि अप्पादो होदि वदिरित्तं॥१७०॥

प्रत्येकं आत्मनामनन्तगुणेषु एकं ज्ञानमेव सर्वं विज्ञातुं सक्षमं सर्वश्रेष्ठमनर्घ्यं वर्तते। ये महातपोधनाः स्वस्य ज्ञानोपयोगेन हितमहितं च विज्ञाय हितकार्ये प्रवर्तन्ते, त एव वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानबलेन परमाल्हादमये स्वशुद्धात्मनि तिष्ठन्तः सन्तः केवलज्ञानसूर्यमुत्पादयन्ति।

मुच्चंति — अमूर्तस्य मूर्तैः अमूर्तैः वा बंधो नास्तीति मोक्षाभावमिथ्यात्वदुर्णयनिवारणार्थं मुच्यन्ते इति कथितमत्र।

किंच 'जीवंगाणं अणाइसंबंधो।' कणयोवले मलं वा^१॥

इति गाथाकथितनियमेन सर्वेऽपि संसारिणः अनादिकालात् कर्मभिः संश्लिष्टाः अशुद्धाः मूर्तिकाः एव न चामूर्तिकाः कथंचित् शुद्धनिश्चयनयेन एव अमूर्ताः सन्ति न चाशुद्धनयेन।

उक्तं च —

वण्णरसपंच गंधा दो फासा अट्ट णिच्छया जीवे।
 णो संति अमुत्ति तदो ववहारा मुत्ति बंधादो^२॥७॥

अन्य सर्व द्रव्य इन सबको देखने वाले का ही ज्ञान प्रत्यक्ष और अतीन्द्रिय होता है। नाना गुण पर्यायों से संयुक्त पूर्वोक्त सकल द्रव्यों को जो अच्छी तरह नहीं देखते, उनके परोक्ष दर्शन होता है।

केवली भगवान लोक-अलोक को जानते हैं, न कि आत्मा को। यदि कोई ऐसा कहता है, तो उसे क्या दूषण आता है ? सो ही दिखाते हैं — ज्ञान जीव का स्वरूप है इसलिए आत्मा आत्मा को जानता है। यदि वह ज्ञान आत्मा को नहीं जानता है, तो वह आत्मा से भिन्न हो जावेगा॥१६६-१६७-१६८-१६९-१७०॥

प्रत्येक आत्मा में अनंत गुण हैं, उनमें से एक ज्ञान ही सर्व जानने में समर्थ, सर्वश्रेष्ठ और महामूल्यवान् है। जो महातपोधन अपने ज्ञानोपयोग से हित और अहित को जानकर हित कार्य में प्रवृत्त होते हैं, वे ही वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान के बल से परमाल्हादमय अपनी शुद्ध आत्मा में स्थित रहते हुए केवलज्ञान सूर्य को उत्पन्न कर लेते हैं।

'मुच्चंति' — 'अमूर्त का मूर्त अथवा अमूर्तों के साथ बंध नहीं होता' ऐसा मोक्ष के अभावसंबंधी मिथ्यात्वरूपी दुर्णय के निवारणार्थ 'मुच्चंति' अर्थात् 'मुक्त होते हैं' यह पद कहा गया है।

दूसरी बात यह है कि जीव और शरीर का अनादि संबंध है, जैसे कि स्वर्ण पाषाण में मल। इस गाथा में कथित नियम के अनुसार सभी संसारी जीव अनादिकाल से कर्मों से संश्लिष्ट — संबंधित, अशुद्ध, मूर्तिक ही हैं न कि अमूर्तिक, हाँ कथंचित् — शुद्ध निश्चयनय से ही संसारी जीव अमूर्तिक है, न कि अशुद्धनय से, ऐसा जानना।

द्रव्यसंग्रह में कहा है —

पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गंध और आठ स्पर्श निश्चयनय से ये जीव में नहीं हैं अतः यह अमूर्तिक है और कर्मबंध के होने से यह व्यवहारनय से मूर्तिक है॥७॥

अतो अमीः संसारिणः मूर्तपुद्गलकर्मभिः सहिताः मूर्ताः एव पुनरपि रागद्वेषादिभावैः पुद्गलकर्माणिः गृण्हन्ति। यदा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूपव्यवहारनिश्चयरत्नत्रयबलेन मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगान् बंधहेतून् निहत्य स्वात्मानं लभन्ते तदा शुद्धाः सिद्धाः अमूर्ता भवन्ति न च ततः प्राक् संसारावस्थायाम्।

परिणिव्वाणयन्ति — अशरीरस्य आत्मनः इन्द्रियाणामभावात् विषयसेवनं नास्ति ततस्तेषां सुखं नास्ति इति कथयतां दुर्णयनिवारणार्थं परिनिर्वान्ति इति पदं सूत्रे कथितं।

त्रैलोक्यत्रैकाल्यजीवानां पुञ्जीभूतसर्वसुखापेक्षयापि अनन्तगुणाधिकं सौख्यं सिद्धानां विद्यते।

उक्तं च त्रिलोकसारग्रन्थे —

चक्विकुरुफणिसुरेंदे-सहमिंदे जं सुहं तिकालभवं।

तत्तो अणंतगुणिदं सिद्धाणं खणसुहं होदि*॥५६०॥

अतः ये सभी संसारी जीव मूर्तिक पुद्गलकर्मों से सहित मूर्तिक ही हैं, पुनः रागद्वेष आदि भावों से पुद्गलकर्मों को ग्रहण करते हैं। जब ये सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रस्वरूप व्यवहार-निश्चय रत्नत्रय के बल से मिथ्यात्व, विषय, कषाय और योग जो कि बंध के हेतु हैं उनका नाश करके अपनी आत्मा को प्राप्त कर लेते हैं, तब वे शुद्ध, सिद्ध, अमूर्तिक हो जाते हैं न कि उससे पहले संसार अवस्था में अमूर्तिक हैं।

‘परिणिव्वाणयन्ति’ — जिसके शरीर नहीं है, उसके इन्द्रियों का भी अभाव होने से विषयसेवन नहीं हो सकता, अतएव मुक्त जीवों के सुख नहीं है, ऐसा कहने वालों के दुर्नय के निवारणार्थ ‘परिणिव्वाणयन्ति’ अर्थात् परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं, ऐसा कहा गया है।

तीन लोक और तीन काल के जीवों के एकत्रित किये सम्पूर्ण सुख की अपेक्षा भी अनन्तगुणे अधिक सिद्धों का सुख है।

त्रिलोकसार ग्रंथ में कहा भी है —

चक्रवर्ती, भोगभूमि, धरणेन्द्र, देवेन्द्र और अहमिन्द्रों का सुख क्रमशः एक-दूसरे से अनन्तगुणा है। इन सबके त्रिकालवर्ती सुखों से सिद्धों का एक क्षण का भी सुख अनन्तगुणा है॥५६०॥

विशेषार्थ — संसार में चक्रवर्ती के सुख से भोगभूमि स्थित जीवों का सुख अनन्तगुणा है। इनसे धरणेन्द्र का सुख अनन्तगुणा है। धरणेन्द्र से देवेन्द्र का सुख अनन्तगुणा है और देवेन्द्र से अहमिन्द्रों का सुख अनन्तगुणा है। इन सबके त्रिकालवर्ती सुख से भी सिद्धों का एक क्षण का सुख अनन्तगुणा है अर्थात् उनके सुख की तुलना नहीं है।

उपर्युक्त उपदेश मात्र कथनस्वरूप है, कारण कि सिद्ध परमेष्ठी का सुख अतीन्द्रिय, स्वाधीन और निराकुल (अव्यावाध) है तथा संसारी जीवों का सुख इन्द्रियजनित, पराधीन और आकुलतामय है अतः तीनों लोकों में कोई भी उपमा ऐसी नहीं है, जिसके सदृश सिद्ध जीवों का सुख कहा जा सके। उनका सुख वचनागोचर है।

सिद्धों का सुख अतीन्द्रिय, आत्मा से उत्पन्न है न कि इन्द्रियजन्य या परवस्तु से उत्पन्न संसार का सुख कर्म के आधीन, अन्तसहित दुःखों से मिश्रित, क्षणिक, आकुलतासहित ही है।

पद्मनंदिपंचविंशतिका में भी कहा है —

संसार में कुछ दुःख है, कुछ सुख है ऐसा अज्ञानीजनों के चित्त में प्रतिभास होता है किन्तु विवेकीजनों को तो संसार में नित्य ही सर्व दुःख ही दुःख है, ऐसा विश्वास रहता है॥

चक्रवर्त्यपेक्षया कुरुषु जातानां उत्तमभोगभूमिजीवानां सुखमनन्तगुणितं, ततोऽपेक्षया धरणेन्द्राणां सुखमनन्तगुणं, एवं सुरेन्द्रेषु अहमिन्द्रेषु च पूर्वपूर्वस्मात् उत्तरोत्तरेषामनन्तगुणितं यत्सुखं त्रिकालभवं ततः सर्वेभ्यः सिद्धानां क्षणोत्थं सुखमनन्तगुणितं भवति।

एतत्सुखमतीन्द्रियं आत्मोत्थं न च इन्द्रियजं परवस्तुजातं। किंच कर्मपरवशं सान्तं दुःखैरन्तरितोदयं सुखं सांसारिकं तत् क्षणिकं आकुलतासहितं दुःखमेवेति।

उक्तं च — दुःखं किञ्चित् सुखं किञ्चित् चित्ते भाति जडात्मनः।
संसारे तु पुनर्नित्यं सर्वं दुःखं विवेकिनः^१॥

अतोऽतीन्द्रियसुखस्य लक्षणं कथ्यते —

सिद्धानां सुखमात्मोत्थं अव्याबाधमकर्मजम्।

परमाल्हादरूपं तद् अनौपम्यमनुत्तरम्^२॥२१६॥

सर्वदुःखाणामन्तं परिविजाणन्ति — सति सुखे दुःखेणापि भवितव्यं, अन्यथा सुखानुपपत्तेः इति कथयतां दुर्णयनिवारणार्थं सर्वदुःखाणामन्तं परिविजानन्ति अनुभवन्तीति कथितम्। किंच सुखं आत्मनः स्वभावोऽस्ति अतः सिद्धानां सुखं स्वाभाविकं निष्प्रतिपक्षं वर्तते स्वभावज्ञानवत्।

उक्तं च — केवलमिन्द्रियरहितं असहायं तं सहावणाणं त्ति।
सण्णाणियरवियप्पे विहावणाणं हवे दुविहं^३॥२१७॥

एतादृशं सुखमपि स्वाभाविकमस्ति।

उक्तं च श्रीकुंदकुंददेवेन —

आउस्स खयेण पुणो णिण्णासो होइ सेसपयडीणं।

पच्छा पावइ सिग्घं लोयगं समयमेत्तेण॥२१८॥

इसीलिए आचार्यों ने अतीन्द्रिय सुख का लक्षण किया है —

सिद्ध भगवन्तों का सुख आत्मा से उत्पन्न होता है, बाधारहित — अव्याबाध है, कर्मों से उत्पन्न न होने से अकर्मज है, परमाल्हादरूप है, अनुपम है — उपमारहित है और अनुत्तर है॥२१६॥

‘सर्वदुःखाणामन्तं परिविजाणन्ति’ — ‘जहाँ सुख है, तहाँ दुख भी होना चाहिए, नहीं तो सुख की उपपत्ति नहीं बन सकती’ ऐसा कहने वालों के दुर्नय के निवारणार्थ ‘सर्व दुःखों के अन्त होने का अनुभव करते हैं’, ऐसा कहा गया है।

क्योंकि सुख यह आत्मा का स्वभाव है, इसलिए सिद्धों का सुख स्वाभाविक है, प्रतिपक्ष से रहित है, स्वभावज्ञान के समान, ऐसा जानना।

कहा भी है — जो केवल, इंद्रियरहित और असहाय है वह स्वभावज्ञान है। संज्ञान और मिथ्याज्ञान के भेद से दो प्रकार का विभावज्ञान होता है॥२१७॥

अर्थात् जो केवल — एक, अतीन्द्रिय और परसहाय की अपेक्षा से रहित है वह केवलज्ञान स्वभावज्ञान है।

ऐसा सुख भी स्वाभाविक सुख है।

श्री कुंदकुंददेव ने कहा भी है —

आयु का क्षय हो जाने पर पुनः शेष प्रकृतियों का नाश हो जाता है। अनन्तर शीघ्र ही समयमात्र में वे

जाइजरमरणरहियं परमं कम्मद्वज्जियं सुद्धं।

णाणाइचउसहावं अक्खयमविणासमच्छेयं^१॥१७७॥

“णाणाइचउसहावं अक्खयमविणासमच्छेयं — ज्ञानदर्शनसुखवीर्याश्चत्वारः स्वभावगुणाः यत्र तत्, कल्पान्तकालेऽपि क्षयरहितमक्षयं विनाशरहितमविनाशं छेतुमयोग्यमच्छेद्यं तत् निर्वाणं लोकाग्रं प्राप्नोति^२।”

सर्वार्थसिद्धिविमानात् प्रच्युत्य अहमिन्द्राः यं यं गुणमुत्पादयन्ति तेषां गुणानां कथनमत्र प्रोक्तं संक्षेपेण, इमे महापुरुषाः नियमेन परमानन्दमयं निर्वाणधाम प्राप्नुवन्ति, एतस्मात् एतदेव पदं सर्वश्रेष्ठमिति ज्ञातव्यम्।

इदं सर्वार्थसिद्धिविमानं द्रव्यभावाभ्यां निर्ग्रन्था महासाधव एव लभन्ते न चान्ये तन्निश्चयव्यवहार-रत्नत्रयसमन्वितं निर्ग्रन्थं निर्वाणमार्गं श्रीगौतमस्वामिगणधरदेवोऽपि प्रशंसति। तथाहि —

“इच्छामि भन्ते! इमं णिगंथं पावयणं अणुत्तरं केवलियं पडिपुण्णं णेगाइयं सामाइयं संसुद्धं सल्लघट्टाणं सल्लघत्ताणं सिद्धिमगं सेद्धिमगं खंतिमगं मुत्तिमगं पमुत्तिमगं मोक्खमगं पमोक्खमगं णिज्जाणमगं णिव्वाणमगं सब्बदुक्खपरिहाणिमगं सुचरियपरिणिव्वाणमगं अवित्तहं अवि संति पवयणं उत्तमं तं सहहामि तं पत्तियामि तं रोचेमि तं फासेमि इदोत्तरं अण्णं णत्थि ण भूदं ण भवं ण भविस्सदि^३।”

भगवान् लोकाग्र को प्राप्त कर लेते हैं॥१७६॥

जन्म जरा मरण से रहित, परम, आठ कर्म से वर्जित, शुद्ध ज्ञान दर्शन सुखवीर्य स्वभाव वाला, अक्षय, अविनाशी, अच्छेद्य, अव्याबाध, अतीन्द्रिय, अनुपम, पुण्यपाप से रहित, पुनरागमन से रहित, नित्य, अचल और आलंबनरहित ऐसा सुख उन सिद्धों को प्राप्त हो जाता है॥१७७॥

ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य ये चार स्वभावगुण जहाँ हैं वह स्थान कल्पान्तकाल में भी क्षय नहीं होता, अक्षय है, विनाशरहित होने से अविनाशी है, छेदन के योग्य न होने से अच्छेद्य है ऐसे निर्वाण को — लोक के अग्रभाग को सिद्ध भगवान् प्राप्त कर लेते हैं।

सर्वार्थसिद्धि विमान से च्युत होकर अहमिन्द्र जिन-जिन गुणों को उत्पन्न करते हैं, उन गुणों का कथन यहाँ संक्षेप में कहा गया है। ये महापुरुष तो नियम से परमानन्दमय निर्वाणधाम को प्राप्त करते हैं इन सभी में से तो यह एक ही पद सर्वश्रेष्ठ है, ऐसा जानना चाहिए।

इस सर्वार्थसिद्धि विमान को द्रव्य और भाव से निर्ग्रन्थ ऐसे महासाधु ही प्राप्त करते हैं, न कि अन्य कोई सामान्य साधु।

वह निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय से समन्वित निर्ग्रन्थलिंग ही निर्वाणमार्ग है, ऐसा श्री गौतम स्वामी गणधरदेव भी प्रशंसा करते हैं। जैसा कि —

हे भगवन्! इस निर्ग्रन्थ लिंग की इच्छा करता हूँ। यह बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रह से रहित मोक्ष की प्राप्ति का कारण निर्ग्रन्थ लिंग आगम में मोक्ष का मार्ग है इस रूप से प्रतिपादन किया गया है, अनुत्तर है अर्थात् इस निर्ग्रन्थ लिंग से भिन्न दूसरा और कोई उत्कृष्ट मोक्ष का मार्ग नहीं है, केवली संबंधी है, परिपूर्ण है, नैकायिक है, सामायिक रूप है, संशुद्ध है, शल्य घट्टक जीवों के शल्य का घातक है, सिद्धि का मार्ग है, श्रेणी का मार्ग है, शान्ति का मार्ग है, मुक्ति का मार्ग है, प्रकृष्ट मुक्ति का मार्ग है, मोक्ष का मार्ग है, प्रकृष्ट मोक्ष का मार्ग है, नियति का मार्ग है, निर्वाण का मार्ग है, सब दुःखों के परिहानि का मार्ग है, निरतिचार शोभन चारित्र के धारकों के परिनिर्वाण का मार्ग है, अवितथ है, प्रवचनस्वरूप है, उत्तम है, इस प्रकार का निर्ग्रन्थ लिंग

एवमनन्ततीर्थकरैरनाद्यनिधनरत्नत्रयस्वरूपमार्ग एवोपदिष्टः, विदेहक्षेत्रेष्वसावेव मार्गोऽद्यावध्यविच्छिन्न-
प्रवाहेणागतोऽस्त्यग्रेऽपि अनन्तकालेऽयमेव चलिष्यति। अत्रापि भरतक्षेत्रे युगादौ श्रीऋषभदेवेनादिब्रह्मणा
प्रारब्धः। अयमेवाधुना दुष्कर्मकाले इदं वीरप्रभुशासनमविच्छिन्नमेवास्ति। मध्ये सप्ततीर्थकराणामन्तराले
सप्तवारानयं मार्गो व्युच्छिन्नः किन्तु वीरजिनशासने नास्ति व्युच्छेदः।

उक्तं च —

हुण्डावसर्पिणिस्स य दोसेणं सत्त होति विच्छेदा।

दिक्खाहिमुहाभावे अत्थमिदो धम्मरविदेवो^१॥१२८०॥

अयं मार्गो मयास्मिन् भवे न प्राप्स्यते तृतीयभवे नियमेन प्राप्नुयात् एतदेव याच्यतेऽधुना। यद्यपि
वयमार्थिकाः गणिन्यश्च पंचमगुणस्थानवर्तिन्यस्तथापि एकादशप्रतिमाधारिक्षुल्लकैलकापेक्षयोत्कृष्टा
उपचारमहाव्रतिकाः संयतिकाः स्मः। मुनिरिव सर्वान् अष्टाविंशतिमूलगुणान् समाचारांश्च प्रतिपालयामः।
एकादशांगश्रुतस्याध्ययनेऽपि आर्थिकाणामधिकारोऽस्ति।

उक्तं च मूलाचारे — एसो अज्जाणं पि अ सामाचारो जहाक्खिओ पुव्वं।

सव्वम्हि अहोरेत्ते विभासिदव्वो जधा जोगं^२॥१२८१॥

उसका मोक्षार्थी आश्रय ग्रहण करते हैं अर्थात् उसे स्वीकार करते हैं मैं उसका श्रद्धान करता हूँ, प्रतीति करता हूँ,
रुचि करता हूँ, स्पर्श करता हूँ, इस निर्ग्रन्थ लिंग से उत्कृष्ट लिंग न वर्तमान काल में है न अतीत काल में था और
न भविष्यत् काल में होगा।

इस प्रकार अनन्त तीर्थकर भगवन्तों ने इस अनादि-अनिधन रत्नत्रयस्वरूप मार्ग ही कहा है,
विदेह क्षेत्रों में यही मार्ग आज तक भी अविच्छिन्न प्रवाहरूप से चला आ रहा है और आगे भी
अनन्तकाल तक यही मार्ग चलता रहेगा। यहाँ भी भरतक्षेत्र में युग की आदि में आदिब्रह्मा श्री
ऋषभदेव ने इस मार्ग को प्रारंभ किया था। यही मार्ग इस समय इस दुःषमकाल में श्री वीरप्रभु के
शासन के रूप में अविच्छिन्न ही है।

मध्य में सात तीर्थकरों के अन्तराल में सात बार यह मार्ग व्युच्छिन्न हुआ है, किन्तु वीरप्रभु के शासन में
इस मार्ग का — जैनधर्म का व्युच्छेद नहीं है।

श्री यतिवृषभसूरि ने तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में कहा है —

हुण्डावसर्पिणी के दोष से यहाँ सात धर्म के विच्छेद होते हैं। उस समय दीक्षा के अभिमुख होने वालों
का अभाव होने पर धर्मरूपी सूर्यदेव अस्तमित हो गया था॥१२८०॥

यह मार्ग — निर्ग्रन्थमार्ग मुझे इस भव में प्राप्त नहीं होगा, तृतीय भव में नियम से प्राप्त हो, इस
समय मेरे द्वारा यह याचना की जा रही है — मैं ऐसी याचना करती हूँ। यद्यपि मैं आर्थिका हूँ, गणिनी हूँ,
आर्थिकाओं में प्रधान हूँ, पंचम गुणस्थानवर्ती हूँ, फिर भी ग्यारह प्रतिमाधारी क्षुल्लक, ऐलक की अपेक्षा
उत्कृष्ट हूँ, उपचार से महाव्रतिका हूँ, संयतिका हूँ। मुनि के समान अट्टाईस मूलगुणों का और समाचार
विधि का पालन करती हूँ।

एकादश अंगरूप श्रुत के अध्ययन करने का भी आर्थिकाओं को अधिकार है।

मूलाचार में कहा भी है —

गाथार्थ — पूर्व में जैसा कहा गया है वैसा ही यह समाचार आर्थिकाओं को भी सम्पूर्ण अहोरात्र में
यथायोग्य करना चाहिए॥१२८१॥

सुत्तं गणधरकहिदं तहेव पत्तेयबुद्धिकधिदं च।

सुदकेवल्लिणा कधिदं अभिण्णदसपुव्विकधिदं च॥२७७॥

तं पढिदुमसज्झाये णो कप्पदि विरद इत्थिवग्गस्स।

एत्तो अण्णो गंधो कप्पदि पढिदुं असज्झाये^१॥२७८॥

टीकायामपि — “तत्सूत्रं पठितुमस्वाध्याये न कल्प्यते न युज्यते विरतवर्गस्य संयतसमूहस्य स्त्रीवर्गस्य चार्थिकावर्गस्य च। इतोऽस्मादन्यो ग्रन्थः कल्प्यते पठितुमस्वाध्यायेऽन्यत्पुनः सूत्रं कालशुद्ध्यभावेऽपि युक्तं पठितुमिति^२।”

अनेन स्पष्टं भवति यत् आर्थिकाः स्वाध्यायकाले सूत्रग्रन्थमपि पठितुमर्हन्ति। पुराणग्रन्थेऽपि श्रूयते।

तथाहि — “एकादशांगभृज्जाता सार्थिकापि सुलोचना^३।”

एषां ग्रन्थानामाधारणैव मया षट्खण्डागमसिद्धान्तग्रन्थस्य स्वाध्यायं कृत्वा सिद्धान्तचिन्तामणिनामधेया-टीकालेखनस्य प्रयासो विहितः।

अहो! क्वायं सिद्धान्तग्रन्थः षट्खण्डागमनामधेयो महाग्रन्थराजः ? क्व च श्रीधरसेनाचार्यः श्रुतपारंगतो महानाचार्यः अस्य द्वादशांशांशस्य ज्ञाता ? क्व च अस्य भगवतः शिष्यौ पुष्पदन्तभूतबलिनामानौ सरस्वतीपुत्रौ

आचारवृत्ति टीका में—पूर्व में जैसा समाचार प्रतिपादित किया है, आर्थिकाओं को भी सम्पूर्ण कालरूप दिन और रात्रि में यथायोग्य — अपने अनुरूप अर्थात् वृक्षमूल, आतापन आदि योगों से रहित वही सम्पूर्ण समाचार विधि आचरित करनी चाहिए।

भावार्थ—इस गाथा से यह स्पष्ट हो जाता है कि आर्थिकाओं के लिए वे ही अट्टाईस मूलगुण और वे ही प्रत्याख्यान, संस्तरग्रहण आदि तथा वे ही औधिक पदविभागिक समाचार माने गये हैं, जो कि यहाँ तक चार अध्यायों में मुनियों के लिए वर्णित हैं। मात्र ‘यथायोग्य’ पद से टीकाकार ने स्पष्ट कर दिया है कि उन्हें वृक्षमूल, आतापन, अभावकाश और प्रतिमायोग आदि उत्तर योगों के करने का अधिकार नहीं है और यही कारण है कि आर्थिकाओं के लिए पृथक् दीक्षाविधि या पृथक् विधि-विधान का ग्रन्थ नहीं है।

गाथार्थ—गणधर देव द्वारा कथित, प्रत्येक बुद्धि ऋद्धिधारी द्वारा कथित, श्रुतकेवली द्वारा कथित और अभिन्न दशपूर्वी ऋषियों द्वारा कथित को सूत्र कहते हैं॥२७७॥

गाथार्थ—अस्वाध्याय काल में मुनिवर्ग और आर्थिकाओं को इन सूत्रग्रन्थ का पढ़ना ठीक नहीं है। इनसे भिन्न अन्य ग्रन्थ को अस्वाध्याय काल में पढ़ सकते हैं॥२७८॥

आचारवृत्ति टीका में—विरतवर्ग अर्थात् संयतसमूह को और स्त्रीवर्ग अर्थात् आर्थिकाओं को अस्वाध्यायकाल में—पूर्वोक्त कालशुद्धि आदि से रहित काल में इन सूत्र ग्रन्थों का स्वाध्याय करना युक्त नहीं है किन्तु इन सूत्रग्रन्थों से अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों को कालशुद्धि आदि के अभाव में भी पढ़ा जा सकता है, ऐसा समझना।

इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि आर्थिकाएँ स्वाध्यायकाल में सूत्रग्रन्थ भी पढ़ सकती हैं।

पुराण ग्रन्थ में भी कहा है—

आर्थिका सुलोचना भी ग्यारह अंग की पाठी हो गई।

इन ग्रन्थों के आधार से ही मैंने षट्खण्डागम सिद्धान्त ग्रन्थ का स्वाध्याय करके ‘सिद्धान्तचिन्तामणि’ नाम की टीका लिखने का प्रयास किया है।

अहो! आश्चर्य है कि—कहाँ तो यह ‘षट्खण्डागम’ नाम का महाग्रन्थराज सिद्धान्तग्रन्थ ? कहाँ तो श्री धरसेनाचार्य गुरुदेव इस बारहवें अंग के अंश के ज्ञाता, महान श्रुतपारंगत आचार्यदेव ? कहाँ इन भगवान

इव श्रुतधराचार्यौ ? क्व चाहं अल्पज्ञा नाम्नैव ज्ञानमत्यार्थिका ? तथापि ममैतत् टीकालेखनकार्यं विद्वद्वर्गेषु श्लाघ्यमेव। किंच मया अस्यां टीकायां स्वबुद्ध्या किमपि न लिखितं केवलं धवलाटीकाधारेण नानाग्रन्थाधारेणैव, तर्हि अपि अस्यां यत् किमपि स्खलनं भवेत् तत् मम प्रमादेन अज्ञानेन वा भवितुं शक्येत तत् मदपेक्षयाधिकज्ञानिनो विद्वांसो मुनयः आर्थिकाः ईर्ष्यासूयादिभावमन्तरेण मह्यं सूचयन्तु शोधयन्तु वा न च दोषान् प्रसारयन्तु।

अस्यां टीकायां मया केवलं सरलं विषयं गृहीत्वा स्वस्यां सिद्धान्तज्ञानलब्ध्यै वृद्धयै च सिद्धान्तचिन्तामणिनाम्ना टीका रचिता न च विद्वत्सु विद्वत्ताप्रदर्शनाय न च ख्यातिलाभपूजापेक्षया वा, अस्याः टीकायाः नाम अन्वर्थकमेव भूयादिति भावनया च। इयं टीका मह्यं चिन्तामणिरत्नमिव चिन्तितफलदाने सक्षमा भूयात् मम चिन्तितफलं द्वादशांगश्रुतज्ञानं एव यत्तु केवलज्ञानस्य बीजभूतं कथ्यते।

उक्तं च — बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिः। स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः।।

“चिन्तामणिं चिन्तितवस्तुदाने। त्वां वंद्यमानस्य ममास्तु देवि।।”

श्रीतीर्थकरपरमदेवस्य श्रुतस्कंधमयर्म्योद्याने प्रविश्य हीरकमणिमुक्तामणिक्वादिरत्नानि इव काठिन्यात् सिद्धान्तन्यायव्याकरणगणितादिविषयान् मुक्त्वा गुणस्थानमार्गणादिषु सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालांतर-भावाल्पबहुत्वजीवस्थानचूलिकादीनि अतीव सुंदरविविधवर्णविचित्रकुसुमानि चित्वा चित्वा इयं सिद्धान्तचिन्तामणिनामधेया स्रक् गुम्फिता मया। अद्य श्रीऋषभदेवकेवलज्ञानदिवसे केवलज्ञानावाप्तये इयं

आचार्यदेव के शिष्य श्री पुष्पदंत-भूतबली आचार्य जो कि सरस्वती पुत्र के समान श्रुतधर आचार्य हुए हैं ? और कहाँ मैं अल्पज्ञा नाममात्र से ‘ज्ञानमती’ आर्थिका ?

फिर भी मेरा यह टीका लेखनकार्य विद्वान वर्गों में प्रशंसनीय ही है। दूसरी बात यह है कि मैंने इस टीका में अपनी बुद्धि से कुछ भी नहीं लिखा है, केवल ‘धवलाटीका’ के आधार से और अनेक ग्रंथों के आधार से ही लिखा है। तो भी इस टीका में जो कुछ भी स्खलन हुआ हो, वह मेरे प्रमाद से अथवा अज्ञान से ही होना शक्य — संभव है, जो मेरे से भी अधिक ज्ञानी विद्वान्, मुनिगण या आर्थिकाएँ हों, वे ईर्ष्या, असूया आदि भावों के बिना मुझे सूचित करें अथवा संशोधन करें, मेरे दोषों का प्रसारण न करें।

इस टीका में मैंने सरल विषय को ग्रहण कर अपने में सिद्धान्त ज्ञान की उपलब्धि के लिए और उसकी वृद्धि के लिए “सिद्धान्तचिन्तामणि” नाम की यह टीका रची है न कि विद्वानों में विद्वत्ता प्रदर्शन के लिए या ख्याति, लाभ, पूजा की अपेक्षा से ही तथा इस टीका का नाम सार्थक होवे, ऐसी भावना से ही लिखी है। यह टीका मुझे चिन्तामणिरत्न के समान ही चिंतित फल को देने में समर्थ होवे, मेरा चिंतितफल द्वादशांग श्रुतज्ञान ही है, जो कि केवलज्ञान का बीज कहा जाता है।

कहा भी है — हे सरस्वती देवि ! आप चिंतित वस्तु के देने में चिन्तामणि के समान है — चिन्तामणि ही हैं, आपकी वंदना करते हुए मुझे बोधि — रत्नत्रय की प्राप्ति हो, समाधि की प्राप्ति हो, परिणामों की शुद्धि हो, अपनी आत्मा की उपलब्धि हो और मोक्ष सुख की सिद्धि होवे।।

श्री तीर्थकर परमदेव के श्रुतस्कंधमय रम्य — सुंदर उद्यान में प्रवेश करके हीरा, मणि, मोती, माणिक आदि रत्नों के समान अत्यंत कठिन होने से सिद्धान्त, न्याय, व्याकरण, गणित आदि विषयों को छोड़कर गुणस्थान-मार्गणा आदि में सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व एवं जीवस्थान चूलिका आदि अतीव सुन्दर-सुन्दर नाना प्रकार के वर्णरूप विचित्र पुष्पों को चुन-चुनकर यह ‘सिद्धान्तचिन्तामणि’

स्रक् तस्यैव श्रीआदिब्रह्मणः चरणपंकेरुहयोः भक्त्या मया समर्प्यते।

अस्याः टीकामयीस्रजः पुष्पाणि श्रीभगवतः चरणकमलं स्पृष्ट्वा सुरभितानि जातानि सर्वजगति सुरभिं विकिरेयुः नात्यदभुतमस्मिन्निति।

एवं तृतीयस्थले देवगतिप्रच्युतानां गुणोत्पादनकथनमुख्यत्वेन अष्टादशसूत्राणि गतानि।

संप्रति षष्ठग्रन्थस्य सूत्राणां विवरणं क्रियते —

अस्यां जीवस्थानचूलिकायां प्रथमायां प्रकृतिसमुत्कीर्तनचूलिकायां षट्चत्वारिंशत्सूत्राणि, द्वितीयायां स्थानसमुत्कीर्तनचूलिकायां सप्तदशाधिकशतसूत्राणि, तृतीयायां चूलिकायां प्रथममहादण्डके द्वे सूत्रे, चतुर्थ्यां चूलिकायां द्वितीयमहादण्डकनामधेयायां द्वे सूत्रे, पंचम्यां चूलिकायां तृतीयमहादण्डकनामधेयायां द्वे सूत्रे, षष्ठ्यां चूलिकायां उत्कृष्टस्थितिबंधाख्यायां चतुश्चत्वारिंशत्सूत्राणि, सप्तम्यां चूलिकायां जघन्यस्थितिबंधाख्यायां त्रिचत्वारिंशत्सूत्राणि, अष्टम्यां सम्यक्त्वोत्पत्तिनामचूलिकायां षोडशसूत्राणि, नवम्यां चूलिकायां गत्यागतिनामधेयायां त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशतसूत्राणि एवं सर्वाणि मिलित्वा पंचदशोत्तर-पंचशतसूत्रैः जीवस्थानचूलिकानाम् ग्रन्थः परिपूर्यते मया सरस्वतीमातुः कृपाप्रसादेन।

तीर्थकरदीक्षावृक्षाणां स्तुतिः

लौकान्तिकसुरैः स्तुत्य-तीर्थकर्तृजिनेशिनम्।

दीक्षावनद्गुमस्थान-पावनानि नुमोऽधुना॥१॥

नाम वाली माला मैंने गूँथी है। आज श्री ऋषभदेव के केवलज्ञान दिवस — फाल्गुन कृष्ण ग्यारस तिथि में केवलज्ञान की प्राप्ति के लिए यह माला उन्हीं आदिब्रह्मा श्री ऋषभदेव के श्रीचरणकमलों में भक्तिपूर्वक मेरे द्वारा समर्पित की जाती है।

इस टीकामयी माला के पुष्प श्री तीर्थकर भगवान के चरण कमलों का स्पर्श करके सुरभित हो गये हैं, ये सुगंधित पुष्प सारे जगत में सुगंधि फैलावें, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में देवगति से च्युत हुए जीवों के गुणों को उत्पादन करने के कथन की मुख्यता से अठारह सूत्र पूर्ण हुए।

अब इस छठे ग्रंथ के सूत्रों का विवरण करते हैं —

इस जीवस्थान चूलिका नाम के ग्रंथ में प्रथम 'प्रकृतिसमुत्कीर्तन' नाम की चूलिका में छ्यालीस सूत्र कहे गये हैं। द्वितीय 'स्थानसमुत्कीर्तन' नाम की चूलिका में एक सौ सत्रह सूत्र हैं। तृतीय चूलिका 'प्रथम महादण्डक' नाम से है, उसमें दो सूत्र हैं। चौथी चूलिका 'द्वितीय महादण्डक' नाम में दो सूत्र हैं। पाँचवीं चूलिका "तृतीय महादण्डक" नाम की है उसमें भी दो सूत्र हैं। छठी चूलिका 'उत्कृष्ट स्थितिबंध' नाम की है, इसमें चवालीस सूत्र हैं। सातवीं चूलिका 'जघन्य स्थितिबंध' नाम से है, इसमें तेतालीस सूत्र हैं। आठवीं चूलिका 'सम्यक्त्वोत्पत्ति' नाम की है इसमें सोलह सूत्र हैं और नवमीं चूलिका 'गत्यागति नाम' से है, इसमें दो सौ तेतालीस सूत्र हैं। इस प्रकार सब मिलकर 'पाँच सौ पन्द्रह' सूत्रों से 'यह जीवस्थान चूलिका' नाम का ग्रंथ सरस्वती माता की कृपा प्रसाद से मेरे द्वारा पूर्ण किया जा रहा है।

तीर्थकरों के दीक्षावृक्षों की स्तुति

लौकान्तिक देवों द्वारा स्तुति को प्राप्त तीर्थकर भगवन्तों के दीक्षावन और दीक्षावृक्ष स्थान पावन-पवित्र हैं, इस समय हम उन्हें नमस्कार करते हैं॥१॥

दीक्षावृक्षस्य नामानि-वट-सप्तच्छद-सर्ज-असन-महिला-छसा-शिरीष-नाग-सर्ज-प्लक्ष-तिंदुक-पाटल-जंबू-अश्वत्थ-कपित्थ-नंदिक-तिलक-आम्र-अशोक-चंपक-बकुल-वांसिक-धव-शालाः इमे दीक्षावृक्षाः^१ अपि तीर्थकरदेवनिष्क्रमणकल्याणकनिमित्तेन पूज्या अभवन्।

श्रीऋषभदेवादितुर्विंशतितीर्थकरदेवैः यत्र प्रयागसाकेतादिनगरीणां सिद्धार्थादिवनेषु वटवृक्षादितलेषु दैगम्बरीदीक्षा गृहीता, तत्स्थलवनवृक्षादयोऽपि सुरादिभिः वंद्याः संजाताः। तांश्चतुर्विंशतितीर्थकरभगवतः नमस्कृत्य संप्रति स्वार्थिकादीक्षाभूमि-‘माधोराजपुरा’ नाम ग्रामे उपविश्य तीर्थकरदीक्षाकल्याणकभूमीः स्मारं स्मारं वन्दित्वा मनसि निधायापि भक्तिभावेन अत्र नूतनतीर्थ रचनाशिलान्यासदिवसे तीर्थकरदीक्षावनानि वृक्षाश्च मयापि स्तूयन्ते भक्तिभावेन, भाविकाले तद्भवमोक्षगामि-महाव्रतदीक्षाप्राप्त्यर्थं। अस्मिन् विंशतितमे

तीर्थकरों के क्रम से दीक्षावृक्ष के नाम—वट (बड़वृक्ष), सप्तच्छद, सर्ज (सालवृक्ष), असन (पीतसाल), महिला (प्रियंगु), छसा, शिरीष (सिरस), नाग, सर्ज (साल), प्लक्ष (पीपल), तिंदुक, पाटल, जामुन, अश्वत्थ (पीपल), कपित्थ (कैथा), नंदी, तिलक, आम, अशोक, चंपा, वकुल, वांस, धव (देवदारु) और साल ये दीक्षा वृक्ष भी तीर्थकर भगवान के दीक्षाकल्याणक के निमित्त से पूज्य हो गये हैं।

शास्त्रों में दीक्षावृक्ष एवं केवलज्ञान वृक्ष एक ही माने हैं। अन्यत्र में इनके नाम निम्न प्रकार हैं— १. वट, २. सप्तपर्ण (चितवन), ३. शाल (साल-साखू), ४. सरल (चीड़), ५. प्रियंगु, ६. प्रियंगु, ७. शिरीष (सिरस), ८. नाग (नागकेसर), ९. बहेड़ा, १०. विल्व (बेल), ११. तेंदू, १२. कदंब, १३. जामुन, १४. पीपल, १५. कैथा, १६. नंदी (तून), १७. तिलक, १८. आम्र, १९. अशोक, २०. चंपा, २१. वकुल (मौलश्री), २२. बांस, २३. देवदारु, २४. साल।

भावार्थ—जिनवृक्षों के नीचे तीर्थकरप्रभु ने दीक्षा ली है। उन्हीं वृक्षों के नीचे उनके केवलज्ञान का वर्णन आया है। जिनके नीचे दीक्षा ली या केवलज्ञान प्राप्त किया वे ही वृक्ष पूज्य हुए हैं, न कि उन नाम वाले अन्यवृक्ष। जैसे कि जिस पर्वत से मोक्ष प्राप्त किया है, वे ही पर्वत पूज्य हैं न कि अन्य पर्वत। जिस जल से भगवान का अभिषेक होता है, वही जल पूज्य गंधोदक कहलाता है न कि अन्य सभी जल। इस बात को ध्यान में रखना चाहिए।

श्री ऋषभदेव आदि चौबीस तीर्थकरों ने जहाँ प्रयाग, अयोध्या आदि नगरियों के सिद्धार्थ आदि वनों में—उद्यानों में वटवृक्ष आदि के नीचे दैगम्बरी दीक्षा ग्रहण की है, वे स्थल-वन, वृक्ष आदि भी देवों द्वारा वंदित हुए हैं। उन चौबीस तीर्थकर भगवन्तों को नमस्कार करके इस समय आज मैं अपनी आर्थिका दीक्षा की भूमि “माधोराजपुरा” नाम के ग्राम में बैठकर तीर्थकरों की दीक्षाकल्याणक भूमियों का स्मरण कर-करके, उनकी वंदना करके एवं भक्तिभाव से उन्हें मन में धारण कर आज नूतन तीर्थ रचना के शिलान्यास दिवस तीर्थकरों के दीक्षावन और दीक्षावृक्षों की मैं भावीकाल में तद्भव मोक्षगामी—उसी भव में मोक्ष प्राप्त कराने वाली ऐसी महाव्रत दीक्षा की प्राप्ति के लिए भक्तिपूर्वक स्तुति करती हूँ।

शताब्दौ प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्तिश्रीशांतिसागरं नुत्वा तत्प्रथमपट्टाधीशाय दीक्षागुरवे श्रीवीरसागरसूरये कोटिशः नमोस्तु।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे षष्ठग्रन्थे
श्रीवीरसेनाचार्यविरचित धवलाटीकाप्रमुखानेकग्रन्थाधारेण रचितायां
विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यः श्रीचारित्रचक्रवर्तिशान्तिसागरस्तस्य
प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागराचार्यः तस्य शिष्या जम्बूद्वीपरचना-
प्रेरिकागणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिंतामणिटीकायां नवमी
चूलिकानामायं द्वितीयो महाधिकारः समाप्तः।

इस बीसवीं शताब्दी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर महाराज को नमस्कार करके उनके प्रथम पट्टाधीश दीक्षागुरुदेव श्री वीरसागर आचार्य को मेरा कोटि-कोटि नमोस्तु होवे।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान् पुष्पदन्त-भूतबली प्रणीत षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में छठे ग्रंथ में श्री वीरसेनाचार्य विरचित धवलाटीका प्रमुख अनेक ग्रंथों के आधार से रचित, बीसवीं शताब्दी के प्रथमाचार्य श्री चारित्रचक्रवर्ती शांतिसागर जी महाराज, उनके प्रथम पट्टाधीश श्री वीरसागराचार्य, उनकी शिष्या जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका, मुझ गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणि टीका में नवमी चूलिका नाम का यह दूसरा महाधिकार पूर्ण हुआ।



अधुना षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डस्योपसंहारः क्रियते —

इत्थं षट्खण्डागमस्य जीवस्थाननामप्रथमखण्डे अष्टसु अनुयोगद्वारेषु नवमीचूलिकासु च नवसु विषयेषु पञ्चसप्तत्यधिकत्रयोविंशतिशतसूत्राणि सन्ति। तत्र सत्प्ररूपणानामानुयोगद्वारे सप्तसप्तत्यधिकशतसूत्राणि, द्रव्यप्रमाणानुगमनाम्नि द्वितीयानुयोगद्वारे द्विनवत्यधिकशतसूत्राणि, क्षेत्रानुगमनाम्नि तृतीयानुयोगद्वारे द्वानवतिसूत्राणि, स्पर्शनानुगमनाम्नि चतुर्थानुयोगद्वारे पञ्चाशीत्यधिकशतसूत्राणि, कालानुगमनाम्नि पञ्चमानुयोगद्वारे द्विचत्वारिंशदधिकत्रिशतसूत्राणि, अन्तरानुगमनाम्नि षष्ठानुयोगद्वारे सप्तनवत्यधिकत्रिशतसूत्राणि, भावानुगमनाम्नि सप्तमानुयोगद्वारे त्रिनवतिसूत्राणि, अल्पबहुत्वानुगमनाम्नि अष्टमानुयोगद्वारे द्वयशीत्यधिकत्रिशतसूत्राणि, पुनश्च एतेषामनुयोगद्वाराणामुपरि चूलिका इव जीवस्थानचूलिकानाम-नवमाधिकारे पञ्चदशोत्तरपञ्चशतसूत्राणि इति चूलिकासमेताष्टानुयोगद्वारैः द्विसहस्र-त्रिशत-पञ्चसप्ततिसूत्रैः जीवस्थाननामायं प्रथमखण्डः मया परिपूर्णते।

आर्याछंद —

मेरौ षोडशशैले, गजदन्ते ये चतुःप्रमाः जिननिलयाः।

कुलशैले षड्मान्या, विदेहजे वक्षारगिरिषु ते षोडश॥१॥

रूप्याद्रिचतुस्त्रिंशद्, तेषु गृहाः जंबूद्वौ शाल्मलिवृक्षे।

एतान् सर्वान् मान्यान्, अष्टासप्ततिजिनालयान् प्रणमामि॥२॥

संप्रति सार्धद्वयद्वीपान्तर्गताद्ये जंबूद्वीपे द्वात्रिंशद्विदेहक्षेत्रस्थशाश्वतकर्मभूमिषु भरतैरावतयोर्द्वयोः अशाश्वतकर्मभूम्योश्च यावन्तोऽर्हन्तः सिद्धाः आचार्योपाध्यायसाधवश्च पञ्चपरमेष्ठिनो बभूवुः भवन्ति भविष्यन्ति, तान् त्रिशुद्ध्या नमस्कृत्य जंबूद्वीपसंबन्धि सुदर्शनमेरुपर्वतस्थितषोडशजिनमंदिरसमेतान् अष्टसप्ततिसंख्यायुतान् अकृत्रिमजिनालयान् प्रणमामो वयं नित्यं।

अब छह ग्रंथों का उपसंहार करते हैं —

इस षट्खण्डागम के 'जीवस्थान' नाम के प्रथम खण्ड में आठ अनुयोगद्वार और नवमी चूलिका इन नव विषयों में 'तेईस सौ पचहत्तर' सूत्र हैं। उनमें से 'सत्प्ररूपणा' नाम के प्रथम अनुयोगद्वार में एक सौ सतहत्तर (१७७) सूत्र हैं। 'द्रव्यप्रमाणानुगम' नाम के द्वितीय अनुयोगद्वार में एक सौ ब्यानवे (१९२) सूत्र हैं। 'क्षेत्रानुगम' नाम के तीसरे अनुयोग द्वार में ब्यानवे (९२) सूत्र हैं। 'स्पर्शनानुगम' नाम के चौथे अनुयोगद्वार में एक सौ पचासी (१८५) सूत्र हैं। 'कालानुगम' नाम के पाँचवें अनुयोग द्वार में तीन सौ बयालीस (३४२) सूत्र हैं। 'अन्तरानुगम' नाम के छठे अनुयोगद्वार में तीन सौ सत्तानवे (३९७) सूत्र हैं। 'भावानुगम' नाम के सातवें अनुयोगद्वार में तिरानवे (९३) सूत्र हैं। 'अल्पबहुत्व' नाम के आठवें अनुयोगद्वार में तीन सौ बयासी (३८२) सूत्र हैं। पुनः इन आठ अनुयोगद्वारों के ऊपर 'चूलिका' शिखर के समान 'जीवस्थान चूलिका' नाम के नवमें अधिकार में पाँच सौ पन्द्रह (५१५) सूत्र हैं।

इस प्रकार चूलिका सहित आठ अनुयोगद्वार — नव अधिकारों में दो हजार तीन सौ पचहत्तर (२३७५) सूत्रों से मेरे द्वारा यह 'जीवस्थान' नाम का प्रथम खण्ड पूर्ण किया जा रहा है।

सुमेरु पर सोलह जिनमंदिर, गजदंत पर्वतों पर चार, कुलाचल पर्वतों पर छह, विदेह क्षेत्र में वक्षार पर्वतों पर सोलह, विजयार्ध पर्वतों पर चौंतीस, जंबूवृक्ष और शाल्मलीवृक्ष पर दो ऐसे ये सब अठहत्तर जिनमंदिर जम्बूद्वीप में हैं, उन सभी को हम नमस्कार करते हैं॥१-२॥

वर्तमान में ढाईद्वीप के अन्तर्गत इस प्रथम जम्बूद्वीप में बत्तीस विदेह क्षेत्रों में स्थित बत्तीस शाश्वत कर्मभूमियों में तथा भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र इन दो की अशाश्वत कर्मभूमियों में जितने भी अर्हंत, सिद्ध,

पुनश्च हस्तिनापुरतीर्थक्षेत्रे विनिर्मितकृत्रिमजम्बूद्वीपस्य सुदर्शनमेवादिपर्वतानामुपरि विराजमान-सर्वजिनबिंबानि मुहुर्मुहुः प्रणम्य यत्सिद्धान्तचिन्तामणिटीकालेखनकार्यं एकविंशत्युत्तरपंचविंशतिशततमे मया प्रारब्धं, तदधुना मांगीतुंगीसिद्धक्षेत्रस्य यात्रायाः मंगलविहारकाले त्रयोविंशत्युत्तरपंचविंशतिशततमे वीराब्दे मार्गे एव निर्विघ्नतया जिनदेवकृपाप्रसादेन महद्दुर्घोल्लासेन समाप्यते। एतत् सरस्वत्या देव्यः महद् अनुकंपामाहात्म्यमेव विज्ञायते, मयैव महदाश्चर्यं प्रतीयते।

अस्यां यात्रायां सिद्धवरकूट^१-ऊन^२-पावागिरि-मांगीतुंगी^३-पावागढ़^४-तारंगा^५नामधेयानां पञ्चसिद्धक्षेत्राणां तिजारा^६-महावीरजी^७-चांदनगांव-चांदखेड़ी^८-केशोरायपाटन^९-सवाईमाधोपुर चमत्कारजी^{१०}-महावीर तपोभूमि उज्जैन^{११}-महुवाजी^{१२}-अंकलेश्वर^{१३}-केशरियाजी^{१४}-अणिंदा^{१५}पार्श्वनाथनामातिशयक्षेत्राणां दर्शनं वन्दनां च कुर्वन्त्या मया एतदेतच्छेत्रेषु एनां सिद्धान्तचिन्तामणिटीकां लिखन्त्यात्यर्थं आनन्दोऽनुभूयते।

जम्बूद्वीपेऽत्र यावन्तो-ऽहंद् गणभृद् यतीश्वराः।

सिद्धाः सिद्ध्यन्ति सेत्स्यन्ति, तान् तत् क्षेत्राणि च स्तुवे॥१॥

सिद्धास्त्रैलोक्यमूर्धस्थाः, अनन्तगुणसंयुताः।

नमस्यन्ते मया भक्त्या, नित्यं सर्वार्थसिद्धये॥२॥

अस्य त्रैलोक्यस्य मूर्ध्नि पंचचत्वारिंशल्लक्षयोजनप्रमितायाः सिद्धशिलाया उपरि सिद्धलोकः पूर्णतया सिद्धेभ्यो व्याप्तो भूतोऽस्ति, तत्राणुमात्रमपि स्थानं रिक्तं नास्ति, प्रत्युत सर्वे सिद्धा एकैकस्मिन् अनेके

आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पाँच परमेष्ठी हुए हैं, होते हैं और होवेंगे, मन, वचन, कायपूर्वक उन सबको नमस्कार करके जम्बूद्वीप संबंधी सुदर्शन मेरु पर्वत पर स्थित सोलह जिनमंदिर समेत अठहत्तर संख्या सहित अकृत्रिम जिनमंदिरों को हम नित्य ही नमस्कार करते हैं।

अनन्तर हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र पर विनिर्मित कृत्रिम जम्बूद्वीप में सुदर्शन मेरु आदि पर्वतों के ऊपर विराजमान सर्व जिनप्रतिमाओं को पुनः-पुनः नमस्कार करके जो पच्चीस सौ इक्कीस वीर निर्वाण संवत्सर में मैंने 'सिद्धान्तचिन्तामणिटीका' लेखन कार्य प्रारंभ किया था, वह इस समय मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र की यात्रा के मंगल विहार के काल में पच्चीस सौ तेईस वीर निर्वाण संवत् में मार्ग में ही निर्विघ्नरूप से जिनेन्द्रदेव की कृपाप्रसाद से महान हर्ष और उल्लासपूर्वक पूर्ण किया जा रहा है। यह सरस्वती देवी की महान अनुकम्पा का माहात्म्य ही मालूम हो रहा है, स्वयं मुझे ही महान् आश्चर्य प्रतीत हो रहा है।

इस मांगीतुंगी यात्रा के मध्य १. सिद्धवरकूट, २. ऊन-पावागिरि, ३. मांगीतुंगी, ४. पावागढ़, ५. तारंगा इन पाँच सिद्धक्षेत्रों की वंदना हुई है। १. तिजारा, २. महावीरजी, ३. चांदखेड़ी, ४. केशोरायपाटन, ५. सवाईमाधोपुर, ६. महावीर तपोभूमि उज्जैन, ७. महुवाजी, ८. अंकलेश्वर, ९. केशरिया जी, १०. अणिंदा पार्श्वनाथ नाम के अतिशय क्षेत्रों के दर्शन और वंदन करते हुए मैंने इन-इन क्षेत्रों पर इस "सिद्धान्तचिन्तामणि" टीका को लिखते हुए अत्यर्थ आनंद का अनुभव किया है।

इस जम्बूद्वीप में जितने भी अर्हत भगवान, गणधरदेव और महामुनिगण सिद्ध हुए हैं, होते हैं और होवेंगे, उन-उन तीर्थकर भगवंत आदि की और उन पवित्र क्षेत्रों की मैं स्तुति करती हूँ॥१॥

तीन लोक के मस्तक पर स्थित, अनंत गुणों से सहित, सभी सिद्ध परमेष्ठी भगवान नित्य ही भक्तिपूर्वक संपूर्ण अर्थ की सिद्धि के लिए मेरे द्वारा नमस्कार किये जाते हैं॥२॥

इस तीन लोक के मस्तक के ऊपर पैंतालीस लाख योजन प्रमाण सिद्धशिला के ऊपर सिद्धलोक है, वह पूर्णरूप से सिद्धों से व्याप्त — भरा हुआ है, वहाँ पर अणुमात्र भी स्थान रिक्त — खाली नहीं है, प्रत्युत सभी सिद्ध

समाविष्टा एव। अयं मानवलोकोऽपि तावत्प्रमाणं पंचचत्वारिंशत्शतसहस्रयोजनमेवास्ति। अत्रत्य-
नदीसमुद्रादिभ्यो ये सिद्धास्ते संहरणापेक्षयैव। एवं अस्य मर्त्यलोकस्य सर्वस्थानेभ्यो जलेभ्यः स्थलेभ्यो
नभोभ्यः सार्धद्वयद्वीपसमुद्रेषु ऊर्ध्वाधोमध्यलोकेभ्यः सर्वक्षेत्रपर्वतगुहानदीसरोवरवनोपवनेभ्यश्च ये सिद्धाः
संजाताः भवन्ति भविष्यन्ति, तेभ्यो भूतानागतवर्तमानकालत्रयसिद्धेभ्यो मेऽनन्तवारान् नमोऽस्तु।

देवशास्त्रगुरुन् नत्वा, नित्यं भक्त्या त्रिशुद्धितः। षट्खण्डागमग्रन्थोऽयं, वन्द्यते ज्ञानवृद्धये॥१॥

त्रिद्विपंचद्विवीराब्दे, फाल्गुनेऽसितपक्षके। माधोराजपुराग्रामे, त्रयोदश्यां जिनालये॥२॥

नमः श्रीशान्तिनाथाय, सर्वसिद्धिप्रदायिने। यस्य पादप्रसादेन, टीकेयं पर्यपूर्णतः॥३॥

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे श्रीवीरसेनाचार्यविरचितधवला-
टीकाप्रमुखनानाग्रन्थाधारेण रचितायां विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यः श्रीचारित्रचक्रवर्ति-
शांतिसागरः तस्य प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागराचार्यः तस्य शिष्या जंबूद्वीपरचनाप्रेरिका
गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिंतामणिनामधेयायां टीकायां द्विसहस्र-त्रिशत-
पंचसप्ततिसूत्रैः अयं जीवस्थाननामायं प्रथमखण्डग्रंथः समाप्तः।

समाप्तोऽयं प्रथमखंडग्रन्थराजः।

भगवान् एक-एक में अनेकों समाविष्ट ही हैं। यह मनुष्यलोक भी उतने प्रमाण—पैंतालीस लाख योजन प्रमाण ही
है। यहाँ के नदी, समुद्र आदि से जो सिद्ध हुए हैं, वे संहरण—उपसर्ग की अपेक्षा से ही हैं। इस प्रकार इस
मनुष्यलोक के सभी स्थानों से—जल से, स्थल से, आकाश से, ढाईद्वीप दो समुद्रों में ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और
अधोलोक से, संपूर्ण क्षेत्र, पर्वत, गुफा, नदी, सरोवर, वन, उपवनों से जो सिद्ध हुए हैं, होते हैं और होवेंगे, उन
सबको—अतीत, अनागत और वर्तमान ऐसे त्रैकालिक सिद्धों को मेरा अनंत बार नमोऽस्तु होवे।

देव, शास्त्र, गुरु को मन-वचन-काय की शुद्धि से नित्य ही भक्तिपूर्वक नमस्कार करके ज्ञान की वृद्धि
के लिए मेरे द्वारा इस 'षट्खण्डागम' ग्रंथ की वंदना की जाती है। वीर संवत् पच्चीस सौ तेईस फाल्गुन कृष्णा
त्रयोदशी तिथि में 'माधोराजपुरा' ग्राम में जिनमंदिर में सर्वसिद्धि के प्रदाता श्री शान्तिनाथ भगवान् को नमस्कार
हो कि जिनके पादप्रसाद से यह 'सिद्धान्तचिंतामणिटीका' मेरे द्वारा पूर्ण की गई॥१-२-३॥

अक्षय तृतीया पर्व यह, मंगलमय सुखकार। ऋषभदेव आहार तिथि, नमूँ नमूँ शत बार॥१॥

वीर निर्वाण संवत् २५३६ वैशाख शुक्ला तृतीया-अक्षयतृतीया के दिन मैंने हस्तिनापुर तीर्थ पर जम्बूद्वीप स्थल पर-
रत्नत्रय निलय नाम की वसतिका में इस छठी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद पूर्ण किया है।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान् पुष्पदन्त-भूतबली प्रणीत षट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथम खण्ड में छठी
पुस्तक में श्रीवीरसेनाचार्य विरचित 'धवला टीका' प्रमुख अनेक ग्रंथों के आधार से रचित
बीसवीं शताब्दी के प्रथम आचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज, उनके
प्रथम शिष्य एवं प्रथम पट्टाधीश श्री वीरसागराचार्य महाराज, उनकी शिष्या
जम्बूद्वीप रचना की पावन प्रेरिका गणिनी आर्थिका ज्ञानमती कृत
'सिद्धान्तचिंतामणि' नाम की टीका में 'दो हजार तीन सौ
पचहत्तर' सूत्रों से यह 'जीवस्थान' नाम का प्रथम
खण्ड ग्रंथ पूर्ण हुआ।

षट्खण्डागमस्य षष्ठग्रन्थस्य प्रशस्तिः

गर्भादिपञ्चकल्याणैः, पूजाः सेन्द्रादिभिः कृताः।

पार्श्वनाथजिनेन्द्रं तं, वन्देऽहं स्वात्मसिद्धये॥१॥

अस्ति जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे राजस्थानप्रदेशे माधोराजपुरानामग्रामः। आर्यिकादीक्षानन्तरं प्रथमबारं अत्रागत्य अत्रत्यानां भाक्तिकजनानां हर्षातिरेकं अवलोकयन्त्या मया अद्य षट्खण्डागमग्रन्थराजस्य प्रथमखण्डस्य षष्ठग्रन्थस्य सिद्धान्तचिन्तामणिटीका पूर्णकृता।

चतुर्विंशतितमतीर्थकरस्य श्रीमहावीरस्वामिनः शासने श्रीगौतमस्वामिप्रभृतिगणधरदेवानन्तरं आचार्य परम्परायां अस्मिन् मूलसंघे कुन्दकुन्दाम्नाये सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे वर्तमानकाले विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यः श्रीशांतिसागरो बभूव। तस्यानेकशिष्येषु आचार्यपायसागरो महामुनिः संजातः, तस्य शिष्यः जयकीर्तिनामाचार्योऽभवत्। तस्य करकमलाभ्यां जैनेश्वरी दीक्षामादाय श्रीदेशभूषणाचार्योऽभवत्। तस्य करकमलाभ्यां श्रीमहावीरजी-अतिशयतीर्थक्षेत्रे एकोनाशीत्यधिकचतुर्विंशतिशततमे वीराब्दे चैत्रकृष्णाप्रतिपत्तिथौ षोडशकारणपर्वणि प्रथमदिवसे क्षुल्लिकादीक्षां गृहीत्वा वीरमतीति नाम्ना प्रसिद्धाऽभवम्।

पुनश्च दक्षिणप्रदेशे गत्वा श्रीशांतिसागराचार्यं नमस्कृत्य तस्यैव आज्ञां संप्राप्य कुंथलगिरौ सिद्धक्षेत्रे तस्य

षट्खण्डागम के छठे ग्रंथ की प्रशस्ति

श्लोकार्थ — गर्भ आदि पञ्चकल्याणकों में इन्द्रों के द्वारा जो सदा पूजित हुए हैं, ऐसे श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र की हम स्वात्मसिद्धि हेतु वंदना करते हैं॥१॥

मध्यलोक में स्थित जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में भारत देश के राजस्थान प्रदेश में माधोराजपुरा नामक नगर है। आर्यिका दीक्षा लेने के पश्चात् (सन् १९५६ के बाद) प्रथम बार मेरा इस नगर में पदार्पण (मार्च सन् १९९७ में) हुआ, तब इस नगर के श्रद्धालु भक्तों का हर्षातिरेक-अति उत्साह और प्रसन्नता देखते हुए यहाँ मेरे द्वारा षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में इस छठे ग्रंथ की “सिद्धान्तचिन्तामणि” टीका लिखकर पूर्ण की गई। अर्थात् अपनी दीक्षास्थली माधोराजपुरा में मैंने षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड की संस्कृत टीका लेखन का समापन किया है।

जैनशासन के चौबीसवें तीर्थकर श्री महावीर स्वामी के शासन में श्री गौतम स्वामी आदि गणधर देवों के पश्चात् सतत प्रवाहमान आचार्य परम्परा में इस मूलसंघ के कुन्दकुन्द आम्नाय में सरस्वतीगच्छ एवं बलात्कारगण में बीसवीं सदी में प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य श्री शांतिसागर महाराज हुए हैं। उनके अनेक शिष्यों में एक महामुनि आचार्यश्री पायसागर जी हुए, उनके शिष्य आचार्यश्री जयकीर्ति मुनिराज थे। उन जयकीर्ति आचार्य से जैनेश्वरी दीक्षा लेकर श्री देशभूषण नामक के मुनिराज एक प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं। उन्हीं आचार्यश्री देशभूषण महाराज के करकमलों द्वारा “श्री महावीर जी” अतिशय तीर्थक्षेत्र पर वीर निर्वाण संवत् चौबीस सौ उन्पासी (२४७९), ईसवी सन् १९५३ में चैत्र कृष्णा प्रतिपदा को तदनुसार सोलहकारण पर्व के प्रथम दिवस क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण कर मैं ‘वीरमती’ के नाम से प्रसिद्ध हुई।

पुनः दक्षिण भारत में जाकर आचार्यश्री शांतिसागर महाराज को नमन करके उनकी आज्ञा प्राप्त करके

गुरुदेवस्य समाध्यनन्तरं मया तस्यैव प्रथमपट्टाधीशस्य श्रीवीरसागराचार्यवर्यस्य संघे आगत्य श्रीगुरुदेवस्य करकमलाभ्यां वीराब्दे द्वयशीत्यधिकचतुर्विंशतिशततमे वैशाख कृष्णाद्वितीयायां षोडशकारणपर्वसमापनतिथौ भगवत्पार्श्वनाथस्य गर्भकल्याणकपवित्रतिथौ च महाव्रतसहितामार्थिकादीक्षामादाय 'ज्ञानमतीति' नाम्ना प्रथितास्मि।

वीराब्दे एकविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे हस्तिनापुरतीर्थक्षेत्रे शरत्पूर्णिमायां षट्खण्डागमग्रन्थस्य सिद्धान्तचिंतामणिटीकां प्रारभ्य पुनः मार्गशीर्षशुक्ला पंचम्यां वीराब्दे द्वाविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे मांगीतुंगीतीर्थे पंचकल्याणकप्रतिष्ठां कारयितुं अत्रत्यात् विहृत्य तीर्थे-तीर्थे महानगरे-नगरे ग्रामे-ग्रामे मार्गे-मार्गे च टीकालेखनं कुर्वन्ती चैत्रकृष्णाषष्ठ्यां इंदौरमहानगरं — संप्राप्य अनेकजिनमंदिर वंदनां कृत्वा महतीं प्रभावनां विदधाना तत्रैव श्रेष्ठी बाबूलाल जैन पाटोदी श्रावकेण निर्मापितनवतीर्थगोम्मटगिरिनामधेयस्य दशाब्दीमहोत्सवे सांनिध्यं प्रदाय^१ तत्रत्याद् विहृत्य सनावदनगरे क्षुल्लकमोतीसागरभावनया णमोकारधामनामनवतीर्थस्य शिलान्यासं कारयित्वा सिद्धवरकूटपावागिरिसिद्धक्षेत्र वन्दनां कुर्वन्ती ख्रिष्टाब्दे षण्णवत्यधिकैकोन-विंशतिशततमे तत्रैव मांगीतुंगी तीर्थे पंचकल्याणक प्रतिष्ठां कारयित्वा तत्रैव च वर्षायोगं कृत्वा पश्चात्तत्रत्यात् निर्गत्य विहरन्ती अंकलेश्वरग्राममाजगाम। गुर्जरप्रदेशे अंकलेश्वरक्षेत्रे त्रयोविंशत्यधिक पंचविंशतिशततमे वीराब्दे मार्गशीर्षकृष्णासप्तम्यां पंचमग्रन्थस्य टीकां पूर्णकृत्य तस्मिन्नेव दिवसे एतत् षष्ठग्रन्थस्य संस्कृतटीका लेखनं मया प्रारब्धम्।

ततः अंकलेश्वरक्षेत्राद् विहृत्य बड़ौदानामनगरे धर्मप्रभावनां कृत्वा मार्गशीर्ष शुक्लापंचम्यां^२ पावागढ़निर्वाणक्षेत्रं संप्राप्य —

रामसुआ विणिण जणा, लाडणरिंदाण पंचकोडीओ।

पावागिरिवरसिहरे, णिव्वाण गया णमो तेसिं।।६।।

कुंथलगिरि सिद्धक्षेत्र पर उन गुरुदेव की समाधि देखने के पश्चात् मैंने उन्हीं के प्रथम पट्टाधीश आचार्यश्री वीरसागर महाराज के संघ में आकर श्रीगुरुदेव के करकमलों से वीर निर्वाण संवत् चौबीस सौ बयासी (२४८२), ईसवी सन् १९५६ में वैशाख कृष्णा द्वितीया को सोलहकारण पर्व की समापन तिथि में और भगवान पार्श्वनाथ के गर्भकल्याणक की पवित्र तिथि में मैंने महाव्रतो से समन्वित आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर 'ज्ञानमती' इस नाम से प्रसिद्ध हूँ।

वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ इक्कीस (२५२१), ईसवी सन् १९९५ में हस्तिनापुरीर्थ के जम्बूद्वीप क्षेत्र परिसर में शरदपूर्णिमा के दिन (८ अक्टूबर को) षट्खण्डागम सूत्र ग्रंथ की सिद्धान्तचिंतामणि टीका का लेखन शुरू किया पुनः मगसिर शुक्ला पंचमी (२७ नवम्बर १९९५) वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ बईस को मांगीतुंगी तीर्थ में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराने के निमित्त यहाँ से (हस्तिनापुर से) विहार करके अनेक तीर्थ, महानगर, नगर एवं गाँवों में रास्ते में भी टीका लेखन करते हुए चैत्र कृष्णा षष्ठी के दिन 'इंदौर' महानगर में पहुँचकर वहाँ के अनेक मंदिरों की वंदना करके खूब धर्मप्रभावना की, पुनः वहाँ के श्रेष्ठी श्री बाबूलाल जैन पाटोदी नाम के श्रावकरत्न के द्वारा निर्मित "गोम्मटगिरि" नामक नूतन तीर्थ के दशाब्दि महोत्सव में सान्निध्य प्रदान करके वहाँ से विहार करके 'सनावद' नगर में क्षुल्लक मोतीसागर की भावनानुसार "णमोकार धाम" नाम के नवीन तीर्थ का शिलान्यास करवाया, उसके पश्चात् "सिद्धवरकूट" एवं "पावागिरि" (ऊन) सिद्धक्षेत्र की वंदना करते हुए ईसवी सन् १९९६ में मांगीतुंगी तीर्थ पहुँची वहाँ पंचकल्याणकप्रतिष्ठा करवाकर पुनः वहीं वर्षायोग करके पश्चात् वहाँ

श्रीरामचंद्रस्य द्वौ लवकुशपुत्रौ लाडनरेन्द्रादिपंचकोटिप्रमाणमुनीश्वरांश्च अत्रत्यात्तीर्थात् निर्वाणप्राप्तान् मुहुर्मुहुर्ममस्कृत्य निर्वाणक्षेत्रं वन्दित्वा त्रिदिवसान् स्थित्वापि अहमदाबादनाममहानगरं जगाम। तत्र वीराब्दे त्रयोविंशत्यधिक-पंचविंशतिशत-तमे पौष कृष्णा तृतीयातिथेः प्रारभ्य पौषकृष्णाएकादशीपर्यंतं कल्पद्रुमविधान पूजायां महती प्रभावनाऽभवत्। मध्ये पौषकृष्णादशम्यां ख्रिष्टाब्दे सप्तनवत्यधिकैकोनविंशतिशततमे चतुर्जनवरीदिनांके^१ गुर्जरप्रदेशस्य श्रीशंकरसिंहवाघेला नामधेयो मुख्यमंत्री समागत्य विश्वशांतिमहायज्ञस्वरूपां महती पूजां विलोक्य अहिंसाधर्म विषये स्वोद्गारं प्रकटीचकार।

अस्मिन्महायज्ञमध्ये पूर्व मुख्यमंत्री श्रीसुरेशमेहता-श्री केशुभाई पटेल-मेयर (नगर प्रमुख) श्रीनंदलाल वागवा-संसद सदस्य श्रीमती आनंदीबेन पटेल-भावनाबेन चिकलिया-दीप्तिबेन पटेल इत्यादयोऽपि आगत्य जिनधर्मानुष्ठानं विलोक्य ममाशीर्वादं च गृहीत्वा अहिंसा परमधर्मे प्रीतिं प्रादर्शयन्।

अनंतरं गुर्जरप्रदेशराजधान्यां गांधी नाम नगरे पौषकृष्णात्रयोदश्यां गुर्जरप्रदेशस्य महामहिम श्रीकृष्णपाल-सिंहनामधेयो राज्यपालः समागत्य मत्सन्निधौ धर्मोपदेशं समाकर्ण्य आशीर्वादं संप्राप्य प्रहृष्टोऽभवत्।

से निकलकर विहार करते हुए गुजरात प्रान्त के अंकलेश्वर ग्राम में पहुँची। गुजात प्रदेश के अंकलेश्वर तीर्थक्षेत्र पर वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ तेईस में मगसिर कृष्णा सप्तमी के दिन षट्खण्डागम के पंचम ग्रंथ की टीका को पूर्ण करके उसी दिन मैंने इस छोटे ग्रंथ की संस्कृत टीका का लेखन प्रारंभ कर दिया था।

उसके बाद अंकलेश्वर क्षेत्र में विहार करके बड़ौदा नामक नगर में धर्मप्रभावना करके मगसिर शुक्ला पंचमी को पावागढ़ निर्वाण क्षेत्र पर आकर वंदना की। प्राकृत निर्वाणभक्ति में कहा है-

गाथार्थ— श्रीरामचन्द्र के दोनों पुत्रों (लव-कुश) ने एवं लाड-नरेन्द्र आदि पाँच करोड़ मुनियों ने पावागिरि सिद्धक्षेत्र से निर्वाणधाम को प्राप्त किया है उन सभी को मेरा नमस्कार है॥६॥

श्री रामचन्द्र के लव-कुश नाम के दोनों पुत्रों ने एवं लाड-नरेन्द्र आदि पाँच करोड़ प्रमाण मुनियों ने इस पावागिरि सिद्धक्षेत्र से मोक्ष प्राप्त किया है, उन सभी को बारम्बार नमस्कार करके, निर्वाण क्षेत्र की वंदना करके वहाँ तीन दिन तक संघ का प्रवास भी रहा पुनः अहमदाबाद नाम के महानगर में मेरा ससंघ पदार्पण हुआ। वहाँ वीर निर्वाण पच्चीस सौ तेईस (२५२३) में पौष कृष्णा तृतीया से प्रारंभ करके पौष कृष्णा एकादशी तिथि तक कल्पद्रुम महामण्डल विधान के आयोजन द्वारा धर्म की महती प्रभावना हुई। आयोजन के मध्य पौष कृष्णा दशमी को (४ जनवरी १९९७) को गुजरात प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री शंकर सिंह वाघेला ने पधारकर विश्वशांति महायज्ञरूप महान पूजा को देखकर अहिंसाधर्म के विषय में अपने उद्गार प्रगट किये।

इस महायज्ञ के मध्य में गुजरात के पूर्व मुख्यमंत्री श्री सुरेश मेहता, नगर प्रमुख मेयर श्री केशुभाई पटेल, संसद सदस्य श्री नंदलाल वागवा, श्रीमती आनंदी बेन पटेल, भावना बेन चिकलिया, दीप्तिबेन पटेल आदि ने भी पधारकर जिनधर्म के अनुष्ठान को देखकर एवं मेरा आशीर्वाद प्राप्त करके अहिंसाधर्म के प्रति अपना धर्मस्नेह प्रदर्शित किया।

अनंतर गुजरात प्रान्त की राजधानी गांधीनगर में पौष कृष्णा त्रयोदशी को गुजरात प्रदेश के महामहिम राज्यपाल श्री कृष्णपाल सिंह ने पधारकर मेरे सान्निध्य में धर्मोपदेश सुनकर आशीर्वाद प्राप्त करके अत्यंत प्रसन्नता का अनुभव किया।

तदनंतरं पौष शुक्लाचतुर्थ्या^१ ईडरनामनगरे समागत्य लघुपर्वतस्योपरि जिनमंदिरं दृष्ट्वा प्रमोदं प्राप्याग्रे विहृत्य पौषशुक्लासप्तम्यां^२ तारंगाख्यसिद्धक्षेत्रं संप्राप्नुवम्। तत्र स्थित्वा —

वरदत्तो य वरंगो, सायरदत्तो य तारवरणयरे।

आहुट्टयकोडीओ, णिव्वाणगया णमो तेसिं।।४।।

वरदत्तवरांगसागरदत्तादिसार्धत्रयकोटिमुनीश्वराणां निर्वाणतीर्थं नमस्कृत्य मनसि महान् हर्षोऽभवत्। तत्र त्रिदिवसात् स्थित्वा शनैः शनैः विहरमाणाहं ‘डेरोल’-ग्रामस्य मंदिरं अवलोक्य माघकृष्णाद्वितीयायां^३ केशरियाजी नामधेयं श्रीऋषभदेवनामातिशयक्षेत्रमवलोक्य तीर्थकराणां जिनप्रतिमाः वंदित्वा माघकृष्णाषष्ठ्यां^४ सलुम्बरनगरे स्वस्याः शिष्यार्थिका-आदिमती-श्रुतमती-सुबोधमतीभिः सह मिलित्वा मम अतीव वात्सल्यं वृद्धिमगात्। अत्र माननीयचपलोत्-विधानसभाध्यक्ष आगत्य प्रवचनमाकर्ण्य प्रसन्नो बभूव। पुनः माघकृष्णात्रयोदश्यां^५ उदयपुरमागत्य श्रीशांतिसागराचार्यपरम्परायाः षष्ठपट्टाचार्यस्य अभिनंदनसागरस्य दर्शनं अकुर्वम्। त्रयोभयसंघसम्मेलनैः श्रावकश्राविकासु हर्षातिरेकेण महती धर्मप्रभावनाभवत्। ततः परं माघशुक्लापंचम्यां^६ अडिंदापार्श्वनाथातिशय क्षेत्रं संप्राप्तम्।

अग्रे चित्तौडगढनगरं आगत्य कीर्तिस्तंभादिकान् जिनेन्द्रबिम्बसमन्वितान् दृष्ट्वा वन्दित्वा च केकड़ी-मालपुरादिनगरेषु धर्म प्रभावनां कुर्वन्ती स्वार्थिकादीक्षाभूमिं माधोराजपुराख्यनगरमाजगाम।^७

अधुना त्रयोविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे वीराब्दे फाल्गुनकृष्णात्रयोदश्यां अत्रार्थिकादीक्षाभूमौ

उसके पश्चात् पौष शुक्ला चतुर्थी को ईडर नामक नगर में आकर वहाँ छोटी सी पहाड़ी पर जिनमंदिर देखकर प्रसन्नता हुई, पुनः आगे विहार करके पौष शुक्ला सप्तमी के दिन ‘तारंगा’ नामक सिद्धक्षेत्र पर मेरा ससंघ पदार्पण हुआ। वहाँ पहुँचकर निम्न पंक्तियों के स्मरणपूर्वक तीर्थ की वंदना की—

गाथार्थ — वरदत्त, वरांग एवं सागरदत्त आदि साढ़े तीन करोड़ मुनियों ने तारवर नगर से निर्वाण प्राप्त किया है उन सभी को मेरा नमस्कार होवे।।४।।

वरदत्त, वरांग, सागरदत्त आदि साढ़े तीन करोड़ मुनियों के निर्वाण तीर्थ के दर्शन करके मन में महान् हर्ष का अनुभव हुआ। वहाँ तीन दिन रहकर पुनः धीरे-धीरे विहार करते हुए मैं ‘डेरोल’ ग्राम में आई, वहाँ के मंदिर का दर्शन करके माघ कृष्णा द्वितीया को “श्री ऋषभदेव केशरिया जी” नामक अतिशय क्षेत्र में तीर्थकर प्रतिमाओं के दर्शन करके माघ कृष्णा षष्ठी को ‘सलुम्बर’ नगर में अपनी शिष्या आर्थिका आदिमती, श्रुतमती, सुबोधमती से मिलकर उनके प्रति असीम वाल्सल्य भावना वृद्धिंगत हुई। यहाँ राजस्थान के विधान सभाध्यक्ष माननीय चपलोत् आकर प्रवचन सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। पुनः माघ कृष्णा त्रयोदशी को ‘उदयपुर’ शहर में आकर आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के छठे पट्टाचार्य श्री अभिनंदन सागर जी महाराज के दर्शन किये। वहाँ मेरे और आचार्यश्री दोनों संघों के मिलन से श्रावक-श्राविकाओं के हर्षातिरेक से खूब धर्मप्रभावना हुई। उसके बाद माघ शुक्ला पंचमी को “अणिंदा पार्श्वनाथ” नामक अतिशय क्षेत्र के दर्शन किये।

आगे चलते हुए “चित्तौड़गढ़” नामक नगर में आकर जिनेन्द्र प्रतिमाओं से समन्वित कीर्तिस्तंभ आदि को देखकर एवं उनकी वंदना करके केकड़ी, मालपुरा आदि नगरों में धर्मप्रभावना करते हुए अपनी आर्थिका दीक्षाभूमि माधोराजपुरा नगर में मेरा पदार्पण हुआ।

आज वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ तेईस (२५२३) को फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशीके दिन यहाँ आर्थिका दीक्षा भूमि

‘जीवस्थाननाम’-प्रथमखण्डस्य गीर्वाणीभाषाटीकेयं परिपूर्यते।

संप्रति भारतस्य गणतंत्रशासने राष्ट्रपति महामहिम डॉ. शंकरदयाल शर्मा, प्रधानमंत्री श्री एच.डी. देवगौड़ानामधेयौ विद्येते। राजस्थानप्रदेशस्य राज्यपाल-महामहिम बलीराम भगत-मुख्यमंत्री भैरोसिंह शेखावत इति नामधेयौ स्तः।

अनादिनिधन जैन शासने-श्री मूलसंघे कुंदकुदाम्नाये प्रथमाचार्यः श्री शांतिसागरमहामुनीन्द्रस्तस्याचार्य-परम्परायां प्रथमपट्टाचार्यः श्रीवीरसागरमुनिवर्यो द्वितीयपट्टाचार्यः श्रीशिवसागरमुनिवरस्तृतीयपट्टाचार्यः श्रीधर्मसागरमुनीश्वरश्चतुर्थपट्टाचार्यः श्रीअजितसागरमुनिवरः पंचमपट्टाचार्यः श्रीश्रेयांससागरोऽभवत्। पुनश्च वर्तमानकाले तस्य समाधिमरणसंजाते सति अस्य पट्टाधीशः षष्ठपट्टाचार्यः श्रीअभिनंदनसागरोऽस्ति।

अस्यां मांगीतुंगीतीर्थ यात्रायां प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती-जम्बूद्वीप पीठाधीशक्षुल्लक मोतीसागर-क्षुल्लिका श्रद्धामती-कर्मयोगी ब्रह्मचारि रवीन्द्रकुमार-ब्रह्मचारिश्रीचंद्र जैन-ब्रह्मचारिणी कु. बीना-कु. आस्थादिसंघस्थानां सहयोगः, दिल्ली-निवासि-संघपति- महावीरप्रसादजैन तत्पत्नी कुसुमलता जैन-श्री प्रेमचंद जैन-तत्पत्नी निर्मला जैन-भाक्तिकानां भक्तिः विशिष्टास्ति। एतासां आर्यिकाणां प्रतिवंदनापूर्वकं सर्वेषां शिष्याणां सर्वासां च समाधिस्तु सद्धर्मवृद्धिस्तु चाशीर्वादं प्रयच्छामि।

सिद्धान् प्रणम्य याचेऽहं, टीकेयं भुवि नन्दतां। पूर्णा ज्ञानमती भूयात् मे च संघस्य सत्त्वरम्॥१॥

॥ इति वर्द्धतां जिनशासनम्॥

में “जीवस्थान” नामक प्रथम खण्ड की यह टीका मेरे द्वारा गीर्वाणी भाषा-संस्कृत भाषा में पूर्ण की जा रही है।

भारत देश के गतंत्र शासन में वर्तमान राष्ट्रपति महामहिम डॉ. शंकरदयाल शर्मा हैं एवं प्रधानमंत्री के पद पर श्री एच. डी. देवगौड़ा हैं। राजस्थान प्रदेश के राज्यपाल महामहिम ‘बलीरामभगत’ एवं मुख्यमंत्री श्री भैरोसिंह शेखावत हैं।

अनादिनिधन जैनशासन में श्रीमूलसंघ के कुन्दकुन्दाम्नाय में बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर नाम के महामुनिराज हुए हैं, उनकी आचार्य परम्परा में प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर जी मुनिवर हुए, श्री शिवसागर मुनिराज द्वितीय पट्टाचार्य हुए, श्री धर्मसागर मुनीश्वर तृतीय पट्टाचार्य हुए, श्री अजितसागर मुनिराज चतुर्थ पट्टाचार्य हुए तथा श्री श्रेयांससागर नामक मुनिवर पंचम पट्टाचार्य हुए हैं। पुनः वर्तमान में उनका समाधिमरण हो जाने पर उनके पट्ट पर षष्ठ पट्टाधीश आचार्य के रूप में श्री अभिनंदनसागर मुनिराज हैं।

मेरी इस मांगीतुंगी तीर्थ की यात्रा में मेरी संघस्थ शिष्या प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती, जम्बूद्वीप के पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर, क्षुल्लिका श्रद्धामती, कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार, ब्रह्मचारी श्रीचंद्र जैन, ब्रह्मचारिणी कु. बीना, कु. आस्था आदि का सहयोग है तथा दिल्ली निवासी संघपति महावीर प्रसाद जैन, उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कुसुमलता जैन, श्री प्रेमचंद एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला जैन सहित इन सभी भाक्तिकों की अतिविशिष्ट भक्ति रही है। इन सभी आर्यिकाओं को प्रतिवंदनापूर्वक सभी शिष्य-शिष्याओं के लिए यथायोग्य समाधिस्तु एवं सद्धर्मवृद्धिस्तु का आशीर्वाद प्रदान करती हूँ।

श्लोकार्थ — समस्त सिद्ध भगवन्तों को नमन करके मैं यह याचना करती हूँ कि यह संस्कृत टीका इस धरातल पर सभी को आनंदित करे, मुझे पूर्ण ज्ञानमती बनावे अर्थात् मेरा श्रुतज्ञान शीघ्र केवलज्ञानरूप परिणत होवे और मेरे संघ के लिए भी शीघ्र पूर्णज्ञान प्राप्ति में कारण बने, यही मेरी भावना है।

“जिनशासन सदैव वर्द्धिगत होवे”

हिन्दी भाषानुवादकर्त्री की प्रशस्ति

-गणिनी ज्ञानमती

—शंभु छंद—

श्री शांतिनाथ श्री कुंथुनाथ, श्री अरहनाथ को नित वंदूँ।
तीर्थकर जन्मभूमि प्रणमूँ, निज गुणमणि से निज को मंडूँ॥
श्री ऋषभदेव आहारदान से, जो युगादि में तीर्थ भला।
मुनि सात शतक की रक्षा से, रक्षाबंधन का पर्व चला॥१॥

षट्खण्डागम के सूत्रों की, सिद्धान्तसुचिन्तामणि टीका।
प्रारंभ किया औ पूर्ण किया, इस तीरथ पर संस्कृत टीका॥
छह सहस आठ सौ इकतालिस, सूत्रों में सोलह ग्रंथ बने।
साढ़े ग्यारह वर्षों में ही यात्रा के मध्य लिखे मैंने॥२॥

पुनरपि आठवीं पुस्तक का मैंने हिन्दी अनुवाद किया।
तदनंतर छठे ग्रंथ का भी हिन्दी भाषा अनुवाद किया॥
इस मध्य राष्ट्रपति का आना, इस तीरथ का इतिहास बना।
त्रय प्रतिमा पंचकल्याणक शुभ, अतिशायी तीन लोक रचना॥३॥

बीसवीं शताब्दी के श्री प्रथमा-चार्य शांतिसागर स्वामी।
चारित्रचक्रवर्ती गुरुवर, जो जगत् पूज्य जग में नामी।
इनके ही शिष्य पायसागर, आचार्य उन्हीं के शिष्य एक।
श्री जयकीर्ति आचार्य हुए, इनको वंदूँ मैं माथ टेक॥४॥

इनके हुए शिष्य देशभूषण, भारत गौरव आचार्य प्रवर।
इनसे दीक्षा क्षुल्लिका लिया, अतिशय संयम को धारण कर॥
अतिशय तीरथ चांदनपुर में, शुभ चैत्र कृष्ण एकम् तिथि में।
सन् त्रेपन में दीक्षा ली है, साढ़े अठरह वर्षायू में॥५॥

सन् उन्निस सौ पचपन में मैं, कुंथलगिरि तीरथ पर जाकर।
आचार्य शांतिसागर गुरु का, देखा सु समाधिमरण सुंदर॥
आचार्यशिरोमणि से मैंने, आर्थिका की दीक्षा मांगी थी।
उनकी आज्ञा से वीरसिंधु आचार्य के संघ में आई थी॥६॥

वैशाख कृष्ण दुतिया तिथि थी, ईसवी सन् उन्निस सौ छप्पन।
है माधोराजपुरा नगरी, जयपुर के पास वहीं शुभतम॥
गुरुवर ने मुझे आर्थिका दीक्षा देकर “ज्ञानमती” कर दी।
तुम अपने नाम का ध्यान रखो, बस इतनी ही तब शिक्षा दी॥७॥

कुछ पूर्व जन्म के संस्कार, माँ सरस्वती का ही प्रसाद।
गुरुवर का वरदहस्त समझो, जो मैंने बहुविध रचे शास्त्र॥
श्री मूलसंघ में कुंदकुंद, आम्नाय सरस्वती गच्छ मान्य।
गण बलात्कार है ख्यात उसी में, गुरू शांतिसागराचार्य॥८॥

उनके हुए पट्टाचार्य प्रथम, श्री वीरसागराचार्य वर्य।
उनकी शिष्या मैं ज्ञानमती 'गणिनी' हूँ जीवन किया धन्य॥
वैशाख शुक्ल अक्षय तृतिया, भाषानुवाद को पूर्ण किया।
वीराब्द पच्चीस शतक छत्तिस, सन् दो हजार दश धन्य हुआ॥९॥

सिद्धान्त सुचिंतामणि संस्कृत, टीका जग में जयशील रहे।
यह हिन्दी भाषा की टीका, चिरकाल भव्य सुखदायि रहे॥
जगवंद्य रहे हस्तिनापुरी, यह जम्बूद्वीप स्थायि रहे।
शुभ तेरहद्वीप स्थायि रहें, सब जिनमंदिर सुखदायि रहें॥१०॥

—दोहा—

द्वादशांग वाणी नमूँ, षट्खण्डागम वंद्य।
ज्ञानमती कैवल्य कर, पाऊँ परमानंद॥११॥

—अन्त्य वंदना—

तीर्थकृच्चक्रभृत्काम-देवत्रिपदधारिणः।
शांतिकुन्ध्वरतीर्थेशा, भवद्भ्योऽनन्तशो नमः॥१२॥

हिन्दी अनुवाद के कार्यकाल में सम्पन्न हुए कार्यकलापों का संक्षिप्त विवरण

भगवान शांतिनाथ की विशाल प्रतिमा निर्माण कराकर जम्बूद्वीप स्थल पर प्रभु की जन्मभूमि में विराजमान कराने का पुरुषार्थ कई एक वर्षों से चल रहा था। सन् १९९६ में मांगीतुंगी चातुर्मास के मध्य कर्नाटक प्रांत में जाकर पाषाण खंड देखने का निर्णय भी हुआ किन्तु कार्यव्यस्ततावश टल गया। अनंतर ब्र.रवीन्द्र कुमार ने जयपुर के दो शिल्पकारों को आर्डर भी दिया किन्तु बड़ा पाषाण नहीं मिल पाया।

इस मध्य प्रयाग में “तीर्थकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ”, कुण्डलपुर में “नंदावर्त महल तीर्थ”, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर “तेरहद्वीप रचना” इनके विशालस्तरीय पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न हुए। दिल्ली में वृहत् “चौबीस कल्पद्रुम महामण्डल विधान”, “छब्बीस विश्वशांति महावीर विधान”, “श्री ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव” आदि अनेक धर्मप्रभावना के कार्यक्रम सम्पन्न हुए। “श्री ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार”, “श्री महावीर ज्योति रथ” के भारत भ्रमण भी सम्पन्न हुए।

जनवरी सन् २००५ में ‘श्री पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव’ का वाराणसी से उद्घाटन व अहिच्छत्र तीर्थ पर ‘भगवान पार्श्वनाथ का महामस्तकाभिषेक’ आदि विशाल कार्यक्रम सम्पन्न हुए। इसके मध्य अप्रैल २००६ में अति विशाल स्तर पर मेरा दीक्षा स्वर्ण जयंती महोत्सव जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में पूरे देश की जैन समाज एवं समस्त दिगम्बर जैन संस्थाओं द्वारा मनाया गया।

अनंतर महान् पुण्य संयोग से यह मंगल दिवस भी आ गया जब ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन अथक पुरुषार्थ से बैंगलोर-कर्नाटक के निकट की खान से वृहत् पाषाण खंड को लाने में सफल हो गये।

वैशाख शुक्ला पूर्णिमा वीर निर्वाण संवत् २५३४, दिनाँक १९ मई २००८ के पावन दिन 'तेरहद्वीप रचना' का प्रथम प्रतिष्ठापना दिवस प्रातः तेरहद्वीप के भगवन्तों का महाअभिषेक एवं रथयात्रा के अनंतर इस विशाल पाषाण खंड पर शांतिनाथ प्रतिमा विराजमान कर अभिषेक, पूजन आदि विधि सम्पन्न होकर शिलापूजन विधिपूर्वक श्री शांतिनाथ प्रतिमा उत्कीर्ण हेतु 'टंकनविधि' कराई गई एवं तभी से मूर्ति उत्कीर्ण का कार्य प्रारंभ हो गया।

इन समस्त कार्यक्रमों में मेरे साथ-साथ संघस्थ चारित्रश्रमणी आर्यिका अभयमती जी, प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती जी, आर्यिका संतोषमती जी, पीठाधीश्वर क्षुल्लक मोतीसागर जी एवं क्षुल्लिका शांतिमती का सान्निध्य रहा।

मैंने आश्विन शुक्ला द्वितीया, वीर निर्वाण संवत् २५३४, दिनाँक १-१०-२००८ को षट्खण्डागम की छठी पुस्तक की संस्कृत टीका सिद्धान्तचिंतामणि का हिन्दी अनुवाद प्रारंभ किया। इससे पूर्व मेरी शिष्या आर्यिका चन्दनामती द्वारा हिन्दी में अनुवादित षट्खण्डागम सिद्धान्तचिंतामणि टीका के पाँच ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं।

हस्तिनापुर तीर्थ पर 'वर्षायोग' में शरदपूर्णिमा महोत्सव में मेरा ७५वाँ जन्मदिन होने से आर्यिका चन्दनामती, क्षुल्लक मोतीसागर आदि ने 'हीरक जयंती महोत्सव' मनाने की रूपरेखा बनायी। मैंने अनेक बार मना भी किया किन्तु इन सभी की तथा विद्वानों की प्रबल भावनाएँ रहीं। अतः तीन दिन का कार्यक्रम आयोजित हुआ।

आश्विन शु. १३, वीर नि. सं. २५३४, दिनाँक १२-१०-२००८ को दिल्ली प्रदेश की मुख्यमंत्री श्रीमती शीला दीक्षित जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में पधारीं। उनके करकमलों से अनेक कार्यक्रम सम्पन्न हुए। सर्वप्रथम उन्होंने 'प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर प्रवचन हॉल' का शिलान्यास किया। पुनः मंच पर मेरे द्वारा हिन्दी अनुवाद सहित ऐसे जैनदर्शन के सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ 'अष्टसहस्री' (सन् १९६९-७० में अनुवादित) भाग-१, २, ३ (पुनर्प्रकाशित संस्करणों) का विमोचन किया। अनंतर-मुख्यमंत्री ने श्री जे.के. जैन (पूर्व सांसद, दिल्ली) को 'गणिनी ज्ञानमती पुरस्कार' प्रदान किया एवं जैन समाज को अल्पसंख्यक का दर्जा देने की भी घोषणा की।

संस्थान के कार्यकर्ताओं द्वारा मुख्यमंत्री जी का भी प्रशस्ति आदि भेंटकर सम्मान किया गया। इसी दिन प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर अवदान सम्मेलन भी सम्पन्न हुआ है।

आश्विन शु. १४, दिनाँक १३-१०-२००८ को 'तीर्थंकर जन्मभूमि विकास सम्मेलन' एवं 'आर्यिका रत्नमती पुरस्कार' समर्पण आदि अनेक कार्यक्रम सम्पन्न हुए।

आश्विन शु. १५, शरदपूर्णिमा, दिनाँक १४-१०-२००८ को 'हीरक जयंती एक्सप्रेस' का उद्घाटन बिहार प्रान्त के विधान सभा के अध्यक्ष 'श्री उदयनारायण चौधरी' के करकमलों से सम्पन्न हुआ।

इस एक्सप्रेस में तीर्थंकरों की जन्मभूमि की यात्रा दिखाई गई है एवं एक धार्मिक पिक्चर हॉल भी है। अनंतर 'गणिनी ज्ञानमती शोधपीठ' जिसकी ६-१०-१९९८ में स्थापना हुई थी। उस 'शोधपीठ' को मेरठ स्थित 'शोभित युनिवर्सिटी' के साथ सम्बद्धता प्रदान करते हुए युनिवर्सिटी के प्रो. चांसलर माननीय श्री कुंवर शेखर विजेन्द्र जी, वाइस चांसलर माननीय श्री अरुण स्वरूप जी एवं नाइस मैनेजमेंट कॉलेज के

डायरेक्टर प्रो. एस.सी. अग्रवाल ने सभा में वक्तव्य दिये।

माननीय विधानसभा अध्यक्ष श्री उदयनारायण चौधरी एवं संस्थान के पदाधिकारियों ने श्री सुरेश जैन-कुलाधिपति तीर्थकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद को 'गणिनी ज्ञानमती हीरक जयंती पुरस्कार' समर्पित किया।

इस महोत्सव में श्री वी. धनंजय कुमार जैन (पूर्व वित्तराज्यमंत्री), बिहार प्रान्त विधान सभा के मुख्य सचेतक श्री श्रवण कुमार जी, डॉ. आर.के. मित्तल (कुलपति-तीर्थकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद), श्री आर.के. जैन-मुम्बई (अध्यक्ष-तीर्थक्षेत्र कमेटी), श्री निर्मल कुमार सेठी (अध्यक्ष-दिगम्बर जैन महासभा), श्री विजय जैन लुहाड़िया-अहमदाबाद (अध्यक्ष-श्री दिगम्बर जैन महासमिति), गणिनी ज्ञानमती भक्तमण्डल महाराष्ट्र, श्री अजित अजमेरा-धूलियान आदि अनेक प्रतिष्ठित जैन समाज के धुर्य एवं अनेक सरस्वती पुत्र प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन, डॉ. अनुपम जैन आदि आये। सभी ने विनयांजलि अर्पित की। श्री आर.के. जैन ने तो बहुत बड़ी प्रशस्ति भेंटकर अपनी विनयांजलि अर्पित की।

दिनांक १२, १३ और १४ अक्टूबर को आस्था चैनल के माध्यम से कार्यक्रम का सीधा प्रसारण हुआ है। जिसे भारतवर्ष में एवं विदेश में भी करोड़ों नर-नारियों ने देखा है एवं तीर्थों के प्रति तथा मेरे प्रति भी विनयांजलि अर्पित करके पुण्य संपादन करते हुए चारित्र के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की है।

षट्खण्डागम पुस्तक ४ (सिद्धान्तचिंतामणिटीका के हिन्दी अनुवाद सहित) आदि अनेक ग्रंथों के विमोचन भी सम्पन्न हुए।

शरदपूर्णिमा के दिन मुझे प्रायः आर्यिका रत्नमती माताजी (गृहस्थाश्रम की मेरी माँ मोहिनी) का स्मरण अवश्य हो जाता है।

जिन्होंने सन् १९३४ में शरदपूर्णिमा को मुझे जन्म दिया। दुग्धपान के साथ-साथ धर्मरूपी अमृत पिलाया। ९-१० वर्ष की उम्र से ही 'पद्मनंदिपंचविंशतिका' ग्रंथ, दर्शन कथा, शीलकथा आदि पढ़ने की प्रेरणा दी।

जब बालिकाओं की उम्र सखियों के साथ गुड़िया-गुड्डा खेलने की थी, उस उम्र में मैं सीता जी, राजुल जी आदि के बारहमासे "कहां गये चक्री जिन जीता" आदि अनेक बारह भावनाएँ तथा वैराग्य पद अनेक सवैया आदि ऐसे सैकड़ों पाठ कंठाग्र कर सरस्वती माता की गोद में खेलती थी तथा मेरी जननी को भी यही अच्छा लगता था।

जब सन् १९५२ में बाराबंकी में आश्विन शु. १४ को मैंने आचार्यश्री देशभूषण जी महाराज की केशलॉच सभा में अपने केशलॉच प्रारंभ कर दिये। उस समय जैन समाज द्वारा रोके जाने पर तथा अत्यधिक विरोध के अवसर पर आचार्य महाराज ने भी कह दिया कि जब तक इसके माँ या पिता मुझे स्वीकृति नहीं दे देंगे, मैं दीक्षा नहीं दे सकता।

उस दिन अर्धरात्रि तक तो मैं मंदिर जी में भगवान के पास सत्याग्रह लेकर बैठी रही, पुनः माँ की प्रेरणा से उन्हीं के साथ पिता की बुआ के घर गई। शेष रात्रि भर माँ-बेटी का संवाद चलता रहा। अंत में माँ मोहिनी ने एक कागज पर पेंसिल से अश्रुधारा के साथ ही यह लिखा कि "हे महाराज जी! आप मेरी पुत्री को दीक्षा दे दीजिए। मुझे विश्वास है कि ये दृढ़ रहेगी, मेरी पूर्ण सहमति व आज्ञा है"। और माँ ने प्रातः महाराज जी के करकमलों में यह पत्र दे दिया।

पत्र लिखते समय माँ ने मुझसे एक वचन लिया था वह यह कि “बेटी! मैं आज तुम्हें संसारसमुद्र से पार होने के लिए आज्ञा दे रही हूँ, एक दिन तुम भी मुझे संसारसमुद्र से निकाल लेना।”

पत्र पाकर आचार्यश्री ने प्रसन्नता व्यक्त की। उसी समय मैंने माँ और मामा आदि के सामने ही आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत, सप्तम प्रतिमा एवं गृहत्याग व्रत ले लिया। तभी माँ बोली — आज इसका शरदपूर्णिमा का जन्मदिन है। सुनते ही मैंने अपने जन्म को पूर्ण सार्थक माना। अतः यह शरदपूर्णिमा मेरे लिए जन्म दिवस से भी अधिक महत्वपूर्ण है—त्याग दिवस—संयम दिवस है।

अनंतर छह मास बाद ही चैत्र कृष्णा प्रतिपदा को सन् १९५३ में मैंने महावीर जी में क्षुल्लिका दीक्षा प्राप्त की।

क्रमशः सन् १९५५ में चारित्रचक्रवर्ती प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के दर्शन कर उनकी सल्लेखना देखकर ‘पूर्व में उनकी आज्ञा प्राप्त की थीं उसी के अनुसार राजस्थान-जयपुर में आकर वैशाख कृ. द्वितीया को (सन् १९५६) में प्रथम आचार्य श्री के प्रथम पट्टाधीश श्री वीरसागर जी के करकमलों से आर्यिका दीक्षा प्राप्त की।

अनंतर सन् १९६१ में माँ मोहिनी जी आचार्यश्री शिवसागर जी के दर्शन करने लाडनू आई थीं। वहीं मेरे पास उनकी पुत्री कु. मनोवती रुक गई। इनके लिए उनका उपकार ही विशेष है। आज ये कु. मनोवती आर्यिका अभयमती के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्होंने सन् १९६४ में मुझसे क्षुल्लिका दीक्षा एवं सन् १९६९ में आचार्यश्री धर्मसागर जी से आर्यिका दीक्षा प्राप्त की है।

इसी प्रकार सन् १९६८ में ये एवं पिता छोटेलाल जी सुपुत्र रवीन्द्र के साथ में लेकर प्रतापगढ़ (राज.) में आये थे। पिता छोटेलाल से छिपाकर माँ की अनुमति लेकर मैंने रवीन्द्र कुमार को दो वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत दिला दिया। पुनः सन् १९७२ में मेरी प्रेरणा से आचार्य श्री धर्मसागर महाराज के करकमलों से आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया। उसके बाद मुझसे सप्तम प्रतिमा एवं गृहत्याग व्रत ग्रहण किया है। आज कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार अनेक जैन संस्थाओं के अध्यक्ष-कर्मठ कार्यकर्ता प्रसिद्ध हैं।

सन् १९६९ में माँ मोहिनी ने ‘श्री छोटेलाल जी’ की अंत समय पत्र से मेरी प्रेरणा प्राप्तकर अच्छी तरह धर्म संबोधन करते हुए २५ दिसम्बर को समाधिमरण कराया है। किसी भी पुत्र-पुत्रियों को उनके अंतिम समय में रोने नहीं दिया है। यह भी उनका एक आदर्श ही रहा है।

सन् १९७१ में जब वे आहार देने अपने पुत्र-पुत्री, बहुओं के साथ अजमेर चातुर्मास में आई थीं। तब मैंने इन्हें दीक्षा के लिए प्रेरित किया। तब वे बोली-अभी कु. माधुरी व त्रिशला की शादी हो जावे, तब मैं अपने कर्तव्यों से निश्चिन्त होऊँगी। मैंने कहा देखो! मैंने कु. माधुरी को भाद्रपद शु. १० के दिन अभी आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत दे दिया है। (कु. माधुरी सन् १९६९ अक्टूबर में मेरे पास प्रथम बार दर्शन करने आई थी तभी ११ वर्ष की उम्र में मेरी प्रेरणा से ५ वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया था। तभी से धार्मिक अध्ययन करती हुई मेरे पास रह रही हैं और क्रम-क्रम से दो प्रतिमा, सात प्रतिमा एवं गृहत्याग व्रत लेकर सन् १९८९ में श्रावण शु. ११, दिनांक १३ अगस्त को मुझसे आर्यिका दीक्षा लेकर चन्दनामती के रूप में रत्नत्रय आराधना में तत्पर हैं।) वे आश्चर्यचकित होकर बोलीं—ये तेरहवर्ष की बालिका ब्रह्मचर्य व्रत क्या समझेगी?

मैंने कहा कि “शादी नहीं करना” बस इतना समझती है। इत्यादि सुनकर तथा कुछ चिंतन कर उन्होंने आर्यिका दीक्षा हेतु आचार्यश्री धर्मसागर जी के समक्ष श्रीफल चढ़ाकर प्रार्थना की। चर्चा फैलते ही उनके पुत्र-पुत्रवधुएं, पुत्रियाँ एवं दामाद आदि सब आ गये। विरोध का स्वर बहुत ही बढ़ गया। तब आचार्यश्री बोले—

मोहिनी जी ! आप कैसे दीक्षा लेंगी। ये सब कहते हैं कि हम इन्हें उठाकर ले जायेंगे। तब वे बोलीं—
गुरुदेव ! ये मुझसे हैं या मैं इनसे? मैं पूर्ण दृढ़ हूँ.....। उनके ये शब्द आचार्यश्री धर्मसागर जी कई बार कहकर मुस्कराते रहते थे। उनकी वहाँ अजमेर में मगसिर कृष्णा तृतीया को (सन् १९७१) में आर्यिका दीक्षा हुई एवं उनको 'आर्यिका रत्नमती' 'रत्नों की खान' यह सार्थक नाम प्राप्त हुआ।

अपने पिता सुखपालदास से प्राप्त संस्कार एवं 'पद्मनंदिपंचविंशतिका' ग्रंथ का स्वाध्याय उनके जीवन में तो सार्थक हुआ ही है। वह मेरे लिए तो वरदान बना है।

आज शरदपूर्णिमा के दिन 'हीरक जयंती महोत्सव' के समय उन जन्मदात्री-जननी के असीम उपकार का स्मरण हो आता है। मैं तो अपने सभी भक्त-श्रावक-श्राविकाओं को यही प्रेरणा देती हूँ कि आप सभी पिता सुखपालदास^१ के समान कन्याओं को दहेज में ऐसे-ऐसे ग्रंथ देवें और श्राविकाएँ माता मोहिनी के उदाहरण को अपनाएँ। अपने पुत्र-पुत्रियों को धर्ममार्ग में प्रेरित करें, मोक्षमार्ग में बढ़ने से न रोकें, सहयोगिनी बनें पुनः अंत में आर्यिका व्रत ग्रहण कर मानव पर्याय को सार्थक करें।

यह 'हीरक जयंती महोत्सव' मेरा नहीं प्रत्युत् ज्ञानस्वरूप-सरस्वती का है और त्यागस्वरूप चारित्र का ही है। हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर वर्षायोग पूर्ण करके कार्तिक शुक्ला द्वितीया (३० अक्टूबर २००८) को सरधना (मेरठ) उ.प्र. के लिए मैंने संघस्थ आर्यिका चन्दनामती को साथ लेकर मंगल विहार किया। वहाँ सरधना में लश्करगंज स्थित 'श्री दिगम्बर जैन वीर मंदिर' के ५० वर्षों की पूर्णता पर स्वर्ण जयंती महोत्सव के मंगल अवसर पर आष्टान्हिक पर्व में कार्तिक शुक्ला अष्टमी से पूर्णिमा पर्यंत (दिनांक ६ नवम्बर से १३ नवम्बर तक) विश्वशांति महावीर मण्डल विधान का भव्य आयोजन सम्पन्न हुआ। इसी मध्य १२ नवम्बर को जिनमंदिर की स्वर्ण जयंती के उपलक्ष्य में मंदिर के मूलनायक भगवान का मस्तकाभिषेक हुआ एवं विशेष मंगल आरती आदि की गई। पुनः मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा (१४ नवम्बर) को रथयात्रा सम्पन्न हुई एवं उसी दिन मैंने वहाँ से हस्तिनापुर की ओर विहार कर दिया और जम्बूद्वीप स्थल पर मगसिर कृष्णा सप्तमी (१९ नवम्बर) को पहुँच गई।

इधर जम्बूद्वीप स्थल पर राष्ट्रपति को लाने का प्रयास चल रहा था, सो १८ नवम्बर को ही मार्ग में उनके आने की पौष कृ. १०, दिनांक २१ दिसम्बर २००८ की तिथि निश्चित हो गई। उत्साहपूर्ण वातावरण में विशाल पांडाल बनाया गया।

भारत देश के गणतंत्र शासन की प्रथम महिला राष्ट्रपति महामहिम श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील का उत्तरप्रदेश में हस्तिनापुर तीर्थ पर प्रथम आगमन हुआ है। उस समय का दृश्य अद्भुत था, जब कि जम्बूद्वीप स्थल पर चार हेलीकाप्टर उतरे हैं। श्रीमती प्रतिभा पाटील राष्ट्रपति के साथ उनके पति 'श्री देवीसिंह शेखावत' भी पधारे थे। इस कार्य में विशेष प्रयासरत श्री जे.के. जैन, पूर्व सांसद की अध्यक्षता में सभी कार्यक्रम सम्पन्न हुए।

राष्ट्रपति जी ने सर्वप्रथम मंच पर आकर भगवान पार्श्वनाथ के २८८५वें जन्मकल्याणक महोत्सव के उपलक्ष्य में भगवान पार्श्वनाथ के सुंदर धातु निर्मित सर्वार्थसिद्धि महल में पालने में विराजमान श्री पार्श्वप्रभु के सामने रत्नवृष्टि की, पुनः पालना झुलाया। अनंतर सभा के मध्य 'विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन' का दीप प्रज्ज्वलन कर उद्घाटन किया। राष्ट्रपति जी ने अपने भाषण में "अहिंसा और विश्वशांति एक-दूसरे के पूरक हैं" ऐसा कहा। मैंने अपने प्रवचन में इस वर्ष को "शांति वर्ष" के नाम से घोषित किया। पुनः राष्ट्रपति जी ने

मेरे साथ तेरहद्वीप रचना के दर्शन किए।

यह पवित्र दिवस जम्बूद्वीप स्थल का स्वर्णिम इतिहास बना। अगले दिन पौष कृष्णा एकादशी (२२ दिसम्बर) को प्रभु पार्श्वनाथ का सुमेरु पर्वत की पांडुकशिला पर जन्माभिषेक, रथयात्रा आदि धार्मिक कार्यक्रम सम्पन्न हुए।

इसी दिन से लेकर पूरे वर्ष भर भारत की जैन समाज के द्वारा सभी नगर-नगर में, शहर-शहर में विश्वशांति हेतु करोड़ों जाप्यानुष्ठान हुए हैं एवं हजारों-हजारों शांति विधान आदि अनेक विधान अनुष्ठान सम्पन्न हुए हैं। जम्बूद्वीप स्थल पर सोलह बार सोलह-सोलह दिन के शांति विधान सम्पन्न हुए हैं। साथ ही प्रतिदिन विश्वशांति मंत्र, विश्वशांति चालीसा एवं अनेकों विधान, अनुष्ठान किये गये हैं।

माघ कृष्णा पंचमी (१५ जनवरी २००९) के शुभ दिन श्री कुंथुनाथ की प्रतिमा निर्माण हेतु शिलापूजनपूर्वक टंकनविधि सम्पन्न हुई। पुनः वैशाख कृष्णा दशमी (२० अप्रैल २००९), सोमवार को श्री अरनाथ तीर्थंकर की प्रतिमा निर्माण हेतु शिलापूजनपूर्वक टंकनविधि कराई गई।

इस मध्य तीनों तीर्थंकर भगवन्तों की प्रतिमाओं को कुशल शिल्पियों ने गढ़कर मूर्ति का रूप — भगवान का रूप प्रदान कर दिया और वह शुभ महामंगल घड़ियाँ आ गई कि जब इन तीर्थंकर भगवन्तों को यथास्थान कमलासन पर क्रेन से विराजित — खड़े किया गया।

भगवान शांतिनाथ की प्रतिमा की स्थापना माघ कृ. षष्ठी को, भगवान कुंथुनाथ की प्रतिमा सप्तमी को एवं भगवान अरहनाथ की प्रतिमा अष्टमी को क्रमशः (५-६-७ जनवरी २०१० को) यथास्थान कमलासन पर विराजमान हो गई। उन क्षणों का दृश्य और आनंद अभूतपूर्व ही रहा है।

तीनलोक रचना — अनेक वर्षों की मेरी भावना के अनुसार तीन लोक रचना बनाई गई। यह छप्पन फुट ऊँची, नीचे २८ फुट चौड़ी, मध्य में चार फुट की त्रसनाली, ऊपर बढ़ते हुए २० फुट पुनः ११ फुट है। इसकी मोटाई २८ फुट है। इसमें नीचे निगोद, सात नरक, मध्यलोक में पाँच मेरु, ज्योतिर्लोक, ऊर्ध्वलोक में १६ स्वर्ग, नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश, पाँच अनुत्तर और सबसे ऊपर सिद्धशिला है। अधोलोक में खरभाग, पंकभाग में भवनवासी के १० मंदिर, व्यंतर देवों के ८ भेदों के आठ मंदिर व उनके चैत्यवृक्षों में जिनप्रतिमाएं विराजमान हैं। ऐसे ही स्वर्गों में भी जिनमंदिर में प्रतिमाएं व चैत्यवृक्षों में प्रतिमाएं विराजमान हैं।

ऐतिहासिक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव — तीन तीर्थंकर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ ये सोलहवें-सत्रहवें और अठारहवें तीर्थंकर हैं। क्रम से ये पाँचवें, छठे और सातवें चक्रवर्ती तथा क्रम से बारहवें, तेरहवें और चौदहवें कामदेव पद के धारक हुए हैं ऐसे ये तीनों भगवान तीन-तीन पद के धारक हुए हैं।

इन तीनों भगवन्तों का एवं तीन लोक रचना में विराजमान होने वाली चार सौ अड़तालीस प्रतिमाओं का तथा और भी प्रतिमाओं का प्रतिष्ठा महोत्सव प्रारंभ हुआ। विधिनायक भगवान शांतिनाथ की प्रतिमा थी।

फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी (दिनांक ११-२-२०१०) के दिन प्रतिष्ठा का झण्डारोहण किया गया। फाल्गुन शुक्ला प्रतिपदा को गर्भकल्याणक (१४ फरवरी, रविवार), फाल्गुन शु. द्वितीय प्रतिपदा (१५ फरवरी, सोमवार) को जन्मकल्याणक महोत्सव सम्पन्न हुआ।

फाल्गुन शु. द्वितीया (१६-२-२०१०) को दिग्विजय जुलूस — यह इस प्रतिष्ठा में एक विशेष आकर्षण रहा है। क्योंकि तीनों तीर्थंकर चक्रवर्ती थे अतः तीनों भगवन्तों की षट्खण्ड दिग्विजय यात्रा का दृश्य — इसमें तीर्थंकरों के रथ के आगे-आगे धर्मचक्र चल रहा था। पुनः तीर्थंकरों की राज्यसभा का दृश्य दिखाया गया।

अनंतर भगवान का दीक्षाकल्याणक महोत्सव सम्पन्न हुआ। फाल्गुन शु. तृतीया, बुधवार (दिनांक १७ फरवरी) को प्रातः भगवान शांतिनाथ का आहार का दृश्य पुनः मध्याह्न में ज्ञानकल्याणक महोत्सव एवं समवसरण रचना बनाई गई।

आर्यिका दीक्षा— इसी पावन बेला में कई वर्षों से भावना संजोये ऐसी संघस्थ ब्र. कु. आस्था, ब्र. कु. चन्द्रिका एवं ब्र. कमला जी इनको मैंने मध्याह्न में दीक्षाएं प्रदान कीं। कु. आस्था को आर्यिका सुव्रतमती, कु. चन्द्रिका को आर्यिका सुदृढमती एवं ब्र. कमला जी को क्षुल्लिका सम्यक्त्वमती नाम से घोषित किया।

मुनि एवं क्षुल्लक दीक्षा— फाल्गुन शुक्ला चतुर्थी (१८ फरवरी) को भगवान के समवसरण में दिव्यध्वनि सभा दिखाई गई तथा पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में संसंघ उपस्थित मुनि श्री अमितसागर जी महाराज ने अपने संघस्थ क्षुल्लक अर्घ्यसागर को मुनि दीक्षा प्रदान की व ब्र. नमन जैन को क्षुल्लक अनुमानसागर बनाया।

महामस्तकाभिषेक महोत्सव— फाल्गुन शुक्ला पंचमी, शुक्रवार (दिनांक १९-२-२०१०) को प्रातः मोक्षकल्याणक क्रिया सम्पन्न हुई। पुनः तीनों तीर्थंकर भगवन्तों की ३१-३१ फुट उत्तुंग विशाल प्रतिमाओं का महामस्तकाभिषेक प्रारंभ हुआ। इसी प्रकार फाल्गुन शुक्ला षष्ठी एवं सप्तमी को भी (२०-२१ फरवरी को) महामस्तकाभिषेक महोत्सव किया गया। इन तीनों दिनों के महामस्तकाभिषेक का आस्था चैनल पर सीधा प्रसारण दिखाया गया, जिसे कि भारत के जैन-जैनैतर लोगों ने ही नहीं, प्रत्युत विश्व के लोगों ने देखा है और महान पुण्य संचित किया है। इस प्रकार यह पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर अभूतपूर्व हुई है।

इस मंगल महोत्सव में मुनि श्री पंचकल्याणकसागर, मुनि श्री विमलेशसागर (स्व. आचार्यश्री भरतसागर जी महाराज के शिष्य) आदि मुनि श्री निःशंक भूषण, मुनि श्री चिन्मयसागर आदि मुनिगण एवं आर्यिका-क्षुल्लक आदि भी सम्मिलित हुए हैं।

अनुवादपूर्णता— इन पवित्र दिनों में एवं पवित्र तीर्थ हस्तिनापुर में मेरा हिन्दी अनुवाद कार्य चक्ता रहा है।

वैशाख शुक्ला तृतीया— अक्षय तृतीया को जो कि युग की आदि में भगवान श्री ऋषभदेव के प्रथम आहार दिवस के रूप में प्रसिद्ध है, इस मंगल तिथि के दिन (१६-५-२०१०) वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ छत्तीस (२५३६) में मैंने यह हिन्दी भाषा अनुवाद पूर्ण किया है।

इस समय में मेरे (गणिनी ज्ञानमती के) संघ में ५ आर्यिकाएँ, १ क्षुल्लक जी, २ क्षुल्लिका माता ऐसे कुल ९ पिच्छीधारी हैं एवं २ ब्रह्मचारी (ब्र. कर्मयोगी रवीन्द्र जी एवं ब्र. राजेश जी), १ स्त्रह्मचारिणी बहनें (ब्र. कु. बीना, कु. सारिका, कु. इन्दु, कु. स्वाति, कु. अलका, कु. प्रीति, कु. मंजू, कु. दीपा, ब्र. बाला, ब्र. कुसुम, ब्र. सरला) हैं।

इस हस्तिनापुर में कमलमंदिर के कल्पवृक्ष स्वरूप भगवान महावीर स्वामी को नमस्कार करके मैं जम्बूद्वीप, तेरहद्वीप, तीनलोक रचना की सभी जिनप्रतिमाओं को कोटि-कोटि वंदन करते हुए विशाल प्रतिमा के रूप में विराजमान श्री शांतिनाथ, श्री कुंथुनाथ, श्री अरहनाथ के चरणकमलों की वंदना करती हूँ एवं यही प्रार्थना करती हूँ कि मेरा अहोरात्र अभीक्ष्णज्ञानोपयोग में लगा रहे। समीचीन ज्ञान के बल से एवं अपनी आर्यिकाचर्या से स्वात्मचिंतन के साथ-साथ प्रतिक्षण जिनेन्द्रदेव का नाम हृदय में विद्यमान रहे।

दोहा — जब तक जग में रवि-शशी, जैनधर्म विज्ञान।

षट्खण्डागम ग्रन्थ यह, तब तक दे सज्ज्ञान॥१॥

॥वर्धतां जिनशासनम्॥

षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डस्य प्रशस्तिः (लेखनकालः)

श्रीमते वर्धमानाय, नमो नमितविद्विषे।

यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा, त्रैलोक्यं गोष्पदायते॥१॥

प्रथमखण्डस्य प्रथमो ग्रन्थः—

श्रीमत्षट्खण्डागमग्रन्थराजस्य सिद्धान्तचिन्तामणिटीकाया लेखनकाल-स्थान-तीर्थक्षेत्राणि कथ्यन्ते-
श्रीषोडशतीर्थकर-पंचमचक्रवर्ति-द्वादशकामदेवश्रीशांतिनाथ-सप्तदशतीर्थकर-षष्ठचक्रवर्ति-
त्रयोदशकामदेवश्रीकुंथुनाथ-अष्टादशतीर्थकर-सप्तमचक्रपति-चतुर्दशकामदेव श्रीअरनाथस्वामिनां गर्भ-जन्म-
दीक्षा-केवलज्ञानकल्याणकैः पवित्रीकृतं हस्तिनागपुरक्षेत्रमुपविश्य वीराब्दे एकविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे
स्वजन्मतिथौ^१ शरत्पूर्णिमायां द्वितीयजम्बूद्वीपमहामहोत्सवकाले जम्बूद्वीपरचनामध्यस्थितसुदर्शनमेरोः
पाण्डुकशिलायां भगवतः श्रीशांतिनाथस्य अष्टोत्तरसहस्रकलशाभिषेकोत्सवे प्रसन्नमनसा मया—

“सिद्धान् सिद्ध्यर्थमानम्य सर्वास्त्रैलोक्यमूर्धगान्।

इष्टः सर्वक्रियान्तेऽसौ शान्तीशो हृदि धार्यते॥१॥”

एतन्मंगलाचरणं लिखित्वा श्रीषट्खण्डागमस्य सिद्धान्तचिन्तामणिटीका प्रारब्धा।

पुनश्च सार्धैकमासानन्तरं मांगीतुंगीसिद्धक्षेत्रे पंचकल्याणकप्रतिष्ठां कारयितुं मम संघेन सह हस्तिनापुरक्षेत्रात्
मंगलविहारः संजातः। तदानीं चतुर्थसूत्रस्य टीकालेखने केवलं एकोनपंचाशत्पृष्ठानि लिखितानि। मम मनसि
चिन्ता जाता कथं एतद्बृहत्कार्यं भविष्यति? तदानीं एकदा रात्रौ पश्चिमभागे सरस्वतीमातृभिः अहमाश्चस्ता।

वीराब्दे द्वाविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे मार्गशीर्षशुक्लाषष्ठ्यां^२ अत्रत्याद् निर्गत्य मार्गे ग्रामे नगरे बालविद्यालये
महाविद्यालये इत्यादिस्थलेषु निवसंत्योऽपि मम टीकालेखनमबाधितगत्या चलन्नासीत्।

दिल्ली राजधान्यां महती धर्मप्रभावनां विलोकयन्त्या हरियाणाप्रदेशं विहरन्त्या राजस्थानप्रदेशे श्रीचन्द्रप्रभ-
भगवतोऽतिशयक्षेत्र-तिजाराक्षेत्रमागत्य तत्र त्रयोदशसूत्रस्य टीकाया अन्ते श्रीचन्द्रप्रभजिनस्य स्तुतिः कृता^३।
अत्र मांगीतुंगीसिद्धक्षेत्रप्रतिष्ठाया नवसमितिः निर्वाचिता, तस्या अध्यक्षभारं ब्रह्मचारिरवीन्द्रकुमारेण गृहीतम्।

अनन्तरं माघकृष्णात्रयोदश्यां अतिशयक्षेत्रं श्रीमहावीरजीनामधेयं प्रविश्य तत्र माघकृष्णा चतुर्दश्यां श्री
ऋषभदेवस्यादिब्रह्मणो निर्वाणकल्याणकोत्सवं कारयित्वा वीराब्दे एकोनाशीत्यधिकचतुर्विंशतिशततमस्य
क्षुल्लिकादीक्षायाः चैत्र कृष्णाप्रतिपत्तिथेः स्मृत्वा पुनः पुनः भगवतां महावीरस्वामिनां वंदनां स्तुतिं च कृत्वा
तत्रापि टीकालेखनमकार्षम्।

अथानन्तरं चमत्कारजीनामधेयं सवाईमाधोपुरं गत्वा तत्रापि जिनप्रतिमानां वन्दनाभक्तिस्तुतिः विधाय
माघशुक्लैकादशम्याः तत्रत्याद् विहृत्य क्रमशः चांदखेडीक्षेत्रं आगत्य फाल्गुनशुक्लाप्रतिपत्तिथौ भगवतः
श्रीऋषभदेवस्य प्रतिमासमक्षे सामायिकं विधाय श्रद्धया तत्र टीकालेखनं कृत्वा द्रुतगत्या विहरन्त्या पिड़ावा
नामग्रामे श्रावकाणां विशेषभक्त्याग्रहेण च तत्र समवसरणशिलान्यासावसरे प्रथमग्रन्थस्य सत्प्ररूपणानामधेयस्य
टीका पूर्णीकृता महद्दर्शनेन। तथाहि—

१. आश्विन शुक्लापूर्णिमा वी.नि.सं. २५२१, दिनांक-८-१०-१९९५। २. मगसिरशुक्लाषष्ठी-वी.सं. २५२२, दिनांक
२७-११-१९९५। ३. पौष शु. ११, वी.सं. २५२२, दिनांक-१-१-१९९६, तिजारा तीर्थं।

राजस्थाने पिडावाख्ये ग्रामे भक्तजनाश्रिते।
 द्विद्विपंचद्वि वीराब्दे सप्तम्यां फाल्गुने सिते^१॥११॥
 अस्य सदन्योगस्य सिद्धान्तज्ञानलब्ध्ये।
 टीका चिन्तामणिर्नाम्ना सिद्धान्तादिरपूर्यत॥१२॥

अस्मिन् ग्रन्थे श्रीपुष्पदंताचार्यविरचितसप्तसप्तत्यधिकशतसूत्राणि सन्ति। मम टीका पृष्ठानि चतुःषष्ट्यधिक-
 शतानि। इयं टीका पञ्चमासाभ्यन्तरे एव पूर्णीजाता अतो मनस्यानन्दो बभूव। अस्मिन् मध्ये चत्वार्यतिशयक्षेत्राणि
 तिवारा-महावीरजी-सवाईमाधोपुर-चांदखेडीतिनामानि वन्दितानि अस्माभिरिति।

प्रथमखण्डे द्वितीयो ग्रन्थः —

भगवतां महावीरस्वामिनां रुद्रकृतोपसर्गविजयभूमिं उज्जयिनीं नगरं विहरन्त्या तत्र 'भगवन्महावीर-
 तपोभूमितीर्थस्य' शिलान्यासावसरे वीराब्दे द्विद्विपंचद्वि-अंके चैत्रकृष्णाप्रतिपत्तिथौ^२ मम क्षुल्लिकादीक्षातिथौ^३ च
 एतस्य षट्खण्डागमस्य द्वितीयग्रन्थस्य सत्प्ररूपणान्तर्गतविंशतिप्ररूपणानाम-आलापाधिकारस्य सिद्धान्त-
 चिन्तामणिटीका प्रारब्धा मया।

ततः इन्दौरमहानगरे गत्वा तत्रस्थ-गोम्मटगिरिस्थितभगवतां दशाब्दीसमारोहं विलोक्य एतन्महानगरे
 महतीप्रभावनां कारयन्त्या तत्रत्याद् विहृत्य सिद्धवरकूटनाम्नि सिद्धक्षेत्रे चैत्रशुक्लाषष्ठ्यां द्वाविंशत्यधिक-
 पंचविंशतिशततमे वीराब्दे मध्यलोकरचनायाः शिलान्यासः कारितः। पुनश्च पीठाधीशमोतीसागरस्य जन्मभूमौ
 सनावदनामनगरे चैत्रशुक्लाद्वादश्यां 'णमोकारधाम' तीर्थस्य शिलान्यासं कारयित्वा बेड़िया नाम स्थले महावीरजयंतीं
 दृष्ट्वा वैशाखकृष्णातृतीयायां पावागिरि-ऊन' क्षेत्रस्य दर्शनं कृतम्। अनंतरं द्रुतगत्या विहरन्त्या वैशाखशुक्लानवम्यां
 मांगीतुंगीसिद्धक्षेत्रे प्रवेशः कृतः। मध्ये मया गुणस्थानेषु कोष्टकानि लिखित्वा विशदोऽयं विषय इति मत्वा अयं
 ग्रन्थः स्थगितो मया।

पुनश्च वीराब्दे पंचविंशत्यधिक पंचविंशतिशततमे कार्तिकशुक्लाप्रतिपत्तिथौ मार्गणाधिकारं प्रारभ्य हस्तिनापुरक्षेत्रे
 मेरठनगरे च विहारं क्रियमाणया माघमास हस्तिनापुरतीर्थे एव अयं ग्रन्थः पूर्णीकृतः। तथाहि —

पञ्चद्विपञ्चद्वयंकेऽस्मिन् वीराब्दे माघशुक्लके।

तिथौ वसंतपञ्चम्यां^४ टीकेयं पूर्णतामगात्॥१२॥

अस्य ग्रन्थस्य द्वितीयस्य लेखन मध्ये सिद्धवरकूट-पावागिरि-मांगीतुंगी-हस्तिनापुरतीर्थाणां वन्दना,
 भक्तिः लेखनकार्यं च बभूवुः। अस्मिन् ग्रन्थे सूत्राणि न सन्ति, केवलं श्रीवीरसेनाचार्यस्य धवलाटीका एवास्ति।
 मम टीकाग्रन्थस्य पृष्ठाः नवतिः सन्ति।

प्रथमखण्डे तृतीयो ग्रन्थः —

मांगीतुंगीसिद्धक्षेत्रे श्रीरामचन्द्रहनुमानसुग्रीवादिमहासाधूनां नवनवतिकोटीनां निर्वाणभूमितुंगीगिरेः
 उपत्यकायामुपविश्य द्वाविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे वीराब्दे वैशाखशुक्लाद्वादश्यां^५ तृतीयग्रन्थस्य टीकामारभ्य
 मध्ये ज्येष्ठशुक्लाद्वितीयाया षष्ठीपर्यंतं पंचकल्याणकप्रतिष्ठा महामहोत्सवेऽपि लेखनमभवत्। दशवर्षात् भाविता
 इयं प्रतिष्ठाभावना पूर्णीजाता, एतद् विलोक्य आर्यिकाश्रेयांसमत्यादिसर्वसाधुसाध्वीनां श्रावकश्राविकाणां च

१. ईसवी सन्-दिनांक-२५-२-१९९६ को पूर्ण किया। २. चैत्र कृ. १, वी. सं. २५२२, दिनांक ६-३-१९९६,
 जयसिंहपुरा मंदिर, उज्जैन (म.प्र.)। ३. महावीर जी में आचार्य श्री देशभूषण जी से क्षुल्लिका दीक्षा प्राप्त की थी। (सन्
 १९५३ में, वीर नि. सं. २४७९)। ४. दिनांक २२-१-१९९९, हस्तिनापुर। ५. दिनांक ३०-४-१९९६, मांगीतुंगी।

मनसि अत्यर्थं प्रमोदोऽभवत्।

अत्र प्रतिष्ठामध्ये महाराष्ट्रप्रदेशस्य मुख्यमंत्री श्रीमनोहरजोशी महानुभावः आगत्य जैनधर्मानुष्ठानस्य प्रशंसां कुर्वन् सन् साधु-साध्वीनामाशीर्वादं संप्राप्य प्रसन्नोऽभवत्।

प्रतिष्ठानन्तरं मम मालेगांव-चांदवडेत्यादिनगरेषु विहारः संजातः, तत्र चन्द्रगिरिनामपर्वते उत्कीर्णजिनप्रतिमानां दर्शनं^१ कृत्वा मनसि हर्षविषादौ बभूवतुः। किंच-तत्र काश्चित् प्रतिमाः सिंदूरेण लिम्पिता आसन्। तद् विलोक्य विषादस्तथा च जैनप्रतिमाः जैनसंस्कृतिं उद्योतयन्तीति मत्वा हर्षश्च संजातः। पुनः मांगीतुंगी क्षेत्रमागत्य वर्षायोगं स्थापयित्वा श्रावणकृष्णादशम्यां^२ अयं ग्रन्थः पूर्णोऽभवत्।

अस्मिन् ग्रन्थे द्रव्यप्रमाणानुगमे द्विनवत्यधिकशतसूत्राणि, क्षेत्रानुगमे द्विनवतिः इति मिलित्वा चतुरशीत्यधिकद्विशतसूत्राणि सन्ति। पृष्ठाश्च एकत्रिंशदधिकशतानि। अस्मिन् मध्ये क्षेत्रस्य वन्दनाभक्त्यादिभिः मनःप्रसन्नं सातिशायि पुण्यसंपादनमपि लब्धम्।

प्रथमखण्डस्य चतुर्थो ग्रन्थः—

अस्मिन्नेव दिवसे^३ चतुर्थग्रन्थस्य टीकामारभ्य अत्रैव सिद्धक्षेत्रे भाद्रपदशुक्लातृतीयायां^४ नवत्यधिकशतपृष्ठाः लिखिताः। अस्मिन् ग्रन्थे स्पर्शनानुगमे पञ्चाशीत्यधिकशतसूत्राणि कालानुगमे च त्रिशत-द्विचत्वारिंशत्सूत्राणीति मिलित्वा सप्तविंशत्यधिकपञ्चशतसूत्राणि सन्ति। अस्मिन् मध्ये ध्यानाध्ययननिमित्तेन अत्रस्था मम संघस्थाश्च साध्व्यः क्षुल्लकादयश्च प्रसन्नमनसः स्व-स्वजन्मकृतार्थतां अन्वभूवन्।

प्रथमखण्डस्य पंचमो ग्रन्थः—

पुनश्चास्यामेव तिथौ तत्रैव सिद्धक्षेत्रे पंचमस्य ग्रन्थस्य टीकामारभ्य तत्र महतीं धर्मप्रभावनां कारयित्वा कमलाकारे अष्टोत्तरशतदलानां उपरि अष्टोत्तरसहस्रजिनप्रतिमाः स्थापयित्वा पुनः मांगीतुंगीपर्वतस्योपरि श्रीऋषभदेवस्य अष्टोत्तरशतफुट-उत्तुंग जिनप्रतिमानिर्माणघोषणामपि कृत्वा अस्य क्षेत्रस्य विश्वस्मिन् ख्यातिः प्रापिता। अस्य पर्वतस्योपरि सुधबुधगुहाया बाह्ये नवग्रहारिष्टनिवारकनवतीर्थकराणां चरणचिन्हानि स्थापयित्वा अन्यान्यपि चरणचिन्हानि स्थापितानि। तथापि मम टीकालेखनकार्यं अविरलगत्या चलति स्म। सिद्धक्षेत्रस्य वन्दनाभक्त्यादिभिः स्वचित्तं स्वात्मानं च संतोष्य कार्तिकशुक्लापञ्चम्यास्तत्रत्याद् निर्गत्य विहरन्त्या महुआनामक्षेत्रं गत्वा श्रीपार्श्वनाथजिनप्रतिमां वन्दित्वा मगसिरकृष्णाप्रतिपत्तिथौ तत्रापि लिखित्वाग्रे विहृत्य अंकलेश्वरनामक्षेत्रं गत्वा तत्र श्रीपुष्पदंतभूतबलिसूरिवर्ययोः स्मारं स्मारं श्रुतावतारकथाधारेण तत्रैव इमं पञ्चमं ग्रन्थं पूर्णमकार्षम्।

अत्रस्थ श्रीधरसेनाचार्यप्रतिमां श्रीसरस्वतीप्रतिमां च वन्दित्वा मनस्यानन्दोऽभवत्। वीराब्दे त्रयोविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे मार्गशीर्षकृष्णासप्तम्यां^५ अयं ग्रन्थः पूर्णोऽकृतः। अस्मिन् ग्रन्थे अन्तरानुगमे सूत्राणि त्रिशतसप्तनवतिः, भावानुगमे त्रिनवतिसूत्राणि, अल्पबहुत्वानुगमे द्व्यशीत्यधिकत्रिशतसूत्राणीति मिलित्वा द्विसप्तत्यधिकअष्टशतसूत्राणि सन्ति, पृष्ठाः त्रिनवत्यधिकशतानि। षट्खण्डागमग्रन्थोद्गमस्थलीं वन्दित्वा तत्र स्वटीकां पूरयित्वा च मम मनसि महानाल्हादोऽभवत्।

प्रथमखण्डस्य षष्ठो ग्रन्थः—

अस्यामेव तिथौ तत्रैव क्षेत्रे षष्ठग्रन्थस्य टीकामारभ्य द्रुतगत्या विहारो लेखनं च भवन् आसीत्। अत्र

१. द्वि. आषाढ शु. ३, वी.सं. २५२२, दिनांक-१८-७-१९९६। २. दिनांक ८-८-१९९६, गुरुवार। ३. दिनांक ८-८-१९९६ को प्रारंभ चतुर्थ पुस्तक टीका। ४. भाद्रपद शु. ३, वी.सं. २५२२, दिनांक-१५-९-१९९६ को पूर्ण किया। ५. मगसिर कृ. ७, वी.नि.सं. २५२३, दिनांक २-१२-१९९६।

गुजरातप्रदेशे पावागढ़तीर्थं सिद्धक्षेत्रं^१ संप्राप्य तत्र सीतापुत्रलवणांकुशनिर्वाणभूमिं च नमस्कृत्य।

रामसुआ विणिण जणा लाङ्गणरिंदाण पंचकोडीओ।

पावागिरिवरसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं।।

इति भक्तिभावनया पर्वतस्य वन्दनां कृत्वा पवित्रभूमौ टीकां च लिखित्वा एतस्यां टीकायां तीर्थस्यामृतकणाः आगच्छन्तीति विश्वस्य अहमदाबादमहानगरं गत्वा महाकल्पद्रुमविधाने^२ सानिध्यप्रदानं कृतम्। इदं विधानं-महापूजानुष्ठानं पौषकृष्णातृतीयायाः प्रारभ्य पौषकृष्णैकादश्यां पूर्णमभवत्।

तत्र महायज्ञानुष्ठाने गुजरातप्रदेशस्य मुख्यमंत्री श्रीशंकरसिंहवाघेला महामनाः आगत्य अहिंसाधर्मस्य प्रशंसां कुर्वन् अहं शाकाहारीति कथयित्वा जैनसमाजेनास्माभिश्च सम्मानं प्राप्नोत्। अनंतरं गुजरातराजधानी गांधीनगर राज्यपालमहामहिमश्रीकृष्णपालसिंहमहानुभावोऽपि समागत्यास्माकं आशीर्वादं समाप्नोत्।

ततस्तारंगासिद्धक्षेत्रं संप्राप्य-पौषशुक्लासप्तम्यां^३ वन्दनार्थं स्तुतिः कृता।

“वरदत्तो य वरंगो सायरदत्तो य तारवरणयरे।

आहुद्वयकोडीओ णिव्वाणगया णमो तेसिं।।४।।”

वरदत्तवरांगादयः सार्धत्रयकोटिमुनीश्वराः अत्रस्थ पर्वतेभ्यः निर्वाणमापुः तेभ्यो नमो नमः। अत्रैव गिरनारसिद्धक्षेत्रं परोक्षेणैव वन्दना कृता-

णेमिसामी पज्जुण्णो संबुकुमारो तहेव अणिरुद्धो।

बाहत्तरिकोडीओ उज्जंते सत्तसया सिद्धा।।५।।

अग्रे माघकृष्णाद्वितीयायां^४ ऋषभदेवतीर्थ-केशरियाजीनामधेयं संप्राप्य वंदना कृता। ततः सलूमबरे स्वशिष्यार्यिकादिमतीप्रभृतिभिः सह वात्सल्यं वर्धयन्ती उदयपुर महानगरे प्रथमाचार्यचारित्रचक्रवर्ति श्रीशांतिसागर परम्परायां षष्ठपट्टाचार्य श्री अभिनन्दनसागरं नमस्कृत्य तस्य संघेन सह मिलित्वा धर्मप्रभावनां विदधाना माघशुक्लातृतीयायां^५ अडिंदापार्श्वनाथक्षेत्रं वन्दित्वा चित्तौड़गढ़-मालपुरादिनगराणि अतिक्रम्य आर्यिकादीक्षाभूमि-माधोरजपुरानगरमागमम्। तत्र दीक्षानन्तरं प्रथमवारागमनेन श्रावकश्राविकाणां हर्षातिरेकोऽभूतपूर्वमभवत्।

तत्र दीक्षातीर्थं निर्माणयितुं जनानां भावनां विलोक्य तीर्थंकरप्रतिमास्थापनार्थं शिलान्यासः कारितः। तत्रैव मया फाल्गुनकृष्णात्रयोदश्यां वीराब्दे त्रयोविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे^६ षष्ठोऽयं ग्रन्थः पूर्णकृतः। एभिः षड्भिः ग्रन्थैः षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डः पूर्णो जातः।

अस्यां तिथौ इमं प्रथमखण्डं पूर्णकृत्य मम चित्ते महान् आनन्दः — परमानन्दोऽभवत्।

अस्मिन् षष्ठे ग्रन्थे सूत्रसंख्या पंचदशाधिकपञ्चशतानि, पृष्ठाश्च सप्ताशीत्यधिकशतानि सन्ति।

प्रथमखण्डस्य उपसंहारः —

एवं षट्ग्रन्थसमन्वितोऽस्मिन् प्रथमखण्डे जीवस्थाननाम्नि सूत्रसंख्या द्विसहस्र-त्रिशत-पञ्चसप्ततिप्रमाणाः सन्ति। पृष्ठसंख्या नवशतानि एकपञ्चाशत् ज्ञातव्याः। एषु षट्सु ग्रन्थेषु येभ्यो ग्रन्थेभ्य उद्धरणानि गृहीतानि तेषां नामानि—

१. णमोकारमहामंत्र-एकानुचिन्तनं, २. अनगारधर्मामृतं, ३. यतिप्रतिक्रमणं, ४. उत्तरपुराणं, ५. तिलोयपण्णत्तिः, ६. श्रुतावतारः, ७. कसायपाहुडग्रन्थः, ८. गोम्मतसारजीवकाण्डं-जीवतत्त्वप्रदीपिकाटीकासहितं, ९. तत्त्वार्थवार्तिकं,

१. मगसिर शु. ५, दिनांक १४-१२-१९९६। २. पौष कृ. ३, दिनांक-२७-१२-१९९६ से कल्पद्रुम विधान प्रारंभ अहमदाबाद में, पौष कृ. ११, दिनांक ५-१-१९९७ तक। ३. पौष शु. ७, दिनांक १५-१-१९९७। ४. दिनांक २५-१-१९९७। ५. दिनांक १०-२-१९९६। ६. फाल्गुन कृ. १३, वी.नि.सं. २५२३, दिनांक-७-३-१९९७।

१०. मोक्षप्राभृतं, ११. षट्खण्डागम-धवलाटीकासमन्वित-नवमपुस्तकं, १२. मूलाचारः, १३. प्रतिष्ठातिलकं, १४. भावसंग्रहः, १५. षट्खण्डागम-धवलाटीकासमन्वित-त्रयोदशपुस्तकं, १६. आदिपुराणं, १७. जिनस्तोत्रसंग्रहः, १८. नियमसारप्राभृतं-स्याद्वादचन्द्रिकाटीकासमन्वितं, १९. प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयी, २०. बृहद्द्रव्यसंग्रहः, २१. ज्ञानार्णवः, २२. लब्धिसारः, २३. सिद्धभक्तिप्राकृतं, २४. मूलाचारो द्वितीयभागः, २५. तत्त्वार्थसूत्रं, २६. आप्तमीमांसा, २७. तत्त्वार्थवृत्तिः, २८. सर्वार्थसिद्धिः, २९. सहस्रनामस्तोत्रं, ३०. पञ्चसंग्रहः, ३१. त्रिलोकसारः, ३२. निर्वाणभक्तिः, ३३. प्रवचननिर्देशिका, ३४. पञ्चास्तिकायः, ३५. अनेकार्थनाममाला, ३६. प्रमाणसंग्रहः, ३७. गोम्मटसारकर्मकाण्डं, ३८. द्वात्रिंशतिका, ३९. तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकं, ४०. भावप्राभृतं, ४१. शान्तिनाथपुराणं, ४२. महापुराणं, ४३. क्षत्रचूडामणिः, ४७. पद्मनन्दिपंचविंशतिका, ४८. हरिवंशपुराणं, इति नामधेया ग्रन्थाः सहयोगिनो बभूवुः।

तथा च हस्तिनागपुरतीर्थक्षेत्रात् प्रारभ्य माधोराजपुरापर्यन्तः — उत्तरप्रदेश-दिल्ली-हरियाणाप्रदेश-राजस्थानप्रदेश-मध्यप्रदेश-महाराष्ट्रप्रदेश-गुजरातप्रदेशाश्च सप्तप्रदेशेषु मेरठ-दिल्ली-गुड़गाँव-अलवर-कोटा-उज्जयिनी-इंदौर-सनावद-खरगोन-धूलिया-मालेगांव-चांदवड़-बड़ौदा-अहमदाबाद-ईडर-डेरोल-सलूमबर-उदयपुर-चित्तौड़गढ़-केकड़ी-मालपुरा इत्यादिनगरमहानगरेषु धर्मप्रभावनां कारं कारं मध्ये त्रिविधतीर्थाणां तीर्थकरकल्याणकभूमि-अतिशयक्षेत्र-निर्वाणक्षेत्राणां दर्शनवन्दनाभक्ति-उपासनासाधनानां महत्त्वपूर्णसमयानपि प्राप्नुवम्। तेभ्यः हस्तिनापुर-तिजारा-महावीरजी-सवाईमाधोपुर-चमत्कारजी-चांदखेड़ी-उज्जयिनी-गोम्मटगिरि-सिद्धवरकूट-पावागिरि-ऊन-मांगीतुंगी-चांदवड़-महुआ-अंकलेश्वर-पावागढ़-तारंगा-ऋषभदेव केशरिया-अडिंदापार्श्वनाथ इत्यादितीर्थेभ्यः तत्स्थित सर्वजिनप्रतिमाभ्यश्च नमो नमः।

यत्स्थाने वीराब्दे द्वयशीत्यधिकचतुर्विंशतिशततमे वैशाखकृष्णाद्वितीयायां श्रीपार्श्वनाथगर्भकल्याणकतिथौ विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यः चारित्रचक्रवर्ति श्रीशांतिसागरमहामुनीन्द्रस्य प्रथमशिष्य-प्रथमपट्टाधीश-श्रीवीरसागराचार्यवर्यकरकमलयोः मया महाव्रतस्वरूपायिकादीक्षां संप्राप्य 'ज्ञानमती' नाम्ना प्रसिद्धास्मि, तेभ्यः गुरुणां गुरुभ्यो दीक्षागुरुभ्यो मे कोटिशो नमोऽस्तु। सा दीक्षाभूमिरपि मह्यं स्वात्मविशुद्धये भूयादिति भावयेऽहम्।

एषु सार्धैकवर्षेषु ये समयाः काला दिवसानि रात्र्यश्च मम टीकालेखनेषु व्यतीताः तः एव समयादयः स्वात्मविशुद्धिप्रदाः संजाताः।

अस्मिन् प्रथमखण्डे षड्ग्रन्थेषु सूत्रसंख्या द्विसहस्र-त्रिशत-पंचसप्ततिः, पृष्ठसंख्यानवशतपञ्चपञ्चाशत् सन्ति। एभ्यः षड्ग्रन्थेभ्यः कोटिशो मे नमोऽस्तु। मम संघस्थायिकाचन्दनामती-पीठाधीशक्षुल्लकमोतीसागर-क्षुल्लिकाश्रद्धामती-कर्मयोगीब्रह्मचारिवीन्द्रकुमारजैन-ब्र. श्रीचन्द्र-ब्रह्मचारिणी-कुमारीबीना-आस्था, इत्यादयः शिष्याः, तेभ्यस्ताभ्यश्च शुभाशीर्वादाः सन्ति। ये मार्गे संघ व्यवस्थापक-तीर्थविकास-प्रतिष्ठादिकार्येषु धनादिभिः सहयोगिनः सर्वेभ्योऽपि मम शुभाशीर्वादाः भवन्तु, मम यात्राभिः धर्मप्रभावनानिमित्तेन सर्वत्र देशे राष्ट्रे राज्ये क्षेमं सुभिक्षं सौख्यं शांतिं च भूयादिति कामयेऽहम्।

जीवस्थानाख्यग्रन्थोऽयं, प्रथमः खण्ड इष्यते। अस्य चिन्तामणिष्टीका, लिखितासौ स्वसिद्धये।।१।।

यावद् भव्यस्य चित्ताब्जे, धर्मोऽयं तावदस्त्वह। गणिनी ज्ञानमत्येयं, कृता टीका श्रियं दिशेत्।।२।।

देवशास्त्रगुरुव्रत्वा, शान्तिनाथं नमाम्यहम्। यस्य पादप्रसादेन, सर्वकार्याणि सिद्ध्यति।।३।।



चूलिया-सुत्ताणि

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
-----------	-------	-----------

अथ प्रकृतिसमुत्कीर्तनचूलिका

प्रथम चूलिकाधिकारः

१.	कदि काओ पयडीओ बंधदि, केवडि कालट्टिदिएहि कम्मोहि सम्मत्तं लब्भदि वा ण लब्भदि वा, केवचिरिण कालेण वा कदि भाए वा करेदि मिच्छत्तं, उवसामणा वा खवणा वा केसु व खेत्तेसु कस्स व मूले केवडियं वा दंसणमोहणीयं कम्मं खवेत्तस्स चारित्तं वा संपुण्णं पडिवज्जत्तस्स।	४
२.	कदि काओ पगडीओ बंधदि त्ति जं पदं तस्स विहासा।	८
३.	इदाणिं पगडिसमुक्कित्तणं कस्सामो।	८
४.	तं जहा।	९
५.	णाणावरणीयं।	९
६.	दंसणावरणीयं।	९
७.	वेदणीयं।	९
८.	मोहणीयं।	१०
९.	आउअं।	१०
१०.	णामं।	१०
११.	गोदं।	१०
१२.	अंतरायं चेदि।	१०
१३.	णाणावरणीयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ।	१६
१४.	आभिणिबोहियणाणावरणीयं सुदणाणावरणीयं ओहिणाणावरणीयं मणपज्जवणाणावरणीयं केवलणाणावरणीयं चेदि।	१७ २६
१५.	दंसणावरणीयस्स कम्मस्स णव पयडीओ।	
१६.	णिद्वाणिद्वा पयलापयला थीणगिद्धी णिद्वा पयला य, चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणा- वरणीयं ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि।	२६ २९
१७.	वेदणीयस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ।	
१८.	सादावेदणीयं चेव असादावेदणीयं चेव।	२९
१९.	मोहणीयस्स कम्मस्स अट्टावीसं पयडीओ।	३१
२०.	जं तं मोहणीयं कम्मं तं दुविहं, दंसणमोहणीयं चेव चारित्तमोहणीयं चेव।	३१
२१.	जं तं दंसणमोहणीयं कम्मं तं बंधादो एयविहं तस्स संतकम्मं पुण तिविहं सम्मत्तं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं चेदि।	३१

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२२.	जं तं चारित्तमोहणीयं कम्मं तं दुविहं, कसायवेदणीयं चैव णोकसाय-वेदणीयं चैव।	३३
२३.	जं तं कसायवेदणीयं कम्मं तं सोलसविहं, अणंताणुबंधिकोहमाणमाया-लोहं, अपच्चक्खाणावरणीयकोहमाणमायालोहं, पच्चक्खाणावरणीय-कोहमाणमायालोहं, कोहसंजलणं, माणसंजलणं, मायासंजलणं लोहसंजलणं चेदि।	३४
२४.	जं तं णोकसायवेदणीयं कम्मं तं णवविहं, इत्थिवेदं पुरिसवेदं णवुंसयवेदं हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगंछा चेदि।	३८
२५.	आउगस्स कम्मस्स चत्तारि पयडीओ।	४०
२६.	णिरयाऊ तिरिक्खाऊ मणुस्साऊ देवाऊ चेदि।	४०
२७.	णामस्स कम्मस्स वादालीसं पिंडपयडीणामाई।	४१
२८.	गदिणामं जादिणामं सरीरणामं सरीरबंधणणामं सरीरसंघादणामं सरीरसंठाणणामं सरीरअंगोवंगणामं सरीरसंघट्टणणामं वण्णणामं गंधणामं रसणामं फासणामं आणुपुव्वीणामं अगुरुअ-लहुवणामं उवघादणामं परघादणामं उस्सासणामं आदावणामं उज्जोवणामं विहायगदिणामं तसणामं थावरणामं बादरणामं सुहुमणामं पज्जत्तणामं अपज्जत्तणामं पत्तेयसरीरणामं साधारणसरीरणामं थिरणामं अथिरणामं सुहणामं असुहणामं सुभगणामं दुभगणामं सुस्सरणामं दुस्सरणामं आदेज्जणामं अणादेज्जणामं जसकित्तिणामं अजसकित्तिणामं णिमिणणामं तित्थयरणामं चेदि।	४२
२९.	जं तं गदिणामकम्मं तं चउव्विहं, णिरयगदिणामं तिरिक्खगदिणामं मणुसगदिणामं देवगदिणामं चेदि।	५०
३०.	जं तं जादिणामकम्मं तं पंचविहं, एइंदियजादिणामकम्मं वीइंदिय-जादिणामकम्मं तीइंदियजादिणामकम्मं चउरिंदियजादिणामकम्मं पंचिंदियजादिणामकम्मं चेदि।	५०
३१.	जं तं सरीरणामकम्मं तं पंचविहं, ओरालियसरीरणामं वेउव्वियसरीरणामं आहार सरीरणामं तेयासरीरणामं कम्मइयसरीरणामं चेदि।	५१
३२.	जं तं सरीरबंधणणामकम्मं तं पंचविहं, ओरालियसरीरबंधणणामं वेउव्वियसरीर-बंधणणामं आहारसरीरबंधणणामं तेयासरीरबंधणणामं कम्मइयसरीरबंधणणामं चेदि।	५१
३३.	जं तं सरीरसंघादणामकम्मं तं पंचविहं, ओरालियसरीरसंघादणामं वेउव्वियसरीर-संघादणामं आहारसरीरसंघादणामं तेयासरीरसंघादणामं कम्मइयसरीरसंघादणामं चेदि।	५१
३४.	जं तं सरीरसंठाणणामकम्मं तं छव्विहं, समचउरसरीरसंठाणणामं णग्गोहपरिमंडल सरीरसंठाणणामं सादियसरीरसंठाणणामं खुज्जसरीर-संठाणणामं वामणसरीरसंठाणणामं हुंडसरीरसंठाणणामं चेदि।	५२
३५.	जं तं सरीरअंगोवंगणामकम्मं तं तिविहं ओरालियसरीरअंगोवंगणामं वेउव्वियसरीर-अंगोवंगणामं आहारसरीरअंगोवंगणामं चेदि।	५४

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
३६.	जं तं सरीरसंघडणणामकम्मं तं छव्विहं, वज्जरिसहवइरणारायण-सरीरसंघडणणामं वज्जणारायणसरीरसंघडणणामं णारायण-सरीरसंघडणणामं अद्धणारायण-सरीरसंघडणणामं खीलियसरीर-संघडणणामं असंपत्तसेवट्ट-सरीरसंघडणणामं।	५४
३७.	जं तं वण्णणामकम्मं तं पंचविहं, किण्हवण्णणामं णीलवण्णणामं रुहरवण्णणामं हालिद्ववण्णणामं सुक्किलवण्णणामं चेदि।	५५
३८.	जं तं गंधणामकम्मं तं दुविहं, सुरहिगंधं दुरहिगंधं चेदि।	५५
३९.	जं तं रसणामकम्मं तं पंचविहं, तित्तणामं कडुवणामं कसायणामं अंबणामं महुरणामं चेदि।	५५
४०.	जं तं पासणामकम्मं तं अट्टविहं, कक्खडणामं मउवणामं गुरुअणामं लहुअणामं णिद्धणामं लुक्खणामं सीदणामं उसुणणामं चेदि।	५६
४१.	जं तं आणुपुव्वीणामकम्मं तं चउव्विहं, णिरयगदिपाओग्गाणुपुव्वीणामं तिरिक्ख-गदिपाओग्गाणुपुव्वीणामं मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वीणामं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वीणामं चेदि।	५६
४२.	अगुरुअ-लहुअणामं उवघादणामं परघादणामं उस्सासणामं आदावणामं उज्जोवणामं।	५७
४३.	जं तं विहायगदिणामकम्मं तं दुविहं, पसत्थविहायगदी अप्पसत्थ-विहायगदी चेदि।	५७
४४.	तसणामं थावरणामं बादरणामं सुहुमणामं पज्जत्तणामं, एवं जाव णिमिण-तित्थयरणामं चेदि।	५७
४५.	गोदस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ, उच्चागोदं चेव णीचागोदं चेव।	५८
४६.	अंतराइयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ, दाणंतराइयं लाहंतराइयं भोगंतराइयं परिभोगंतराइयं वीरियंतराइयं चेदि।	५८

अथ स्थानसमुत्कीर्तन चूलिका

द्वितीय चूलिकाधिकारः

१.	एतो ट्ठाणसमुक्कित्तणं वण्णइस्सामो।	६२
२.	तं जहा।	६३
३.	तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजद-सम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा।	६३
४.	णाणावरणीयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ, आभिणिबोधियणाणा-वरणीयं सुदणाणावरणीयं ओधिणाणावरणीयं मणपज्जवणाणावरणीयं केवलणाणावरणीयं चेदि।	६४
५.	एदासिं पंचण्हं पयडीणं एक्कमिह चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स।	६४
६.	तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजद-सम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा।	६४
७.	दंसणावरणीयस्स कम्मस्स तिण्णि, ट्ठाणाणि, णवण्हं छण्हं चदुण्हं ठाणमिदि।	६५

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
८.	तत्थ इमं णवण्हं ट्ठाणं, णिद्वाणिद्वा पयलापयला थीणगिद्दी णिद्वा य पयला य चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि।	६५
९.	एदासिं णवण्हं पयडीणं एकमिह चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स।	६६
१०.	तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा।	६६
११.	तत्थ इमं छण्हं ट्ठाणं, णिद्वाणिद्वा-पयलापयला-थीणगिद्दीओ वज्ज णिद्वा य पयला य चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि।	६६
१२.	एदासिं छण्हं पयडीणं एकमिह चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स।	६६
१३.	तं सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा।	६६
१४.	तत्थ इमं चट्ठण्हं ट्ठाणं, णिद्वा य पयला य वज्ज चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि।	६६
१५.	एदासिं चट्ठण्हं पयडीणं एकमिह चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स।	६६
१६.	तं संजदस्स।	६७
१७.	वेदणीयस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ, सादावेदणीयं चेव असादावेदणीयं चेव।	६७
१८.	एदासिं दोण्हं पयडीणं एकमिह चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स।	६७
१९.	तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजद-सम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा।	६८
२०.	मोहणीयस्स कम्मस्स दस ट्ठाणाणि, वावीसाए एक्कवीसाए सत्तारसण्हं तेरसण्हं णवण्हं पंचण्हं चट्ठण्हं तिण्हं दोण्हं एक्कस्से ट्ठाणं चेदि।	६८
२१.	तत्थ इमं वावीसाए ट्ठाणं, मिच्छत्तं सोलसकसाया इत्थिवेद-पुरिसवेद-णउंसयवेद तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्सरदि-अरदिसोग दोण्हं जुगलाणमेक्कदरं भयदुगुंछा। एदासिं वावीसाए पयडीणं एकमिह चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स।	६९
२२.	तं मिच्छादिट्ठिस्स।	६९
२३.	तत्थ इमं एक्कवीसाए ट्ठाणं मिच्छत्तं णवुंसयवेदं वज्ज।	७१
२४.	सोलस कसाया इत्थिवेद पुरिसवेदो दोण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्सरदि-अरदि-सोग दोण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय-दुगुंछा एदासिं एक्कवीसाए पयडीणमेक्कमिह चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स।	७१
२५.	तं सासणसम्मादिट्ठिस्स।	७१
२६.	तत्थ इमं सत्तरसण्हं ट्ठाणं अणंताणुबंधिकोह-माण-माया-लोभं इत्थिवेदं वज्ज।	७१
२७.	वारस कसाय पुरिसवेदो हस्सरदि-अरदिसोग दोण्हं जुगलाणमेक्कदरं भयदुगुंछा। एदासिं सत्तरसण्हं पयडीणमेक्कमिह चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स।	७२
२८.	तं सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा।	७२
२९.	तत्थ इमं तेरसण्हं ट्ठाणं अपच्चक्खवाणावरणीयकोध-माण-माया-लोभं वज्ज।	७२

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
३०.	अट्ट कसाया पुरिसवेदो हस्सरदि-अरदिसोग दोण्हं जुगलाणमेक्कदरं भयदुगुंछा। एदासिं तेरसण्हं पयडीणमेक्कमिह चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स।	७३
३१.	तं संजदासंजदस्स।	७३
३२.	तत्थ इमं णवण्हं ट्ठाणं पच्चक्खाणावरणीयकोह-माण-माया-लोहं वज्ज।	७३
३३.	चदुसंजलणा पुरिसवेदो हस्सरदि-अरदिसोग दोण्हं जुगलाणमेक्कदरं भयदुगुंछा। एदासिं णवण्हं पयडीणमेक्कमिह चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स।	७३
३४.	तं संजदस्स।	७३
३५.	तत्थ इमं पंचण्हं ट्ठाणं हस्सरदि-अरदिसोग-भयदुगुंछं वज्ज।	७४
३६.	चदु संजलणं पुरिसवेदो। एदासिं पंचण्हं पयडीणमेक्कमिह चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स।	७४
३७.	तं संजदस्स।	७४
३८.	तत्थ इमं चदुण्हं ट्ठाणं पुरिसवेदं वज्ज।	७४
३९.	चदु संजलणं, एदासिं चदुण्हं पयडीणमेक्कमिह चेव ट्ठाणं बंध-माणस्स।	७४
४०.	तं संजदस्स।	७४
४१.	तत्थ इमं तिण्हं ट्ठाणं कोधसंजलणं वज्ज।	७४
४२.	माणसंजलणं मायासंजलणं लोभसंजलणं, एदासिं तिण्हं पयडीण-मेक्कमिह चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स।	७५
४३.	तं संजदस्स।	७५
४४.	तत्थ इमं दोण्हं ट्ठाणं माणसंजलणं वज्ज।	७५
४५.	मायासंजलणं लोभसंजलणं, एदासिं दोण्हं पयडीणमेक्कमिह चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स।	७५
४६.	तं संजदस्स।	७५
४७.	तत्थ इमं एक्किस्से ट्ठाणं मायासंजलणं वज्ज।	७५
४८.	लोभसंजलणं, एदिस्से एक्किस्से पयडीए एक्कमिह चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स।	७५
४९.	तं संजदस्स।	७५
५०.	आउअस्स कम्मस्स चत्तारिपयडीओ।	७६
५१.	णिरआउअं तिरिक्खाउअं मणुसाउअं देवाउअं चेदि।	७६
५२.	जं तं णिरयाउअं कम्मं बंधमाणस्स।	७६
५३.	तं मिच्छादिट्ठिस्स।	७६
५४.	जं तं तिरिक्खाउअं कम्मं बंधमाणस्स।	७७
५५.	तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा।	७७
५६.	जं तं मणुसाउअं कम्मं बंधमाणस्स।	७७
५७.	तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा।	७७
५८.	जं तं देवाउअं कम्मं बंधमाणस्स।	७७

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
५९.	तं मिच्छादिट्टिस्स वा सासणसम्मादिट्टिस्स वा असंजदसम्मादिट्टिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा।	७७
६०.	णामस्स कम्मस्स अट्ठ ट्ठाणाणि, एक्कत्तीसाए तीसाए एगूणतीसाए अट्ठवीसाए छव्वीसाए पणुवीसाए तेवीसाए एक्किस्से ट्ठाणं चेदि।	७८
६१.	तत्थ इमं अट्ठावीसाए ट्ठाणं, णिरयगदी पंचिंदियजादी वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं वेउव्वियसरीरअंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअ-लहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं अप्पसत्थविहायगई तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-अथिर-असुह-दुहव-दुस्सर-अणादेज्ज-अजसकित्ति-णिमिणणामं। एदासिं अट्ठावीसाए पयडीणमेक्कमिह चेव ट्ठाणं।	७८
६२.	णिरयगइ पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्टिस्स।	७९
६३.	तिरिक्खगदिणामाए पंच ट्ठाणाणि, तीसाए एगूणतीसाए छव्वीसाए पणुवीसाए तेवीसाए ट्ठाणं चेदि।	७९
६४.	तत्थ इमं पढमत्तीसाए ट्ठाणं, तिरिक्खगदी पंचिंदियजादी ओरालिय-तेजा कम्मइय सरीरं छण्हं संट्ठाणाणमेक्कदरं ओरालियसरीरअंगोवंगं छण्हं संघडणणाणमेक्कदरं वण्णगंधरस-फासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुवलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-उज्जोवं दोण्हं विहायगदीणमेक्कदरं तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाण-मेक्कदरं सुहव-दुहवाणमेक्कदरं सुस्सरदुस्सराणमेक्कदरं आदेज्ज-अणादेज्जाण-मेक्कदरं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं च। एसासिं पढमत्तीसाए पयडीणं एक्कमिह चेव ट्ठाणं।	८०
६५.	तिरिक्खगदिं पंचिंदियपज्जत्तउज्जोवसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छा-दिट्टिस्स।	८०
६६.	तत्थ इमं विदियत्तीसाए ट्ठाणं, तिरिक्खगदी पंचिंदियजादी ओरालिय-तेजा कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं वज्ज पंचण्हं संठाणाणमेक्कदरं ओरालिय-सरीरअंगोवंगं असंपत्तसेवट्टसंघडणं वज्ज पंचण्हं संघडणाणमेक्कदरं वण्णगंधरसफासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुव-लहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-उज्जोवं दोण्हं विहायगदीणमेक्कदरं तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुहासुहाणमेक्कदरं सुहव-दुहवाणमेक्कदरं सुस्सर-दुस्सराणमेक्कदरं आदेज्ज-अणादेज्जाणमेक्कदरं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं। एदासिं विदियत्तीसाए पयडीणं एक्कमिह चेव ट्ठाणं।	८१
६७.	तिरिक्खगदिं पंचिंदियपज्जत्तउज्जोवसंजुत्तं बंधमाणस्स तं सासणसम्मा-दिट्टिस्स।	८१
६८.	तत्थ इमं तदियत्तीसाए ट्ठाणं, तिरिक्खगदी वीइंदिय-तीइंदिय-चदुरिंदिय तिण्हं जादीणमेक्कदरं ओरालिय-तेया-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं ओरालिय-सरीरअंगोवंगं असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडणं वण्णगंधरसफासं तिरिक्खगदिपा-ओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-उज्जोवं अप्पसत्थ-विहायगदी तसबादरपज्जत्तपत्तेयसरीरं	८२

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
	थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाण-मेक्कदरं दुभग-दुस्सर-अणादेज्जं जसकित्ति-अजस- कित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं। एदासिं तदियतीसाए पयडीणमेक्कमिह चेव द्वाणं।	
६९.	तिरिक्खगदिं विगलिंदिय-पज्जत्त-उज्जोवसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स।	८२
७०.	तत्थ इमं पढमऊणतीसाए द्वाणं। जधा, पढमतीसाए भंगो। णवरि उज्जोवं वज्ज। एदासिं पढमऊणतीसाए पयडीणमेक्कमिह चेव द्वाणं।	८४
७१.	तिरिक्खगदिं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादि-ट्ठिस्स।	८४
७२.	तत्थ इमं विदियएगूणतीसाए द्वाणं। जधा, विदियत्तीसाए भंगो। णवरि उज्जोवं वज्ज। एदासिं विदीए ऊणतीसाए पयडीणमेक्कमिह चेव द्वाणं।	८५
७३.	तिरिक्खगदिं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं सासणसम्मादि-ट्ठिस्स।	८५
७४.	तत्थ इमं तदियऊणतीसाए द्वाणं। जधा, तदियतीसाए भंगो। णवरि उज्जोवं वज्ज। एदासिं तदियऊणतीसाए पयडीणमेक्कमिह चेव द्वाणं।	८५
७५.	तिरिक्खगदिं विगलिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादि-ट्ठिस्स।	८५
७६.	तत्थ इमं छब्बीसाए द्वाणं, तिरिक्खगदी एइंदियजादी ओरालिय-तेजा कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअ-लहुअ-उवघाद- परघाद-उस्सासं आदावुज्जोवाणमेक्कदरं थावर-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराण- मेक्कदरं सुहासुहाणमेक्कदरं दुहव-अणादेज्जं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं। एदासिं छव्वीसाए पयडीणमेक्कमिह चेव द्वाणं।	८६
७७.	तिरिक्खगदिं एइंदिय-बादर-पज्जत्त-आदाउज्जोवाणमेक्कदरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स।	८६
७८.	तत्थ इमं पढमपणुवीसाए द्वाणं, तिरिक्खगदी एइंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइय-सरीरं हुंडसंठाणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदिपा-ओग्गाणुपुव्वी अगुरुअ-लहुअ-उवघाद- परघाद-उस्साद-थावरं-बादर-सुहुमाणमेक्कदरं पज्जत्तं पत्तेग-साधारणसरीराण-मेक्कदरं थिराथिराण-मेक्कदरं सुहासुहाणमेक्कदरं दुहव-अणादेज्जं जसकित्ति-अजसकित्तीण-मेक्कदरं णिमिणणामं। एदासिं पढमपणुवीसाए पयडीणमेक्कमिह चेव द्वाणं।	८७
७९.	तिरिक्खगदिं एइंदिय-पज्जत्त-बादर-सुहुमाणमेक्कदरं संजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स।	८७
८०.	तत्थ इमं विदियपणुवीसाए द्वाणं, तिरिक्खगदी वेइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिय चदुण्हं जादीणमेक्कदरं ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं असंपत्तसेवट्ठसरीरसंघडणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदीपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअ- लहुअ-उवघाद-तस-बादर-अपज्जत्त-पत्तेयसरीर-अथिर-असुभ-दुहव-अणादेज्ज- अजसकित्ति-णिमिणं। एदासिं विदियपणुवीसाए पयडीणमेक्कमिह चेव द्वाणं।	८९
८१.	तिरिक्खगदिं तस अपज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स।	८९
८२.	तत्थ इमं तेवीसाए द्वाणं, तिरिक्खगदी एइंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं	९०

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
	वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-थावरं बादरसुहुमाणमेक्कदरं अपज्जत्तं पत्तेय-साधारणसरीराणमेक्कदरं अथिर-असुह-दुहव-अणादेज्ज-अजसकित्ति-णिमिणं। एदासिं तेवीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं।	
८३.	तिरिक्खगदिं एइंदिय-अपज्जत्त-बादर-सुहुमाणमेक्कदरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स।	९०
८४.	मणुसगदिणामाए तिण्णि ट्ठाणाणि, तीसाए एगूणतीसाए पणुवीसाए ट्ठाणं चेदि।	९०
८५.	तत्थ इमं तीसाए ट्ठाणं, मणुसगदी पंचिंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं ओरालियसरीरं अंगोवंगं वज्जरिसहसंघउणं वण्ण-गंध-रस-फासं मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराण-मेक्कदरं सुहासुहाणमेक्कदरं सुभग-सुस्सर-आदेज्जं जसकित्ति-अजसकि-त्तीणमेक्कदरं णिमिणं तित्थयरं। एदासिं तीसाए पयडीण-मेक्कम्हि चेव ट्ठाणं।	९१
८६.	मणुसगदिं पंचिंदियपज्जत्तित्थयरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं असंजद सम्मादिट्ठिस्स।	९१
८७.	तत्थ इमं पढमएगूणतीसाए ट्ठाणं। जधा, तीसाए भंगो। णवरि विसो तो त्थयरं वज्ज। एदासिं पढमएगूणतीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं।	९२
८८.	मणुसगदिं पंचिंदियपज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजद-सम्मादिट्ठिस्स वा।	९२
८९.	तत्थ इमं विद्याए एगूणतीसाए ट्ठाणं, मणुसगदी पंचिंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं वज्ज पंचण्हं संठाणाणमेक्कदरं ओरालियसरीरअंगोवंगं असंपत्तसेवट्ठसंघउणं वज्ज पंचण्हं संघउणाण-मेक्कदरं वण्णगंधरसफासं मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं दोण्हं विहायगदीणमेक्कदरं तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं सुहवदुहवाणमेक्कदरं सुस्सरदुस्सराणमेक्कदरं आदेज्ज-अणादेज्जाणमेक्कदरं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणं। एदासिं विद्याएगूणतीसाए पयडीण-मेक्कम्हि चेव ट्ठाणं।	९३
९०.	मणुसगदिं पंचिंदियपज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं सासणसम्मा-दिट्ठिस्स।	९३
९१.	तत्थ इमं तदियएगूणतीसाए ट्ठाणं, मणुसगदी पंचिंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं छण्हं संठाणाणमेक्कदरं ओरालियसरीरअंगोवंगं छण्हं संघउणाणमेक्कदरं वण्ण-गंध-रस-फासं मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं दोण्हं विहायगदीणमेक्कदरं तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुहासुहाणमेक्कदरं सुभगदुभगाणमेक्कदरं सुस्सरदुस्सराणमेक्कदरं आदेज्ज-अणादेज्जाण-मेक्कदरं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं। एदासिं तदियएगूणतीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं।	९४
९२.	मणुसगदिं पंचिंदियपज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स।	९४
९३.	तत्थ इमं पणुवीसाए ट्ठाणं, मणुसगदी पंचिंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरहुंडसंठाणं	९५

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
	ओरालियसरीरअंगोवंगं असंपत्तसेवट्टसंघट्टणं वण्ण-गंध-रस-फासं मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-तस-बादर-अपज्जत्त-पत्तेयसरीर-अथिर-असुभ-दुभग-अणादेज्ज-अजसकित्ति-णिमिणं। एदासिं पणुवीसाए पयडीण-मेक्कमिह चेव ट्ठाणं।	
९४.	मणुसगदिं पंचिंदियजादि-अपज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छा-दिट्ठिस्स।	९५
९५.	देवगदिणामाए पंच ट्ठाणाणि, एक्कत्तीसाए तीसाए एगुणतीसाए अट्ठवीसाए एक्कस्से ट्ठाणं चेदि।	९६
९६.	तत्थ इमं एक्कत्तीसाए ट्ठाणं, देवगदी पंचिंदियजादी वेउव्विय-आहार-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरस्ससंठाणं वेउव्विय-आहारअंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-तित्थयरं। एदासिं एक्कत्तीसाए पयडीणमेक्कमिह चेव।	९६
९७.	देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-आहार-तित्थयरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं अप्पमतसंजदस्स वा अपुव्वकरणस्स वा।	९७
९८.	तत्थ इमं तीसाए ट्ठाणं। जधा, एक्कत्तीसाए भंगो। णवरि विसेसो तित्थयरं वज्ज। एदासिं तीसाए पयडीणमेक्कमिह चेव ट्ठाणं।	९७
९९.	देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-आहारसंजुत्तं बंधमाणस्स तं अप्पमतसंजदस्स वा अपुव्वकरणस्स वा।	९७
१००.	तत्थ इमं पढमएगुणतीसाए ट्ठाणं। जधा, एक्कत्तीए भंगो। णवरि विसेसो, आहारसरीरं वज्ज। एदासिं पढमएगुणतीसाए पयडीणमेक्कमिह चेव ट्ठाणं।	९८
१०१.	देवगदिं पंचिंदियपज्जत्त-तित्थयरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं अप्पमतसंजदस्स वा अपुव्वकरणस्स वा।	९८
१०२.	तत्थ इमं विदियएगुणतीसाए ट्ठाणं, देवगदी पंचिंदियजादी वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं वेउव्वियसरीरअंगोवंगं वण्णगंधरसफासं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं पसत्थ-विहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाण-मेक्कदरं सुभग-सुस्सर-आदेज्जं जसकित्ति-अजस-कितीणमेक्कदरं णिमिण-तित्थयरं। एदासिं एगुणतीसाए पयडीणमेक्कमिह चेव ट्ठाणं।	९८
१०३.	देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-तित्थयरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं असंजद-सम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा।	९९
१०४.	तत्थ इमं पढमअट्ठवीसाए ट्ठाणं, देवगदी पंचिंदियजादी वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं वेउव्वियअंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिणणामं। एदासिं पढमअट्ठवीसाए पयडीणमेक्कमिह चेव ट्ठाणं।	१००

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१०५.	देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं अप्पमतसंजदस्स वा अपुव्वकरणस्स वा।	१००
१०६.	तत्थ इमं विदियअट्ठावीसाए ट्ठाणं, देवगदी पंचिंदियजादी वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं वेउव्वियसरीरअंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं पसत्थविहायगदी-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं सुभग-सुस्सर-आदेज्जं-जसकित्ति-अजसकित्तीण-मेक्कदरं णिमिणं। एदासिं विदियअट्ठावीसाए पयडीणमेक्कमिह चेव ट्ठाणं।	१०१
१०७.	देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा।	१०१
१०८.	तत्थ इमं एक्कस्से ट्ठाणं जसकित्तिणाम। एदिस्से पयडीए एक्कमिह चेव ट्ठाणं।	१०२
१०९.	बंधमाणस्स तं संजदस्स।	१०२
११०.	गोदस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ, उच्चागोदं चेव णीचागोदं चेव।	१०७
१११.	जं तं णीचागोदं कम्मं।	१०७
११२.	बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा।	१०८
११३.	जं तं उच्चागोदं कम्मं।	१०८
११४.	बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छा-दिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा।	१०८
११५.	अंतराइयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ, दाणंतराइयं लाहंतराइयं भोगंतराइयं परिभोगंतराइयं वीरियंतराइयं चेदि।	१०८
११६.	एदासिं पंचण्हं पयडीणमेक्कमिह चेव ट्ठाणं।	१०८
११७.	बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छा-दिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा।	१०९

अथ प्रथममहादण्डकः

तृतीय चूलिकाधिकारः

१. इदाणि पढमसम्मत्ताभिमुहो जाओ पयडीओ बंधदि ताओ पयडीओ कित्तइस्सामो। तत्थ इमा पढमा महादंडआ कादव्वा भवदि।
२. पंचण्हं णाणावरणीयाणं णवण्हं दंसणावरणीयाणं सादावेदणीयं मिच्छत्तं सोलसण्हं कसायाणं पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा। आउगं च ण बंधदि। देवगदि-पंचिंदियजाति-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं वेउव्वियअंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं देवगदिपा-ओग्गाणुपुव्वी अगुरुअ-लहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगदि-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-उच्चागोदं पंचण्हमंतराइयाणमेदाओ पयडीओ बंधदि पढमसम्मत्ताभिमुहो सणिण-पंचिंदिय-तिरिक्खो वा मणुस्सो वा।

सूत्र सं.

सूत्र

पृष्ठ सं.

अथ द्वितीयो महादण्डकः

चतुर्थ चूलिकाधिकारः

- | | | |
|----|--|-----|
| १. | तत्थ इमो विदियो महादण्डओ कादव्वो भवदि। | १२१ |
| २. | पंचण्हं णाणावरणीयाणं णवण्हं दंसणावरणीयाणं सादावेदणीयं मिच्छत्तं सोलसण्हं कसायाणं पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा। आउअं च ण बंधदि। मणुसगदि-पंचिंदियजादि-ओरलिय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं वज्जरिसहसंधडणं वण्ण-गंध-रस-फासं मणुसगदि-पाओगाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-उच्चागोदं पंचण्हं अंतराइयाणं एदाओ पयडीओ बंधदि पढम-सम्मत्ताहिमुहो अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइयं वज्ज देवो वा णेरइओ वा। | १२२ |

अथ तृतीयो महादण्डकः

पंचम चूलिकाधिकारः

- | | | |
|----|--|-----|
| १. | तत्थ इमो तदिओ महादंडओ कादव्वो भवदि। | १२४ |
| २. | पंचण्हं णाणावरणीयाणं णवण्हं दंसणावरणीयाणं सादावेदणीयं मिच्छत्तं सोलसण्हं कसायाणं पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा। आउअं च ण बंधदि। तिरिक्खगदि-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-ओरालियंगोवंग-वज्जरिसहसंधडण-वण्ण-गंध-रस-फास-तिरिक्खगदिपा-ओगाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं। उज्जोवं सिया बंधदि, सिया ण बंधदि। पसत्थविहायगदि-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-णीचागोद-पंचण्हमंतराइयाणं एदाओ पयडीओ बंधदि पढमसम्मत्ताहिमुहो अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइओ। | १२५ |

अथ उत्कृष्टस्थितिबंधः

षष्ठ चूलिकाधिकारः

- | | | |
|----|--|-----|
| १. | केवडि कालट्टिदीएहि कम्मेहि सम्मत्तं लभदि वा ण लभदि वा, ण लभदि त्ति विभासा। | १३० |
| २. | एत्तो उक्कस्सयट्ठिदिं वण्णइस्सामो। | १३० |
| ३. | तं जहा। | १३१ |
| ४. | पंचण्हं णाणावरणीयाणं णवण्हं दंसणावरणीयाणं असादावेदणीयं पंचण्हमंतराइयाणं उक्कस्सओ ट्टिदिबंधो तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ। | १३२ |
| ५. | तिण्णि वाससहस्साणि आबाधा। | १३३ |

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
६.	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ।	१३६
७.	सादावेदणीय-इत्थिवेद-मणुसगदि-मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्विणामाण-मुक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो पण्णारस सागरोवमकोडाकोडीओ।	१३९
८.	पण्णारस वाससदाणि आबाधा।	१३९
९.	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।	१३९
१०.	मिच्छत्तस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो सत्तरि सागरोवमकोडाकोडीओ।	१४०
११.	सत्तवाससहस्साणि आबाधा।	१४०
१२.	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी णिसेगो।	१४०
१३.	सोलसण्हं कसायाणं उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो चत्तालीसं सागरोवमकोडा-कोडीओ।	१४०
१४.	चत्तारि वाससहस्साणि आबाधा।	१४०
१५.	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।	१४१
१६.	पुरिसवेद-हस्स-रदि-देवगदि-समचउरससंठाण-वज्जरिसहसंघडण-देवगदिपा- ओग्गाणुपुव्वी-पसत्थविहायगदि-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति- उच्चागोदाणं उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो दससागरोवमकोडा-कोडीओ।	१४१
१७.	दसवाससदाणि आबाधा।	१४१
१८.	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ।	१४२
१९.	णउंसयवेद-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा णिरयगदी तिरिक्खगदी एइंदिय-पंचिंदियजादि- ओरालिय-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-हुंडसंठाण-ओरालिय-वेउव्वियसरीर-अंगोवंग- असंपत्तसेवट्ठसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-णिरियगदि-तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-आदाव-उज्जोव-अप्पसत्थविहायगदि-तस- थावर-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-अथिर-अशुभ-दुब्भग-दुस्सर-अणादेज्ज-अजसकित्ति- णिमिण-णीचागोदाणं उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो वीसं सागरोवमकोडा-कोडीओ।	१४२
२०.	वेवाससहस्साणि आबाधा।	१४३
२१.	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।	१४३
२२.	णिरयाउ-देवाउअस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो तेत्तीसं सागरोवमाणि।	१४३
२३.	पुव्वकोडित्तिभागो आबाधा।	१४३
२४.	आबाधा।	१४३
२५.	कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ।	१४४
२६.	तिरिक्खाउ-मणुसाउअस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो तिण्णि पलिदोव-माणि।	१४४
२७.	पुव्वकोडित्तिभागो आबाधा।	१४४
२८.	आबाधा।	१४४
२९.	कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।	१४४

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
३०.	वीईदिय-तीईदिय-चउरिंदिय-वामणसंठाण-खीलियसंघडण-सुहुम-अपज्जत्त-साधारणप्पाणं उक्कस्सगो द्विदिबंधो अट्टारससागरोवमकोडा-कोडीओ।	१४८
३१.	अट्टारसवाससदाणि आबाधा।	१४८
३२.	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।	१४८
३३.	आहारसरीर-आहारसरीरंगोवंग-तित्थयरणामाणमुक्कस्सगो द्विदिबंधो अंतोकोडा-कोडीए।	१४९
३४.	अंतोमुहुत्तमाबाधा।	१४९
३५.	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।	१४९
३६.	णग्गोधपरिमंडलसंठाण-वज्जणारायणसंघडणणामाणं उक्कस्सगो द्विदिबंधो वारस सागरोवमकोडाकोडीओ।	१५२
३७.	वारसवाससदाणि आबाधा।	१५२
३८.	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।	१५२
३६.	सादियसंठाण-णारायसंघडणणामाणमुक्कस्सओ द्विदिबंधो चोदससागरोवम-कोडाकोडीओ।	१५२
४०.	चोदसवाससदाणि आबाधा।	१५२
४१.	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ।	१५२
४२.	खुज्जसंठाण-अद्धणारायणसंघडणणामाणमुक्कस्सओ द्विदिबंधो सोलस-सागरोवम-कोडाकोडीओ।	१५२
४३.	सोलसवाससदाणि आबाधा।	१५३
४४.	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ।	१५३

जघन्यस्थितिबंधः सप्तम चूलिकाधिकारः

१.	एत्तो जहण्णयट्ठिदिं वण्णइस्सामो।	१६०
२.	तं जहा।	१६०
३.	पंचण्हं णाणावरणीयाणं चदुण्हं दंसणावरणीयाणं लोभसंजलणस्स पंचण्हमंतराइयाणं जहण्णओ द्विदिबंधो अंतोमुहुत्तं।	१६१
४.	अंतोमुहुत्तमाबाधा।	१६१
५.	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।	१६१
६.	पंचदंसणावरणीय-असादावेदणीयाणं जहण्णगो द्विदिबंधो सागरोवमस्स तिण्णि सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणया।	१६१
७.	अंतोमुहुत्तमाबाधा।	१६१
८.	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ।	१६२
९.	सादावेदणीयस्स जहण्णओ द्विदिबंधो वारस मुहुत्ताणि।	१६२

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१०.	अंतोमुहुत्तमाबाधा।	१६२
११.	आबाधूणिया कम्मट्टिदी कम्मणिसेओ।	१६२
१२.	मिच्छत्तस्स जहण्णगा ट्ठिदिबंधो सागरोवमस्स सत्त सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदि- भागेण ऊणिया।	१६३
१३.	अंतोमुहुत्तमाबाधा।	१६३
१४.	आबाधूणिया कम्मट्टिदी कम्मणिसेओ।	१६३
१५.	वारसण्हं कसायाणं जहण्णओ ट्ठिदिबंधो सागरोवमस्स चत्तारि सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणया।	१६३
१६.	अंतोमुहुत्तमाबाधा।	१६३
१७.	आबाधूणिया कम्मट्टिदी कम्मणिसेओ।	१६३
१८.	कोधसंजलण-माणसंजलण-मायासंजलणाणं जहण्णओ ट्ठिदिबंधो वे मासा मासं पक्खं।	१६३
१९.	अंतोमुहुत्तमाबाधा।	१६३
२०.	आबाधूणिया कम्मट्टिदी कम्मणिसेओ।	१६४
२१.	पुरिसवेदस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो अट्ठ वस्साणि।	१६४
२२.	अंतोमुहुत्तमाबाधा।	१६४
२३.	आबाधूणिया कम्मट्टिदी कम्मणिसेओ।	१६४
२४.	इत्थिवेद-णउंसयवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-तिरिक्खगइ-मणुसगइ- एइंदिय-बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीं छण्हं संट्ठाणाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं छण्हं संघडणाणं वण्णगंधरसफासं तिरिक्खगइ- मणुसगइपाओगाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-आदाउज्जोव- पसत्थविहायगदि-अप्पसत्थ-विहायगदि-तस-थावर-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-पत्तेय- साहारणसरीर-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-दुभग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्ज-अणादेज्ज- अजसकित्ति-णिमिण-णीचागोदाणं जहण्णओ ट्ठिदिबंधो सागरोवमस्स वे-सत्तभागालिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणया।	१६५
२५.	अंतोमुहुत्तमाबाधा।	१६५
२६.	आबाधूणिया कम्मट्टिदी कम्मणिसेओ।	१६५
२७.	णिरयाउअ-देवाउअस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो दसवाससहस्साणि।	१६६
२८.	अंतोमुहुत्तमाबाधा।	१६६
२९.	आबाधा।	१६६
३०.	कम्मट्टिदी कम्मणिसेओ।	१६६
३१.	तिरिक्खाउअ-मणुसाउअस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो खुद्दाभवग्गहणं।	१६६
३२.	अंतोमुहुत्तमाबाधा।	१६६

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
३३.	आबाधा।	१६६
३४.	कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।	१६६
३५.	णिरयगदि-देवगदि-वेउव्वियसरीर-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-णिरयगदि-देवगदिपा- ओग्गाणुपुव्वीणामाणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो सागरोवमसहस्सस्स वेसत्तभागा पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणया।	१६७
३६.	अंतोमुहुत्तमाबाधा।	१६७
३७.	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।	१६८
३८.	आहारसरीर-आहारसरीरअंगोवंग-तिथयरणामाणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो अंतोकोडा-बोडीओ।	१७०
३९.	अंतोमुहुत्तमाबाधा।	१७०
४०.	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ।	१७१
४१.	जसगित्ति-उच्चागोदाणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो अट्ठ मुहुत्ताणि।	१७२
४२.	अंतोमुहुत्तमाबाधा।	१७२
४३.	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ।	१७२

सम्यक्त्थोत्पत्तिचूलिका

अष्टम चूलिकाधिकारः

१.	एवदिकालट्ठिदिएहि कम्मेहि सम्मत्तं ण लहदि।	१९०
२.	लभदि ति विभासा।	१९०
३.	एदेसिं चेव सव्वकम्माणं जावे अंतो कोडाकोडिट्ठिदिं बंधदि तावे पढमसम्मत्तं लभदि।	१९१
४.	सो पुण पंचिंदिओ सण्णी मिच्छाइट्ठी पज्जत्तओ सव्वविसुद्धो।	१९३
५.	एदेसिं चेव सव्वकम्माणं जावे अंतोकोडाकोडिट्ठिदिं ठवेदि संखेज्जेहि सागरोवमसहस्सेहि ऊणियं तावे पढमसम्मत्तमुप्पादेदि।	२०२
६.	पढमसम्मत्तमुप्पादेतो अंतोमुहुत्तमोहट्ठेदि।	२०५
७.	ओहट्ठेदूण मिच्छत्तं तिण्णि भागं करेदि सम्मत्तं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं।	२०७
८.	दंसणमोहणायं कम्मं उवसामेदि।	२०९
९.	उवसामेतो कम्हि उवसामेदि ? चदुसु वि गदीसु उवसामेदि। चदुसु वि गदीसु उवसामेतो पंचिंदिएसु उवसामेदि, णो एइंदिय-विगलिंदियेसु। पंचिंदिएसु उवसामेतो सण्णीसु उवसामेदि, णो असण्णीसु। सण्णीसु उवसामेतो गम्भोवक्कंतिएसु उवसामेदि, णो सम्मुच्छिमेसु। गम्भोवक्कंतिएसु उवसामेतो पज्जत्तएसु उवसामेदि, णो अपज्जत्तएसु। पज्जत्तएसु उवसामेतो संखेज्जवस्साउगेसु वि उवसामेदि, असंखेज्जवस्साउगेसु वि।	२०९
१०.	उवसामणा वा केसु व खेत्तेसु कस्स व मूले।	२०९

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
११.	दंसणमोहणीयं कम्मं खवेदुमाढवेंतो कम्हि आढवेदि, अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमीसु जम्हि जिणा केवली तित्थयरा तम्हि आढवेदि।	२११
१२.	णिट्ठवओ पुण चदुसु वि गदीसु णिट्ठवेदि।	२१५
१३.	सम्मत्तं पडिवज्जंतो तदो सत्त कम्माणमंतोकोडाकोडिं द्विदिं ठवेदि णाणावरणीयं दंसणावरणीयं वेदणीयं मोहणीयं णामं गोदं अंतराइयं चेदि।	२१७
१४.	चारित्तं पडिवज्जंतो तदो सत्तकम्माणमंतोकोडाकोडिं द्विदिं ठवेदि णाणावरणीयं दंसणावरणीयं वेदणीयं मोहणीयं णामं गोदं अंतराइयं चेदि।	२१८
१५.	संपुण्णं पुण चारित्तं पडिवज्जंतो तदो चत्तारि कम्माणि अंतोमुहुत्तद्विदिं ठवेदि णाणावरणीयं दंसणावरणीयं मोहणीयमंतराइयं चेदि।	२२७
१६.	वेदणीयं वारसमुहुत्तं द्विदिं ठवेदि, णामागोदानमट्ठमुहुत्तद्विदिं ठवेदि, सेसाणं कम्माणं भिण्णमुहुत्तद्विदिं ठवेदि।	२२७

द्वितीयो महाधिकारः

गत्यागतचूलिका

नवम चूलिकाधिकारः

१.	णेरइया मिच्छाइट्ठी पढमसम्मत्तमुप्पादेति।	२३७
२.	उप्पादेता कम्हि उप्पादेति।	२३७
३.	पज्जत्तएसु उप्पादेति, णो अपज्जत्तएसु।	२३७
४.	पज्जत्तएसु उप्पादेता अंतोमुहुत्तप्पहुडि जाव उवरिममुप्पादेति, णो हेट्ठा।	२३७
५.	एवं जाव सत्तसु पुढवीसु णेरइया।	२३८
६.	णेरइया मिच्छाइट्ठी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति।	२३९
७.	तीहिं कारणेहिं पढमसम्मत्तमुप्पादेति।	२३९
८.	केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं वेदणाहिभूदा।	२३९
९.	एवं तिसु उवरिमासु पुढवीसु णेरइया।	२३९
१०.	चदुसु हेट्ठिमासु णेरइया मिच्छाइट्ठी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पा-देति।	२४१
११.	दोहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति।	२४१
१२.	केइं जाइस्सरा, केइं वेयणाहिभूदा।	२४१
१३.	तिरिक्खा मिच्छाइट्ठी पढमसम्मत्तमुप्पादेति।	२४२
१४.	उप्पादेता कम्हि उप्पादेति ?।	२४२
१५.	पंचिंदिएसु उप्पादेति, णो एइंदिय-विगलिंदिएसु।	२४२

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१६.	पंचिंदिएसु उप्पादेता सण्णीसु उप्पादेति, णो असण्णीसु।	२४२
१७.	सण्णीसु उप्पादेता गब्भोवक्कंतिएसु उप्पादेति, णो सम्मुच्छिमेसु।	२४२
१८.	गब्भोवक्कंतिएसु उप्पादेता पज्जत्तएसु उप्पादेति, णो अपज्जत्तएसु।	२४२
१९.	पज्जत्तएसु उप्पादेता दिवसपुधत्तप्पहुडि जावमुवरिमुप्पादेति, णो हेट्ठादो।	२४३
२०.	एवं जाव सव्वदीवसमुद्देसु।	२४३
२१.	तिरिक्खा मिच्छाइट्ठी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तं उप्पादेति ?।	२४४
२२.	तीहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति — केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं जिणबिंबं दट्ठण।	२४४
२३.	मणुस्सा मिच्छादिट्ठी पढमसम्मत्तमुप्पादेति।	२४६
२४.	उप्पादेता कम्हि उप्पादेति।	२४६
२५.	गब्भोवक्कंतिएसु पढमसम्मत्तमुप्पादेति, णो सम्मुच्छिमेसु।	२४६
२६.	गब्भोवक्कंतिएसु उप्पादेता पज्जत्तएसु उप्पादेता, णो अपज्जत्तएसु।	२४६
२७.	पज्जत्तएसु उप्पादेता अट्ठवासप्पहुडि जाव उवरिमुप्पादेति, णो हेट्ठादो।	२४६
२८.	एवं जाव अट्ठाइज्जदीव-समुद्देसु।	२४६
२९.	मणुसा मिच्छाइट्ठी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति।	२४७
३०.	तीहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति — केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं जिणबिंबं दट्ठण।	२४७
३१.	देवा मिच्छाइट्ठी पढमसम्मत्तमुप्पादेति।	२४९
३२.	उप्पादेता कम्हि उप्पादेति।	२४९
३३.	पज्जत्तएसु उप्पादेति, णो अपज्जत्तएसु।	२४९
३४.	पज्जत्तएसु उप्पादेता अंतोमुहुत्तप्पहुडि जाव उपरि उप्पादेति, णो हेट्ठदो।	२४९
३५.	एवं जाव उवरिमउवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा त्ति।	२४९
३६.	देवा मिच्छाइट्ठी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति ?।	२५०
३७.	चदुहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति — केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं जिणमहिमं दट्ठण, केइं देविद्धिं दट्ठण।	२५०
३८.	एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सदरसहस्सार-कप्पवासियदेवा त्ति।	२५०
३९.	आणद-पाणद-आरण-अच्चुदकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठी कदिहि कारणेहि पढम-सम्मत्तमुप्पादेति।	२५२
४०.	तीहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति — केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं जिणमहिमं दट्ठण।	२५२
४१.	णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठी कदिहि कारणेहि पढम-सम्मत्त-मुप्पादेति ?।	२५३
४२.	दोहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति — केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण।	२५३
४३.	अणुदिसजाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा सव्वे ते णियमा सम्माइट्ठी त्ति पणत्ता।	२५३

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
-----------	-------	-----------

अथ चतुर्गतिप्रवेशनिर्गमनकथनं

४४.	णेइया मिच्छतेण अधिगदा केइं मिच्छतेण णीति।	२५६
४५.	केइं मिच्छतेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णीति।	२५६
४६.	केइं मिच्छतेण अधिगदा सम्मत्तेण णीति।	२५६
४७.	सम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण चेव णीति।	२५७
४८.	एवं पढमाए पुढवीए णेरइया।	२५७
४९.	विदियाए जाव छट्ठीए पुढवीए णेरइया मिच्छतेण अधिगदा केइं मिच्छतेण णीति।	२५७
५०.	मिच्छतेण अधिगदा केइं सासणसम्मत्तेण णीति।	२५७
५१.	मिच्छतेण अधिगदा केइं सम्मत्तेण णीति।	२५७
५२.	सत्तमाए पुढवीए णेरइया मिच्छतेण चेव णीति।	२५७
५३.	तिरिक्खा केइं मिच्छतेण अधिगदा मिच्छतेण णीति।	२५९
५४.	केइं मिच्छतेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णीति।	२५९
५५.	केइं मिच्छतेण अधिगदा सम्मत्तेण णीति।	२५९
५६.	केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा मिच्छतेण णीति।	२५९
५७.	केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णीति।	२५९
५८.	केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णीति।	२५९
५९.	सम्मत्तेण अधिगदा णियमा सम्मत्तेण चेव णीति।	२५९
६०.	(एवं) पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता।	२५९
६१.	पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीयो मणुसिणीयो भवणवासिय-वाणविंतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवीओ च मिच्छतेण अधिगदा केइं मिच्छतेण णीति।	२६०
६२.	केइं मिच्छतेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णीति।	२६०
६३.	केइं मिच्छतेण अधिगदा सम्मत्तेण णीति।	२६०
६४.	केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा मिच्छतेण णीति।	२६०
६४.	केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णीति॥(अ)	२६१
६५.	केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णीति।	२६१
६६.	मणुसा मणुसपज्जत्ता सोधम्मीसाणप्पहुडि जाव णवगेवज्जविमाण-वासियदेवेसु केइं मिच्छतेण अधिगदा मिच्छतेण णीति।	२६२
६७.	केइं मिच्छतेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णीति।	२६२
६८.	केइं मिच्छतेण अधिगदा सम्मत्तेण णीति।	२६२
६९.	केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा मिच्छतेण णीति।	२६२
७०.	केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णीति।	२६२
७१.	केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णीति।	२६२

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
७२.	केइं सम्मत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णींति।	२६२
७३.	केइं सम्मत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति।	२६२
७४.	केइं सम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति।	२६२
७५.	अणुदिस जाव सव्वट्टिसिद्धिविमाणवासियदेवेसु सम्मत्तेण अधिगदा णियमा सम्मत्तेण चेव णींति।	२६४

अथ चतुर्गतिगमनस्थानप्ररूपकः अन्तराधिकारः

७६.	णेइयमिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी णिरयादो उवट्ठिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति?।	२६६
७७.	दो गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं चेव मणुसगदिं चेव।	२६६
७८.	तिरिक्खेसु आगच्छंता पंचिंदिएसु आगच्छंति, णो एइंदिय-विगलिं-दिएसु।	२६६
७९.	पंचिंदिएसु आगच्छंता सण्णीसु आगच्छंति, णो असण्णीसु।	२६७
८०.	सण्णीसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु।	२६७
८१.	गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु।	२६७
८२.	पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवस्साउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्ज-वस्साउएसु।	२६७
८३.	मणुस्सेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु।	२६७
८४.	गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्त-एसु।	२६७
८५.	पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवस्साउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्ज-वस्साउएसु।	२६७
८६.	णेइया सम्मामिच्छाइट्ठी सम्मामिच्छत्तगुणेण णिरयादो णो उव्वट्ठेति।	२६८
८७.	णेइया सम्माइट्ठी णिरयादो उव्वट्ठिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ?।	२६८
८८.	एक्कं मणुसगदिं चेव आगच्छंति।	२६८
८९.	मणुसेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु।	२६८
९०.	गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्त-एसु।	२६८
९१.	पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्ज-वासाउएसु।	२६८
९२.	एवं छसु उवरिमासु पुढवीसु णेरइया।	२६९
९३.	अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइया मिच्छाइट्ठी णिरयादो उव्वट्ठिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ?।	२६९
९४.	एक्कं तिरिक्खगदिं चेव आगच्छंति।	२६९
९५.	तिरिक्खेसु आगच्छंता पंचिंदिएसु आगच्छंति णो एइंदिय विगलिंदि-एसु।	२६९
९६.	पंचिंदिएसु आगच्छंता सण्णीसु आगच्छंति, णो असण्णीसु।	२६९
९७.	सण्णीसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु।	२७०
९८.	गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्त-एसु।	२७०
९९.	पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवस्साउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्ज-वासाउएसु।	२७०
१००.	सत्तमाए पुढवीए णेरइया सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजद-सम्मादिट्ठी अप्पप्पणो गुणेण णिरयादो णो उव्वट्ठेति।	२७०

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१०१.	तिरिक्खा सण्णी मिच्छाइट्ठी पंचिंदियपज्जत्ता संखेज्जवासाउआ तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?।	२७१
१०२.	चत्तारि गदीओ गच्छंति णिरयगदिं तिरिक्खगदिं मणुसगदिं देवगदिं चेदि।	२७१
१०३.	णिरएसु गच्छंता सव्वणिरएसु गच्छंति।	२७१
१०४.	तिरिक्खेसु गच्छंता सव्वतिरिक्खेसु गच्छंति।	२७१
१०५.	मणुसेसु गच्छंता सव्वमणुसेसु गच्छंति।	२७१
१०६.	देवेसु गच्छंता भवणवासियप्पहुडि जाव सयार-सहस्सारकप्पवासिय-देवेसु गच्छंति।	२७१
१०७.	पंचिंदियतिरिक्खअसण्णिपज्जत्ता तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?।	२७१
१०८.	चत्तारि गदीओ गच्छंति णिरयगदिं तिरिक्खगदिं मणुसगदिं देवगदिं चेदि।	२७२
१०९.	णिरएसु गच्छंता पढमाए पुढवीए णेरइएसु गच्छंति।	२७२
११०.	तिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छंता सव्वतिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छंति, णो असंखेज्जवासाइसु गच्छंति।	२७२
१११.	देवेसु गच्छंता भवणवासिय-वाणवेंतरदेवेसु गच्छंति।	२७२
११२.	पंचिंदियतिरिक्खसण्णी-असण्णी अपज्जत्ता पुढवीकाइया आउकाइया वणप्फइकाइया णिगोदजीवा बादरा सुहुमा बादरवणप्फदिकाइया पत्तेयसरीरा पज्जत्ता अपज्जत्ता बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पज्जत्तापज्जत्ता तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?।	२७३
११३.	दुवे गदीओ गच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव।	२७३
११४.	तिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छंता सव्वतिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छंति, णो असंखेज्जवस्सा-उएसु गच्छंति।	२७३
११५.	तेउक्काइया आउक्काइया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति।	२७४
११६.	एक्कं चेव तिरिक्खगदिं गच्छंति।	२७४
११७.	तिरिक्खेसु गच्छंता सव्वतिरिक्खेसु गच्छंति, णो असंखेज्जवस्साउएसु गच्छंति।	२७४
११८.	तिरिक्खसासणसम्माइट्ठी संखेज्जवस्साउआ तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?।	२७४
११९.	तिण्णि गदीओ गच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं देवगदिं चेदि।	२७४
१२०.	तिरिक्खेहि गच्छंता एइंदिय-पंचिंदिएसु गच्छंति, णो विगलिंदि-एसु।	२७४
१२१.	एइंदिएसु गच्छंता बादरपुढवीकाइय-बादरआउक्काइय-बादरवणप्फइ-काइय-पत्तेयसरीर-पज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तएसु।	२७४
१२२.	पंचिंदिएसु गच्छंता सण्णीसु गच्छंति, णो असण्णीसु।	२७५
१२३.	सण्णीसु गच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु।	२७५

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१२४.	गब्धोवक्कंतिएसु गच्छंता पज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्त-एसु।	२७५
१२५.	पज्जत्तएसु गच्छंता संखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति, असंखेज्जवासाउवेसु वि।	२७५
१२६.	मणुसेसु गच्छंता गब्धोवक्कंतिएसु गच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु।	२७५
१२७.	गब्धोवक्कंतिएसु गच्छंता पज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तएसु।	२७५
१२८.	पज्जत्तएसु गच्छंता संखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति, असंखेज्जवासाउएसु गच्छंति।	२७५
१२९.	देवेसु गच्छंता भवणवासियप्पहुडि जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु गच्छंति।	२७५
१३०.	तिरिक्खा सम्मामिच्छाइट्ठी संखेज्जवस्साउआ सम्मामिच्छत्तगुणेण तिरिक्खा तिरिक्खेसु णो कालं करंति।	२७७
१३१.	तिरिक्खा असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जवस्साउआ तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?।	२७७
१३२.	एक्कं चेव देवगदिं गच्छंति।	२७७
१३३.	देवेसु गच्छंता सोहम्मीसाणप्पहुडि जाव आरणच्चुदकप्पवासियदेवेसु गच्छंति।	२७७
१३४.	तिरिक्खमिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंखेज्जवासाउवा तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?।	२७७
१३५.	एक्कं हि चेव देवगदिं गच्छंति।	२७७
१३६.	देवेसु गच्छंता भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवेसु गच्छंति।	२७७
१३७.	तिरिक्खा सम्मामिच्छाइट्ठी असंखेज्जवासाउआ सम्मामिच्छत्तगुणेण तिरिक्खा तिरिक्खेहि णो कालं करंति।	२७७
१३८.	तिरिक्खा असंजदसम्माइट्ठी असंखेज्जवासाउआ तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालग-दसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?।	२७८
१३९.	एक्कं हि चेव देवगदिं गच्छंति।	२७८
१४०.	देवेसु गच्छंता सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु गच्छंति।	२७८
१४१.	मणुसा मणुसपज्जत्ता मिच्छाइट्ठी संखेज्जवासाउआ मणुसा मणुसेहि कालगदसमाणा कदि कदीओ गच्छंति ?।	२७९
१४२.	चत्तारि गदीओ गच्छंति णिरयगई तिरिक्खगई मणुसगई देवगई चेदि।	२८०
१४३.	णिरएसु गच्छंता सव्वणिरएसु गच्छंति।	२८०
१४४.	तिरिक्खेसु गच्छंता सव्वतिरिक्खेसु गच्छंति।	२८०
१४५.	मणुसेसु गच्छंता सव्वमणुस्सेसु गच्छंति।	२८०
१४६.	देवेसु गच्छंता भवणवासियप्पहुडि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु गच्छंति।	२८०
१४७.	मणुसा अपज्जत्ता मणुसा मणुसेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?।	२८०
१४८.	दुवे गदीओ गच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव।	२८०
१४९.	तिरिक्ख-मणुसेसु गच्छंता सव्वतिरिक्ख-मणुसेसु गच्छंति, णो असंखेज्जवासाउणुगच्छंति।	२८०

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१५०.	मणुस्सासाणसम्माइट्ठी संखेज्जवासाउआ मणुसा मणुसेहि कालगदसमाणा कदि कदीओ गच्छंति ?।	२८१
१५१.	तिण्णि गदीओ गच्छंति तिरिक्खगदिं माणुसगदिं देवगदिं चेदि।	२८१
१५२.	तिरिक्खेसु गच्छंता एइंदिय-पंचिंदिएसु गच्छंति, णो विगलिंदिएसु गच्छंति।	२८१
१५३.	एइंदिएसु गच्छंता बादरपुढवी-बादरआउ-बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीरपज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तएसु।	२८१
१५४.	पंचिंदिएसु गच्छंता सण्णीसु गच्छंति, णो असण्णीसु।	२८२
१५५.	सण्णीसु गच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु।	२८२
१५६.	गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंता पज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्त-ऐसु।	२८२
१५७.	पज्जत्तएसु गच्छंता संखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति, असंखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति।	२८२
१५८.	मणुसेसु गच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु।	२८२
१५९.	गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंता पज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्त-एसु।	२८२
१६०.	पज्जत्तएसु गच्छंता संखेज्जवासाउएसु गच्छंति, असंखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति।	२८२
१६१.	देवेसु गच्छंता भवणवासियप्पहुडि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु गच्छंति।	२८२
१६२.	मणुसा सम्मामिच्छाइट्ठी संखेज्जवासाउआ सम्मामिच्छत्तगुणेण मणुसा मणुसेहि णो कालं करेंति।	२८३
१६३.	मणुससम्माइट्ठी संखेज्जवासाउआ मणुस्सा मणुस्सेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?।	२८४
१६४.	एक्कं हि चेव देवगदिं गच्छंति।	२८४
१६५.	देवेसु गच्छंता सोहम्मीसाणप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु गच्छंति।	२८४
१६६.	मणुसा मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंखेज्जवासाउआ मणुसा मणुसेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?।	२८७
१६७.	एक्कं हि चेव देवगदिं गच्छंति।	२८७
१६८.	देवेसु गच्छंता भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवेसु गच्छंति।	२८७
१६९.	मणुसा सम्मामिच्छाइट्ठी असंखेज्जवासाउआ सम्मामिच्छत्तगुणेण मणुसा मणुसेहि णो कालं करेंति।	२८७
१७०.	मणुसा सम्माइट्ठी असंखेज्जवासाउआ मणुसा मणुसेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति?।	२८७
१७१.	एक्कं हि चेव देवगदिं गच्छंति।	२८७
१७२.	देवेसु गच्छंता सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु गच्छंति।	२८७
१७३.	देवा मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी देवा देवेहि उवट्ठिद-चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ?।	२८८
१७४.	दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव।	२८८

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१७५.	तिरिक्खेसु आगच्छंता एइंदिय-पंचिंदिएसु आगच्छंति, णो विगलिंदि-एसु।	२८८
१७६.	एइंदिएसु आगच्छंता बादरपुढवीकाइय-बादरआउकाइय-बादरवणप्फ-दिकाइयपत्तेय-सरीरपज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु।	२८९
१७७.	पंचिंदिएसु आगच्छंता सण्णीसु आगच्छंति, णो असण्णीसु।	२८९
१७८.	सण्णीसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छि-मेसु।	२८९
१७९.	गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्त-एसु।	२८९
१८०.	पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्ज-वासाउएसु।	२८९
१८१.	मणुसेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु।	२८९
१८२.	गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्त-एसु।	२८९
१८३.	पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्ज-वासाउएसु।	२९०
१८४.	देवा सम्मामिच्छाइट्ठी सम्मामिच्छत्तगुणेण देवा देवेहि णो उव्वट्ठंति, णो चयंति।	२९०
१८५.	देवा सम्माइट्ठी देवा देवेहि उव्वट्ठिद-चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति।	२९०
१८६.	एक्कं हि चेव मणुसगदिमागच्छंति।	२९०
१८७.	मणुसेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छि-मेसु॥	२९०
१८८.	गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्त-एसु।	२९०
१८९.	पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्ज-वासाउएसु।	२९०
१९०.	भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसिय-सोधम्मसाणकप्पवासियदेवेसु देवगदिभंगो।	२९१
१९१.	सणक्कुमारप्पहुडि जाव सदरसहस्सारकप्पवासियदेवेसु पढमपुढवीभंगो। णवरि चुदा त्ति भाणिदव्वं।	२९२
१९२.	आणदादि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी देवा देवेहि चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति?।	२९२
१९३.	एक्कं हि चेव मणुसगदिमागच्छंति।	२९२
१९४.	मणुसेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छि-मेसु।	२९२
१९५.	गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्त-एसु।	२९३
१९६.	पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्ज-वासाउएसु।	२९३
१९७.	आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवा सम्मामिच्छाइट्ठी सम्मामिच्छत्तगुणेण देवा देवेहि णो चयंति।	२९३
१९८.	अणुदिस जाव सव्वट्ठिसिद्धिविमाणवासियदेवा असंजदसम्माइट्ठी देवा देवेहि चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति?।	२९३
१९९.	एक्कं हि मणुसगदिमागच्छंति।	२९३
२००.	मणुसेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु।	२९३
२०१.	गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्त-एसु।	२९३
२०२.	पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्ज-वासाउएसु।	२९३

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
-----------	-------	-----------

अथ गुणोत्पादननाम चतुर्थोऽन्तराधिकारः

२०३. अधो सत्तमाए पुढवीए गेरइया गिरयादो गेरइया उवट्टिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ?। २९९
२०४. एक्कं हि चेव तिरिक्खगदिमागच्छंति। २९९
२०५. तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा छण्णो उप्पाएन्ति — आभिणि-बोहियणाणं णो उप्पाएन्ति, सुदणाणं णो उप्पाएन्ति, ओहिणाणं णो उप्पाएन्ति, सम्मामिच्छत्तं णो उप्पाएन्ति, सम्मत्तं णो उप्पाएन्ति, संजमासंजमं णो उप्पाएन्ति। २९९
२०६. छट्ठीए पुढवीए गेरइया गिरयादो गेरइया उवट्टिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति। ३००
२०७. दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव। ३००
२०८. तिरिक्ख-मणुस्सेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा मणुसा केइं छ उप्पाएन्ति — केइं आभिणि-बोहियणाणमुप्पाएन्ति, केइं सुदणाणमुप्पाएन्ति, केइमोहिणाण-मुप्पाएन्ति, केइं सम्मामिच्छत्त-मुप्पाएन्ति, केइं सम्मत्तं उप्पाएन्ति, केइं संजमासंजममुप्पाएन्ति। ३०१
२०९. पंचमीए पुढवीए गेरइया गेरइयादो गेरइया उवट्टिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ?। ३०१
२१०. दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं चेव मणुसगदिं चेव। ३०१
२११. तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा केइं छ उप्पाएन्ति। ३०२
२१२. मणुस्सेसु उववण्णल्लया मणुसा केइमट्टमुप्पाएन्ति — केइमाभिणि-बोहियणाणमुप्पाएन्ति, केइं सुदणाणमुप्पाएन्ति, केइमोहिणाणमुप्पाएन्ति, केइं मणपज्जवणाणमुप्पाएन्ति, केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएन्ति, केइं सम्मत्तमुप्पाएन्ति, केइं संजमासंजममुप्पाएन्ति, केइंसंजममुप्पाएन्ति। ३०२
२१३. चउत्थी पुढवीए गेरइया गिरयादो गेरइया उवट्टिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ?। ३०२
२१४. दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगइं चेव मणुसगइं चेव। ३०२
२१५. तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा केइं छ उप्पाएन्ति। ३०२
२१६. मणुसेसु उववण्णल्लया मणुसा केइं दस उप्पाएन्ति — केइमाभिणि-बोहियणाणमुप्पाएन्ति, केइं सुदणाणमुप्पाएन्ति, केइमोहिणाणमुप्पाएन्ति, केइं मणपज्जवणाणमुप्पाएन्ति, केइं केवलणाणमुप्पाएन्ति, केइं सम्मामिच्छत्त-मुप्पाएन्ति, केइं सम्मत्तमुप्पाएन्ति, केइं संजमासंजममुप्पाएन्ति, केइं संजम-मुप्पाएन्ति। णो बलदेवत्तं वासुदेवत्तं णो चक्कवट्ठित्तं णो तित्थयरत्तं। केइमंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुक्खाण-मंतं परिविजाणंति। ३०३
२१७. तिसु उवरिमासु पुढवीसु गेरइया गिरयादो गेरइया उवट्टिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ?।। ३०५
२१८. दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव। ३०५
२१९. तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा केइं छ उप्पाएन्ति। ३०५
२२०. मणुसेसु उववण्णल्लया मणुस्सा केइमेक्कारस उप्पाएन्ति — केइमाभिणि-बोहिय-णाणमुप्पाएन्ति, केइं सुदणाणमुप्पाएन्ति, केइं मणपज्ज-वणाणमुप्पा-एन्ति, केइमोहिणाण-

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
	मुष्पाएँति, केइं केवलणाणमुष्पाएँति, केइं सम्मामिच्छत्त-मुष्पाएँति, केइं सम्मत्तमुष्पाएँति, केइं संजमासंजममुष्पाएँति, केइं संजममुष्पाएँति। णो बलदेवत्तं णो वासुदेवत्तमुष्पाएँति, णो चक्कवट्ठि-मुष्पाएँति। केइं तित्थयरत्तमुष्पाएँति, केइंमंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुक्खाणमंतं परिविजाणंति।	
२२१.	तिरिक्खा मणुसा तिरिक्ख-मणुसेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ?।	३०६
२२२.	चत्तारि गदीओ गच्छंति णिरयगदिं तिरिक्खगदिं मणुसगदिं देवगदिं चेदि।	३०७
२२३.	णिरय-देवेसु उववण्णल्लया णिरय-देवा केइं पंचमुष्पाएँति, केइमाभिणिबोहिय-णाणमुष्पाएँति, केइं सुदणाणमुष्पाएँति, केइमोहिणा-णमुष्पाएँति, केइं सम्मामिच्छत्तमुष्पाएँति, केइं सम्मत्तमुष्पाएँति।	३०७
२२४.	तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा मणुसा केइं छ उप्पाएँति।	३०७
२२५.	मणुसेसु उववण्णल्लया तिरिक्ख-मणुस्सा जहा चउत्थपुढवीए भंगो।	३०७
२२६.	देवगदीए देवा देवेहि उव्वट्ठिदचुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ?।	३०८
२२७.	दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेदि।	३०८
२२८.	तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा केइं छ उप्पाएँति।	३०८
२२९.	मणुसेसु उववण्णल्लया मणुसा केइं सव्वं उप्पाएँति — केइमाभिणि-बोहियणाणमुष्पाएँति, केइं सुदणाणमुष्पाएँति, केइमोहिणाणमुष्पाएँति, केइं मणपज्जवणाणमुष्पाएँति, केइं केवलणाणमुष्पाएँति, केइं सम्मामिच्छत्त-मुष्पाएँति, केइं सम्मत्तमुष्पाएँति, केइं संजमासंजममुष्पाएँति, केइं संजमं उप्पाएँति, केइं बलदेवत्तमुष्पाएँति, केइं वसुदेवत्तमुष्पाएँति, केइं चक्कवट्ठित्तमुष्पाएँति, केइंमंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुक्खाणमंतं परिविजाणंति।	३०९
२३०.	भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकप्प-वासियदेवीओ च देवा देवेहि उव्वट्ठिद-चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ?।	३०९
२३१.	दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव।	३१०
२३२.	तिरिक्खेसु उववण्णल्लया केइं छ उप्पाएँति।	३१०
२३३.	मणुसेसु उववण्णल्लया मणुसा केइं दस उप्पाएँति — केइमाभिणिबोहिय-णाणमुष्पाएँति, केइं सुदणाणमुष्पाएँति, केइमोहिणाणमुष्पाएँति, केइं मणपज्जवणाणमुष्पाएँति, केइं केवलणाणमुष्पाएँति, केइं सम्मामिच्छत्त-मुष्पाएँति, केइं सम्मत्तमुष्पाएँति, केइं संजमासंजममुष्पाएँति, केइं संजमं मुष्पाएँति। णो बलदेवत्तमुष्पाएँति, णो वासुदेवत्तमुष्पाएँति, णो चक्कवट्ठित्त-मुष्पाएँति, णो तित्थयरत्तमुष्पाएँति। केइंमंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुक्खाणमंतं परिविजाणंति।	३१०
२३४.	सोहम्मीसाण जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवा जधा देवगदिभंगो।	३११
२३५.	आणदादि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवा देवेहि चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ?।	३११

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२३६.	एकं हि चेव मणुसगदिमागच्छंति।	३१२
२३७.	मणुस्सेसु उववणल्लया मणुस्सा केइं सव्वे उप्पाएंति।	३१२
२३८.	अणुदिस जाव अवराइद विमाणवासियदेवा देवेहि चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति?।	३१२
२३९.	एकं हि चेव मणुसगदिमागच्छंति।	३१२
२४०.	मणुसेसु उववणल्लया मणुस्सा तेसिमाभिणिबोहियणाणं सुदणाणं णियमा अत्थि, ओहिणाणं सिया अत्थि, सिया णत्थि। केइं मणपज्ज-वणाणमुप्पाएंति, केवलणाणमुप्पाएंति। सम्मामिच्छत्तं णत्थि, सम्मत्तं णियमा अत्थि। केइं संजमासंजममुप्पाएंति, संजमं णियमा उप्पाएंति। केइं बलदेवत्तमुप्पाएंति, णो वासुदेवत्तमुप्पाएंति। केइं चक्कवट्ठित्तमुप्पाएंति, केइं तित्थयरत्तमुप्पाएंति, केइं मंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुक्खाणमं परिविजाणंति।	३१२
२४१.	सव्वट्ठिसिद्धिमाणावासियदेवा देवेहि चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति?।	३१४
२४२.	एकं हि चेव मणुसगदिमागच्छंति।	३१४
२४३.	मणुसेसु उववणल्लया मणुसा तेसिमाभिणिबोहियणाणं सुदणाणं ओहिणाणं च णियमा अत्थि, केइं मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केवलणाणं णियमा उप्पाएंति। सम्मामिच्छत्तं णत्थि सम्मत्तं णियमा अत्थि। केइं संजमासंजममुप्पाएंति। संजमं णियमा उप्पाएंति। केइं बलदेवत्तमुप्पाएंति, णो वासुदेवत्तमुप्पाएंति। केइं चक्कवट्ठित्तमुप्पाएंति, केइं तित्थयरत्तमुप्पाएंति। सव्वे ते णियमा अंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुक्खाणमंतं परिविजाणंति।	३१५

॥ समाप्तोऽयं प्रथमखण्डः ॥

